मुक्तिबोध रचनावली

कहानियाँ और एक
अधूरा उपन्यास

मुक्तिबोध रचनावली

3

सम्पादक
नेमिचन्द्र जैन

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

दूसरे संस्करण की भूमिका

दूसरे सस्करण के प्रकाशन की घोषणा होने के बाद जब मुक्तिबोधजी के पुराने कागज फिर से देखे गये तो चार-पाँच कहानियाँ ऐसी मिलीं जो अधूरी कहानी के रूप में दिये जाने के योग्य लगीं। इनमे भी पहले खण्ड मे शामिल अधूरी कहानियों की भाँति ही कोई-न-कोई चरित्र, स्थिति अथवा शब्द-चित्र ऐसा है जो ध्यान आकर्षित करता है। इसलिए इन्हे शामिल कर लिया है। इनमे से एक का शीर्षक भी—'भूमिका'—मुक्तिबोधजी का दिया हुआ ही मौजूद था, उसे यो ही रहने दिया गया है, और बाकी चार को अधूरी कहानी' क्रम म रखा गया है। इन सभी कहानियो को रचना-काल के अनुसार अलग-अलग जगह समाविष्ट कर दिया गया है।

पहले सस्करण के समय तीसरा खण्ड पूरा मुद्रित हो जाने के बाद उनके एक उपन्यास का खण्डित रूप प्राप्त हुआ था जिसे खण्ड के अन्त मे ही प्रकाशित कर दिया गया था। अब इस सस्करण म उसे काल-क्रम के अनुसार ही रख दिया गया है।

आशा है कहानियों के इन नये टुकडो स भी मुक्तिबोधजी के गद्य और उनके मानवीय व्यवहार और मानसिकता के अवलोकन का आस्वाद वैसा ही मिलेगा।

नेमिचन्द्र जैन

पहले संस्करण की भूमिका

इस खण्ड में मुक्तिबोध की प्रकाशित-अप्रकाशित, पूर्ण-अपूर्ण छोटी-बडी सभी कहानियाँ सकलित हैं। यद्यपि उनकी सर्जनात्मक प्रतिभा की मुख्य अभिव्यक्ति कविता में ही हुई है, मगर उनकी रुचि कथा-लेखन मे भी शुरू से उतनी ही गहरी थी और वे लगातार जीवन-अनुभव को कथा-मूलक बिम्बो मे व्यक्त करते रहे। इसीलिए यहाँ सकलित कहानियो का काल भी कविताओ की भाँति ही 1936 से 1964 तक फैला हुआ है।

यह एक विडम्बना ही है कि उनके जीते-जी उनका आलोचनात्मक लेखन ही पुस्तकाकार प्रकाशित हो पाया। कविताएँ और कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में तो छपती रही थीं, पर पुस्तक रूप मे उनका प्रकाशन उनकी मृत्यु के बाद ही हुआ। इस कारण इस **रचनावली** के लिए सामग्री का सम्पादन करते वक्त शुद्ध और प्रामाणिक पाठ की समस्या कहानियो मे विशेष रूप से बहुत तीव्रता से सामने आयी। इस बात से बडा आश्चर्य और दुख हुआ कि प्रकाशित सकलनो मे न सिर्फ पाठ जगह-जगह बहुत अशुद्ध और भ्रष्ट है, बल्कि कई जगह पृष्ठ-के-पृष्ठ छूट गये हैं, या आगे-पीछे हो गये हैं। अनेक स्थलो पर पक्तियाँ, वाक्याश, या शब्द छूटे हैं या गलत हैं। यहाँ मूल पाण्डुलिपियो से मिलाकर यथासम्भव इन गलतियो, अशुद्धियो को दूर किया गया है, यद्यपि अनेक कहानियो की मूल पाण्डुलिपि अब प्राप्त नही है और उनके लिए प्रकाशित पुस्तको या कही-कही कतरनो से मिलाकर सन्तुष्ट होना पडा है।

प्रकाशित सकलनो मे एक दो कहानियाँ ऐसी भी थी जिनमे किसी कारण (एक ही कागज पर लिखी होने के कारण या किसी अन्य वजह से) दो अलग अलग कहानियाँ गडमड हो गयी थी। जैसे 'चाबुक' कहानी, जिसम दो स्पष्ट भिन्न कथाएँ हैं और एक तरह से दोनो ही पूर्ण हैं। यहाँ शुरू का अश 'चाबुक' शीर्षक से और दूसरा अश 'उपसहार' शीर्षक से तुरन्त बाद ही दे दिया गया है।

कविताओ की भाँति, मुक्तिबोध न अक्सर एक ही कहानी को भी बार-बार लिखा। इसलिए कई कहानियो के एक से अधिक प्रारूप मिलते है। कही कही पाण्डुलिपि मे उपलब्ध, पत्रिका मे प्रकाशित और सकलन मे प्रकाशित रूपो म भी अन्तर है। दिलचस्प बात यह है कि कुछ मे ये अलग-अलग प्रारूप कुछ सामान्य पात्रो, नामो, स्थानो अथवा वर्णनो, वाक्याशो को इस्तेमाल करते हुए भी, अपने-आपमे स्वतन्त्र कहानियो जैसे है, या एक ही स्थिति को अलग-अलग बिन्दुओ से प्रस्तुत करते हैं। उन्हे यहाँ स्वतन्त्र रूप स रखा गया है।

'एक दाखिल दफ्तर साँझ'-जैसी कहानी का आग का एक और किन्तु अपूर्ण हिस्सा भी उपलब्ध है जिसस उसके मूल चरित्र की मानसिकता पर कुछ अतिरिक्त प्रकाश पडता है। इसलिए यहाँ मूल कहानी के बाद ही, पर अलग स, उसे भी दे दिया गया है। इसी तरह 'विपात्र' कहानी के रूप म भी छपी और उपन्यास के रूप मे भी। पर लगता यह है कि उपन्यास रूप मे प्रकाशित करते वक्त जो हिस्सा जोडकर उसे उपन्यास कहा गया, वह वास्तव मे एक अन्य प्रारूप मात्र है, कहानी का अगला खण्ड नही। यहाँ दोनो अश एक साथ तो दिय गये हैं पर इस सम्भावना को सूचित करने के लिए एक टिप्पणी भी बीच म जोड दी गयी है।

इस **रचनावली** मे 1936 से 1964 के बीच लिखी गयी, पर, जहाँ तक पता चल सका, कही भी अप्रकाशित 3 पूर्ण तथा 16 अपूर्ण कहानियाँ भी है। पूर्ण कहानियो म से दो, 'खलील काका' और 'वह' प्रारम्भिक हैं 1936 37 मे लिखी हुई। तीसरी, 'मैत्री की माँग', 1942 के बाद लिखी गयी होगी। अपूर्ण कहानियो म, एक हद तक अधूरी होने के बावजूद, किसी स्थिति चरित्र या विचार का इतना प्रस्फुटन अवश्य है कि वे मुक्तिबोध की सूक्ष्म अवलोकन की प्रवृत्ति, अन्तर्दृष्टि अथवा वर्णन-क्षमता को उद्घाटित करती हैं। साथ ही उनस लेखक की रचनात्मक मानसिकता भी कुछ अधिक समग्रता म उभरकर आती है।

मुक्तिबोध ने अपनी रचनाओ के शीर्षक नही दिये हैं। यह अक्सर वे उस पत्रिका के सम्पादक के ऊपर ही छोड देते थ, जिसम वे अपनी रचना छपने के लिए भेजते थे। अनेक कविताओ की भाँति, ज्यादातर कहानियो के शीर्षक भी सम्पादकों के दिये हुए हैं। (सम्भवत प्रकाशित सकलनों मे भी अधिकतर शीर्षक किसी अन्य व्यक्ति के ही हैं)। यहाँ पहले से प्रकाशित कहानियो के शीर्षक वही रहने दिये गये हैं। पर अपूर्ण या अप्रकाशित कहानियों मे से कुछ के शीर्षक स्वय मुक्तिबोध के दिये हुए हैं, कुछ के इस सम्पादक द्वारा। सात अपूर्ण कहानियो को 'अधूरी कहानी 1-7' शीर्षको स रखा गया है, क्योकि उनका कोई शीर्षक देना उचित नही लगा।

रचनावली मे अन्य सभी सामग्री की भाँति कहानियाँ भी काल-क्रम स प्रस्तुत करने की कोशिश की गयी है। पर कविताओ की भाँति, कहानियो म भी, कुछेक प्रारम्भिक रचनाओ को छोडकर, किसी म तारीख नही दी हुई है। इस कारण उनका निश्चित रचनाकाल निर्धारित करन म उन्ही सब पद्धतियो का सहारा लिया गया है जिनका प्रथम खण्ड की भूमिका मे उल्लेख किया गया है। सम्भवत रचना-काल का कुछ और भी सीमित किया जा सकता था, पर कई कारणो स कहानियो मे वह नही हो पाया।

एक-दो बातें कहानियो की भाषा के बारे म। अधिकाशत , भाषा जैसी पाण्डुलिपि म है वैसी ही रहने दी गयी है। प्रारम्भिक भाषा म अनेक मालवी शब्द या मुहावरे हैं, बाद मे भी कई जगह मुहावरा या विन्यास अटपटा है या शायद दुबारा देखे न जान क कारण व्यवस्थित नही है। पर मोटे व्याकरण-सम्बन्धी, विशेषकर वचन या लिंग सम्बन्धी, सशोधनो को छोडकर भाषा म कोई परिवर्तन नही किया गया है। सम्भवत , इसस मुक्तिबोध के सर्जनात्मक गद्य के विकास का समझने म मदद मिलेगी।

नेमिचन्द्र जैन

क्रम

कहानियाँ

अपूर्ण कहानियाँ

ख़लील काका

खलील काका को याद आयी, अपने लडके रसूल की मृत्यु की नही, केशव के बचपन की। कैसा-कैसा खेल किया करता था, मारे मस्ती के घर···

केशव ने देखा, खलील काका को आँसू आ रहे हैं। आँसू पोछते हुए कहने लगा, "अरे, आप तो रोते हैं···फिर किस हिम्मत पर मुझे बडा किया।"

केशव ने खलील के वृद्ध गालों को पोछा, दाढी पोछी, गले को पोछ दिया। कुर्ते के बटन लगा दिये, पजामा ठीक कर रजाई से आधा बदन ढक दिया। खलील की झुर्रियों पर एक दृष्टि डाल वह पैरो के पास बैठ गया और पैर दाबने लगा।

इस मिट्टी के सूने घर मे, जहाँ हवा आने के लिए कुछ भी जगह न थी; वह दीया, कोनेवाले छोटे आले को काला करता हुआ, रोगी की तरह घण्टे तै रहा था कि किसी अदृश्य शक्ति ने उसे बुझा दिया।

केशव ने अपना काम नही छोडा। दीया लगाने नही उठा।

खलील देखने लगा इस अन्धकार मे एक-एक चित्र—भुलाई हुई बातें। यह अन्धकार उन चित्रो पर पड़े परदो को उठानेवाला बना। उसकी विचारधाराएँ एकाएक जाग उठी।

उस ज़माने मे, उस दिन, उस समय, जब वे बाहर गये हुए थे, खलील केशव को लिये बैठा था, वहाँ उस वृक्ष के नीचे। ज़रूर, ज़रूर तब रसूल लाल तुर्की टोपी पहने था जो उसके मामू ने दी थी, हरी जाकिट जिसकी सीप की दो घुण्डियाँ बदमाश ने तोड डाली थी। इसी पर खलील ने उसे चाँटा मार दिया था। ज़रूर, ज़रूर ! तब नीले आसमान मे काले बादलो के छितरे किनारे डूबते सूर्य की किरणें पडने से लाल झालर-से दिखायी देते थे।

रसूल चाँटे से उभरा लाल मुँह लिये जाकिट की जेब मे से काँच की अण्टियाँ निकालकर गिनने लगा।

खलील ने छोटे-से केसू से पूछा, "आज सूरज पच्छम से निकलेगा।"

केसू के प्यारे ओठो ने जवाब दिया, "आँ," और अपने कोमल हाथ खलील की दाढी मे उलझा दिये। खलील हँसने लगा।

उसने रसूल से पूछा, "आफताब पच्छम से निकलेगा ?" रसूल ने तमककर जवाब दिया, "नही, तुम झूठ बोलते हो।"

"बदमाश···" खलील ने डाँटना चाहा। रसूल रोने लगा फूट-फूटकर। वह खलील के तमाचा जड़ने पर नहीं रोया था।

केशव को कमरे में बहुत गर्मी लगने लगी। वह बाहर निकल आया और काले आकाश मे चमचमाते तारों को देखने लगा, फिर मानो वे अरुचिकर प्रतीत होते हो, दूर झाडियो के झुण्डो के तले साकार अन्धकार को देखने लगा, जैसे उससे वह कुछ प्रश्न पूछना चाहता हो।

वह खलील काका के पास आया है, उसके वृद्धत्व में। वह तरुण है, कमाता है, खाता है। बाप के मरन पर खलील ने उसे सम्हाला, पाला पोसा, बडा किया। खलील बीमार है, और केशव उसकी पूरी सेवा कर रहा है। केशव सोचता है—बडा अच्छा हो, खलील काका जल्दी अच्छे हो जाये। बहू कितनी याद कर रही थी!

केशव अन्दर आया। दीया जला दिया और फिर पाँव दाबने बैठ गया।

"रसूल भी कैसा बदमाश है रोने लग गया। नही तो, केसू कभी नही रोता था।"

खलील काका ने आँसू की बाढ रोकने का प्रयत्न किया, अपनी अक्षम पलको से। सिर हिला दिया जिससे आँसू इधर-उधर बिखर गये, तरुण केशव को नही दिखे। खलील प्यार करता है केशव को रसूल से ज्यादा, इसलिए कि उसे माता-पिता नही है, अनाथ है, बच्चा है कोमल है। जी हाँ, रसूल को पिता हैं, वह बडा है—पाँच साल का है। खलील रसूल को डाटेगा, प्यार नहीं करेगा।

आज रात को खलील के इन आँसुओ ने उसकी अन्तर्धारा का परिचय करा दिया उसे, कि वह किसकी है? पर खलील उस समय रसूल की इस आवश्यकता को जान न सका।

रसूल रोता है—रोया करता है। इसीलिए तो उसकी माँ उसे छोडकर भाग गयी, हमेशा के लिए। खैर, केशव अच्छा है, रसूल बुरा है, बहुत बुरा। पर ऐ खलील तुझको उसकी क्या चिन्ता, इसलिए कि उसने तुझे जनम भर छला है?

रसूल जब अपनी फूटी स्लेट बगल म दबाये मदरसे से लौट रहा था और विचार कर रहा था कि अब तो वह खलील काका की गोदी मे सोयेगा, और जरूर सोयेगा, केसू रोज़ सोता है, उसे नही सोने देता, आज वह सोयेगा और जरूर सोयेगा, नही तो केसू को पीटेगा। दुपहरिया के घाम मे से आ रहे रसूल के हाथ-पाँव खलील की गोदी मे सोन को उसी तरह अकुला उठे जिस प्रकार कोई रोगी कई दिनो से अनशन करन के कारण खाने की वस्तुएँ देख अकुला उठता है।

घर जाकर देखा तो खलील काका दो पैसे की शक्कर लाने रामू दूकानदार के पास चले गये हैं—घर नहीं है। केसू उनके बिछौने पर मस्ती कर रहा है।

रसूल ने केशव का हाथ पकड उसे अलग बिठा दिया। बिस्तर को ठीक कर (जो कि केसू की मस्ती स अस्तव्यस्त हो गया था) औंधा लेट गया, एक कराह लेकर।

केसू रसूल की शक्ति जानता था, इसीलिए रसूल का यह दुर्व्यवहार उसे बुरा लगा।

केसू ने रसूल के कान मे जाकर कहा, "खलील काका मेरे।" रसूल औंधे से सीधा लेट गया, उसकी ओर आँखें फाड फाडकर देखने लगा।

खलील काका किसके हैं? इस प्रश्न पर उसने कभी विचार नहीं किया था। उसका सयमी, विचार-व्यथित, सहनशील व्यक्तित्व इस बात पर एकदम चमत्कृत

हो गया। केशव के हैं या रसूल के खलील काका? क्या वह खोजने निकल पड़े? एक गुप्त कराह उसके हृदय की धड़कन में विंध गयी। उसका सारा बदन दुखने लगा, पर वह वैसे ही उठा और घाम में जाकर खड़ा हो गया।

थर्मामीटर लगाने के लिए केशव उठा और उसे लेकर इस तरह से झटकने लगा मानो किसी बोझ को वह अपने से झटकना चाहता हो। अब वह ईश्वर से प्रार्थना करने की सोच रहा है कि उसके खलील काका बच जायें।

थर्मामीटर देखने के बाद वह गहरी चिन्ता से खलील के पैरों के पास बैठ गया और अपनी आदत के अनुसार उन्हें दाबने लगा।

रात बीती जा रही थी। केशव की घड़ी की अविरत टकटक उसकी एक-एक चिन्ता को गिन रही थी।

खलील काका के विचार-स्वप्न हृदय की तह में घुसकर आँखों में उठने लगे। दूर से खलील काका दिखायी दिये। रसूल के सारे शरीर में विचित्र झनझनाहट पैदा हो रही थी—अवश्य वह तो खलील काका की गोद में जाकर सोयेगा और जरूर सोयेगा।

खलील काका के साथ एक आदमी और था। ज्यों ही खलील आकर बैठा, रसूल उसकी गोदी में गिरकर एक वेदनामय उल्लास अनुभव करने लगा। खलील के लम्बे कुर्ते में अपना मुँह छिपा लिया, क्योंकि उसे आनन्द के मारे आँसू आ रहे हैं। उफ! कितने ही दिनों के बाद आज उसे अपने पिता की गरम गोदी मिली है। जरूर खलील काका उसके हैं, और किसी के भी नहीं।

खलील काका हड़बड़ा उठे। केशव से कहने लगे, "बेटा, अब तू सो जा, बहुत देर हो गयी जागते-जागते···प्यारे केसू, तुझे रसूल की याद आती है?"

केशव आश्चर्य से उनकी ओर देखता ही रह गया। अटककर बोला, "आ-आप सो जाओ।" केशव के मस्तिष्क में एक कल्पना साकार होती चली···बुड्ढा चला न जाये···।

[illegible] क्योंकि

[illegible] ैर ढाई साल का है।

अब रसूल को होटल में नौकरी करनी होगी। कमाकर लाना होगा, नहीं तो घर से निकाल दिया जायेगा। रफीक़ साहब इसीलिए आये हैं।

रसूल को रोना आने लगा। सचमुच खलील काका उसके नहीं हैं।

खलील को क्या मालूम था कि रसूल उस होटल में जाकर मर जायेगा, नहीं तो वह जरूर चूम लेता, प्यार कर लेता, छाती से चिपका लेता। वाह रे खलील!

खलील काका के जी में न मालूम कैसा-कैसा होने लगा। कण्ठावरोध हटाने का प्रयत्न कर केशव को बुलाया। सहसा खलील ने तरुण केशव के गालों को चूम लिया। अपनी दोनों बाँहों से उसे जोर से पकड़ कहने लगे, "मेरा केशव कितना अच्छा है!" और आँसू बरसाने लगे।

केशव कुछ भी न समझ सका। वह तो इतना भर जानता है कि उसके अशक्त खलील काका को ऐसा नहीं करना चाहिए, क्योंकि उन्हें जल्दी अच्छा होना है। और अब वह भी बच्चा नहीं है, युवक है। उनकी तबीयत और खराब होगी और

उन्हे ही कष्ट होगा। उनको जल्दी अच्छा हो जाना चाहिए। बहू भी कितनी फिकर कर रही थी।

[रचनाकाल 5.10 1936]

वह

हम दोनो की दोस्ती आपस के झगडे से शुरू होती है।

लिखते-लिखते थक जाने मे मैं फाउण्टेन पेन डेस्क पर रखकर जरा एक ओर [illegible] या था और [illegible] ही कहा,

उसकी बारीक लम्बी भौह वक्र हुई। दो-ढाई सल कपाल पर दिखलायी दिये और मुद्रा प्रश्नात्मक।

मैंने फिर मानो अपने मन से ही कहा, "यहाँ मेरा फाउण्टेन पेन रखा था · अब नही है।" उसकी ओर मुडकर मैंने पूछा, "आपने देखा था क्या किसी को ··।"

"फाउण्टेन पेन से मेरा क्या सम्बन्ध ?"

"आपका सम्बन्ध यो है, आप मेरे पास बैठे हुए थे। आपको चाहिए था आप मेरी चीजो को देखते।" मैंने दृढता से कहा।

"मैं आपका मतलब नही समझा क्या आप यह कहते हैं, आपके नुकसान मे मेरा हाथ था ?" उसकी दो भौंहो के किनारे पर, नाक के ऊपर, दो लम्ब रेखाएँ खिंच गयी, भाल पर पडी आडी दो समानान्तर रेखाओ को काटती हुई। मैंने नरमते हुए कहा, "नही, महाशय, मेरा यह आशय नही था। मुझको मालूम नही था, पर आप ऐसे भूले रहते है।"

चेहरे पर पडी रेखाएँ एक-एक कर गायब होने लगी। कहने लगा, "यह बात अलग है। पर आपका मुझ पर वहम था ··इससे इनकार नही किया जा सकता कि · "

"तो फिर मैं अपना वहम किस दूसरे पर लादता ? ·आप ही जो पास मिल गये।" मैंने हँसते हुए कहा।

"फाउण्टेन पेन पार्कर था ?"

"जी," मैंने पोज मे तनकर कहा।

"आप किससे ऐसी आशा रखते हैं ?"

"किसी लेडी स्टूडेण्ट से,"—मैं खिलखिलाकर हँस पडा। यह महज आत्म-सन्तोष [व्यक्त] करने का एक ढग था।

मैंने देखा उसके चौडे भाल पर दो समानान्तर रेखाएँ रेल की पटरी-सी चली जा रही है, भौंहो के बीच का हिस्सा कई क्षेत्रो म कट गया है। गुप्त क्रोध से लाल

चेहरा और उस पर बालों से टपकनेवाली पसीने की एक बूँद। उफ़! कितना सुन्दर दीख रहा था वह! लेकिन, कितना छिपा हुआ!... मैं उससे कितनी ईर्ष्या कर रहा था!

'क्या आप यह कहते है, जिसने आपकी चोरी की वह आपसे प्रेम करता होगा?" और वह मेरी तरफ़ देखने लगा, किसी निरीह उद्देश्य से। वह दृष्टि तीक्ष्ण और असह्य थी मेरे लिए। वह किसी खोज मे थी। पर मैंने झेंपना उचित न समझा।

"बहुत सम्भव है, प्रेम करता हो।" मैंने हँसने की व्यर्थ चेष्टा की।

"झूठ ...आपका चेहरा कह रहा है... " वह चिल्ला उठा।

उसके सामने मेरी वाक्-प्रतिभा हतप्रभ थी। मैंने अपने विजेता की बाँह पकड ली और उसे एक ओर ले चला। वह वैसा ही लाल था। बाल पसीने में वैसे ही तरबतर थे। वह वैसा ही सुन्दर था। सुन्दर के साथ मित्रता करने की किसकी इच्छा न होगी?

उसे होटल मे ले जाकर चाय मँगवायी।

"लीजिए," मैंने शिष्टता से कहा।

"जनाब, मैं चाय नही पिया करता।" मैं आश्चर्यित हुआ। अपने में ही यह इतना गायब है। "तो दूध लीजिए।" उफ, मैं कितना आकर्षित था!

"क्षमा कीजिए, यह दूध लेने का समय नही।"

मैं हतप्रभ था। मुझसे यह दूर क्यो भागता है?

"जनाब, आप बुरा न मानिए, आप पीजिए। मैं आपके पास बैठा हूँ, बातचीत कर रहा हूँ।" उसने कहा। मैं चाय पीने लगा, उसकी आज्ञा समझ।

यह पहला दिन था हमारी मित्रता का, जो मेरी स्मृति से गायब नही हो सकता।

मैंने नम्रता से कहा, "आइए।"

वह थोडा झुका। उसका विशाल चुनौती देता सा मस्तक और पीछे किये हुए बाल। लम्बी बारीक भौंहे, पतले होंठ, लम्बे गोरे गाल, कुछ उठी हुई ठुड्डी। विशाल वक्षस्थल, ऊँचा पूरा।

मैं स्त्री-भाव से एक क्षण-भर उसकी ओर देखता रहा। और मुसकरा दिया। वह आया और कुर्सी पर बैठ गया। बोलने के विषय के अभाव में पास पडे लीडर के पत्ते उलटने लगा।

"वॉण्टेड के कॉलम्स देख रहे हैं?" मैंने छेड़ने के उद्देश्य से पूछा।

"जी नही," ठोस जवाब दिया मेरा भाव समझकर।

मैं बहस जारी रखना चाहता था। "बी. ए के बाद आप करेंगे भी क्या?" मैंने कहा।

मैं फिर मुसकराया इसलिए कि वह एक-आध मिनिट के लिए चुप था। पर मैंने देखा, उसके होंठ फडफडा रहे थे और लीडर के पत्ते वह इतने जोर से उलट रहा था कि मालूम होता था पत्र का अन्त पास ही है। उसने होंठ दबा लिये। लीडर एक ओर रखकर बोला, "आप मुझसे यह चाहते हैं, मैं आपके बताये मार्ग पर चलूँ। कोई 'लाइन' ले लूँ। उद्देश्य हो पैसे कमाना... किसी भी रीति से।

जनाब, मैं इस मरियल जीवन मे सक्रान्ति चाहता हूँ, रोमास चाहता हूँ। क्यो न मैं मालदार वाप को छोड देश के एक कोने मे दस रुपये की नौकरी करूँ, और एक नये ढग का जीवन बिताऊँ ।"

उसने कुर्सी मेरी ओर खिसका ली। और उत्तर के लिए देखने लगा। मैं इस झिडकी के लिए तैयार नही था। यह अनपेक्षित आँधी मुझे उडा ले जाना चाहती थी। मैंने आँखें उठाकर उसकी ओर देखा। "हजरत, आपको अनुभव नही है अभी। अपने दादा से कहिए ऐसी बातें जाकर।" मैं जानता था मेरा पक्ष कमजोर है।

"क्या आप यह समझते हैं, जो मैं चाहता हूँ हो नही सकता ? मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि मै अपन पुप्ट विचारो के अनुसार कार्य करूँ।"

"ये कहने की बातें हैं, सुख कौन छोडता है ? आखिर डाक्टरी, वैरिस्टरी, इजीनियरी करने मे हर्ज ही क्या है ?"

वह तमतमा उठा। चुप रहा पर। मैं जानता था इस समय इसे छेडना ठीक नही।

"शान्ता, शान्ता," मैंने शान्ता को पुकारा। शान्ता दरवाजे मे आकर खडी हो गयी। "शान्ता, पानी ला, इनको चाहिए है।" वह उसकी ओर एक दृप्टि डाल अचल ठीक करती हुई चली गयी। मैं मुसकरा उठा, यो ही। "जनाब," मैंने कहा, "अपना सिर उस **लीडर** से निकालिए और जरा दिमाग को ठण्डा कीजिए।"

वह जोर-जोर से पत्ते उलटने लगा। और फिर अपना सिर **लीडर** मे घुसेड लिया।

शान्ता पानी लायी और रखकर चली गयी।

वह मानो अपने ही तार मे कहता गया। 'आजकल का नवयुवक मनहूस होता है क्योकि उसे कार्य करने के लिए उचित क्षेत्र नही मिलता, या यूँ कहिए, मिलने नही दिया जाता।" **लीडर** से मुँह निकालकर बोला, "आप बी ए. के बाद क्या करनेवाले हैं ?"

"एम ए।"

"उसके बाद ?"

"एज्युकेशनल लाइन।"

"और फिर ?"

"पैसा !"

"फिर ?"

"फिर क्या ? सुख।"

"क्या आप यह समझते हैं पैसे से आपको सुख मिलेगा ? मिस्टर, पैसा आपका साधन नही बनता, साध्य बनता है। पैसा और साध्य ! पैसा साध्य बनने के योग्य भी है ! पैसे के लिए खुशामद ! गधे को भी काका !!"

"हम खुशामद थोडे ही करते हैं," मैंने अप्रतिभ होकर कहा।

"समझा। खुशामद आपका कर्तव्य हो जाती है। मैं ऐसे युवक [चाहता हूँ] जो इन विकृत विचारो को हटाकर समाज का जीर्णोद्धार करें।"

"समाज आप किसे कहते हैं ?" मैंने अपनी हार कुबूल न करने के लिए कहा।

"समाज से मेरा मतलब उन सभी सस्थाओ से है जो नवयुवक की व्यक्तिगत वातो म सुख को हकदार समझती हैं। माता पिता इसम पहल आ जाते हैं।"

'जनाव पानी पीजिए।' मैंने विषय बदलना चाहा। वह तेज हो रहा था। पसीने की बूँदें उसक पीछे किये हुए बालो स दुरककर क्रोध स लाल गालो पर आ रही थी। न मालूम कैसा क्रोध है यह। वह किस पर क्रुद्ध था? मुझ पर? बिलकुल नही। माता पिता पर? ना! उसक स्वभाव को जानन का वे दावा करते हैं। उन्हें अपने लडके पर नाज है। मेरे से कहत थे—मेरा बेटा वडा होन हार है मैंने अपनी शराब का खर्च उसकी पढाई म लगाया है मैं तो इसे वैरिस्टर बनाऊँगा। न मालूम उन्होंने कैसे-कैसे कल्पना के महल बना रखे हैं। पर यह तो ढहानेवाला निकला। मैं वी ए म पढ़ रहा हूँ। एल एल वी होकर गृहस्थी सम्हालूँगा। यह न मालूम क्या करेगा?

वह पानी पीने लगा और शान्ता दरवाजे म आकर टिक गयी।

'क्यो, शान्ता?' मैंने पूछा।

तुमसे कुछ कहना है मुझे।'

'आवश्यक और जरूरी?"

'हाँ," शायद उसने मन मे ही उत्तर दिया, इतना धीरे था वह।

क्या?' मैंने पास जाकर पूछा।

चाय करना है?'

अभी नही।"

'और कुछ?"

ना।

तो मैं जाऊँ? मैं तो जाऊँगी "

कहाँ जाओगी? मैं तो कॉलेज से आ रहा हूँ ठहरो ना।"

'हूँ हूँ-हूँ।" वह तो तिरछी मुडकर चली गयी। और ग़ायव।

मैं उसकी चचलता पर हँसा और मातृविहीनता पर रोया।

मेर लौटते ही वह उठ खडा हुआ। उसन हाथ ऊँचे उठाकर आलस दिया और क्रोध भी खो दिया। 'जाता हूँ।' कोट की जेवो म हाथ डालते हुए कहा।

अच्छा मि सोशलिस्ट।' वह मुसकराया। मैं भी मुसकराया।

यह मेरे लिए पहली ही मुसकान थी।

वह दिन मैं कभी नही भूल सकता, क्योंकि वह मेरे और शान्ता के जीवन मे चिरस्मरणीय है। उसके लिए वन्द्य है जो मेरे लिए लज्जाजनक। इसलिए कि उसन उस दिन पुण्य किया है बहुत बडा, और मैंन नीचतम पाप। हाँ, यह कहने म मुझे न तो लज्जा है और न सकोच। शान्ता के सामने यह कहने म शायद मैं हिचकिचा जाऊँ क्योकि मुझमे यह परिवतन उस बुरा लगता है। वह तो मुझ अब अपना वच्चा समझती है वडा भाई नही। मैं अब भी उसे चपत जड देता हूँ। पर मुझ उसका जवाव अब गरम गरम आँसुओ से मिलता है। शायद वह यह समझती है कि उसके खेलने के दिन अब गय। और वह मेरी सेवा किया करती है इसलिए कि, मैं जानता हूँ मैं यह न समझूँ वह मुझसे रूठ गयी है। वह अब घर के बाहर जाना नापसन्द करती है। उसी के कहन पर मैंन उसे सिंगर मशीन मँगवा

दी है। और उस पर वह आस-पास की बहू-बेटियो के कपडे सीया करती है। उन लाल-हरी, पीली-नीली चोलियो, घाघरो म उसे न मालूम क्या आनन्द आता है। मशीन का घर्र घर्र स्वर शायद उसे बहुत प्रिय लगता है, और कौतूहल-भरी स्त्रियो का झुण्ड जो उसके आस पास बैठा रहता है।

वह दिन इतना महत्त्वपूर्ण दिन है जो भुलाया नही जा सकता क्योकि उस दिन ने बाद के दिनो के अपेक्षित रग बदलकर अपन अनुसार कर लिय, जीवन की घडी खोलकर फिर अपनी रीति से बाँध थी। उसने भाई-बहन के स्वभाव को बदल देने म ही अपनी चातुरी समझी।

किन्तु चित्र की पृष्ठभूमि उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि चित्र स्वय। उस दिन की घटना उसके पहले दिन पर आश्रित है।

मैं जब कभी उस घटना पर सोचता हूँ, मुझे सबसे प्रथम स्वय पर ग्लानि होती है क्योकि मैं अपने को पूर्णतया दोपी समझता हूँ।

देती

पर ज्वालामुखी का स्फोट नही करती

को खदेड ले जाना चाहती थी। हम

लिए और लहरें ले जाये बिना, हम

जानते थे, रुकने की नही।

मानव-स्वभाव एक पहेली है। सहृदय व्यक्ति कभी कभी इतना कठोर हो जाता है, इतना निष्ठुर हो जाता है इतना अन्धा हो जाता है मैं अपने को हृदयवान समझता आ रहा था। पर उस दिन से मैंन अपन पर विश्वास करना छोड दिया है। मानव स्वभाव समाज स विद्रोह करे तो कोई आश्चर्य नही क्योकि वह कभी कभी स्वय स ही विद्रोह कर बैठता है। इसस भयानक विद्रोह और कौन सा हो सकता है?

मेरा और शान्ता का जीवन रेल की दो समानान्तर पटरियो के समान था। जिधर मैं मुडता, उधर ही वह मुड जाती। और अब भी वैसा ही है, पर किसी ने पटरियाँ बदल दी।

मैं शान्ता को कितना चाहता हूँ यह मै अनजाने ही जानता हूँ। यह मेरी बहन है, सगी बहन। एक रक्त के हम दानो मातृविहीन हैं। वह अपनी माता का शोक अपनी चचलता मे भुलाये बैठी थी। मैं उसकी चचलता पर हँसता और मातृ विहीनता पर रोता।

सायकाल का समय था। सूर्य क्षितिज स दो हाथ ऊँचा था। मिल का काला साँप सा धुआँ लाल गाल को दो भागो म विभाजित कर रहा था। मेघ लम्बे-ऊँचे हिमालय के समान, विविध आकृतिवाले शिथिल गति तैर रहे थ। विरुद्ध क्षितिजो पर लाली छायी हुई थी। बीच म नीलिमा और उसम एक तारा, मानो वह भाग्य तारा किसी को देख रहा हो। रेल की पटरी—सीधी रोमांस-रहित भाग्य के समान—मजदूर के दीघ जीवन सी—चली जा रही थी सुदूर हमारी दृष्टि के पार। शान्ता, मैं और वह उस पटरी पर चले जा रहे थ।

वह अपने ही तार म कहता जाता, 'हमारी दृष्टि अन्धी है या हम अन्धा

होना सिखलाया जाता है। हम दौडने का कहा जाता है सीधा। घोडे के समान आखो के दोनो ओर पट्टी लगा दी जाती है जिससे आजू-बाजू दिखलायी न दे सके। वेशक जीवन के लिए यह अपमानजनक है। आपका स्वतन्त्र रीति स सोचन नही दिया जाता। माता पिता बच्चो को स्नेह विष स अन्धा कर उन्ह अपने अनुसार बनान की चेष्टा म लगे रहते है "

तुम अपने माता पिता को व्यर्थ दोष देते हो। उन्होन तुम्हारे लिए क्या नही किया है ? यह तुम्हारी कृतघ्नता है '

हूँ ऊँ ऊँ उन्होने पौधे को स्वतन्त्र रीति से कब बढन दिया ? क्यो उसके चारो ओर जाली लगा दी ? "

शान्ता ने मुझ धीरे चलने के लिए कहा। हम अपनी वाद विवाद की गर्मी म चाल भी बढाते चलते।

वह चुप रहा और चाल कम कर दी। हवा मे उसके बाल बुरी तरह स तितर बितर हो रहे थे।

तुम्हे भी स्वतन्त्र रीति से विचार करना नही आता। जनाबेआली परिस्थितियाँ कभी आपको छुट्टा नही छोडती। वे आपके लिए खुद नही बनती। उन्हे बनाया जाता है। समझ ! मानो उसका एकाएक स्फोट हुआ।

अब दोनो ओर दो पहाडियाँ आ गयी थी जिनस थोडा थोडा पानी झिरकर लोहे की पटरी को गीला कर रहा था। आस पास के पेड हवा के झोको स मानो टूटे जा रहे थे। पत्तियाँ मानो उडी जा रही थी। सूय पृथ्वी की आड से हम तीनो को झाँक रहा था। मैंने शान्ता की ओर देखा वह मुँह नीचे डाल चलती जाती थी। वस्त्र हवा से अग से चिपक गये थे। इधर उधर एक-दा बाल (सिर के) हवा म नृत्य कर रहे थे। मैंन पूछा शान्ता क्या साच रही हो ? वह लजा गयी। क्या यह अकारण था ?

मैं सोचता चला जा रहा था हम तीनों का भाग्य। यह हम दोनो मे कैसे आ मिला ? न तो इसमे इतना शिष्टाचार है और न हकडबाजी। इसका उद्देश्य क्या है ? यह दुनिया से क्या चाहता है ? क्या वह इसके लिए उलट-पुलट हो जाये ? क्या यह क्रान्तिकारी है ? मैंने अब तक जो कुछ उसके मुँह से सुना हुआ है वह मानो किसी सिद्धान्त पुस्तक के भिन्न भिन्न अध्याय है जो शायद सिलसिलेवार पढने से समझ मे आयें वैसे तो समझ मे नही आते। लाड प्यार स पाला गया कल का छोकडा आज दुनिया उलटन की बात सोचता है। मैं हँसा। अपनी ही इस वृद्ध जनोचित कही गयी पर। फिर मैंने अपने को सुधारत हुए कहा—कुछ जो बातें यह

देखा तो शान्ता और वह समान लम्बी डगें भर रह हैं और दो क़दम मुझसे आगे हैं। झटपट मैंने उनको मिला लिया। फिर एकाएक उसका स्फोट हुआ। डगें इतनी लम्बी डाली जाती हैं। नीचे पानी दखकर चक्कर आते हैं। ठीक जगह पर पाँव न रखना जीवन से हाथ धोना है। हवा भी कितनी जार स वह रही है ! पुल के बीच म एक ओर देखो वही ठहरने के लिए स्थान है और वह अभी बहुत दूर है। इन सब खतरो को पार करना ही तो जीवन है। क्या शान्ता ? उसने शान्ता को इस

तरह पूछा मानो वह बहुत समय से परिचित हो।
"खतरे कब नही रहते···"
मैंने देखा सामने धुएँ का प्रचण्ड गुबार चिनगारियाँ लिये हुए है। और सीटी। मैं चिल्लाया, "गाडी!" हम तीनो काँप गये। मोड पर होने के कारण उसकी सर्च-लाइट हम तक नही आ रही थी। उसने फौरन शान्ता का हाथ पकड लिया बायी ओर से, और मेरा दाहिनी ओर का। बडी तेजी के साथ उसने पाँव उठाना शुरू किया।
गाडी की तीव्र फ्लैशलाइट हमारे मुँह पर आ गयी।
धाड-धडाड! मेरे हृदय मे भी मानो कोई पत्थर फेंक रहा था।
वह चिल्लाया, "वह देखो स्थान· ·"
जल्दी आगे बढकर उसने शान्ता को खीचा और तख्ते पर रख दिया।
धाड-धडाड! धाड-धडाड! क्षण का भी विलम्ब घातक था।
उसने मुझे इतना ज़ोर से खीचा कि मेरा हाथ ही उखड जाता।
वह हमे अपने दोनो हाथो से पीछे दबाकर छाती निकालकर खडा हो गया। मैं उसके दाहिने कन्धे पर हाथ रखे था। उसके पसीने की बूँदें मेरे हाथ पर पडी।

तो अधिक हो गया। सकट का एकाएक आकर निकल जाना उतनी ही कँपकँपी पैदा करता है जितना कि उसका आना। मेरे हृदय मे पेण्डुलम ज़ोर-ज़ोर से घूम रहा था।
अन्धकार पड चुका था। तारे एक-एक कर रगमच के पात्रो के समान आ गये थे। वायु अपनी दौड मे थक नही रही थी। धुआँ चोर-सा न मालूम कहाँ छिप गया था।
वह बायें हाथ मे शान्ता को पकडे, दाहिने से मुझे, शिथिल-गति चल रहा था। हम तीनों पुल की पटरियो पर गिन-गिनकर पाव धर रहे थे।
पुल पार कर लिया, मानो एक चढाई खतम कर ली। मैंने एक गहरे नि श्वास मे अपने को सुस्ता लिया।
वह गर्दन नीची डाले न मालूम क्या सोचता चला जा रहा था। शान्ता भी गर्दन नीचे डाले थी। मैं तारो की फीकी चमक मे दूर क्षितिज को देख लेता, तो कभी स्टेशन के लाल-हरे दीपो को, कभी शान्ता को और उसको। फिर मैं भी गर्दन नीचे डाल लेता।
तीज का फीका चाँद बादलो से धीरे-धीरे निकल रहा था। उसने कहा, "सवा नौ।" हम पैर जल्दी-जल्दी उठाने लगे। उसने हम दोनो के हाथ छोड दिये।
स्टेशन आ गया, नमस्कार कर वह विदा हुआ।
मैंने शान्ता का हाथ पकड लिया और दोनो घर की ओर चले।
चाँद अब खूब चमक रहा था। फुर्ती से हम घर पहुँच गये। न मालूम कहाँ से आ गयी थी फुर्ती। हम दोनो इस तरह नीरव थे मानो कोई घटना ही घटी न हो। शान्ता ने फुदकते हुए आरामकुर्सी ले ली। मैं पलग पर बैठ गया। मैंने कहना शुरू

किया, 'आज कितनी विचित्र थी घटना !"

वह मेरी तरफ देखने लगी और फिर पासवाले लीडर के पत्ते उलटना शुरू किया। "यदि उसने सावधानी से काम न लिया होता, तो शान्ता, आज मुश्किल थी। कितना सतर्क, कितना बहादुर ! मेरे क्लास में पढता है यह। विद्यार्थी तो कुछ अच्छा नही है। पर तुमने आज देखा न "

वह उठी, खूँटी से मेरी टोपी निकाल ली और फेंककर झेलने लगी।

"पर उसकी वृत्ति कुछ ठीक नही, शान्ता। उसे भिखमगा बनने की इच्छा है।"

उसने मेरी ओर देखा। फिर टोपी को फेंककर टाँगने का प्रयत्न किया, पर टोपी गिर गयी। उसे उठा लिया। फिर अपने अंचल से साफ कर वैसी की वैसी ही खूँटी पर टाँगने लगी।

"उसे न तो अपने पिता की परवाह है, शान्ता, और न माता की। माँ-बाप उसके बडे ज़मीदार हैं ...।"

वह माता की तस्वीर के सामने खडी हो गयी। "उसके विचारो को तुमने समझा, शान्ता ? वह समाज मे क्रान्ति चाहता है, ऐसी क्रान्ति जिससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त हो ...।"

वह वहाँ से हटकर उसी आरामकुर्सी पर लेट गयी और मुँह फेर लिया।

मैं कहता गया, "शान्ता, वह एक बडा विचित्र आदमी है। मैं यदि उसके पिता से जाकर कहूँ तो उस बूढे की न मालूम क्या हालत हो ! मैं उसके यहाँ आता-जाता हूँ, इसलिए मुझे सब मालूम है। मैंने उसके पिता से यह सब इसलिए नही कहा कि वह कल भागता होगा तो आज ही भाग जायेगा। जितने दिन हम टिकाये रखें, अच्छा है। क्यो, शान्ता ?" मैंने देखा, शान्ता को नीद लग चुकी थी।

हाँ, अब मुझे उस दिन का ही वर्णन करना शेष रह गया। मेरी स्थिति आप समझने की कोशिश कीजिए। आपको मुझसे घृणा होगी जो कि स्वाभाविक है। मैं चाहता भी यही हूँ। मुझे प्यार नही चाहिए, घृणा चाहिए। बात यह है, मैं अपने को कभी समझ नही सका। मैंने चाहा था, वैसा ही हो रहा था। पर जब होने लगा तब मेरी चाह ही बदल गयी। इसका उत्तरदायी कौन ? मैं ! बेशक मैं ! मेरा मानस मेरा जिम्मेवार है। यह एक भाव-घटना है, जो बाह्य घटना से सूक्ष्म किन्तु तीव्रातितीव्र होती है। इसका प्रभाव अपने भाग्य पर होता है। यदि मैं कुशल कलाकार होता तो आपको और समझा सकता। मुझे समझने के लिए आपको मेरे पास आना होगा, नही तो, बहुत सम्भव है मेरे क्षीण शब्द आपको सुनायी न दे सकें।

जैसे-तैसे दुपहर समाप्त हुई और मैं कॉलेज से लौटा। बडा अनमना-सा लग रहा था मुझे उस दिन। न तो मेरा मन कॉलेज मे लगा और न टेनिस मे। घर पहुँचने के लिए साइकिल इतने जोर से भगायी कि एक दफा तो पुलिस कॉन्स्टेबल से टकराते-टकराते बचा, और एक दफ़ा एक मजदूरिन से, जो सिर पर टोकरी, जिसमे उसका बच्चा रखा था, लिये जा रही थी। जी जैसे बेचैन था। ईश्वर को धन्यवाद दिया और अभिशाप दिया कि मार्ग जल्दी समाप्त क्यो नही करता ! जैसे-तैसे घर आ पहुँचा और इधर-उधर देखने लगा कि रोज स्वागत करनेवाली

शान्ता आज कहाँ है ?

मैं दबे पैरो अन्दर पहुँचा शान्ता को चौकाने के लिए। दूसरे कमरे मे जाकर परदे के आड खडा हुआ और जोर से चलनेवाला श्वास प्रश्वास रोकने लगा, मुँह पर पसीना पोछता हुआ। धीरे-धीरे परदा हटाने लगा देखने के लिए' •

मैं अपने धडकते हृदय स कहने लगा, 'जैसा तू देख रहा है, हो नही सकता। तेरी आँखो ने तुझे धोखा दिया। सच ! सच ?' मेरा हाथ काँप रहा था, पाँव खडे होना नही चाहते थे। मेरी शान्ता और ऐसी ? मैं अपने मस्तिष्क पर विश्वास [illegible]

चलने [illegible] परदा सरकाया और देखन लगा

दोनो बाहुपाश मे बद्ध हैं और आँखें बन्द, जैसे मुझे ये देखना नही चाहते। शान्ता निर्वस्त्र, उसके वक्ष पर सिर रखे हुए। बाल कही उड रहे हैं, अचल कही गिर गया है। और इस बदमाश के वक्षस्थल पर मेरी शान्ता ! चार दिन की दोस्ती बडे खादी के कपडे पहन लिये । मैंने आँखें बन्द कर ली घृणा स।

मैं रुक क्यो रहा हूँ ? क्यो न अभी इन्हे मजा चखा दूँ। बेशर्म कही के ! परदा हाथ से छूटता गया। 'बेशर्म !" मैं इतने जोर से चिल्लाया कि वे जाग उठे। शान्ता की नूपुर-ध्वनि मानो मुझे चुनौती दे रही थी।

मैं उस कमरे से निकलकर बाहर आ गया अपनी अनभिज्ञता बतलाने के लिए। वे दोनो बाहर आ गये। शकित से, सकपकाये-से। दोनो काँप भी रहे होंगे तो मुझे मालूम नही। उसने मुझे भेदक दृष्टि से देखा और जाने लगा।

मुझ पर न मालूम कौन सा भूत चढ रहा था—मैं वेग से दौडा और वैसे ही खीचते हुए धक्का देकर उस कुर्सी पर बिठला दिया। जब मै उसे खीच रहा था मुझे मालूम हुआ था मानो उसम कोई भार ही नही और मैं अनावश्यक शक्ति और वेग से उसे खीचता होऊँ। वह इतना हलका क्यो था ? मैं समझता था मुझसे वह भिडेगा।

मैं क्रोध से काँप रहा था, शान्ता दूर गर्दन नीची कर काँप रही थी। वह स्तब्ध और चुप था। मैं चाहता था उसे दो-चार घूँसे लगाऊँ, पर व्यर्थ ! वह तो प्रतिक्रियाविहीन था।

शान्ता न उसकी ओर देखा। वह उठ खडा हुआ, मुझसे नम्रता से कहा, "जाता हूँ ।' और वह लडखडाता हुआ बाहर निकल गया। मैंने मुँह फेर लिया। और आँसू आ गये उसक प्रतिक्रियाहीनता के आघात से। मैं दूसरे कमरे म चला गया और पलग पर लेटकर तकिये म अपना मुह घुसेड दिया। मैंने पीछे मुडकर दखा तो माता बैठी हुई। मैं एकदम उठ बैठा। उसने दोनो हाथ पकड लिये। मैं चाहता था वह मुझसे बोले किन्तु वह तो मूर्तिवत् बैठी हुई, स्तब्ध निमग्न अचचल। उसकी पलकें हिल नही रही थी, और मेरी ओर देख रही थी। पुतली स्थिर थी हाथ पाषाण स, वक्ष पाषाण सा। मैं उसके और पास गया। वह हिली और उसकी पीठ पर पडा अचल नीचे गिर गया। बाल खुल गये। वह हँसी और न मालूम क्या बडबडायी। मैंने कहा तुम आज मेरे यहाँ आयी और मुझसे बोलती नही ? माँ ! तुमने देखा, आज ? शान्ता ने जो किया ?" वह हँसी मानो

मेरी मूर्खता पर ''मैंने ?...पाप किया ?'' वह कुछ बडबडायी। 'माँ' कहकर मैं रोने लगा फूट फूटकर।

कमरे के चारो दरवाजे बन्द थे। हवा बिलकुल नही आ रही थी। मेरा दम घुट रहा था। मैंने आँसू पोंछे और देखने लगा, उसे आँखें फाड-फाडकर''

पर, अब नाक बदल गयी, मुँह बदल गया ''मैं चिल्लाया, ''शान्ता !'' ''वह हँसी और बडबडायी। ''शान्ता, शान्ता, शान्ता !'' मैंने उसे खूब हिलाया।

''भैया, रोते क्यो हो ?'' उसकी आँखो मे आँसू आ गये। अब मेरी जान मे जान आयी। मैंने कहा, ''शान्ता, मैंने तेरा अपराध किया है, शान्ता'' शान्ता।''

आँखें खुल गयी। मैंने देखा, शान्ता मेरे वक्ष पर अपना सारा भार डाले पडी है। मैं उठ बैठा, उसके आँसू पोंछे। क्या वह आश्चर्यित थी ? मैंने मानो हृदय पर पडे पत्थर को दूर फेंकते हुए कहा, ''शान्ता, शान्ता...मैंने तेरा अपराध किया है।'' उसकी आँखो मे आँसू आ गये।

[सम्भावित रचनाकाल 1936-37]

आखेट

सामने सडक पर लोगो का आना-जाना शुरू हो गया। मोटर साइकिल, टाँगो का ज़ोर भी बढ चला। मुहब्बतसिंह को अपनी अँधेरी चौकी मे बैठे-बैठे इस तरह देखते रहने, सुनते रहने की आदत पड चुकी थी मानो देखते हुए कुछ भी न देखता हो, सुनते हुए कुछ भी न सुनता हो। कभी कभी वह सिर पर का भारी साफ़ा उतारकर अपनी घनी, लम्बी, काली मूँछो पर ताव देता हुआ न मालूम किस सोच मे पड जाता। अपनी तन्द्रा से वह तभी जागता, जब ड्यूटी पर का लम्बा-चौडा सिपाही अपने काले फुलबूट की एक नाल से दूसरे पाँव के बूट पर खट जमाकर तानता हुआ लम्बा सलाम कर सामने आता। वह बोलता बहुत कम था, पर सबसे बोलता था। वैसे वह काफ़ी लोकप्रिय भी था। सिपाहियो को पैसे उधार देता और उन्हे जुर्माने से बचाता, उनके बच्चो से प्यार करता। परन्तु बच्चे डरा करते, दूर से ही 'काका ! काका !' करते, पर पास न आते। जब वह सामनेवाले हलवाई से जलेबी लाता, तब कही रामसिंह का बेटा लछमन, भागवती का लडका काल्या और इस्माइल का लडका मक्सूद उसके पास आते। बडी अनिच्छा मे उन्हे उसके पास जाना पडता। जब मुहब्बतसिंह उनको चूमता तो उसकी घनी मूँछ उनके कोमल गालो को चुभने लगती।

उसका मोटा डीलडौल, बडा सिर, राजपूतानी सीधी नाक, आँखें बडी और पैनी मानो वह सबको डाकू समझ रहा हो। उसकी डरावनी, बडी, घनी, लम्बी मूँछें सबके हृदय मे भीति पैदा कर देती। वह अधिक भयावना इसलिए लगता कि उसकी घनी भृकुटियाँ प्रश्न और उत्तर के साथ-साथ वक्र होने लगती। परन्तु इस

अपने भयावनेपन का उसे बिलकुल ज्ञान न था। वैसे वह दिल का बडा उदार और दुनिया को समझनेवाला समझा जाता था।

उसकी चौकी बहुत मामूली चौकियो मे से थी। कभी-कभी एक ओर अपनी गद्दी को सिरहाने लपेट एक दरी उठाकर लेटा रहता। एक ओर चूल्हा था, जिसने दीवाल को काला कर रखा था, जिसमे राख पर अधजली लकडी पडी रहती। दरी के पासवाली खूँटी पर उसके खाकी झोले मे वरदी पडी रहती, उसी के पास दूसरी खूँटी पर उसके सादे कपडे। बाहर की दीवाल पर उसने दो कीलें लगा दी थी, जिन पर उसकी हरी किनारीवाली मोटी धोती सूखती रहती। अनजान मे भी यदि कोई उस पर हाथ लगा देता तो उसकी तबीयत सख्त नाराज हो जाती।

सुबह और शाम, दोपहर को कभी-कभी, हमेशा रात की वरदी डाटे वह भूत के समान अकेला घूमा करता, कभी-कभी थककर किसी पानवाले या हलवाई के पास कुरसी पर बैठ जाता और अपनी रोबदार मूँछो पर ताव दिया करता। रात को अपने हलके मे कभी भी उसे बैठा हुआ नही पाया गया। अलबत्ता वह

भौंहो की कठिन वक्रता से मिलकर भीषण हो उठी थी। उसकी बडी पैनी आँखें आज अधिक शकाशील थी। उसकी गुच्छेदार मूँछे उठावदार गालो पर बाँकापन लिये हुए थी।

जब वह ड्यूटी से लौटा तो शाम हो गयी थी। सडको पर भीड वैसी ही थी। अपनी अँधेरी चौकी मे घुसकर उसने टीन की चिमनी जला दी।

शहर मे बिजली की वत्तियाँ जल उठी। नीले आकाश मे सफेद और काले पक्षियो के झुण्ड सूर्यास्त की लाली की ओर मन्द गति मे तैरत हुए अदृश्य हो गये।

मुहब्बतसिंह ने वरदी उतारकर, नियमपूर्वक झोले मे रख दी। धोती पर बण्डी पहनकर उसने दरी पर हाथ-पाव फैला दिये। वह सारे दिन का थका-माँदा और भूखा था।

सामने सडक पर आने-जानेवालो का तुमुल कल्लोल हो रहा था, परन्तु वह मानो उसके कानो तक ही पहुँचता था। वह अपने मे मग्न, एक आन्तरिक सुनसान प्रदेश मे व्याप्त हो रहा था। एकाएक मानो वह अपनी नीद से जगा, बहुत दिनो मे आज उसने समझा, कोई उसे पुकार रहा है। उसने वही से आवाज दी, "इधर सामने आओ।"

एक आकृति जिस पर किवाड की गहरी छाया पड रही थी दरवाजे पर खडी हो गयी। मुहब्बतसिंह ने उसे और आगे बुलाया, जिससे उसका मुँह दिख सके। वह आकृति वहाँ से हटकर एक कोने मे खडी हो गयी।

मैले वाल इधर-उधर बिखरकर उस स्त्री के नाजुक मुँह को बिगाड रहे थे। वह लपेटे हुई थी एक चीथडा, जिसमे से उसके अग झाँक रहे थे। मुँह पर से दीनता टपक रही थी। वह सकपकायी हुई खडी हो गयी।

उसे यह स्त्री पहचान मे नही आयी। फिर उसके शरीर पर ध्यान गया,

और उसकी घनी भौंहोवाली पैनी आँखें छेदों से भरे हुए कपडे पर जाकर अटक गयीं।

वह मानो सचेत होकर बैठ गया। अपने अन्दर इतना सचेत वह पहले बहुत कम हुआ था। अपनी मूँछों पर स्वाभाविक रूप से ताव देते हुए उसने पूछा, "कहाँ रहती है ?" उस स्त्री की जबान बन्द थी मुहब्बतसिंह की भयानक सूरत के मारे। "यहाँ क्यों आयी है ? किस शहर की रहनेवाली है ?" मुहब्बतसिंह यह सब पूछता गया, पुलिस की रीति के मुताबिक, बिना उत्तर पाये।

बाहर की हवा जबरदस्ती अन्दर घुस पडी और दीपक काँपने लगा। मुहब्बतसिंह का ध्यान दीपक काँपने की ओर गया और अचानक उसकी नसों में बिजली दौड गयी। केवल इतना सुना, "मैं भूखी हूँ।"

मुहब्बतसिंह ने खडे होकर एकदम उसका हाथ पकड लिया और दबाकर फिर छोड दिया।

पाप के समय भी मनुष्य का ध्यान इज्जत की तरफ रहता है। वह पाप करते समय पाप से नहीं डरता, पाप के खुलने से डरता है। वह डर गया कि कोई आ न जाये, पर वह घबराया नहीं, और अपने ही घर में चोर बनकर हलके पैर, धीरे किवाड बन्द कर दिये तथा साँकल लगा दी।

दीया न मालूम क्यों, आप ही आप बुझ गया। अँधेरे में क्या हुआ करता है ? पाप।

मानो कोई आदमी किसी पहाड की चोटी पर जाने तक अथक परिश्रम करे और चोटी पर पहुँचते ही पाँव फिसलकर, उसके ढाल पर से ज़ोर से लटकता हुआ अधमरा होकर वहीं पहुँचे, जहाँ से वह चला था—किसी हद तक वैसी ही हालत मुहब्बतसिंह की हो गयी। पर उसका मस्तिष्क अधिक सचेत हो उठा। उसके अन्दर का एक छिपा हुआ दीपक पूरी ज्योति से जग उठा। वह अँधेरे में वैसे ही पडा रहा। बाहर हवा किवाड को धक्का दे रही थी।

एकाएक मुहब्बतसिंह को अपनी माँ की याद आयी जो कहा करती थी, "पाप से बचा कर !" उसकी धुँधली आँखों में मुहब्बतसिंह को आज मानो कोई नया सत्य दीखा हो। वे आँखें आज अधिक स्पष्ट होकर उसके सामने आयीं और उसको मालूम हुआ मानो उसकी आँखें गीली हो रही हों। उसके बाद, उसे पिता भी याद आये, उनकी प्यार-भरी बातें उसे याद आने लगीं और उसका दिल भारी हो गया।

बाहर आँधी चल रही थी और चौकी का दरवाजा खटखटा रही थी, अब तक मानो उसने यह नहीं सुना था। अब सुना और सचेष्ट हो गया और अपनी अवस्था पर उसका ध्यान गया। अपने आन्तरिक जगत् से लुढककर वह समाज और राजनीति के जगत् में खडा हो गया।

वह उठकर सचमुच खडा हो गया। जल्दी-जल्दी चिमनी जला दी जिससे वह इस परिस्थिति को मिटा सके। उस स्त्री का शरीर पडा था, मानो कोई मुरदा हो, और उसका मुँह दरी के पीछे छिपा था।

इस अकल्पित, अजीब परिस्थिति में मुहब्बतसिंह आज ही पडा था। इसका एकदम निपटारा करने का उसने निश्चय कर लिया। वह उसके पास गया, उस स्त्री को एकदम उठाने के लिए और निकाल बाहर करने के लिए। लेकिन जब वह

उसके पास जाकर बैठा तो हाथ पकड़कर खींचने के बजाय उसके कृश हाथों पर हाथ फेरने लगा। आदमी में तूफान हमेशा थोड़े ही रहता है।

वह स्त्री भूख की सतायी थी, जिसके माँ-बाप, भाई-बहन लापता, न रहने को स्थान, न पहनने को कुछ। सारे शहर में पैसे के लिए घूमने पर पेट की ज्वाला से व्याकुल और निराश होकर, इस दरवाज़े पर ठहर गयी थी और आवाज़ दी थी।

अब तक वह मानो अचेत-सी थी। वह जगत् की ठोकरों को उड़ते कागज़ के समान ले रही थी। परिस्थितियों को मान ही नहीं रही थी। परिस्थिति को वह माने जिसमें अपने व्यक्तित्व का भाव हो। व्यक्तित्व ही के लिए समाज और नैतिकता होती है। भूखे और समाज की आर्थिक नीति से बुरी तरह कुचले हुए समाज से बाहर समझे जाते हैं। केवल किसी प्रकार उदर-भरण तक बन सके करते रहना ही इनकी इच्छा, आकांक्षा और ममता थी। वह कितनी भूखी थी!

पर अब जब कि वह सचेत हो उठी थी, मुहब्बतसिंह का गरम हाथ उसके कृश शरीर, उसके अस्त-व्यस्त बालों और कपाल पर फिर रहा था। उसमें अत्याचार की ज्वाला नहीं थी, भावनाओं की गरमी थी। वह अधिकाधिक सचेत होने लगी।

मुहब्बतसिंह हाथ फेर रहा था उसकी पीठ पर और उसके सामने माँ की तसवीर थी। कभी-कभी उसकी माँ इस तरह पीठ पर हाथ फेरा करती थी। मानो उसकी वह ममता दोनों के बन्धन का कारण बनेगी।

उस स्त्री ने गद्दी से अपना मुँह निकाल लिया और क्षीण आवाज़ में कहा, 'मुझे भूख लगी है।" सचेतावस्था के साथ ही साथ उसे भूख लगने का भान भी हो आया।

मुहब्बतसिंह ने मानो अब पहचाना कि वह किसलिए आयी है। और हाय रे! उसने क्या कर डाला!

फट से मुहब्बतसिंह उठा और एलुमिनियम का डब्बा देखा। उसमें कुछ भी *नहीं था। फिर उसके मन में विचार आया, रुपया देकर इसे रवाना कर दे।* उसने जेब टटोली, पर उसमें क्या था?

वह चुपचाप आकर बैठ गया और फिर वैसे ही हाथ फेरने लगा। मुहब्बतसिंह ने देखा, उसके आँसू बह रहे हैं। उससे रहा नहीं गया, पूछा, "क्यों रोती है?"

"मुझे भूख लगी है," उसने काँपते स्वरों में कहा। उसके भावना के आँसू थे।

मुहब्बतसिंह ने आवेग में आकर उसको अपनी गोद में खींच लिया। वह वैसे ही खिंच आयी और फूट-फूटकर रोने लगी।

किन्तु मुहब्बतसिंह के मन में इसी आवेश ने दुविधा उत्पन्न कर दी। उसने निश्चय किया था कि किसी तरह इससे सुबह तक निबट लेंगे। पर अब यह निश्चय काँपने लगा। फिर उसके मन में शंकाशील वृत्ति जाग उठी। पर एक असहाय को अपनी गोद में चिपटे देखकर वह वैसे ही हटा जैसे दीपक के आने पर अँधेरा पीछे हटता है।

अब मुहब्बतसिंह अपने को संकट में पाने लगा। एक हेड कान्स्टेबिल पुलिस अपने घर में भिखारिन रख ले। यह ग़ैर-मुमकिन बात है।

उसकी गोद में पड़ी स्त्री ने जी भर रोने के बाद उसकी तरफ देखा। मुहब्बत-सिंह ने उसके करुण मुख की ओर देखते हुए उसके बालों पर हाथ फेर दिया और

अब उसका ध्यान उसकी दशा की ओर गया।

[illegible] खोल देने पर

और आँधी न

बाहर जाने से बलात् रोक दिया। उसको मालूम हुआ माना आन्तरिक और बाह्य सब शक्तियाँ उसके विरुद्ध हैं, और उन सबसे उसे भिडना है।

टीन के पत्तरो को उडानवाली, बोलती हुई हवा न उसकी आँखो मे कचरा डाल दिया। आँखो को एक हाथ से पोछते हुए, दूसरे से टीन पकडकर वह उन कीलो के पास पहुँच गया जिन पर धोती सूखने के लिए डाली गयी थी। जिस कील पर उसका हाथ गया, उस पर उसे धोती का पता नही मिला। अब वह घबराया, अन्दर स।

बहुत छोटी कठिनाइयों को जब विस्तृत और रगीन रूप दिया जाता है, तब व मन पर उतना ही असर करती हैं जितनी कि बडी और गम्भीर। तब उनम दूसरो से ली हुई शक्ति आ जाती है।

परन्तु उसका पुलिस का दिमाग हिम्मत बाँध गया। कैसे उसन कई रातें सुनसान खँडहरो और कब्रो मे गुजार दी थी। वहाँ वह काँपता नही था, पर आज मानो किसी अदृश्य शक्ति न उसके खिलाफ कमर कसी हो।

वह दो कदम आग चलकर ठहर गया और मानो उसके हाथों मे आप ही आप धोती का पट्टा आ गया। उसने धोती दूसरे कीले मे छुडा ली और झट चौकी के अन्दर घुस गया, दरवाजा बन्द करते हुए।

उसने फिर चिमनी जला दी। इसकी ज्योति मुसकरा उठी। मुहब्बतसिह मानो स्वस्थ हो गया। स्त्री उठ बैठी और इस मुहब्बतसिह नामवाले पुलिसमैन को एक बडी अजीब याद आयी, इस स्त्री को देखकर।

किसी गये ज़माने मे जब मुहब्बत अठारह साल का नवयुवक था, कासिमगज आउटपोस्ट पर हेड कान्स्टेबिल था मुसलमान, और उसकी एक खूबसूरत लडकी थी। तब मुहब्बत स्वप्न देखनेवाला सीधा-सादा पुलिस का जवान था। सुबह का समय था, पूर्व पीला हो उठा था, बगीचे मे चिडियाँ चहचहा रही थी। सरल लडकी सुबह उठा करती और रोज बगीचे म फूल तोडन आया करती। यह हवालात के पास कन्धे पर बन्दूक रखकर घूमा करता। उसका जी मचल उठता। उस भोली लडकी ने, फूल तोडते वक्त इस नौजवान, अडियल सिपाही का हृदय-फूल भी तोड लिया था। एक दफा किसी सुबह, मुहब्बतसिह के जी मे सनक आयी। बन्दूक हवालात के गज म अडाकर रख दी और बूट से खट-खट करता हुआ फूल तोडने आयी हुई उस सरल लडकी का कोमल हाथ पकड लिया। लडकी थी उस समय चौदह और पन्द्रह के बीच की। वह चिल्लायी नही, मुसकरा दी जैसे उषा मुसकरा देती है।

लडकी ने अपनी चचलता से कहा, "मुझे वह फूल तोडना है, जो सबसे ऊपर है। *तुम ला दोगे, मुहब्बत!*" उस सुबह के पहले प्यार म प्रेयसी की सुन्दर बाह पर मुहब्बत प्राण तक देन के लिए तैयार हो गया।

उसने कहा, "हाँ, मैं तो इससे भी ऊपर चढा था।"

पर मुहब्बत को कठिनाई हुई, क्योंकि वह वरदी पहने हुए था लेकिन फिर

सवेदनाएँ क्या कुछ कम शक्तिशाली होती है ? मैं जितनी सरलता से कह जाता हूँ उतनी ही सरलता से कर नही सकता और मन उचटता ही रहता है। जिस तरह लोग अपना मन रमाने के लिए जगत क कोलाहल से फटे हुए कान के परदो को कोकिल के स्वर क स्पश से ज्वल त करन क लिए आत है वही निशाकुल सध्या के समय जबकि नदी क सुदूर किनारे पर लगी हुई वक्षावलियाँ अ धकार मय होकर पीले श्यामल नभ मे कजरारी दिखने लगती है और उस कजरारेपन की गहन गम्भीरता नदी के लहरिल जल म मग्न हो जाती ह मैं उस अत्यन्त शान्त वेला मे नदी के छोटे से घाट पर पानी पीता हुआ अपन से कितना विरक्त अनुभव करता हूँ ?

जनाब मैंने बी ए म फिलासफी ली थी और फस्ट क्लास म पास हुआ। एम ए मे फिलासफी ली और युनिवर्सिटी म फस्ट क्लास फस्ट आया। तभी मेरा एक मित्र कहने लगा चश्मे के काच मे से झाकती हुई तुम्हारी आँख अब अधिक गम्भीर मालूम होने लगी है। लेकिन मैं सच कहता हू जब मैने दिमाग स पूछा क्या सचमुच तुम गम्भीर हो गय हो ?

तो दिमाग से उत्तर आया नही मैं बिलकुल कोरा हू टब्यूला रासा।

मैं चुप रहा और मुस्कुराते हुए लोगो के अभिवादन स्वीकार करन लगा। मैं रिसच-स्कालर हो गया। फिलासफस न आटालाजी एपिस्टेमालाजी और एक्श्यालाजी मे कनफ्यूजन कर दिया मैंने खोज करना आरम्भ कर दिया। शकराचाय का एब्सोल्यूट हैगेल के ऐब्सोल्यूट से भिन्न है हाँ है ता और मेरी विचारधारा चलने लगी।

जब मैं डाक्टर आफ फिलॉसफी की डिग्री लेकर युनिवर्सिटी का गाऊन पहिने हुए बाहर निकला तो पता चला कि इतने सालो की मेहनत और बुद्धि व्यय के बाद मुझ कुछ हासिल नही हुआ। मैंने धीरे से अपने से पूछा कहो भाई अब तो तुम पढ लिख गये हो।

और एक आवाज आयी मैं बिलकुल कोरा हू—टैब्यूला रासा।

मैंने देखा युनिवर्सिटी के मदान पर अपार जनसमूह मेरा अभिवादन करने के लिए उत्सुक खड़ा है। किन्तु वह मेरे लिए प्राणहीन नि स्पन्द और कोरा है। सब ओर मुझ कोरा सूनापन दिखलायी दिया। मैं गरदन नीची डाल हुए भीड म एक ओर गुम हो जाना चाहता था कि मेरे एक मित्र खुशी क सागर मे तैरत हुए मेरे समीप आये और लगे कान्ग्रच्युलेशन्स देने।

मैंने कहा जनाब चलिये इधर चाय पी आय। उसन कहा जनाब मैं बनारसी हूँ मिठाई खाऊँगा। मैंने कहा तो हटिय मुझ जाने दीजिय। चाय की तलब लग रही है।

मेरे चेहरे पर की उदासी अब क्रोध म परिवर्तित होत देखकर हमारे मित्रवर बोले अच्छा तो डाक्टर के एल राय कह रहे थे कि प्रो त्रिमूर्ति की खाली जगह पर आपको हेड आफ दी डिपाटमेण्ट आफ फिलासफी नियुक्त किया गया है।

मैं उछल पडा उदासी भाग गयी क्रोध हट गया।

मैंने कहा अच्छा तो तुम मिठाई खाओ मैं चाय पियूगा।

मैंने सोचा अभी मैं कितना उदास था अब कितना खुश हूँ। सचमुच जीवन

बिलकुल लॉजिकल नही है।"

मैं अपने विद्यार्थियो को मेटाफिजिक्स पढाया करता हूँ। लोग मेरी बहुत तारीफ करते है। प्रान्त भर मे मैं प्रसिद्ध हूँ। लेकिन, जनाब, मैं आपसे सच कहता हूँ कि पढाते-पढाते ऐसा जी होता है कि कप-भर चाय पी लूं और उनसे साफ-साफ कह दूँ कि "मुझे कुछ नही आता है। मुझ पर विश्वास मत करो। मेरी विद्वत्ता इन्द्रजाल है। इसके साथ फँसोगे तो जीवन-भर धोखा खाओगे, और मुझे नही भूलोगे।" तब मुझे ऐसा लगता है मानो मेरे दिल मे खून बह रहा हो।

[कर्मवीर, खण्डवा, 30 सितम्बर 1939 मे प्रकाशित। रचनावली के दूसरे संस्करण मे पहली बार सकलित]

मोह और मरण

चारो ओर सुनसान है। नदी के पार खेत के पासवाले इमली और आम के दरख्त इसी दिगन्तव्यापी मौन मे डूब गये हैं। अस्तगत सूर्य की बादामी लाली गम्भीर होकर चुपचाप क्षितिज की धूसर नीलिमा मे सिमट रही है। एक मिट्टी के टीले पर के आँगन मे टालवाला चिन्तामग्न होकर शहर से आनेवाले रास्ते की ओर मुँह किये उकडूं बैठा है, और पास ही उसका नाती—दो बरस का बच्चा—लकडी के घोडे पर उछल रहा है।

रास्ते की ओर से मन्द ध्वनि आयी, "सत्य बोलो गत्य है!"

बूढे टालवाले के मानो कान खड़े हो गये। धुंधली आँखे तीव्र हो उठी। इतने मे प्रथम चरण भी सुनायी दिया, "राम-नाम सत्य है।" और समवेत स्वर पास आता हुआ मालूम हुआ।

बूढे के सूखे होठो पर सन्तोष की रेखा खिंच गयी। चेहरा अधिक स्निग्ध हो गया।

समवेत स्वर अधिकाधिक जोर से आने लगा। अब धुएँदार आग लिये हुए खुले सिर आदमी दिखलायी दिये। अरथी का विशाल जुलूस विषाद और करुण उदासी से भरा हुआ गुजरने लगा। अरथी किसी तरुण सौभाग्यवती स्त्री की थी जिसका निर्जीव मुख खुला हुआ था। सबके पीछे एक युवक बिलखता हुआ चला जा रहा था। अरथी के ऊपर से पैसे लुटाये जा रहे थे। भगी उनको बीन रहे थे।

बूढ़ा देखता रहा जुलूस को—लोलुप आँखो से उन लुटाये हुए पैसों, इकन्नियो-दुअन्नियो की ओर। उसके प्राण अदृश्य रूप से भाग रहे थे।

जुलूस के दो आदमी उसके आँगन मे ठहर गये। वे स्थिर खडे थे, विषाद-परिप्लावित। उनका हृदय अत्यन्त भारी और आर्द्र था।

रात हो चुकी थी। आँगन मे टिमटिमाती लालटेन अन्धकार मे लिपटी चीजो को अधिक भयानक कर रही थी।

उनको देखकर बूढा खूब खुश हो गया। फिर भी उसने जान-बूझकर प्रश्न-भरी आँखो से उनकी ओर देखा। पर वे चुप थे, निस्पन्द थे।

बूढे ने पूछा, "कितनी लकडी दूँ?" यह कहते हुए एक विचार दिमाग़ से गुज़र गया। विचार आया, 'पैसे अधिक वसूल हो सकते हैं।' विचार के साथ ही साथ आनन्द का ज्वार आया। लेकिन एक दूसरा भी विचार आया, 'भाव तो यहाँ समान होता है, ठहरा हुआ होता है।' इस विचार से उसके हृदय को धक्का लगा। एक संघर्ष हुआ, कडुआ, कठोर।

उसने उनसे कठोरता से पूछा, "बोलो न, कितने मन?"

तब उनमे से एक ने कहा, "आठ मन!"

"आठ रुपये होंगे!" वह आप ही आप कह गया। उन्होने उदासी-भरे स्वर मे उत्तर दिया, "दो।"

और बूढा हृदय के गहरे स्तरो मे इकट्ठा हो रही हर्ष की वेगवान् लहरो को दबाता हुआ लकडियाँ निकालकर तौलने लगा। उसने उन्हे बुरी तरह से ठग लिया था।

तब उनमे से एक बोल उठा, "कण्डे भी चाहिए।" बूढे ने लकडी तौलकर अलग रख दी और कहा, "दाम आठ आने होंगे।"

उसने कण्डे तौलकर आगे रख दिये। एक अत्यन्त कृष्ण वर्ण नाटा मजदूर उन सबको बाँधकर उठाने लगा।

बूढा अविश्वास-भरी उत्सुक आँखो से देखता रहा, बटुए मे से निकलते हुए रुपयो को। वह दु:ख के साथ सोचता रहा, "शायद है, बहुत कम दे दें, शायद इन्हें *नियम मालूम हो और मेरी आशाओ पर पानी फिर जाये।"*

परन्तु ऐसा कुछ न हुआ। मजदूर लकडी-कण्डो का गट्ठा बाँधकर श्मशान की ओर जाने लगा। बटुए को टटोला जा रहा था, लेकिन रुपये न होने के कारण दस रुपये का नोट फेंक दिया गया। वे दोनो साथी श्मशान की ओर अँधेरे मे लुप्त हो गये।

बूढे के हृदय मे हर्ष की बाढ आयी। अब तक उसका हृदय सुख से दु:ख तक, दु:ख से सुख तक, झूल रहा था। अब वह गया और नोट को हाथ के पंजे मे खूब

नके हृदय को छीलता
लौटते वक्त वे बाकी

सर्वत्र सन्नाटा छा रहा था। थोडे ही समय मे नदी के किनारे अन्धकार का पेट फाडती हुई चिता की लाल-लाल ज्वाला जल उठी।

बूढा उसी ओर देखता रहा। हृदय दुख रहा था, लेकिन मन सुन्न पड गया था, 'कहीं वे लौटकर रुपये न ले जायें।' यही विचार उसके मन की रिक्तता मे चक्कर काटता रहा।

घर मे चूल्हे के पास उसकी पुत्रवधू रोटी कर रही थी। लकडी की लाल-लाल ज्वाला का प्रकाश निर्दोष आयत लोचनोवाले मुख पर नाच रहा था। सन्ताप के सुख से प्रसन्न उसका वदन तारुण्य के स्वाभाविक सौन्दर्य को अधिक पवित्र कर रहा था। पास ही उसका दो बरस का बच्चा अपने लकडी के घोडे को पुचकार

रहा था।

बाहर अँधेरा था। वीरान विकराल भयानकता फैली हुई थी किन्तु घर के अन्दर मानव का स्पर्श था। कमरो मे वस्तुओ को रखन की व्यवस्था म नारी का सुकुमार हाथ स्पष्ट दिखलायी देता था। भगवान् श्रीकृष्ण की तसवीर के पास नीराजन दिव्य मन्द स्मित से घर मे कोमल आलोक फैला रही थी। घर मे एक ही आदमी के सन्तोष और नित्य प्रसन्नता मे नहाने से सर्वत्र सुख फैल जाता है जो अलौकिकता की सीमा को स्पर्श कर लेता है।

किन्तु उसी के सामने उसका वृद्ध ससुर बैठा हुआ था अपनी छोटी छोटी बातो मे उलझा-सा। इस समय उसके मन म वही पुराना विचार, 'शायद है, लौटते वक्त वे बाकी रुपये माँगें' उसके हृदय को पीडा स उद्वेलित कर रहा था। उसका सम्पूर्ण ध्यान इस ओर लगा था कि वे आदमी जल्दी से जल्दी यहाँ से गुजर जायें और मैं उनको जाते हुए देख लूँ। वह प्रतीक्षा मे आतुर, चिन्तित मन, पीडा के भार से कुचला जा रहा था।

बूढे वे खाना खा लन के दो घण्टे बाद, एक एक करके वे श्मशान-यात्री जाने लगे। अन्धकार के कालेपन मे आच्छादित उनके शरीर आँगन मे टँगे हुए लालटेन की क्षीण ज्योति म छाया क समान चलते हुए दिख रहे थ। जब उस वृद्ध ने सब ओर देखकर निश्चय कर लिया कि अब कोई नही बचा है, तो उसके हृदय के गहरे स्तरो के नीचे अटका हुआ हर्ष का वेगवान् फुहारा सब प्रकार के बन्धन तोडता हुआ बेरोक हास्य स गूँज उठा।

हा हा हा हा हा हा हा हा!"

वृद्ध को अकस्मात् इतने जोर से हँसते देखकर अपन बच्चे को आगे लेकर निश्चिन्त सोयी पुत्रवधू घबराकर जाग उठी। बच्चा रोने लगा। भगवान् श्रीकृष्ण के सामने रखी हुई नीराजन की ज्योति बुझ गयी।

'हा हा हा हा!"

फिर सुनायी दिया। वह वहाँ से उठी और बूढे के कमरे मे गयी। वह खिडकी के पास खडा था। हँसने के आवेग से उसकी छोटी आँखें आस पास के एकत्र चमडे मे अदृश्य हो गयी थी।

अपनी बहू को विस्मित, चमत्कृत और भयभीत देखकर बूढे को और भी हँसी आ गयी। आखिर अपन को शान्त करने की चेष्टा मे हाँफते हुए बूढा अधीरता से कहने लगा, "बैठ, बैठ! नीचे बैठ!"

विस्मित बहू बैठ गयी दरवाजे पर।

बूढा भयानक अधीरता से कुरत के नीचे बण्डी की जेब मे रखे हुए दस रुपय के नोट को निकाल रहा था।

हाथ से कुचले हुए नोट को लेकर हर्षाकुल बूढा कहने लगा, "देख, मोहन (उस स्त्री का पति) दस रुपये दस दिन म कमाता है। मैं एक घण्टे मे कमाता हूँ।"

और उसने वह नोट बहू के आगे फेंक दिया। वह लडकी नोट को पाकर खुश हो गयी। उसका सुन्दर चेहरा और भी सुन्दर दिखायी देने लगा।

बूढा उस समय बिलकुल निर्दोष बच्च के समान सब कुछ कह गया—सम्पूर्ण विस्तार के साथ। उसके हृदय म तब जीत का उत्साह, जीवन का आनन्द और

प्यारे बच्चों के लिए किये प्रयत्न की गहराई, सब एकाकार होकर उसे पागल बना रहे थे। वह आवेश में आतुर हो रहा था। हर्ष उसे उद्वेलित कर रहा था।

किन्तु उसकी बहू ने, जिसकी सहानुभूति कभी भी उस व्यक्ति के प्रति नहीं रही, उसके कार्यों की असलियत समझ ली। उसकी आलोचक बुद्धि ने बुड्ढे के व्यवहार के प्रति विद्रोह किया और उसकी सम्पूर्ण सहानुभूति श्मशान-यात्रियों के प्रति हो गयी। बहू ने प्रकृति का मंगलमय रूप ही अब तक देखा था। इसलिए उसका हृदय मानवी संवेदनाओं से ओतप्रोत था।

वृद्ध, जो उस तरुण और समझदार लड़की से प्रशंसा कराना चाहता था, उसके चेहरे पर उठनेवाले प्रत्येक भाव-विकार के प्रति संवेदनशील हो गया।

अन्दर से भयभीत-सा होकर वह पूछने लगा, अत्यन्त भोलेपन से, "क्या तुम खुश नहीं हो?"

इस प्रश्न की स्पष्ट मूर्खता पर लड़की को रोना आ गया। किन्तु वह कुछ भी न बोली।

वृद्ध आकुल होकर पास आ गया और वत्सलता से उसके आँसू पोंछने लगा।

पर उस बाला को यह सब दम्भ मालूम हुआ। वह अन्दर से कुढ़ गयी और अपनी अंग-भंगिमा से बतला ही दिया कि वृद्ध की बात से उसे एकदम घृणा है। वह कहना नहीं चाहती थी फिर भी यह वाक्य उसके मुँह से निकल गया, "तुम्हें बुढ़ापे में भी लालच न छूटा!" यह कहकर उसने जीभ काट ली, डर के मारे।

उस लड़की की घृणा वृद्ध के हृदय के गहरे कोने से जा टकरायी। हर्षोल्लास भाग गया। हँसी उड़ गयी। क्रोध धुएँ के समान उठने लगा। उसका दम घुटने लगा, फिर भी काँपती हुई आवाज़ में वह कहने लगा, "मैं लालची हूँ, बदमाश हूँ और तू तो बहुत ही अच्छी है... तुझको भिखमंगे माँ-बाप से छुड़ाकर यहाँ रखा... और तेरे ये मिज़ाज! अब तक जो कुछ कमाया, क्या मैंने अपने लिए कमाया? क्या मैंने खाया या मैंने पहना? ...ये रुपये क्या मैं लूँगा... ज़बान कतरनी सरीखी चलती है।"

क्रोध की वह सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक प्रतिक्रिया थी। बूढ़े के मन के सबसे कमज़ोर स्थान पर उस लड़की का आघात था। उसकी प्रतिक्रिया कितनी भयंकर होती है।

उसकी आवाज़ काँप रही थी, उसका शरीर काँप रहा था। उसका दम घुट रहा था। उसका हृदय अन्दर-ही-अन्दर धँसने लगा, कलेजा धड़कने लगा। और आह निकलने लगी। उसका सिर गरम हो गया था।

वह दूसरे कमरे में चला गया जहाँ उसका बिस्तर बिछा था। दरवाज़ा अन्दर से बन्द कर लिया और सिर पर हाथ रखकर वह लेट गया। भावनाएँ उन्मत्त होकर उसके हृदय में ताण्डव नृत्य कर रही थीं।

बूढ़े के प्रति घृणा से, और आगे उस पर क्या बीतेगा इस डर से, भरी हुई बहू अपने कमरे में चली गयी।

वह कमरा सूना रह गया जिसकी रिक्तता में हवा के झोंकों से अनाथ नोट चारों ओर नाचता रहा।

बाहर घोर अन्धकार था। घर के सन्नाटे में धुएँ की भाँति वह भारी-भारी हो छा गया था। बूढ़े के हृदय पर मानो कितने ही मन वज़नदार पत्थर रख दिया

गया हो। उसका हृदय इसी अन्धकार मे कुचला जा रहा था।

उसे भयकर क्रोध आ रहा था। इसी हलचल के विकट दश से उसे रोना आ गया। घनघोर घटा की इस आत्मसात् करनेवाली तूफान-मालिका से घबराकर उसका शिशु-मन अपने मृत माता पिता की गोद खोजने लगा।

उसे मा बाप की याद आने लगी और वह तकिये पर सिर रखकर फूट-फूटकर रोया। आँसुओ का प्रवाह अनवरत तथा अबाध था।

जीवन की कण्टकाकीर्णता मे प्रपीडित होकर वह उस अतीत दिन की ओर देखने लगा। अपनी स्वप्निल आँखो से जब उसकी माता मरणोन्मुख होकर निश्चेष्ट पडी थी और आखिरी बार पुकार रही थी, 'बेटा, आ-आ!" पिता उद्विग्न, आकुल, आतुर, आशा-निराशा के झझावात से क्लान्त कातर पास बैठा था। वह दृश्य! आह! कितना शोकपूर्ण था!

तब वह निरा बालक था। उसको अपनी स्थिति ज्ञात नही थी।

पिता ने कहा था 'बेटा, पानी दे तो दो।"

माँ ने पानी पीने के लिए मुँह खोला और आँखें खोली तो वे गीली निकली। तब उसे उसके रहस्य का ज्ञान न था

वह खेलने भाग गया था। हाय! बाद मे सुना, माँ मर गयी। पिता रो रहे थे। पर उसक शिशु मन को कोई खेद न था। लेकिन आज! माँ! ओ माँ! उसे सँभाल! अपने लाडले को सँभाल! जगत् उसे मारता है तेरे आसरे के सिवा उसे कौन सा आसरा है!

यह सोचते सोचते बूढा रोने लगा। माँ के मरने के बाद उसका दुःखपूर्ण जीवन शुरू होता था।

तीन बरस बाद वह सोलह वर्ष का था। तब पिता भी मरणासन्न होकर उसी कमरे मे पडे थे। उसने पूछा, "पिताजी, डॉक्टर साहब को ले आऊँ?" पिता ने क्षीण आवाज़ से उत्तर दिया, 'बेटा, घबराओ मत, मैं जल्दी ही अच्छा हो जाऊँगा।"

वे दिन बहुत खराब थे। रात और दिन सूने-सूने हो रहे थे। क्षण भारी हो रहे थे।

चार दिन बाद वे मर गये। उनका निर्जीव शरीर! पुत्र की नि सहाय कातर बेकरारी! अरथी! उसका बिलखते हुए निकलना! यही श्मशान! चिता की लाल लाल ज्वाला! उतनी ही लाल जितनी उसन आज रात को देखी थी, जिस रात को उसने धोखा दिया था।

पुरानी स्मृतियो के अपनी आँखो के आगे सरकते सरकते बूढा फिर आज की बात सोचने लगा।

वह कहने लगा, 'उतनी ही लाल जितनी मैंन आज देखी थी और आज रात को मैंने धोखा दिया था!"

पिता के मरने की स्मृति की प्रपीडा मे ज़बरदस्त आज रात की स्मृति-पीडा हो गयी।

वह सोचने लगा, 'लालच किसके लिए? मेरे लिए? नही, बिलकुल नही। मेरे लडको के लिए नातियो के लिए!'

बाहर हवा बिलकुल नही चल रही थी। वीरान मौन मे चराचर मूर्च्छित

था। बूढ़ा तब सोच रहा था, 'लालच उसने अपने लिए नहीं किया, उसने अपना शरीर और मन कुटुम्ब के लिए दिया था।'

उसे पुत्रवधू का वह वाक्य याद आया, "तुम बुढ़ापे में भी पैसे के लिए झूठ बोले?"

और उसे अपने पिता की चिता की लाल-लाल ज्वाला दीखने लगी। तब वह वहाँ रोया नहीं था। अत्यन्त क्लान्त और गुमसुम था। पर आज इतने वर्षों के बाद बूढ़े को रोना आ रहा था।

और उसके हृदय को खा रही थी वही बात कि उसने चिता के लिए लकड़ी-कण्डे माँगनेवाले आदमियों को ठग लिया और उसे पिता के शरीर से निकलती हुई लाल-लाल ज्वाला दीख रही है, बूढ़े के अपने पाप पर उग्र होती हुई, और वह झुलसा जा रहा है।

उसके मन में इतने में एक विचार आया, 'उसे भी तो मरना है। चिता पर उसकी देह रखी जायेगी और ज्वालाएँ उसको भस्म कर डालेंगी। तब निकट ही हवा में बुरी बास छा जायेगी।' उसे अपने शरीर पर घृणा आने लगी। अपनी हीनता पर उसे रोमांच हो आया।

'मैं चला जाऊँगा', वह सोचने लगा, 'किसी और लोक में। फिर लालच किसलिए? क्या पता फिर किसका लड़का होऊँ।'

जीवन की बहुत-सी बातों में अपनी रुचि के प्रति उसके हृदय में गहरा विद्रोह उठ खड़ा हुआ। और अतीत में किये हुए पापों का खयाल उसके मन को पीड़ा देने लगा। 'तुम बुढ़ापे में भी पैसों के लिए झूठ बोले!' यह वाक्य उसे सच मालूम हुआ, अत्यन्त सत्य!

इतने में उसे अपनी चिता दिखायी दी। उसकी निर्धूम ज्वाला उठ रही है। वह उसके मन की आँखों के सामने धू-धू करके जलने लगी है।

उसको लगा मानो उसके पुराने सारे पाप एक एक करके जल रहे हों। और उसके अन्दर का सात्विक हृदय सोने के समान शुद्ध होकर निखर रहा हो।

अपनी भावी चिता की लपलपाती ज्वालाएँ उसको अत्यन्त दिव्य मालूम हुईं। उनकी अरुणिमा किसी तपस्विनी के हृदय की उदारता के समान मालूम हुई। ज्वालाओं की गरमी अत्यन्त शीतल-सुगन्धित मालूम हुई।

तभी उसने देखा—एक दिव्य नारी छाया, अरुण-वसना, स्मितमुखी, धीरे से उसकी सुनहली शुद्ध आत्मा को उठाकर लिये जा रही है, नीलाभ आकाश के अनन्त विस्तार में। और वह चला जा रहा है।

बूढ़े का चेहरा आनन्दोन्माद से भर गया। आँखें धुँधली हो गयीं। उसके हृदय में एक नवीन अलौकिक जोश लहरें मार रहा था। उसके सामने की सब वस्तुएँ रंगीन और धुँधली मालूम दीं। उसके गाल भावनातिरेक से कम्पायमान हो रहे थे।

वह उठा और जहाँ उसकी पुत्रवधू सोयी थी, वहाँ जाकर खड़ा हो गया। वह बाला चिन्तारहित और स्वस्थ तथा शान्त सोयी थी।

बूढ़े का हृदय एकदम विस्तृत हो गया। वह मानो अपने बच्चे को लेकर सोयी हुई अपनी पुत्रवधू में मिला जा रहा हो—उसके द्वारा संसार में लीन हो रहा हो।

मानो वह निकट के जगत् से कुछ सचेत हुआ। पुत्रवधू को आशीर्वाद देने के

लिए उसने अपने हाथ बढाये और वे छत्र के समान लडकी के सिर के ऊपर तन गये।

बूढे की तन्मय आँखों मे आँसू के तारे चमकने लगे।

तभी पूर्वाकाश सफ़ेद हो गया था।

[वीणा, जनवरी 1940 मे प्रकाशित]

मैत्री की माँग

सुशीला ने मोरी पर पडा हुआ गीला नीला लुगडा* उठाया और कुएँ पर चल दी। ग्यारह बजे की गरम धूप फैली हुई थी। कोठे की छत बुरी तरह स तप रही थी। उसके अन्दर सास रोटियाँ सेंक रही थी, जिनकी गरम गन्ध इधर फैल रही थी।

बाहर, जरा दूर चलकर, कुआँ लगता है। झखड बिरवे, कँटीली झाडियाँ, जो जमीन से एक फुट भी ऊपर उठ नही पाती हैं, तपती पीली जमीन के नगे विस्तार को ढाँकने के बजाय उग्र रूप से उघाड रही हैं। यह कुआँ और यह जमीन एक अहाते के अन्दर घिरे हैं जिसके कँटीले तारो के उस पार, दूर, सरकारी कचहरी की गेरुई दुमजिला इमारतें लम्बी कतार म खडी हुई हैं।

सुशीला कुएँ के ओटले पर चढी तो मालूम हुआ कि चबूतरे के पत्थर बेहद गरम हो चुके हैं। उसन प्रतिदिन की भाँति रस्सी कुएँ मे डाली, और दूसरे ही क्षण चौडी लकडी की गिर्री की कठिन आवाज कुएँ की ठण्डी साँवली दीवार से बालटी की टकराहट की आवाज के साथ मिल गयी। गहरे पानी मे बालटी की जोरदार 'धप्', और फिर छलकते गिरते पानी की गूँज।

आज कई सालो से सुशीला यह आवाज सुनती आ रही है। कान के अन्तराल मे वह ऐसी समा चुकी है कि छुटे नही छुटती। दुनिया म, जीवन मे, इर्द-गिर्द, कई छोटे-बडे परिवर्तन होत गय। उसके पुरान पडोसियो म बहुत-सो ने यह कस्बा-नुमा शहर छोड दिया, रियासत छोड दी प्रान्त छोड दिया, और न मालूम कहाँ, इधर-उधर बिखर गय। नये-नय चेहरे और नयी-नयी बातें लेकर कई परिवर्तन आये और चल गय। सुशीला का पहला बच्चा मरा, दूसरा अपने दो साल के जीवन मे अनेक कष्ट देकर स्वय अनेक कष्टो क बीच से गुजरता हुआ, स्वर्गधाम सिधार गया। परन्तु सक्रमणशील जीवन के नय और सुदूरगत पुराने दृश्यों मे अटूट सम्बन्ध और एकता बनाये रखनेवाली इस कुएँ पर की चौडी लकडी की गिर्री, यह ऊँचा चबूतरा, और पानी निकालने, कपडे धोने की आवाज सदा से ऐसी ही चली आ रही है।

सुशीला ने लुगडा वही पडा रहने दिया। भरी हुई बालटी लेकर वह घर की

* महाराष्ट्रीय साड़ी

ओर चली। वह आम रास्ता नही था, परन्तु लोग वही से निकलते थे। कभी-कभी वहाँ से ऐसे लोग भी गुजरते जो दिखने मे गुण्डे-से मालूम होते थे। सुशीला उनसे आतंकित थी। इसलिए वह, ऐसे लोगो को अबूझी दृष्टि से देख, अपने काम मे लगे रहने का ढोंग भी कर लिया करती।

दुपहर के कारण घर का आँगन भयानक तप रहा था। बाहर से अन्दर घुसने पर उसे कुछ नही दिखायी दिया। डर लग रहा था कि कही ठोकर न लगे, हाथ से बालटी छूट जायेगी।

"सुशीला, देख, वह आ गया है क्या।"

यह सास की आवाज थी, जिसे सुनकर वह बिना रुके अन्दर के कमरे मे गयी। वहाँ कोई नही था। उसने वही से उत्तर दिया, "यहाँ तो कोई नहीं है।"

कोठे से सास की आवाज आयी, "चप्पल तो बजी थी।"

बिना इसका उत्तर दिये ही सुशीला ने कमरे की खिडकी खोल दी, और रास्ते की ओर देखने लगी कि 'वे' कहीं आते हुए तो दिखायी नही दे रहे हैं।

रास्ता, भूरी तपी घनी धूल से भरा, सूना अवसन्न पडा हुआ था। यह शहर के बाहर का रास्ता था, इसलिए इस पर बहुत थोडे लोग दिखायी देते। पास के गाँव की ओर जानेवाली किसानो की बैलगाडियाँ, अथवा दूर की यात्रा करनेवाली उजडे रग की नीली मोटर लारियाँ और बसें, अपने पीछे धूल का बादल उठाती हुईं इधर से निकल जाया करती। परन्तु बारह बजे की इस बेमब्र धूप म आदमी का कही चिह्न भी दिखायी नही दे रहा था।

सुशीला न आँखें फैलाकर कचहरी की गेरई इमारतो की ओर देखा। एक नि:सग एकस्वरता सब दूर काँप रही थी। आजकल सुशीला को अपना जीवन अलोना-अलोना-सा लग रहा है।

उन्नीस साल की इकहरी साँवली सुशीला उडे हुए, फीके पडे रग की साडी पहनती है। सूरज की बेमुरव्वत धूप से उसके चेहरे का गेहुआँ रग सँवला गया है। सुबह उठते ही वह काम मे जो लग जाती है तो रात के दस बजे तक इसी तरह। उसके उपरान्त वह, चुपचाप, पति के कमरे में घुसती है। किन्तु, न जाने क्यो, तब *उसका हृदय अज्ञात भार से भर उठता है।*

सुशीला अपने जीवन से प्रसन्न है। परन्तु एक बात की जरूर कमी है। चाहती है उसका पति रामराव इण्टर पास होता तो अच्छा होता। उसको अंग्रेज़ी की प्रैक्टिस अच्छी है। सुशीला के लिए यह गुप्त गर्व का विषय है।

फिर भी जिन्दगी के झगडे-टण्टे और घर के बखेडे पति-पत्नी पर इतने छा गये हैं कि रामराव की अंग्रेज़ी का गर्व अब उतना आह्लादकारक नही रहा। वह पूर्ति नही करता। सुशीला स्वय कुछ पढ़ लिख लेती है। रामराव ने अपने वैवाहिक जीवन के प्रारम्भिक उल्लास मे सुशीला के लिए कुछ पुस्तकें भी खरीदी थी। आज भी छोटे-से स्थानीय पुस्तकालय स एकाध पुस्तक घर आ जाती है। किन्तु सुशीला उसको दूर से देख भर लेती है। छू भी नही पाती। आले म वह किताब इस तरह धरी रहती है जैसे मन के कोने में एक मीठा अजाना स्वप्न छिपा रहता है। जिस प्रकार नया रास्ता सालो की आमद-रफ्त के बाद घिसकर, उखडकर, निर्जीव घनी धूल की एकरूपता मे परिवर्तित हो जाता है, उसी तरह सुशीला का

हृदय-पथ समय के नालदार जूतों और उसकी ठोकरों से घिसकर घनी निर्जीव धूल की एकरूपता में परिवर्तित हो गया है। अब उसके हृदय में कोई आनन्द, कोई मोह, कोई स्वप्न, ऐसा कि जिसको वह अपना कह सके, नहीं रहा। काल तथा परिस्थिति जिधर मोड़ दे, जैसी मोड़ दे, उधर ही वैसे ही मुड़ जाने के लिए सुशीला को अपना मन तैयार न करना पड़ता, वह आप ही आप, बिना कहे, किसी पुर्जे की भाँति घूम जाता। फिर भी मन मन ही है। ननद का पोलका सीते हुए सुशीला के मन के साँवले सूनेपन में दिवास्वप्न तैर आते। सुई और धागे की गति से मानो उनकी गति बँधी होती। परन्तु खेत में घुस आनेवाली गाय अथवा बछड़े को जिस तरह मार भगाया जाता है, वैसे ही उसके साथ भी होता।

फिर भी सुशीला जीवन से प्रसन्न है। रामराव बिलकुल बेदर्द नहीं हो गये हैं।

आसमान में पतले साँवले मेघ घिर आये हैं। सरदी का मौसम। नदी की दिशा से हवा। रात। और खिड़की खुली हुई।

रामराव की छाती पर ठण्डी वायु का फौरन असर हो जाता है। इसका खयाल आते ही रामराव के पास लेटी हुई सुशीला के सपने टूट गये। वह उठ बैठी। और खिड़की के दरवाज़े बन्द कर लिये। फिर वहीं लेट गयी। और टूटे सपने जोड़ने लगी। अथवा आप ही आप वे जुड़ते चले।

दिन-भर की अनुत्पादनशील, बेकार मेहनत की थकान से रामराव बिस्तर पर लेटा कि आँख लग गयी। घोर निद्रा। दिन-भर की थकान ने सुशीला की देह को शिथिल कर डाला था, फिर भी वह सो नहीं सकी। वह खुद नहीं जानती थी कि क्यों।

लेकिन फिर भी मन में कुछ था, जो सोने नहीं देता था। वह ऐसे ही आधी जागती, आधी सोचती, आधी सोती रही। नींद के पाताली अँधियाले में वह डूबने ही वाली थी कि रामराव ने करवट बदली। उसकी आँख खुलते ही सुशीला उठ पड़ी। आदत के अनुसार अपने खुले बाल हाथ से सँवारते हुए उसने कहा, "आज बड़ी जल्दी सो गये? अभी नौ ही तो बजे हैं।" रामराव ने अपने दोनों हाथ सिर के ऊपर एक दूसरे में गूँथते हुए आलस छोड़ा। और चुपचाप पड़ा रहा। और फिर कहने लगा, "सपना देख रहा था।"

सुशीला को सपनों पर बड़ा विश्वास है। उसने रामराव के होंठों पर मुसकान की रेखा देख, पूछा, "क्या बात है? मुझे सुनाओ।"

रामराव ने कुछ सोचा, फिर कहना शुरू किया। विचित्र, पाताली विकृतियों-भरा, अद्‌भुत जगत् सुशीला की आँखों में खिंचने लगा। मन की निबिड़ शक्तियाँ उसमें अजीब समाधान पाने लगीं। स्वप्न का अन्तिम चित्र मनोरजक था। रामराव किसी अपरिचित नगर की अपरिचित, सूनी, और अभी-अभी हुई थोड़ी बूँदाबाँदी के कारण दबी हुई धूल से पीली-साँवली दिखनेवाली सड़क पर चल रहा है। आसमान में मेघों के कटे-छँटे धुन्ध के नीले नील-श्यामल वातावरण के धुँधियाले में, सड़क ठण्डी सूनी किन्तु प्रिय मालूम हो रही है। और घोर विस्मय की बात यह है कि

कि सड़क के तले नोट बिखरे हुए हैं, दस के, पाँच के। कुछ सौ के भी हैं।

एक क्षण मे सब ओर नजर दौडाकर वह आनन्द के विक्षोभ मे नीचे झुकता है और उन्हे असावधानी से जेब मे भरता चलता है। उसे अपनी सारी फिक्रें याद आती हैं, और उनकी शान्ति का अवसर हाथ से नही जाने देना चाहता कि···

उसकी आँख खुल जाती है। जागते मे अपने हाथ मे नोटो का अनुभव करना चाहता है। उसके स्थान पर सुशीला की उँगलियाँ मिलती हैं।

स्वप्न सुनकर सुशीला खुश हो गयी। लक्ष्मी आने की सम्भावना अत्यन्त मनोहर सिद्ध होते देख रामराव के मन की स्वाभाविक दार्शनिकता ने विद्रोह करना शुरू किया। परन्तु घर की स्थिति अत्यन्त दयनीय होने के कारण उस विद्रोह मे कोई डक न रहा। रामराव को सुशीला के सामने कबूल करना पडा कि वह भी नित्य आर्थिक चिन्ताओ मे ही रहा करता है, इसीलिए उसे सुशीला से मन की दो बातें करने की सुविधा नही मिल पाती। वह क्षण ऐसा था कि जिसमे दोनो एक-दूसरे से कुछ भी छिपा न सकते थे। उस वक्त कोई दुराव या छिपाव का मौका न था। रामराव अपने बचपन की बातें कहता रहा। उसमे लडकियो की भी बातें आयी। रामराव के जीवन मे कोई प्रेम प्रसग न थे। पर आकर्षण थे। रामराव और सुशीला गरीब, अर्द्ध-शिक्षित तथा अपूर्ण होते हुए भी आधुनिक वातावरण के सम्पर्क मे आ चुके थे। उनके प्रलोभन से दब चुके थे। पर उनके प्रति वर्जना की भावना न थी। महीनो बाद पति-पत्नी में यह मैत्री का क्षण आया था, जिन क्षणो मे मनुष्य हृदय को नग्न कर देना चाहता है। बातो मे अनायास प्रवाहिता ऐसी थी कि सुशीला एकदम कह बैठी, "एक बात पूछूं ?"

अपनी बात को इस प्रकार कटते हुए देख रामराव विस्मित हुआ। सिवा साश्चर्य "हूँ" के वह कुछ भी न कह सका।

'नाराज तो नही होगे ?" कहते हुए सुशीला उसके पास सरक आयी। रामराव समझा कि यह प्रस्तावना है उस अध्याय की जिसे 'नारी-हठ' कहकर पुकारा जाता है। सुशीला के पास लुगडे नही थे। इसीलिए अक्सर वह बाहर निकलने से इनकार कर देती। यही नही, बल्कि परसाल खरीदी गयी लुगडे की जोडी भी बुरी तरह से फट गयी थी। फिर भी उस वह इस सिफत से पहनती थी कि उसमे की *लम्बी-लम्बी दरारें गायब हो जाती*। पर लुगडे का उडा हुआ रग बहुत भद्दा हो गया था। वह कहाँ छिपता। बाहर की गरम धूल, घर के अन्दर की प्राण-भक्षी धनहीनता, तथा वहाँ के समस्त वातावरण की भूरी अवसन्नता के साथ उसके कटे-फटे लुगडे के उडे हुए रग का भद्दापन ठीक-ठीक जा बैठता। दोनो मे एक मलिन सुसगति की असली छाप थी। सुशीला के गुप्त-प्रार्थना-भरे स्वर से रामराव का शकित होना स्वाभाविक था। फिर भी अपनी शकाओ को ढाँककर रामराव ने कहा, "नाराज होने की क्या बात है ? मैंने अपनी गहरी बातें तुमसे नही कही ?"

सुशीला का साहस बँधा, परन्तु रामराव की विस्मयातुर दृष्टि से सकुचाकर उसने फिर कहा, 'तो पूछूँ ?"

रामराव को बात गडबड मालूम हुई। पर उसके धीरज पर अभी तक चोट नही थी।

"सामने देशपाण्डे के यहाँ कौन रहने आये हैं ? ये ही तो अपने यहाँ कल थे !"

रामराव को आश्चर्य हुआ। इतनी जरा सी वात मालूम नही।

'वहुत भला आदमी है।" मुक्त कण्ठ से प्रशसा करते हुए उन्होंने कहा।

सुशीला को यह वाक्य अच्छा लगा। वे जो सामने के देशपाण्डे के घर आये हुए है, अच्छे आदमी ही मालूम हात हैं। निस्सन्देह! सुशीला के कल्पना-प्रिय मन न उस व्यक्ति के आस पास चक्कर काटा था। कारण?

कारण, कारण—सुशीला मे यह न पूछो। वह स्वय नही जानती। पर क्या वह रामराव के मूर्त सजीव आधार और आध्यात्मिक आश्रय को मात्र फूहडपन मे त्यागने का सकल्प कर मकती है? मकल्प क्या, कल्पना भी कर सक्ती है? अगर लेखक स्वय सुशीला को यह जाकर पूछे ता एक जोरदार चाँटे के अलावा और कुछ न मिलेगा।

सुशीला को जीवन भर आत्मविश्लेपण का मौका न आया था। वह न जान सकी थी कि उस व्यक्ति के प्रति उसका जो आकर्पण है वह रामराव के पतित्व और अपने पत्नीत्व के आधार को कही भी धक्का नही पहुँचाता। वह आकर्पण तो मात्र उस व्यक्ति की सज्जनता के चारो ओर, विद्या, सम्पन्नता और शिष्टता के तेजोवलय के प्रति था, उस स्वप्न के समान सुन्दर दीखनेवाले देश और नगर के प्रति था (जहाँ स वह व्यक्ति आया है), जिसके बारे मे सुशीला अनुभवशून्य थी। वह स्वर्ग है या नरक, यह भी न जानती थी।

'तुमसे वातचीत की थी?"

'हाँ, वह बहुत अच्छा आदमी है।" मुक्त कण्ठ से रामराव बोला।

सुशीला उसकी लेटी देह पर एकदम लोट गयी और उसके मुख पर अपना मुख रखते हुए भावुकता से बोली, 'न, न, पर वह तुमसे अच्छा कैसे हो सकता है।"

"अरे, मैं तो मूर्ख हूँ।" (यह उनकी शालीनता थी, मूर्ख वे हरगिज न थे) "दुनिया मे वडे-वडे बुद्धिमान भरे हैं, सुशीला। सिर्फ इण्टर पास करने और अग्रजी अच्छी लिख बोल लेन से होता क्या है? यदि मैं सचमुच बुद्धिमान होता तो पिताजी की बात भी रख लेता और पढ भी लेता।"

'अव भी पढ सकते हो।"

"अव?"

"क्यो नही, ये सोने की चूडियाँ तुम्हारी ही तो हैं।" सुशीला ने हाथो को ऊँचा कर [illegible]

नही हो सकता।"

[illegible] यह क्षण अव उसी का है। उसने कृत्रिम निरपेक्ष भाव स पूछा, "कहाँ तक पढे हैं?"

'एम ए, एल-एल वी—वडे आदमी के लडके हैं।'

उसका कुतूहल वढता ही गया, 'कहाँ से आये हैं?"

"इलाहावाद से।"

और सुशीला सोचने लगी कि इलाहावाद कितना वडा शहर होगा। इसलिए वह चुप बैठी रही।

"वहाँ क्या करते हैं?"

"सम्पादक हैं।"

सम्पादक ?'

ये जो मासिक पत्र निकालते हैं न ?

सुशीला को विद्या पर और विद्वानो पर अत्यन्त श्रद्धा थी। मानो सुशीला को अब समझ म आया हो कि सम्पादक कैसा जानवर होता है एम स्वर म उसने उत्तर दिया अच्छा !

सुशीला इलाहाबाद के और उस व्यक्ति के बारे म सोचती ही रही। नीद म डूबने से पहले वह एक रंगीन विस्मय मे थी कि रामराव भावुकतावश नहीं सिर्फ सज्जनता के कारण ही यह कह रहे थे। यद्यपि यह सच है कि रामराव मात्र अल्प सन्तोषी दाशनिक उपदेशवादी धैर्यवान प्राणी थे। परन्तु सुशीला के हृदय म सारी मायूसी अवसन्नता तथा म्लानता के बावजूद बहुत गहरे गहरे कहीं तो भी कुछ तो भी फडफडाता रहता था जो सारी दीवारें सारी भीतें सारे व्यवधान फाड-तोडकर मेहनत स अथक उत्साह स और नि शेष आशा स इस धनहीनता के निर्जीव नि स्पन्द पीले भूरे मटियाले अभिशाप को किसी सागर म फेंक फांक दे !

वे दोनो बिना बोले वैसे ही पडे रहे कुछ समय तक। फिर सुशीला बोली तुम भी कर लो बी ए जल्दी और कपडे ठीक ठाक बना लो क्या बात है !

रामराव न बुजुर्गी की गम्भीरता से उसके चहरे पर हाथ फेरा।

नीद ने दोनो को फौरन ही सम्हाल लिया।

सुबह दस बजे कुएँ पर चम्पा और सुशीला हँस रही थी क्योंकि उनके सामने माधवराव बडी ही अनगढ रीति से धोती धो रहा था।

इतने म सुशीला ने ज्यादा जानकारी के अभिमान से कहा एम ए एल एल बी है।

एम ए एल एल बी ? और एम ए एल एल बी हुआ तो क्या ? धोती धोना तो आता ही नही।

सुशीला ने गम्भीरता से कहा ऐसा नही चम्पा बडे आदमी के लडके हैं कहाँ काम पडा ? ये देशपाण्डे उनके मामा होते है। यही उन्हे काम पडा।

माधवराम उधर धोती धो रहा था। गम्भीर नौजवान बाल उसके पीछे निकले हुए थे। निकर पहिने हुए था। और उसकी दीर्घ सकेश जाँघें धोस मारती

जैसे यह परिचय की, माँग करनेवाली सहज सरल अनायास दृष्टि है। एक पूर्ण मुख जिसके स्तब्ध चहरे पर आखें एक विचित्र गम्भीर आलोक डाल रही हैं।

वह हतबुद्धि-सा खडा हो गया और फिर जल्दी म बालटी गर-गर-गर नीचे डाल दी। बालटी को ऊपर खीचते समय भी वह मुख दो खम्भो के बीच बार बार

दीख जाता था। परन्तु माधवराव को फिर अन्तिम बार उस स्तब्ध पूर्ण मुख [पर] दो नारी-आँखें अपनी सहज मैत्री का भाव कह गयी।

माधवराव ने धोती धोना शुरू किया, परन्तु उसकी आँखें जानबूझकर इधर-उधर उसे देखना चाहती थी। उसने पाया कि वह एक अत्यन्त फीके रंग की साडी पहने हुए है, जिससे मालूम होता है कि उसके पति को पँधरा रुपये से अधिक नही पडता होगा। उसके आस-पास एक मेहनती निर्धन स्थिति का वातावरण उग्र होकर रहता है, परन्तु उसके मुख से पता चलता है कि वह किसी उच्चवंशीय की कन्या है जो समय-परिवर्तन के कारण दैन्य-दशा को प्राप्त हुई है।

नहाकर जब माधवराव कन्धे पर सफेद टॉवेल डाले चला आ रहा था, तब उसके हृदय मे एक अनुपम निराकार दया हलके कुहरे की भाँति छा रही थी। उसकी आँखो के सामने यह विराट गरीबी और उसकी गर्मी मे दबी हुई हृदय की स्थितियाँ पूर्ण होकर आ रही थी। कमर पर पानी का घडा सम्हाले और गर्दन मे धुली हुई धोती और साडियो की माला डाले वे दोनो स्त्रियाँ अपने घर की ओर जा रही थी। सुबह के ग्यारा बजे आसमान का सूरज अपनी पूरी तेजी के साथ रास्ते के पत्थरो को तपा रहा था, और इस सडक के पार कँटीले तार के हिस्से मे खडी कचेरी की लाल पुती हुई दीवारें निर्जन दुपहर की भीषणता को और भी बढा रही थी।

सुशीला जब घर पहुँची तो चौके से भोजन की बिखरी बास आ रही थी। वह समझ गयी कि रामराव खा चुके हैं, और उसकी सास उसी की राह देख रही है।

उसने कमर से घडा उतारा और चुपचाप वस्त्रो को बाँस पर सुखाने के लिए डालने लगी। उसका चेहरा देखकर सास समझी कि रामराव ने आज जरूर कुछ कहा-सुना होना चाहिए, नही तो इतना मौन गम्भीर तो, भाई, किसी आदमी से नही [रहा] जाता।

उसी शाम कुछ ऐसी बात रही कि रामराव को अचानक हेडमास्टर ने अपने यहाँ रोटी खाने बुला लिया। सास शाम को कुछ न खाती थी। एक ही बार भोजन करती थी। और सुशीला के लिए सुबह का रक्खा हुआ काफी था।

यह देख कि रसोई के काम की छुट्टी है, सास सन्तुष्ट होकर राम मन्दिर के पण्डित की स्त्री के पास चली गयी, कहती हुई, "मैं जरा देर से आऊँगी, सम्हालना।"

तब सुशीला घर को अबेर रही थी, और अबेरते ही अबेरते खुले आसमान मे साँझ घिर आयी थी। एक अजीब व्यथा से सुशीला का जी कुम्हला रहा था और उसका शरीर शिथिल हुआ जा रहा था।

तभी खिडकी मे से दीख रहे खुले रंगीन आसमान से कुएँ के आस-पास के सघन वृक्ष रंगीन और अधिक श्याम-से दीख रहे थे। उधर ही से माधवराव केवल सफ़ेद शर्ट-पैंट मे आता दिखलायी दिया। सुशीला ने गर्दन फेर ली और झटपट अपने काम मे लग गयी।

परन्तु पाँच मिनट बाद जब उसने फिर देखा तो पाया कि वह खिडकी की ओर ही आ रहा है। वह उस कमरे से चल दी और दूसरे कमरे के दरवाजे के छेद से झाँकने लगी। उसने देखा कि वह खिडकी तक चला आया है। परन्तु उसके

अन्दर न झाँकते हुए, दूर ही खडा रह वह चिल्ला रहा है, "देशपाण्डे साहब, देशपाण्डे साहब !"

दरवाजे के पीछे वह मानो 'खील से गडी' हो गयी थी, परन्तु फिर वह धैर्य करके खिडकी तक गयी और कहा, "हेडमास्टर साहब के यहाँ गये हैं ।"

"कब ?" आश्चर्य से उस नवयुवक ने कहा ।

"चार बजे ही ।"

माधवराव को उसके लाल चेहरे की तरफ देखकर लगा कि उसकी शका ठीक है। उसे मालूम हुआ कि जैसे अनजाने ही वह काफी दूर तक चल आयी है। वह स्तब्ध वहीं खडा रहा, जैसे वहाँ से हटना न चाहता हो ।

पूछा, "कब तक आयेंगे ?"

तब तक सुशीला स्थिर हो गयी थी। अपने को समेट लिया था। "मुझे मालूम नही," कहकर चुप हो गयी ।

माधवराव भी कीलित था। सोच रहा था कि ऐसी रगीन शाम घूमने किधर चला जाये ।

सुशीला ने निरपेक्ष भाव से पूछा, "उनसे क्या कहूँ, आपका नाम ?"

माधवराव चुप हो रहा, सोचा कि बतला दूं कि नही। फिर बोला, "माधवराव ।"

सुशीला के मन की रोक जैसे ढह गयी थी ।

"आप इलाहाबाद रहते हैं ?"

माधवराव कुतूहलयुक्त आनन्द से बोला, "हाँ-आँ ।"

"बहुत बडा शहर होगा ।"

"बहुत बडा, जी ।" कहकर माधवराव हँस पडा ।

सुशीला जैसे नदी के समान बेरोक होकर पूछने लगी, "तो आप वही रहते हैं ?"

"जी ।"

तब तक सुशीला घर के अन्दर खिडकी मे और माधवराव घर के बाहर खिडकी मे खडे हो गये। साँझ आकाश मे खिल रही थी ।

"वहाँ कब जायेंगे आप ?"

"पाँच दिन बाद ।"

यह सुनकर सुशीला स्तब्ध हो गयी। माधवराव ने पूछा, "क्यो ?"

"कुछ नही, मुझे एक फ्लॉवर पॉट चाहिए है। बहुत दिनो से इसकी खास जरूरत आ पडी है। इस समय घर मे अडचन है, नही तो मैं खुद इन्दौर जाकर ले आती। वहाँ मेरे मामा रहते हैं। मुझे बहुत प्यार करते है, बी ए पास हैं, और बहुत ही अच्छे आदमी हैं। वहाँ लता, रश्मि बडे घर दी हुई है, और मेरे मामा का बडा घर है "

माधवराव ज़ोर से हँसना चाहता था। पर शायद उसे बुरा लगे, इसलिए मुसकरा दिया। सोचने लगा, कितना बचपन से भरा इसका मन है।

वह कहती चली, "वैसे मैं इन्दौर हो आती, मुझे किसी प्रकार की कमी नही है, लेकिन बडे-बडे शहर देखने की इच्छा है। इलाहाबाद [का] क्या लगता है ?"

"बहुत थोड़ा ।"

"तो तो ठीक है। अच्छा तो मैं उनसे क्या कह दूँ ?"

'पास के माधवराव आये थे, बस।" माधवराव ने मजाक करते हुए पूछा, "मैंने सुना है कि स्त्रियाँ बहुत बातूनी होती हैं।"

सुशीला तडाक से बोली, "और मैंने एक कादम्बरी म पढा है कि पुरुष बेरहम होते है।"

माधवराव झेंपते हुए बोला, "मैं तो नही हूँ।"

सुशीला क्षण-भर के लिए चुप रह गयी, और उसकी तरफ़ देखा कि माधवराव की आँखें कुछ कह रही है। उसने गर्दन नीचे डाल दी और हृदय मे अनुभव किया कि मीठे आँसू के सौ-सौ फव्वारे फूटना ही चाह रहे हैं।

माधवराव ने अपना हाथ खिडकी म डाल दिया। परन्तु सुशीला ने पीठ कर ली और अन्दर चली गयी। तब साँझ बिलकुल झुकी थी।

खिडकी के बाहर खडे हुए माधवराव न देखा कि घर के सूने अँधेरे मे सुशीला की आकृति खो गयी है।

माधवराव को यह आशा कदापि न थी। कई सुन्दर सुकुमार और शिक्षित नवयुवतियो को उसन देखा है। परन्तु सुशीला तो ग़जब कर गयी। यह भी कोई बात है कि पहले ही मौके पर इतना कह दिया जाय ! पहले झेंप, फिर लज्जा, फिर सकोच और फिर बातचीत—रोमास का विकास कुछ इसी तरह होता है।

फिर भी माधवराव आश्चर्य न कर सका। सुशीला की आँखो मे ऐसा कुछ न था जिसका लज्जा-लावण्य से कोई सम्बन्ध हो। फिर भी उसमे स्तब्ध माँग थी, एक गूँज थी कि तुम कौन हो जो यहाँ तक चले आय हो इलाहाबाद से। माधवराव एक ऐसे दूर-स्थित प्रान्त से आया था कि सुशीला की आँखों मे कल्पनाएँ ही कल्पनाएँ छा जाती थी।

रात को सुशीला रामराव के पास जब माधवराव के बारे मे अधिक बात करना चाहने लगी, तो उसके पति का ताव आ गया। इसलिए नही कि माधवराव के बारे म वह सशयालु है, परन्तु स्त्री के मुँह से किसी की इतनी अधिक तारीफ अपनी शान के खिलाफ जाती है। सुशीला समझी कि रामराव उसे माधवराव से बात करने से मना कर रहे है, जो कि समाज मर्यादानुकूल पति का कर्तव्य है। इसलिए विना विरोध किय वह आँखे खोले लेटी ही रही, उसे बहुत देर तक नीद नही आयी। रामराव सोने को होता तो खेल करके उसे जगा देती। फिर डाँट खाती और चुपचाप पडी रहती। आध घण्टे बाद जब बारहा का गजर हुआ तो उसने जबरदस्ती मीठी नीद मे सोये रामराव को सारी ताकत लगा उठाकर बैठा दिया। मुँह फुलाकर कहा, "उठ जाओ, हमें नीद नही आती।"

रामराव ने झल्लाते हुए कहा, "मुझे गहरी आ रही है।"

सुशीला ने अडकर कहा, "हम माँ के पास पहुँचा दो।"

"पागल हो गयी हो ?" पर रामराव ने देखा कि वह रो रही है। वह और भी चिढ गया। "अरे यार, बडी आफत है !" कहकर रामराव धडाम से बिस्तर पर गिर गया और सो गया। सुशीला के सामने केवल निरपेक्ष निर्वैयक्तिक अन्धकार छा रहा था।

सुबह उठकर ही सुशीला ने रामराव से कहा, "दो साल हो गये, माँ को नहीं

देखा। वह अब बूढ़ी हो गयी है, मर-बिर जायेगी। फिर बाद कौन जाता है ! मुझे वहाँ पहुचा दो। मैं कितनी जाना चाहती हूँ।" और वह तो ज़िद पकड गयी। दिन-भर खाना नही खाया और उदास बैठी रही।

तब रामराव समझा, बात ज़रा गम्भीर है। इसलिए सासारिक ज्ञान की ज़िम्मेदार भव्यता, अपने गाल की हड्डी निकले हुए खड्डेदार मुँह पर लाकर बोला, "इसी साल गेहूँ चार महीने के खरीद लिये है, और घासलेट पीपे के रुपये अभी तक बाकी धरे हैं। दूसरे, वहाँ तक के लिए भी तो सिर्फ जान के चार लगेंगे, और चार लौटना और एक हाथ खर्च, इस तरह दस। इससे तो तुम्ह एक साड़ी आ सकती है जो दो साल तक आराम से चलेगी और कुछ ठीक दिखोगी। अच्छा, कहती हो तो दिवाली पर चलेंगे। तब तक कुछ ट्यूशन भी जमा हो जायेगी। दिवाली के सिर्फ चार महीने है।"

सुशीला का हृदय सुनते-सुनते फटा जा रहा था। उसन उँगलियो पर गिनकर देखा तो दिवाली के साढे पाँच महीने निकले।

चार दिन हो गये। सुशीला दिखी ही नहीं। माधवराव रामराव के भी घर गया था। परन्तु बैठक तक उसकी छाया भी नही आयी। वह आश्चर्य करता हुआ सोच रहा था कि ऐसी बात क्या हो गयी होगी। रामराव ? सशय ? रोक ? डाँट ? या वह मुझे भटकाना चाहती है।

परन्तु एक दिन सुबह ही वह कुएँ पर जाती दिखलायी दी, यह मौका माधवराव कैसे चूक सकता था। पैर बढाता हुआ वहाँ जा पहुँचा।

उसने देखा कि वह म्लान गम्भीर है। सिर के काले केश ढीले होने से हवा के कारण गालो पर मँडरा रहे हैं। उसके प्रथम दर्शन का वह स्तब्ध पूर्ण मुख किसी अभिव्यक्ति से आप्लावित होकर रक्तिम हो गया है। उसे बात समझ म नही आयी। इसलिए वह और भी सुन्दर मालूम हुई।

उसने दूर से ही हल्की मीठी आवाज़ से कहा, 'सुशीला।"

सुशीला चौंकी नही। उसने माधवराव को दूर से ही आते देख लिया था। केवल एक बार उसकी ओर देखा, और फिर कुएँ से पानी निकालने लगी। प्रातर्वायु की पुलक माधवराव के सर्वांग म छा रही थी। आसमान ताज़े प्रकाश से विहसित था।

सुशीला ने पानी की बालटी निकाली, और उसकी ओर देखती हुई खडी हो गयी। फिर बोली, मुसकराने की कोशिश करते हुए जिससे कि उसके होठ आकुचित हो गये, "इलाहाबाद कब जानेवाले हैं ?"

"परसो।"

"मैं भी माँ के पास जानवाली थी, लेकिन अब नही जाती, फिर कभी सही।"

"और क्या आज्ञा है ?" कहकर माधवराव ने अकस्मात् सुशीला का ठण्डा गीला हाथ अपने हाथ मे ले लिया। उस निर्जन म सूर्य की लाल किरणें उन दोनो के बीच मे से कुएँ पर छा रही थी।

सुशीला ने हाथ को तुरन्त खीच लिया। कहा, "दी हुई कादम्बरी पढ ली।"

"अच्छी लगी ?" माधवराव न पूछा।

"अच्छी है, पर उस स्त्री के 'इतन' थे, पर मित्र तो एक भी नही था!"

सुशीला ने 'मित्र' शब्द इतने जोर से कहा कि माधवराव समझते हुए भी कुछ नहीं समझा। सुशीला के चेहरे से उसे ऐसा लगा मानो वह पूछ रही हो, "तुम मेरे मित्र हो सकते हो?"

इतने में चम्पा सिर पर एक के ऊपर एक मटका लिये आ गयी। वे दोनों चुपचाप अलग हट गये। सुशीला के हृदय में वही बात गूँज रही थी, "माधवराव, तुम मेरे मित्र हो सकते हो?" परन्तु तीक्ष्ण-जिह्व चम्पा की ओर सबसे अधिक माधवराव का ध्यान था। वह स्थिति को बचा लेना चाहता था। उसका पिघला हुआ हृदय सहसा बर्फ हो गया। नीची गर्दन किये हुए सोचता हुआ आगे चलने लगा।

चम्पा का चेहरा उग्र हो गया था। परन्तु सुशीला ने परवाह नहीं की। उससे भी अधिक अपना चेहरा कठोर बनाकर वह चली गयी।

रामराव ने सिर्फ इतना ही कहा कि माधवराव से इतना अधिक बोलना जन-लज्जा के कुछ प्रतिकूल है, कि सुशीला का मुँह एकदम फूल गया। तीन दिन तक वह पति से बोली नहीं। बिचारा रामराव आखिर क्या करता? अब वह रोज से अधिक काम करती और अपने को बिलकुल फुर्सत या आराम न देती। उधर रामराव का जीवन खराब होने लगा। वह सुबह-शाम स्कूल के पहले और बाद सुशीला को अपने सस्पर्श में रखने का आदी हो गया था। परन्तु उसने इसलिए धैर्य रखा कि परसों तो माधवराव जानेवाला है। फिर भी उसके दिमाग पर अस्थिर बेचैनी बनी रहती। उसने भी, प्रतिक्रियास्वरूप, सुशीला से बोलना छोड़ दिया।

इस प्रकार ये दो ग्रह अपने अलग-अलग वृत्त-पथों पर घूमते, सिवा कुछ क्षणों के जबकि दोनों के पथ, कुछ दूर तक पास आ जाते। परन्तु थोड़े ही समय के अनन्तर एक-दूसरे से कतराकर वे निकल जाते। सुदूरतम श्याम में ये दोनों ग्रह अपनी-अपनी ज्योति में ढँके निकल जाते। सुशीला ने सुबह से शाम तक का कार्य-क्रम निश्चित कर लिया, और एकाग्र होकर इसी तरह दिन और सुबह तै करती। सुबह सबसे जल्दी उठती, शाम को सबसे बाद थकी-माँदी बिस्तर पर पीठ टेकती।

कुएँ पर उषा का लाल विभास उसी तरह फैल जाता। स्त्रियों पर स्त्रियाँ आतीं। प्रतिदिन के अनुसार बालटियों और घड़ों की खड़खड़ाहट वातावरण में गूँजती रहती। नीम के पेड़ की निरपेक्ष हिलडोलमयी सरसर उसी तरह झूमती रहती। दुपहर ग्यारा बजे में शुरू होती। क्लर्कों और मास्टरों का नहाना, सुबह के पाँच घण्टे काम की क्षुधापूर्ण थकावट के उपरान्त, प्रतिदिन के अनुसार उनकी मुख-रेखाओं पर कुछ उत्साहका प्रवाह दौड़ा देता। और फिर टीन से उठता हुआ तपते आसमान में क्षुद्र लगनेवाला धुआँ, और उन्हीं छतों के नीचे दो कौर खाते ही गात-गात में थकावट का अनुभव प्राप्त करनेवाले तरुण क्लर्क और मास्टर, उनके बच्चों के दारिद्र्य की आभा से दमक उठनेवाले जिद्दी चेहरे। फिर शाम आती, रोज की भाँति, चिन्ता-ज्वाला के समान श्यामारुण, नीम और कुएँ पर कुछ समय के लिए सुहानी दृष्टि डाल, और फिर अपने विराट अँधेरे में सर्वत्र को मिलाकर लुप्त हो जाती। प्रत्येक क्षण अपने अन्तस्तल में अपना नक्शा लिये खिसकता चलता। दिवसानुदिवस सुशीला को मालूम हुआ कि माधवराव का विचार बदल गया है। वह बस न जाकर पँधरा दिन बाद जायगा। उसने खेदमय आश्चर्य से गर्दन हिला

दी कि पुरुष कैसे होते हैं जो अपना वचन नहीं रख सकते !

सुशीला ने उस समय पर कुएँ पर जाना छोड दिया जबकि माधवराव आता था। जो जो माधवराव के फुर्सत के समय थे तब तक सुशीला जानबूझकर काम में अधिक व्यस्त हो जाती। घर के बाहर तपती सुनहली जमीन पर माधवराव की छाया घूमती हुई सुशीला को दिखलायी देती। उसके मन की गम्भीरता के सघन वातावरण को छेदता हुआ विह्वलता का एक किरण-सा जलता तीर उचककर ऊपर आ जाता, परन्तु फौरन वातावरण के श्याम गाम्भीर्य में खो जाता। और फिर सुशीला का निर्विकार पूर्ण चेहरा नीचे झुककर अपने काम में डूब जाता।

माधवराव बिस्तर बाँधने लगा। सूटकेस तैयार हो गया था। और देशपाण्डे महोदय *ताँगा लेने गौतमपुरे चल दिये। माधवराव का हृदय एक आशा में लीन था कि* शायद सुशीला का पूर्णेन्दु मुख उसे जाते समय तो दिख ही जायगा। इसलिए रामराव के यहाँ वह जाकर बैठ गया। इतनी दुपहर को उसने वहाँ चाय पी। परन्तु अन्दर से सुशीला की परिचित सरसराहट तक न आयी। उसने आज सुबह कुएँ पर जाते समय सुशीला को देखा था, जब वह रोज के अनुसार कुएँ पर जा रही थी। उसका मुँह देखते ही माधवराव के हृदय में आशा का दीपक जग गया था।

ताँगा आते ही देशपाण्डे ने बैठने की जल्दी की, और ज्योंही माधवराव को *लादे ताँगा पत्थरों पर खडखडाता हुआ आगे चलने लगा कि यकायक रामराव के* रसोईघर की काली खिडकी खुली, और वही स्तब्ध पूर्ण मुख, आँखों में न्याय्य मैत्री की माँग करनेवाला करुण दुर्दम चेहरा, वही स्तब्ध मूर्त्त भाव।

माधवराव के हृदय की मानो खडाखड-खडाखड [खिडकियाँ] खुल गयी और एक बेरोक प्रकाश का तूफान अन्दर घुस गया और छाने लगा।

ताँगा लुप्त हो गया एक मिनिट बाद ही, परन्तु तपते सूर्य के नीचे अवसन्न व्याकुल सडक पर जी एन आइ टी. की लाल बस धूल उडाती हुई चल दी। परन्तु सडक के किनारे के पीपल वृक्ष सूने में ही उन यात्रियों को अपनी भूखे बृहद् शाखाएँ डुलाकर विदा का नमस्कार कर रहा था।

[रचनाकाल मूल सम्पूर्ण 3.9 1942, आंशिक संशोधन सम्भवत 1947]

एक दाखिल-दफ्तर साँझ

कचहरी के लम्बे-चौडे अहाते के अन्दर जो नीम, सेमल और इमली के बडे-बडे दरख्त खडे हैं उनकी आड में क्षितिज की कोर पर जब रक्ताभ साँझ झुक जाती है, और उसके रंगों का प्रवाह जब आसमान के बादलों को लाल और सुनहला बनाता हुआ आकाश का दूसरा छोर छूने के प्रयास में धुँधला हो जाता है, उस समय आफिस के अन्दर साँझ की छाया घुसकर रामेश्वर के दुबले शरीर और मन को

बेचैन करने लगती है। सहसा उसकी आँखें काम से उचाट खाकर अहाते म खडे पेडो की ओर मुड जाती है। पेडो पर पक्षियो की किलबिल को सुनता हुआ, वह इस प्रकार ध्यानस्थ हो जाता है मानो उसके थके मस्तिष्क की नसें उनके स्वर-वर्तुलो मे विश्राम कर रही हो। विश्राम से जागकर मन फिर उन्ही स्वरो को सुनने मे इस तरह मग्न हो जाता है मानो कान पहली ही बार प्राकृतिक सगीत सुन रहे हो। इस प्रकार की अवस्था मे चन्द मिनिट रह लेने के बाद, आँखें फिर उन्ही पेडो पर इस प्रकार जम जाती हैं जैसे लहलहाती डालो मे छिपे पक्षियो को खोज रही हो। आँखो के सामने—मन की आँखो के सामने—दीखता है कि पक्षी आनन्द ... छोटी,

... ीट के

ख़याल के साथ साँझ का खयाल जुडा हुआ है। साँझ के खयाल के साथ ऑफिस के काम से चूर होकर घर लौटने की तसवीर भी चस्पाँ है।

रामेश्वर वगासी लेता है पर इस शारीरिक क्रिया म जान नही है। सन्तोप नही है। किसी मानसिक अवरोध से आधी वगासी ही है। कुर्सी पर से उठ पडने की हलचल-सी होती है, किन्तु रामेश्वर उठ नही पाता।

सामने, टेबल पर खुले बस्ते के कागजो पर हाथ पटककर रामेश्वर शून्य दृष्टि से चारो ओर फैले हरूफो को देखने-सा लगता है कि इतने म कान मे एक आवाज घुस पडती है।

"छोडो · साहब, अब तो, होना होगा सो होगा।"

रामेश्वर को यह आवाज आश्रय देती-सी मालूम होती है। सोचता है—कुर्सी पर से उठ पडे, एकदम जल्दी-जल्दी कचहरी के घेरे का पार कर खुली सडक पर चलने लगे।

"आप फिजूल तक्लीफ कर रहे हैं। ऐम कौन वे लाट साहब हैं · कल भी जवाब दिया जा सकता है। केस की तो आपने पूरी स्टडी कर ही ली होगी।"

कमरे में साँझ की मीठी उदास और घनी छायाएँ फैल चुकी थी। आस-पास, काग़ज़ो और फाइलो के गट्ठो मे लदे टेबल, क्लर्कों के घर चले जाने के कारण सून-सूने नजर आ रहे थे।

रामेश्वर के सामने उसका असिस्टेंट खडा था। नाटा, इकहरा, साँवला, कुरूप व्यक्ति जिसकी नाक अन्त में बहुत मोटी होकर ऊपर उठ गयी थी। उसकी आँखो मे सुखद हँसी चमक रही थी।

उस उल्लासपूर्ण चमक से रामेश्वर ने कुछ चिढकर, किन्तु भाव प्रकट न करते हुए, कहा, "अब तो चाय का भी बन्दोबस्त नही हो सकता···।"

चपरासी अपने घर को रवाना हो चुका था। दूसरे कमरे में फ़र्राश मेहत-रानियो को जोर-जोर से कुछ कह रहा था। असिस्टेंट ने अपने कमरे मे से ही जोर से चिल्लाते हुए उसे चाय लाने का आदेश दिया जिसे सुनकर फ़र्राश बडबडाता हुआ होटल की ओर चल पडा।

चाय की आशा ने, काम ने नही, रामेश्वर को कुर्सी से और चिपका दिया। असिस्टेंट मन ही मन हँस रहा था।

आखिरकार यह वही अफ़सर है जिसे अपने मातहतो की छोटी-सी ग़लती को

पहाड बनाकर दिखलाते हुए, समस्त बुद्धिमत्ता का आश्रय अपने को जाने-अनजाने मानने की आदत पड गयी थी। माना कि वह आदमी अच्छा था। किसी का नुकसान करने की प्रवृत्ति उसमे न थी। किसी के पेट पर वह पाँव नही रखता था। यह सब होते हुए भी, जो वह नही था वह भी महत्त्वपूर्ण था। आज यह नाटा, कुरूप, इकहरा असिस्टेंट मन-ही-मन हँस रहा था, अपने अफसर को परेशान देखकर।

तिरछी काट का पैंतरा साधता हुआ वह बोला, "है क्या, साहब, इसमे। साले, सब अपनी मुँह की खायेंगे। आप तो मुशी हैं। आपके एक्सप्लेनेशन को भला कोई काट सकता है!"

बात सच थी। यद्यपि रामेश्वर को कालेज छोडे सिर्फ एक ही साल हुआ, फिर भी वह कचहरी के कामो मे इस तरह माहिर माना जाने लगा कि उसकी होशियारी की दाद बडे-बडे अफसर भी देने लगे।

किन्तु अपने असिस्टेंट के उक्त वाक्य से वह खुश नही हुआ। उसमे अनावश्यक विनोद की ध्वनि उसे सुनायी दी, जिसके कारण वह और भी चिढता गया।

असिस्टेंट कहता चला, "कल सुबह भी तो यह दिया जा सकता है।"

रामेश्वर भभक उठा, "तुम कुछ जानते नही हो। आज शाम को यह तैयार हो जाना था। बडे साहब न उसे तीन बजे माँगा था। अब बज चुके है छह! तुम कल तक की बात कह रहे हो। इम्पॉसिबल (असम्भव) मेरा तो जी धक् धक् कर रहा है।"

अन्तिम वाक्य कहकर रामेश्वर ने जीभ काट ली। यह वह क्या कह गया? अपने असिस्टेंट से! छि छि, वह क्या इतना कमज़ोर आदमी है!!

रामेश्वर की खीझ और भभक असिस्टेंट से छिप न सकी। किन्तु मिस्टर वर्मा (असिस्टेंट) को उससे कुतूहल और आश्चर्य ही हुआ। रामेश्वर इतना विचलित, बेचैन और व्याकुल है, इसका अन्दाज उस न था। इस भावना से कि इस सारी झझट के पीछे कोई राज है, स्थिर होकर उसे जानन की इच्छा हुई।

श्री वर्मा को—जैसे कि आफिस के कई-एक कर्मचारियो को—दूसरे के राज जानने की इच्छा हमेशा सताया करती। वे लोग हमेशा एक दूसरे से मिलते हुए भी किसी के न थे। उनके परस्पर वार्तालाप और सम्मिलन का रहस्य केवल यह था कि 'क्या चल रहा है'। एक दूसरे की पीठ-पीछे बुराई करना तथा येनकेन प्रकारेण षड्यन्त्र करते रहना अथवा उसी म भाग लेते रहना—यह एक नियमित व्यापार था। क्षुद्र-क्षुद्र-सी बात पर ये व्यक्ति अपना दिमाग चलाते रहते थे। यद्यपि ये सब लोग शिक्षित थे, तथा उनमे स बहुसख्य बी ए से कम न थ, फिर भी उनके दिमाग को दखकर यह कहा जा सकता था कि वे गँवारो और अशिक्षितो से भी निम्न श्रेणी के हैं। यह नही कहा जा सकता कि उनमे मे कौन कौन और कितने निश्चयपूर्वक विघ्न-सन्तोषी थे, किन्तु सामान्यत एक-दूसरे के प्रति विष-वमन करने मे चतुर थे। कचहरी मे खासी राजनीति चला करती थी। प्रत्यक किसी न-किसी गुट का था। गुट भी ऐसे कि जिनका कोई स्थायी रूप न था। मित्रता और सन्धि के कोई प्राकृतिक नियम न थे। गुट बनते-बिगडते रहते थे, किन्तु इसके कारण, आफिस के वातावरण मे अनावश्यक आपसी तनाव-खिचाव बढ जाया करता और मनो-

मालिन्य को फैलने का मौका मिलता।

किसी रहस्य का पता पाने के उद्देश्य से वर्मा ने कहा, "जी धक्-धक् करता है! आखिर ऐसी कौन-सी बात है? एक्सप्लेनशन तो रोज आया करते हैं। असली खुशी तो वह जो किसी तरह का भी एक्सप्लेनेशन पूछा जाय, इस तरह जवाब दे दे कि पूछनेवाले के भी छक्के छूट जायें। मोटर-ट्रकों का इचार्ज क्लर्क—वह कुलकर्णी! वह तो इस बात का दावा करता है कि चाहे जैसा ऐंडा-बेंडा एक्सप्लेनशन का प्रश्न हो वह पूछनेवाले का होश ठिकाने कर दे। सिर्फ मजमून की बात है! और फिर आपके कई अफसर दोस्त हैं। कोई आपका बाल नहीं बाँका कर सकता!"

आखीर का वाक्य वर्मा ने जान बूझकर कहा। वह एक फीलर था। टटोलने का तरीका। एक पल-भर, बगैर खुशी जाहिर किये—वह खुश था कि इतने दिनों बाद उसे अपनी उच्चता के प्रदर्शन स्वरूप ऊँचे स्वर से अधिकारसहित वाणी में बोलने का मौका मिला, एक गजेटेड अफसर से।

रामेश्वर मूर्ख न था कि वह यह न समझे कि उसकी निर्बलता की स्थिति में वर्मा को थोड़ा सा ही सही, बल मिला, यद्यपि उस बल का प्रतिकूल उद्देश्य न था। रामेश्वर को पल भर के लिए ही यह भ्रम हुआ कि जवाब का सही और गलत होना सिर्फ मजमून पर और मजमूनतराशी के हुनर पर ही निर्भर है। किन्तु भावनात्मक रूप से अपनी निस्सहायता का पुन अनुभव कर वह कहने लगा।

"नौकरी में—वर्मा साहब, कोई किसी का न दोस्त है, न दुश्मन। जब किसी पर आ बनती है तो कौन अपनी सुरक्षा की कीमत पर दूसरों की मदद करता है!"

"पर आप कौन-से ऐसे सकट में फँस गये हैं, हुजूर!" वर्मा जानने के लिए व्याकुल हो उठा। एक राज पर दूसरे राज खुलने की सम्भावना से वह आनन्दित हो गया।

इतने में बूढ़ा फर्राश चाय लानेवाले होटल के नौकर के साथ कमरे में दाखिल हुआ। चाय लेकर वह चुपचाप खड़ा रहा।

"रखो, रखो, टेबल पर रखो जाओ," वर्मा ने जल्दी जल्दी उसे रुखसत किया और वह कान लगाकर कहने लगा, "हाँ, साहब! ए फर्राश, स्विच ऑन करो, बिजली लगाओ!"

रामेश्वर ने चुपचाप चाय पी ली। उसने कहा, "आजकल, तुम जानते हो, सुपुरडन्ट की और डायरेक्टर की दोस्ती है!"

"ये तो खैर, सूरज की धूप की मानिन्द साफ है," वर्मा ने कहा।

"और तुम यह भी जानते हो, कि असिस्टेंट डायरेक्टर की, डिप्टी डायरेक्टर की नहीं, सुपुरडन्ट की अब तक दोस्ती थी।"

"यानी?" वर्मा ने आश्चर्य से ओत-प्रोत हुए कहा। उसका अचरज बनावटी था।

"यानी यह कि शुक्ला साहब की सुपुरडन्ट की दोस्ती खतम हो गयी, अब दुश्मनी है," उक्त वाक्य रामेश्वर ने इस प्रकार कहा मानो वह एक नये समाचार का एटम बम वर्मा के ऊपर छोड़ रहा हो।

वर्मा की आँखें फटी की फटी रह गयीं, चेहरा फैल सा गया। उसने आश्चर्य का बहुत खूबी के साथ नाट्य किया। उसको मानो कोई धक्का लग गया हो। दृष्टि

सूनी हो गयी।

वर्मा की इस मुद्रा से प्रोत्साहित होकर रामेश्वर ने कहा, "अब तुम समझ जाओ·· आगे की पूरी बातें · ।"

वर्मा ने गर्दन थोडी हिलाकर सिर्फ इतना मुँह से निकाला, "हूँ हूँ।"

वे दोनो एक-दूसरे के चेहरे की तरफ देखते हुए पल-भर बैठे रहे, मानो विचार की प्रच्छन्न धारा म बहे जा रहे हो।

फिर, एक झटके के साथ, शरीर को आकस्मिक गति देते हुए, रामेश्वर न बस्ता बाँध लिया और आलमारी पर धप स फेंक दिया। वर्मा ने फर्राश को दफ्तर बन्द करने के लिए एक जोरदार आवाज लगायी और वे दोनो यन्त्रगति स दरवाजे के बाहर हो गये।

ज्योंही वे दस कदम चलकर खुले मैदान मे आ गये, एक ठण्डी हवा की खुशबू-भरी लहर ने उनके मस्तको को स्पर्श किया और सिर के बाल कँपा दिये।

रामेश्वर यो ही, मात्र वातावरण के कारण, वर्मा के बारे मे यो आश्वस्त हो गया मानो वे पुराने मित्र और चिर-सहयोगी हो। हलका मीठा अँधेरा बडे-बडे दरख्तो के ऊपर से होता हुआ भी सब दूर छा रहा था, और दूर कोलतार की काली लम्बी सूनी सडक पर जगमगानेवाले बिजली के दिये दीख रहे थ।

रामेश्वर ने कहा, "अब तुम समझ गये पूरी स्थिति। असिस्टेंट डायरेक्टर और सुपुरडन्ट क मनोमालिन्य के कारण स्थिति मे कई परिवर्तन हो गये।"

वर्मा ने अपनी सूक्ष्म बुद्धि का परिचय देने के हेतु कहा, मैं समझ गया। सुपुरडन्ट का गुर्गा, गुप्तचर और उसका आज्ञाकारी मित्र शर्मा, यानी मेरा सहयोगी आपका असिस्टेंट। आपका उसका झगडा भी। किन्तु आपने उसे खूब निभाया "

रामेश्वर के कानो मे एक हल्की दबी हुई शिकायत की गूँज भर उठी। पल-भर उसके रहस्य को वह समझ नही पाया। किन्तु उसके तुरन्त बाद, मानो घण्टे के ठोके उसके दिल म पडे हो, एक आगाह करती हुई चोट उसक हृदय म स्वरित हो गयी।

किन्तु आपन उसे खूब निभाया ' इसके आगे वर्मा क्या कहना चाहता है? रामेश्वर के मन मे वर्मा के रुख के बारे म बहुत पहले से एक अपेक्षा जीवित थी जिसका वह, अपनी चेतना की ओट, गला घोटे बैठा था। उस अपेक्षा के अस्तित्व और अवस्थिति से इनकार किये हुए था। क्या वह अपेक्षा सत्य होने जा रही है?

. . ाँ, मैंने शर्मा को निभाया, निभाना

"

पक पल्ले आपकी इन्सानियत के पल्ले, और, सर्वाधिक, आपकी चतुरता के पल्ले "

रामेश्वर को वर्मा का कथन कूटनीतिक प्रतीत होते होते बच गया। खुशामद का एक अंग भी वह नहीं मालूम हुआ। क्योंकि वस्तुत वह खुशामद नहीं थी। दुनिया को जाहिर था कि रामेश्वर अपने पास शर्मा को रखकर न केवल अपनी कर्मण्यता वरन् घोर सहनशीलता का परिचय दे रहा है। रामेश्वर को वर्मा के कथन मे अशत अतिरंजना मालूम हुई।

अपने सवाल के पीछे छिपी चालाकी को सफल होते देख रामेश्वर ने अपने

स्वर को धीमा और मधुर रूप देकर कहा, "उसकी अच्छाई तुम्हारे पल्ले, क्योंकि उसकी सफलता तुम पर निर्भर थी। एकमात्र तुम्हीं हो कि" " कहकर उसने वर्मा के कन्धे पर अपना हाथ रख दिया। रामेश्वर ने वर्मा पर पूरी विजय प्राप्त कर ली।

वर्मा वाग्-वाग हो उठा। उसके खयाल मे यह नही आया कि एक पल पहले रामेश्वर के खिलाफ उसी के मुँह पर वह कुछ कहना चाहता था। अपने अफसर से अपनी तारीफ—चाहे वह थोडी ही क्यो न हो—किसे खुश नही करती ! फिर वह तारीफ झूठी भी नही थी। सिर्फ उसमे रामेश्वर का छुपा पैतरा था।

रामेश्वर वर्मा की कीमत पर शर्मा को निभा रहा था। उसे यह भय था कि कही वर्मा उससे बगावत न कर बैठे ! किन्तु रामेश्वर के सामने वर्मा अपनी पारिवारिक स्थिति के कारण बहुत ही मजबूर और बेसहारा था। वह बगावत नही कर सकता। यह रामेश्वर की जानकारी के बाहर बात थी। वह इसीलिए वर्मा की चुस्ती और फुर्ती से शकालु हो उठता था।

रामेश्वर ने मानो वर्मा के मन की बात कर दी थी। वह शर्मा और रामेश्वर के सम्बन्ध मे इसी नतीजे पर पहुँच चुका था कि शर्मा को निभाया जा रहा है उसकी कीमत पर। शर्मा को स्वच्छन्द छोडकर वर्मा के सिर पर ही सारा भार डाला जाता है।

किन्तु अब इस सत्य की आत्मस्वीकृति मे वर्मा के मन मे पुरानी कडुआहट न रही। वह खुश हो गया।

अभी वे दोनो कचहरी के कम्पाउड के अन्दर ही थे। कँटीले तारो के घेरे मे बिधा हुआ प्रवेश-द्वार दूर से दिखायी दे रहा था। आसमान मे काफी-से तारे निकल आये थे।

कचहरी के कम्पाउड के अन्दर के बडे-बडे दरख्त मर्मर कर रहे थे। दूर पर दीखती हुई सिविल लाइन्स की सडक के बिजली के खम्भो की दूरी के बीच मे बडे-बडे दरख्तो के पत्ते नाच रहे थे। वृक्षो पर छाया हुआ अँधेरा और उनके निचले भाग पर हल्का धुँधला प्रकाश उनके आकार को अधिक घनीभूत और भव्य बना रहा था। वन की, वनस्पति की, सुगन्ध मई की मीठी रात को, कण-कण को, पुलकित कर रही थी। वर्मा का मन आह्लाद से भर उठा था। रामेश्वर के मन मे तरलता छा रही थी।

किन्तु आनन्द-भरी बातो के प्रथम विचार के साथ ही साथ, रामेश्वर के मन मे चिन्ता की उद्विग्नता की तीखी लकीर-सी खिंच गयी। उसने वर्मा के कन्धे को थपथपाकर कहा, "मैं तो शर्मा को अपने पास रखना ही नही चाहता; किन्तु उस तुनुकमिजाज चिडचिडे ए डी ने मेरे विरोध की ओर ध्यान न देते हुए मुझ पर उस आदमी को थोप दिया।"

"कितने आश्चर्य की बात है ! जो आपका विरोधी और प्रतिस्पर्धी था, वही आपके मातहत है।"

"यही तो मुसीबत है।" रामेश्वर ने जवाब दिया।

"लेकिन "शर्मा काम भले ही न करे, या मन लगाकर न करे, वह अब आपके वश में है।"

"यही तो मुसीबत का मुख्य कारण है।"

वर्मा ने रामेश्वर की ओर तीव्र दृष्टि से देखा। वह रामेश्वर के उत्तर का आशय ठीक-ठीक समझ नही पाया। ' क्या मतलब ?" वर्मा के मुँह से निकल गया।

अपना जवाब लम्बा-चौडा होगा, यह सोचकर रामेश्वर पल-भर चुप रहा। वर्मा कहता गया, "वह स्पाई (गुप्तचर) है, इससे आप डर रहे है ?"

रामेश्वर ने रहस्यात्मक तौर से मुसकराकर कहा, "नही ! है वह सुपुरडन्ट का आदमी ! सुपुरडन्ट आजकल मेरे पक्ष मे है। अब वह मुझे बहुत कॉन्फिडेन्स मे ले रहा है !"

वर्मा आधे पल के निए उलझन मे पड गया। किन्तु, तुरन्त बाद एक ख़याल छोटे से वडा होता गया। लघु रूप से विशाल वन गया। उसके महत्त्व को देखकर हतप्रभ होता हुआ वर्मा बोला, 'तो कहने का मतलब यह है कि ए डी (असिस्टेन्ट डायरेक्टर) आपके भी खिलाफ हो गया है ?" वर्मा ने चिन्ता प्रकट करते हुए कहा।

"हाँ," एक छोटा-सा सक्षिप्त उत्तर, किन्तु कितने खतरो की सम्भावना प्रकट करता हुआ।

"क्यो ?" वर्मा का सवाल, सीधा बन्दूक की गोली-सा तेज !

"इसलिए कि मैं शर्मा को कुछ नही कहता।"

"पर, इसका उन्हे कैसे अन्दाज ? और काम तो वरावर हो रहा है।" वर्मा ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा।

"ए डी को सुपुरडन्ट से लडना है। शर्मा को निमित्त बनाकर, निशाना बनाकर।"

वर्मा के मन मे विरोधी विचार एक-दूसरे से कडकडाकर सघर्ष कर उठे और एक विजली निकली, एक नतीजे के अनिवार्य निष्कर्ष के रूप मे—और वह उसे अभिव्यक्त कर गया।

"तो, दो पाटो के बीच म आप पिस रहे है ! बुरे फँस गये !"

वर्मा ने अपने दोनों हाथ एक दूसरे म बाँध लिये। यह सोचने की प्रक्रिया की मुद्रा थी।

थोडी देर तक वे दोनो शान्त और चुप रहे। वे अब सडक पर आकर थोडी दूर चल चुके थे।

"पर केस क्या है ? " वर्मा ने काफी उद्विग्नता से पूछा और उसने रामेश्वर की ओर देखा।

रामेश्वर अत्यन्त गम्भीर था। उसके चलने म एक शिथिलता थी, एक लड-खडाहट थी। कम से कम वर्मा को यही प्रतीत हुआ। वर्मा को लगा मानो रामेश्वर की जीभ मुँह के अन्दर समा गयी हो उसे लकवा मार गया हो।

प्रयास कर रहा था कि वह कहाँ से शुरू की जाय।

रामेश्वर को लग रहा था मानो वह काँप रहा हो और इतना अवसन्न हो कि उसे कोई ताँगे या रिक्शे मे बैठाकर सकुशल घर पहुँचा दे। अपने मन की बात के लिए प्रयास उसे और भी दयनीय बना रहा था।

किन्तु वर्मा को रामेश्वर के मन में छायी हुई वेदना की इस सघनता का पता न मिल सका। रामेश्वर की गम्भीरता को देख वह बात की गम्भीरता का ही अन्दाज़ा लगा सका। इसलिए उसने उत्सुक होकर फिर एक बार वाक्य पर ज़ोर देते हुए रामेश्वर से पूछा, "केस है क्या आखिर?"

रामेश्वर ने वर्मा की ओर न देखते हुए—मानो वह उससे नहीं वरन् आसमान से, या किसी अचेतन पदार्थ से, आत्मनिवेदन करना चाहता हो, कहा, "एक बड़ी महत्त्वपूर्ण फाइल थी। आज से दो महीने पहले वह आयी थी। आज निपटाता हूँ, कल निपटाता हूँ, सोचते सोचते मेरे दिमाग़ से वह बिलकुल गायब हो गयी और तीन या चार दिन बाद ही वह मेरे टेबल से भी नदारद। मैं उस फाइल को शर्मा की नज़र से बचाना चाहता था। इसलिए मैंने उसे अपने दराज़ में रख दिया था। दराज़ में ताला नहीं है।

"जब वह मुझे दराज़ में नहीं दिखी, तो मैंने आलमारी में, इधर-उधर, चुपचाप खोज-तलाश की पर वह गायब की गायब। मैंने सुपुरडन्ट से नहीं कहा, न पूछा। क्योंकि एक तो न केवल मेरे खिलाफ मामला तैयार कर देता, वरन् सब दूर मेरी बदनामी करता। दूसरे, उसका सम्बन्ध गुप्त रूप से कई अखबारों से था। अपने खुफ़िया गुर्गों और एजण्टों के द्वारा वह स्थानीय पत्रों में मेरी बदनामी करता, और, बैठे-ठाले, मुझ पर वह जाँच कमेटी बिठा देता। साराश, मैं उससे खौफ खाया हुआ था। यद्यपि वह मुझे अपने विश्वास में लेता था, मैं कभी उस पर विश्वास नहीं कर सका। अतः मैंने उससे कुछ नहीं कहा।

"एक-दो दिन बाद मैंने ए डी से जाकर पूरा किस्सा सुना दिया। वह स्वयं भौचक्का हो गया। फिर भी उसने मुझे सलाह दी कि मैं फाइल खो जाने की रिपोर्ट कर दूँ, इस तरह खतरा मोल लेना ठीक नहीं—उसने मुझसे कहा।

"मैंने इस बात पर सोचा। फाइल खो जाने की रिपोर्ट मैंने तैयार नहीं की। मैंने सोचा कि आखिर वह क्या थी? एक्सप्लेनेशन था, एक कागज़। पूछा भी उसे ए डी ने था। मैंने सोचा कि ए डी अगर एक्सप्लेनेशन माँगना ही चाहता है तो, जब उसे मालूम है कि वह फाइल खो गयी तो, दूसरी बार पूछ सकता है। इस-लिए, मैं चुप बैठ गया।

"यद्यपि शर्मा का उस पर नाम नहीं था, फिर भी परिस्थितिवश बात जा पड़ती शर्मा पर ही। ए डी के कान शर्मा के खिलाफ और उसके सम्बन्ध से मेरे खिलाफ, बहुत भर दिये गये हैं। ए डी शर्मा को हमेशा सन्देह की दृष्टि से देखता रहा। मौका पाते ही वह उस पर बरस पड़ना, टूट पड़ना, चाहता था। किन्तु शर्मा सुपुरडन्ट का आदमी होने की वजह से, वह पहले तो चुप रहा, बाद में मेरे द्वारा उसको कठिनाइयों में डाल देने की इच्छा करने लगा। एक बार उसने मुझसे सूने तौर पर कहा कि शर्मा के खिलाफ़ मैं रिपोर्ट करूँ, कार्रवाई करूँ। पर मैं जानता था कि सुपुरडन्ट का उसे आसरा है। वह लोहे का किला है, जिस पर फ़तह पाना मुश्किल है।

"इतने में सुपुरडन्ट का और शर्मा का बहुत बुरा झगड़ा हो गया।

"ए डी को मालूम हो चुका था कि मैंने फ़ाइल के खो जाने की रिपोर्ट नहीं की। उसने मेरे ज़बानी जो सुना वह, और पुरानी बात—इन दोनों का एक्सप्ले-नेशन पूछते हुए बात को आगे बढ़ा दिया। डायरेक्टर को इसकी सूचना कर

दी।"

वर्मा ने पूछा, "डायरेक्टर ने आपको बुलाया था?"

"हाँ," रामेश्वर का उत्तर। वर्मा समझ गया कि रामेश्वर पर क्या गुजरी होगी।

रामेश्वर ने घोघरे स्वर में कहा, "अब मामला संगीन हो गया है···"

वर्मा ने सोचते हुए, बात पर मनन करते हुए, कहा, "हाँ, बात अब बहुत आगे जा चुकी है··"

इस परिस्थिति पर वर्मा को खुद को दुःख हो रहा था। यह एक विचित्र नागपाश था।

किन्तु—वर्मा सोचने लगा—फाइल गुम जाने पर रामेश्वर ने तुरन्त रिपोर्ट क्यों नहीं की। बड़ा बेवकूफ है वह। पर वह गयी कहाँ? हो न हो वह···

वर्मा बोल पड़ा, "वह फाइल शर्मा ने ही गायब की होगी, सुपुरडन्ट के कहने से।" वर्मा ने इस प्रकार कहा मानो वह बे-सोची बात का रहस्योद्घाटन कर रहा हो।

जवाब में वर्मा को रामेश्वर का वेदनापूर्ण स्वर सुनायी पड़ा, "हाँ, मेरा भी यह सन्देह है।"

फिर वर्मा स्वयं में लीन हो गया। रामेश्वर ने ए. डी. से रिपोर्ट क्यों नहीं की? शर्मा पर सारी बात थोप देने में उसे अपने तईं इतनी आनाकानी क्यों है? शर्मा से वह डरता है, इसलिए कि वह सुपुरडन्ट से डरता है, पर सुपुरडन्ट से क्यों डरता है? इसका कोई स्पष्ट उत्तर वर्मा को नहीं मिल सका, किन्तु किसी भावना का कुहरा उत्तर बनकर उसके हृदय में धीरे से उठा और घनीभूत होता गया। अन्त में भावना एक निर्णय बन गयी, रामेश्वर के व्यक्तित्व-चरित्र पर। और निर्णय एक साफ-साफ लकीर का रूप धारण करता गया। स्वभावत, रामेश्वर दब्बू है, व्यक्तिगत संघर्ष—जहाँ तक हो सके—वह टालता है, चाहे उसे कितनी ही बड़ी कीमत देना पड़े। किन्तु इससे संघर्ष टलता नहीं, उसका रूप भले ही दूसरा हो जाये। उससे व्यक्तित्व दुमुँहा हो जाता है, जिसका हरेक मुँह एक दूसरे का विरोधी और उसके अस्तित्व की अनुपस्थिति में विश्वास करनेवाला है। वर्मा के मन में ये सारे भाव-विचार इस अन्दाज से उठे और फैले कि मानो वे राहगीर न होकर दिल रूपी बारहदरी के रहनेवाले हों। शायद वे वर्मा के ही व्यक्तित्व के पहलू थे जो यूँ उभर आये।

वे दोनों पास-पास चलते हुए भी इस तरह थे मानो अकेले लम्बा रास्ता तै कर रहे हों—वह रास्ता जिसका ओर न छोर। सिविल लाइन्स की सड़क पर इक्के-दुक्के आदमी—दूर बने हुए मकानों के धनी, शिक्षित मध्यवर्गीय इक्के-दुक्के स्त्री पुरुष—विलमते हुए चल रहे थे। सब दूर सुनसान था। बीच-बीच में हवा के झोंके आकर वह चेतना तीव्र कर देते थे जो अन्दर-ही-अन्दर घनीभूत होती जाती थी।

रामेश्वर के इस स्वभावजन्य डरपोकपन, व्यक्तिगत संघर्ष से बचने के तरीकों से,—वर्मा सोच रहा है कि उसे सबसे अधिक तकलीफ हुई। उसकी आँखों के सामने अपनी मजबूरी, कष्ट और अपमानों के चित्र उभर उठे और तैरने लगे। शर्मा के द्वारा हुए उसके अपमान—जिसका एक कारण रामेश्वर की कूटनीतिक

छद्म निर्बलता थी—, वे अपमान उसे विशेषत असह्य हो उठे और वह अन्दर-ही-अन्दर कुढने लगा।

भौंहो के पसीने को पोछते हुए, रामेश्वर ने आह भरकर सोचते हुए कहा, 'बडा लम्बा, बडा भारी सघर्ष है।" रामेश्वर यो बोला मानो उसने अपनी जिन्दगी के रूप पर निर्णय दे दिया हो।

"पर, आप तो प्रगतिवादी हैं।"

"प्रगतिवादी ?" चौंककर, अप्रिय भाव से रामेश्वर बुदबुदाया, मानो उसने अपने से ही कुछ कहा हो। फिर उसने विचित्र दृष्टि से वर्मा की ओर देखा। फिर पूछा, "क्या कहा ?"

"प्रगतिवादी आप बस।"

"क्यो मज़ाक कर रहे हो, यार।" हतप्रभ होकर रामेश्वर ने जवाब दिया।

"अच्छा, मैं अपने को करेक्ट कर लेता हूँ, एक्स-प्रगतिवादी, अवसर-प्राप्त क्रान्तिकारी।"

वर्मा क्रूरतापूर्वक ज़ोर से हँस पडा।

"मार खाना चाहते हो !" मज़ाक के तौर पर, लेकिन तमाचा जडने के खयाल को दवाते हुए रामेश्वर ने कहा।

वर्मा से उसका इरादा छिपा न रह सका। किसी अजीव अन्दरूनी तरीके से वह इस नतीजे पर पहुँचा कि रामेश्वर ने उसके भाव ताड लिये, यद्यपि यह बात सच न थी। रामेश्वर को सिर्फ यह खयाल हुआ कि उसका सहायक वर्मा उसकी नि सहायता का बेजा फायदा उठाकर फब्तियाँ कस रहा है, ऐसी फब्तियाँ जो उसके मर्मस्थान पर आघात कर रही हैं।

वर्मा ने व्यग्य मे मुसकराकर कहा, " 'प्रगतिवादी', इस शब्द से क्यो डरते हैं ? मैं स्वय प्रगतिवादी हूँ। एक नामहीन प्रगतिवादी।"

"मैं उस शब्द से नही डरता क्योकि समय था जब मैं उस शब्द को अपना विशेषण मानता था।"

इस पर वर्मा अनावश्यक रूप से किन्तु साभिप्राय हँसा।

इस हँसने से रामेश्वर भयानक रूप से चिढ गया। उसकी इच्छा हुई कि वह वर्मा की गर्दन पकड ले और उसे ज़मीन पर दे मारे। पूर्व की उदासी ग़मगीनी गुस्सा बन गयी, भयानक गुस्सा। मस्तक की नसें तन गयी। और, किसी अन्दर की प्रवृत्ति से उसने वर्मा के कन्धे पर हाथ रख दिया मानो मौक़ा पाते ही नीचे रगड दे।

पल-भर की चुप्पी के बाद रामेश्वर ने कहा, " 'प्रगतिवादी', इस शब्द से मैं डरता नही, किन्तु दुर्भाग्य से मैं अब सरकारी नौकर हूँ। सरकारी नौकर की विचारधारा नही होती, होती भी है तो उसके अनुसार कार्य करना मना है। पेट की गुलामी कर रहा हूँ आत्मा को बेचकर। मात्र वेश्यावृत्ति पर हम लोग जीवित हैं। किसी वेश्या को सुहागन कहने से उसका अपमान ही होता है। वैसा अपमान तुम कर रहे हो मेरा। और वह भी आज इस मौक़े पर ··" रामेश्वर को फूट-फूटकर रोने की इच्छा होने लगी। वर्मा के कन्धे पर से हाथ हट गया और शिथिल होकर नीचे लटकने लगा।

किन्तु वर्मा को इसकी कोई खबर न थी। उसने अपनी टेक पर अडे रहकर

कहा, " 'प्रगतिवाद' का मतलब है इन्सानियत। और इन्सानियत का मतलब है इन्सान के लिए लडना, और लडने से आप डरते हैं। खयाल भले ही आपके ऊँचे हों, ईमान से आप दूर हैं। आप में ईमान नही है।"

वर्मा ने यह बात इस जोर से, इस कठोरता से, और बुद्धि की विध्वंसात्मक चीर-फाड के आवेश से, कही कि रामेश्वर हतबुद्धि हो गया। वर्मा कहता गया, "आप लडने से मुँह चुराते है। आप कैसे प्रगतिवादी है। जिन्दगी के हर कदम पर लडाई है। सुपुरडन्ट से लडाई टालने के लिए आपने शर्मा को छूट दे रक्खी। ए डी से लडना टालने के लिए आपने मुझे काम मे पीसा, सिर्फ इसलिए कि मैं मजदूर और गरीब आपके कहने मे था, आपकी सदाशयता का कायल था। आपने मेरे भूखे बच्चो को नही देखा। पर सुपुरडन्ट की गुस्से-भरी भौंह को जरूर देखा। बीस-बीस मकानो के स्वामित्ववाले खानदान के लाडले पुत्र शर्मा को प्रमोशन दिलाया। और मैं, उससे सीनियर और हर तरह से हकदार होते हुए भी—आपने मेरी सिफारिश नही की। आदमियत का तकाजा था कि आप उसे करते। मैं आपके व्यक्तित्व का जौहर देखता और आपको दुआ देता। पर आप हैं कि महकमे के कूटनीतिक गुटो के चक्कर से घबराकर अपनी रक्षा करने के लिए मुझसे लगातार काम लेते रहे · और आप भी लगातार पिसते रहे बुरी तरह। क्या हासिल हुआ आपको इससे ? "

वर्मा यह कहता हुआ काँप रहा था। उसने कहा, "अच्छा, आदाबर्ज़।"

सामने से आकर एक दूसरी सडक इस सडक से मिल गयी थी। भूरी सडक थी वह मिट्टी की, कोलतार की नही। वही एक छोटा नीम का पेड था। उसकी झूलती शाखाओ के नीचे एक पानवाले की गुमटी थी।

"पान तो खा लो !" एक खट्टी हँसी हँसते हुए रामेश्वर ने कहा।

वे दोनो उस गुमटी के पास चुपचाप निस्तब्ध, अपने-अपने अन्तर्जगत् मे लीन, और भूत की मानिन्द, अकेले-से खडे रहे। यद्यपि वे पान के इन्तजार में गुमटी के सामने खडे थे, पान का खयाल उनके दिमाग से बिलकुल गायब था।

उन्होंने यन्त्रवत् पान का बीडा उठाया और मुँह मे डाल लिया और अपने अलग-अलग रास्तो पर चल पडे।

[सम्भावित रचनाकाल 1948-1958 के बीच। साप्ताहिक हिन्दुस्तान, नवम्बर 1968 मे प्रकाशित]

[पाण्डुलिपियों में यह अंश मिला जो 'एक दाखिल दफ्तर सॉझ' की अगली कड़ी जैसा है, पर अपूर्ण है। इसमे कथा-नायक रामेश्वर की मानसिकता पर कुछ और प्रकाश पड़ता है, मुक्तिबोधजी की रचना प्रक्रिया भी जाहिर होती है।—स०]

वर्मा को छोडकर जब रामेश्वर अपने रास्ते पर आगे बढा तो उसे बहुत ही अकेला मालूम हुआ। वर्मा के साथ रहकर उसके प्रति विरोधात्मक प्रतिक्रियाओ से

उसका दिमाग भरा हुआ था, किन्तु उसके अलग हटते ही मन एकाएक खाली हो गया, इस तरह खाली जैसे ज्वार के निकल जाने पर बालू का मैदान उभर आता है।

दिमाग उसका सुन्न हो गया था। किन्तु दिमाग की नसो की उस सुन्न अवस्था मे गूँजो की अजीब भनभनाहट भी व्याप रही थी। मन के उस खालीपन मे एक अजीब धुआँ भर रहा था, और उस धुएँ की बारीक लकीरो के घन समुदाय मे अनेक चित्र बनते और बिखरते जा रहे थे। दिल मे कसैली तीखी राख छा गयी थी, और उस राख की पतली किन्तु विस्तृत परत मे मानो कोई अनेक वाक्य लिखता और मिटाता चला जा रहा था, जिन्हे पढकर रामेश्वर को अपनी जिन्दगी धुआँ होकर अपनी आँखो के सामने उडती हुई मालूम होने लगी थी।

जिस रास्ते से होकर रामेश्वर गुजर रहा था वहाँ बिजली की रोशनी न थी। राह के किनारो से काफी पीछे, दोनो बाजुओ पर, इमली और बाँस के घने-घने झुरमुट घुप्प अँधेरे मे ऊँघ रहे थे। कोलतारी सडक के किनारे के मिट्टी के विस्तृत हाशियो मे बैलगाडियाँ आराम कर रही थी जिनके समीप एक दूसरे के सामने मुँह किये बैठे हुए बैल जुगाली कर रहे थे। उनके गलो म बँधी घण्टियो की टिन-टिन कभी-कभी अँधेरे म गूँज उठती। जहाँ रामेश्वर पैर बढा रहा था उससे काफी दूर, लुढकी हुई बैलगाडी के कटरे पर, एक मद्धिम पीली नाराज लालटेन अपनी

. (क लम्बे सँकरे पुल की मुँडेर
उसके किनारे-किनारे वृक्षो
की पक्तियाँ मुडकर दूर तक चली गयी है। उसके घर्राते प्रवाह की आवाज किसी दुखभरे किन्तु रोषपूर्ण और शिकायत-भरे आत्मनिवेदन-जैसी, यहाँ सडक पर अँधेरे मे भयानक होकर फैल रही है। रामेश्वर के कानो के परदो से छनकर वह स्वर उसके हृदय मे बाह्य ससार का उसके प्रति रोष और शिकायत लेकर ही फैल रहा था।

वर्मा की बातो का रामेश्वर जवाब दे सकता था, झूठ जवाब ही सही। वह बात बना सकता था। किन्तु वर्मा ने उसके चरित्र का उद्घाटन ऐसे अवसर पर किया था, जब रामेश्वर स्वय अपनी निर्बलता का अनुभव कर खुद को ही अपनी आलोचना का शिकार बना रहा था। फिर वर्मा ने उसके प्रति जो बातें निवेदन की उनमे सत्य के कुछ अशो का ऐसा आवेग था जिसके सम्मुख रामेश्वर हतबुद्धि होकर परास्त हो गया था। इस स्थल पर आकर रामेश्वर के व्यक्तित्व की दो बेमेल बाजुएँ कडकडाकर टूट पडी। इन दिनो अनेक कठिनाइयो, कष्टो और उत्पातो के बावजूद, अपने प्रति रामेश्वर जो सन्तोष अनुभव कर रहा था उसमे भयानक विलम्ब हो उठा ! ''और इसका कारण हो गया वर्मा।

रामेश्वर नही जानता था कि वर्मा बुद्धिमान व्यक्ति भी है, इस अर्थ मे कि गहराइयो को वह नाप सकता है। रामेश्वर के लिए वर्मा सिर्फ एक अहलकार था, चुस्त-दुरुस्त और फुर्तीला। उसकी कार्यशक्ति, उत्फुल्लता तथा वाक्शैली से रामेश्वर प्रसन्न था। सारा महकमा जानता था कि वर्मा रामेश्वर का आदमी है। उसके कपडो से, और कभी-कभी जाहिर हो पडनेवाली वर्मा की उदासी से, नरमदिल रामेश्वर अन्दाज लगा लेता कि वह किसी मुसीबत मे मुब्तिला है।

अर्थाभाव और पत्नी के अस्वास्थ्य से ग्रस्त वर्मा रामेश्वर से पैसे उधार लिया करता। और रामेश्वर आत्मीयता प्रकट करते हुए निसकोच दे देता। किन्तु रामेश्वर की नरमदिली, मीठा स्वभाव, फक्कडपन और दिमागी चुस्ती एक न्यस्त स्वार्थ हो गयी थी। विभाग म अपनी विशेष परिस्थिति के कारण, वर्मा पर ही—क्या काम के सिलसिले म, क्या दूसरी बातो पर—अन्याय करता रहता। चूंकि वह वर्मा को चाहता था इसीलिए उस पर ही सबस ज्यादा हावी रहता, उस पर ही सर्वाधिक अन्याय करता। रामेश्वर का मन इतना कोमल था कि वह अपने अन्याय को अन्याय ही समझता, न्याय नही। ऐसी गलती रामेश्वर न कभी नही की। लेकिन वर्मा की आँखो म उसे न्याय रूप मे रखने हेतु, बहाने बनान के लिए उस मजबूर हो जाना पडता। उसके महकमे की अन्दरूनी परिस्थिति ही ऐसी थी।

किन्तु जब वर्मा ने उस पर अन्याय का, असत्य का, सही सघर्ष से मुंह मोड लेन का, प्रगतिवाद के सिद्धान्तो से अलग रहने का, पतन का, दोषारोपण किया तो रामेश्वर यकायक स्तब्ध रह गया।

उसको मालूम न था कि जो गुप्त सन्देह की छिपकली की किटकिट अपने हृदय म चलती रही, अथवा आलोचना का जो प्रच्छन्न स्वर नेपथ्य म निरन्तर चलनेवाले धीमे ताल सा अपने मन म गूँजता रहा, उसका सत्य अपन अन्त करण म से उद्घाटित न होकर, दूसरो के वाक्बाणो के प्रहार की चिनगारी की लाल तेज चमक का रूप ले, इतनी भयानकता से उसकी आँखो के सामने प्रत्यक्ष हो जायेगा। किसी विराट किन्तु विद्रूप अस्तित्व सा अपने सम्मुख चले-फिरेगा। यदि वह आत्म जन्मा होता तो, वह कितना ही घोर क्यो न हो, उसका दुलार किया जा सकता था। चूंकि वह भीम की गदा के आघात रूप मे अपनी छाती पर ठोका गया है, इसलिए वह ताडन-योग्य ही है। ऐसी प्रतिक्रिया मन मे उठती है। एक पल क सौवें हिस्से तक यह प्रतिक्रिया उसके मन म उठी टिकी और मिटी। किन्तु रामेश्वर मानसिक रूप से इतना निर्बल हो गया था कि उसका मस्तिष्क जिन्दगी की नाकामयाबियो पर ही लगातार सोचता जा रहा था और कडुआ विष पीता जा रहा था। अगर उस समय उसे और भी कोई घोर कारण (उसके जीवन की असफलता का) बतला दिया जाता, तो उसका अस्वस्थ मन उसी पर इस तरीके से सोचता रहता, माना वह कारण सच ही हो और उसन (कारण रूप मे प्रत्यक्ष होनेवाला) वह पाप भी किया हो। वर्मा के वार के सामने रामेश्वर का चुप रहना शक्ति की मजबूरी नही, निर्बलता की मजबूरी थी।

रामेश्वर के मन म एक विनाशशील अस्वस्थ उदासी छा गयी थी। वर्मा के अलग हटते ही उस उदासी के अन्धकार मे से गुप्त भावो के फनफनाते साँप, फुँकारती नागिनियाँ, सरसराती हुई चलने लगी।

रामेश्वर ने किसी यान्त्रिक प्रतिक्रिया से पीछे मुडकर देखा। अभी तक वह सिर्फ आध मील के करीब चल चुका था। उसने सोचा अभी भी उसे ढाई मील *आगे बढना है। इतना लम्बा रास्ता भयानक रूप से लम्बा*

उसने लम्बा पुल पार कर लिया, यद्यपि उस लग रहा था कि वह लौट पडे, पुल की मुँडेर पर चढ जाय और नीचे गहरे अँधेरे पानी मे कूद जाय और फिर कभी न निकले। वह घर न पहुँचे। घर जाने की इच्छा मर गयी थी, जैसे बीमार

की भूख मर जाती है। उसको लग रहा था मानो वह एक कदम आगे न चल सकेगा। अपने अन्त करण मे उसकी अपनी प्रतिच्छाया का मुँह किसी अबूझ कलक से काला मालूम होने लगा था और वक्ष के अन्तराल मे अजीब असगत विषैले वाक्य गूँज रहे थे मानो कोई किसी से कह रहा हो, 'तुमने अपनी जिन्दगी के साथ खिलवाड किया है, अप्राकृतिक व्यभिचार किया है, सचाई की राह छोड दी है।' इसके उत्तर मे दूसरा स्वर मानो चीखकर कह रहा हो, 'मुझे मार डालो, मुझे मार डालो, अपनी गदा से चूर्ण कर दो, मुझे इस प्रकार जीवित न रखो · !'

इतने मे रामेश्वर ने एक पुकार सुनी। एक हलकी दूर से आती हुई आवाज़। किन्तु, वह मात्र भ्रम है—यह सोचकर रामेश्वर आगे बढता गया।

जब रामेश्वर को अपने विचार-भाव असह्य हो जाते, तब बाहर भागने की इच्छा के कारण मन अपने लिए ऐसी ही आवाजो की कल्पना कर लिया करता। रामेश्वर को ऐसा धोखा कई बार हुआ है, इसलिए आत्मप्रवचना का शिकार न बनने के लिए अपने को ऐसे भ्रमो से बचाता हुआ रामेश्वर रास्ता तय करने लगा।

किसी ने एक ओर से रामेश्वर के कन्धे पर हाथ रख दिया। इस अनपेक्षित स्पर्श से वह काँप उठा था। सब ओर अँधेरा था। नवागन्तुक का चेहरा उसे एकदम नही दिखायी दिया। एक हलकी मुसकराहट ही उसको लक्षित हुई।

"नही पहचाना ?"

एक उजड्ड मोटी गूँजती हुई आवाज़।

"ओफ ! तुम हो ! मैं समझा कोई कर्जदार है !" विनोदपूर्ण किन्तु कठोर, उदास तथा क्षुब्ध हँसी गूँज उठी रामेश्वर की, यद्यपि उसमे एक बनावटी मिठास का भी आभास था।

"कब आये ?" उसने पूछा।

उस व्यक्ति ने जवाब नही दिया। रामेश्वर को दोनो हाथो से घेरकर आलिंगन मे बाँध, एक अजीब भावनाकुल जोश से उसके सिर के बालो को चूम लिया।

रामेश्वर एक पल घबरा-सा गया। वह अपने अन्दर-ही-अन्दर इस तरह धँसता जा रहा था और इतनी दूर तक धँस चुका था कि यकायक किसी की उभरती हुई भावनाओ के आवेग से प्रेरित आलिंगन मे बद्ध हो जाना उसे बुरा मालूम हुआ। उसे लगा—यह वृथा भावुकता का प्रदर्शन है और वह स्वय—रामेश्वर—एक बुद्धिप्रधान प्राणी है। भावुकता के प्रति एक तथाकथित बौद्धिकता का विद्रोह रामेश्वर के मन मे जाग उठा। किन्तु रामेश्वर आत्मविश्वासहीनता के दौर मे डूबा होने से वह विद्रोह बेजान था। रामेश्वर ने उसके आलिंगन के उत्तर मे मात्र उसका हाथ पकड लिया। और पीठ ठपकार दी।

किन्तु अकस्मात् रामेश्वर की आँखो मे आँसू आ गये। दु ख और मुसीबत के मौन निवेदन से पूर्ण आँसू। सालो से जमी दुख-कथाओ के स्वर मानो किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश मे हो जिसके हृदयरूपी निलय मे एक बार गूँज उठें और इस प्रकार व्यापते हुए अपने को समाप्त कर दें। अपनी नि सहायता के बोध के कारण अधिक अनायास वे आँसू···।

[अपूर्ण]

जिन्दगी की कतरन

नीले जल के तालाब का नज़ारा कुछ और ही है। उसके आस पास सीमेण्ट और कोलतार की सडक और बँगले। किन्तु एक कोने मे सूती मिल के गेरुए, सफेद और नीले स्तम्भ-से भोगे उस दृश्य पर आधुनिक औद्योगिक नगर की छाप लगाते है। रात म तालाब के रुँधे, बुरे बासते पानी के विस्तार की गहराई सियाह हो उठती है, जिसकी ऊपरी सतह पर बिजली की पीली रोशनी के बल्वो के रेखाबद्ध निष्कम्प प्रतिबिम्ब, वर्तमान मानवी सभ्यता के सूनेपन और वीरानी का ही इज़हार करते-से प्रतीत होते है। सियाह गहराई के विस्तार पर ताराओ के धुँधले प्रतिबिम्बो की विकीरित बिन्दियाँ भी उस कृष्ण गहनता से आतंकित मन को सन्तोष नही दे पाती वरन् उसे उघार देती है।

तालाब के इस श्याम दृश्य का विस्तार इतनी अजीब-सी भावना भर देता है कि उसके किनारे बैठकर मुझ उदास, मलिन भाव ही व्यक्त करने की इच्छा होती आयी है। उस रात्रि-श्याम जल की प्रतीक विकरालता से स्फुटित होकर मैंने अपने जीवन मे सुनी उदास कथाएँ अपने साथियो को सवेदना ग्रहणशील मित्रो को सुनायी और [उनसे सुनी] है।

यह तालाब नगर के बीचोबीच है। चारो ओर सडके और रौनक होते हुए भी उसकी रोशनी और रवानगी उस सियाह पानी के भयानक विस्तार को छू नही पाती है। आधुनिक नगर की सभ्यता को दुखान्त कहानियो का वातावरण अपने वक्ष पर तैरती हुई वीरान हवा मे उपस्थित करता हुआ यह तालाब बहुत ही अजीब भाव मे डूबा रहता है।

फिर भी, इस गन्दे, टूटे घाटवाले, बुरे-बासते तालाब के उखडे-पत्थरो-ढके किनारो पर निम्न मध्यवर्गीय पढे लिखे नये अहलकारो और मुशियो का जमघट चुपचाप बैठा रहता है और आपस म फुसफुसाता रहता है। पैण्ट-पाजामो और धोतियो म ढँके असन्तुष्ट प्राणमन सई साँझ यहाँ आ जाते है, और बासी घरेलू गप्पो या ताज़ी राजनीतिक वार्ताओ की चर्चाएँ घण्टा आधा घण्टा छिडकर फिर लुप्त हो जाती हैं, और रात के साढे आठ बजे सडकें सुनसान, तालाब का किनारा सुनसान हो जाता है।

एक दिन मैं रात के नौ बजे वर्कशॉप म काम करनेवाले नये दोस्त के साथ जा पहुँचा था। हमारी बातचीत महँगाई और अर्थाभाव पर छिडते ही हम दोनो के हृदय म उदास भावो का एक ऐसा झोका आया, जिसने हमे उस विषय से हटाकर तालाब की सियाह गहराइयो के अपार जल विस्तार की ओर खीचा। उस पर ध्यान केन्द्रित करते ही हम दोनों के दिमाग में एक ही भाव का उदय हुआ।

मैंने अटकते-अटकते, वाक्य के सम्पूर्ण विन्यास के लिए अपनी वाक्‌शक्ति को [illegible] 'क्यो भाई आत्महत्या—आत्महत्या

[illegible] वाज आ रही हो), 'क्यों, क्यो पूछ रहे हो?"

"यो ही, स्वय आत्महत्या के सम्बन्ध म कई बार सोचा गया।"

(आत्म-उद्‌घाटन के मूड मे, और गहरे स्वर से साथी ने कहा), "मेरे चचा ने खुद आत्महत्या की मैनचेस्टर गन से। लेकिन ..."

उसके इतना कहने पर ही मेरे अवरुद्ध भाव खुल-से गये। आत्महत्या के विषय मे अस्वस्थ जिज्ञासा प्रकट करते हुए मैंने बात बढायी, "हरेक आदमी जोश मे आकर आत्महत्या करने की कसम भी खा लेता है। अपनी उद्विग्न चिन्तातुर कल्पना की दुनिया मे मर भी जाता है, पर आत्महत्या करने की हिम्मत करना आसान नही है। बायोलॉजिकल शक्ति बराबर जीवित रखे रहती है।"

दोस्त का मन जैसे किसी भार से मुक्त हो गया था। उसने सचाई-भरे स्वर मे कहा, "मैं तो हिम्मत भी कर चुका था, साहब! डूब मरने के लिए पूरी तौर से तैयार होकर मैं रात के दस बजे घर से निकला, पर इस सियाह पानी की बडी भयानक विकरालता ने इतना डरा दिया था कि किनारे पर पहुँचने के साथ ही प्रथम भाव-धारा के विरुद्ध उज्ज्वल भाव धारा चलने लगी। पहला खयाल मर गया और दूसरे खयाल ने जिन्दगी मे आशा बाँधी। उस आशा की कल्पना को पलायन भी कहा जा सकता है। सियाह पानी के आतक ने मुझे पीछे हटा दिया ... बन्दूक से मर जाना और है, वीरान जगह पर रात को तालाब में मर जाने की हिम्मत करना दूसरी चीज़!"

मित्र ठठाकर हँस पडा। उसने कहा, "आत्महत्या करनेवालो के निजी सवाल इतना उलझे हुए नही होते। उनके अन्दर की विरोधी प्रवृत्तियो का आपसी झगडा इतना तेज़ हो जाता है कि नयी ऊँचाई छू लेता है, जहाँ से एक रास्ता जाता है जिन्दगी और नयी जिन्दगी की ओर, तो दूसरा जाता है मौत की तरफ जिसका एक रूप है आत्महत्या।"

मित्र के थोडे उत्तेजित स्वर से ही मैं समझ गया कि उसके दिल मे किसी कहानी की गोल-गोल घूमती भँवर है।

उसके भावो की गूँज मेरी तरफ छा रही थी मानो एक वातावरण बना रही हो।

मैं उसके मूड से आक्रान्त हो गया था। मेरे पैर अन्दर नसो मे किसी ठण्डी सवेदना के करेण्ट का अनुभव कर रहे थे।

उसके दिल के अन्दर छिपी कहानी को धीरे से अनजाने निकाल लेने की बुद्धि से प्रेरित होकर मैंने कहा, "यहाँ भी तो आत्महत्याएँ हुई हैं!"

यह कहकर मैंने तालाब के पूरे सियाह फैलाव को देखा, उसकी अथाह काली गहराई पर एक पल नज़र गडायी। सूनी सडकों और गुमसुम बँगलो की ओर दृष्टि फेरी और फिर अँधेरे मे अर्ध-लुप्त किन्तु समीपस्थ मित्र की ओर निहारा। और फिर किसी अज्ञेय सकेत को पाकर मैं किनारे से जरा हटकर एक ओर बैठ गया।

फिर सोचा कि दोस्त ने मेरी यह हलचल देख ली होगी। इसलिए उसकी ओर गहरी दृष्टि डालकर उसकी मुख मुद्रा देखने की चेष्टा करने लगा।

दोस्त की भाव-मुद्रा अविचल थी। घुटनो को पैरों से समेटे वह बैठा हुआ था। उसका चेहरा पाषाण-मूर्ति के मुख का अविचल भाव प्रकट-सा करता था। कुछ लम्बे और गोल कपोलो की मासपेशियाँ बिलकुल स्थिर थीं। या तो वह आधा सो रहा था, अथवा वह निश्चित रूप से भावहीन मस्तिष्क के साँवले धुँधलेपन में खो गया था, किंवा वह किसी घनीभूत चेतना के कारण निस्तब्ध-सा लगता था।

मैं इसका कुछ निश्चय न कर सका।

मेरी इस खोज-भरी दृष्टि से अस्थिर होकर उसने जवाब दिया, "क्यों, क्या बात है ?"

उसके प्रश्न के शान्त स्वर से सन्तुष्ट होकर मैंने दोहराया, "इस तालाब मे भी तो कइयो ने जानें दी हैं।"

"हाँ, किन्तु उसमे भी एक विशेषता है," उसने अर्थ-भरे स्वर मे हँसते हुए कहा।

वह कहता गया, 'इस तालाब में जान देने वो आये हैं जिन्हे एक-श्रेणी मे रखा जा सकता है। जिन्दगी से उकताये और घबराये लोग थे वे। प्रेमी युगल यहाँ मरने नही आते हैं। वे अक्सर जाते हैं अम्बाझिरी, गोया उनको मरने के लिए भी अच्छी खासी रोमैण्टिक जगह चाहिए। यहाँ मरनेवालो की गुजरी जिन्दगी ···"

मेरे लिए उसका इतना कहना ही काफी था। रात म इस सियाह तालाब के किनारे जो लोग भी डूबकर मरे हैं उनकी लाइफ हिस्ट्री मै बखूबी जानता हूँ। हमारे मुहल्ले का एक-एक घर एक कहानी रखता है। मध्यवर्गीय समाज की साँवली गहराइयो की रुँधी हवा की गन्ध मे मैं इस तरह वाकिफ हूँ जैसे मल्लाह समुन्दर की नमकीन हवा से।

मेरी आँखो के सामने जिन्दगी के नक्शे उभरने-बिखरने लगे। किन्तु उनके चक्कर से बचने और मित्र के प्रति अधिक ध्यान देने [के लिए] तथा इस बोध से कि उसने अभी अपनी पूरी बात नही कही है, मैंने उत्सुक दृष्टि से उसकी ओर देखा जिसका अर्थ था 'बताओ, क्या कहना चाहते हो'।

उसने कहना जारी रखा, 'आज तक इस सियाह तालाब मे सामाजिक और आर्थिक उत्पीडन से ग्रस्त लोगो ने ही जाने दी हैं। यहाँ मरे लोगो का तुम श्रेणी-विभाजन कर सकते हो। एक, शकर-जैसे लोग—वह शकर जो चक्की के पास रहता था— " (मैंने सिर हिलाया, मालूम है, मालूम है।) ' उसकी स्त्री का उसकी आँखो के सामने हरामजादे कालूराम के गुण्डो ने अपहरण किया और वह चिल्लाता चीखता रहा। शकर ने पत्नी वियोग से जान नही दी, किन्तु इस घटना के द्वारा अपनी असहायता का जो बोध उसे हुआ, उस बोध ने ही उसको कुचल डाला। पत्नी के जाने के बाद वह कही मुँह दिखाने लायक भी नही रहा। सामाजिक लज्जा, नपुसक क्रोध और अपनी असहायता और असफलता पर ग्लानि के लम्बे काल मे उसने न मालूम क्या-क्या सोचा होगा। अपनी जिन्दगी की ऊष्मा और आशय समाप्त होता जान, उसने अनजाने अँधेरे पानी की गहराइयो मे बाइज्जत डूब मरने का हौसला किया और उसे पूरा कर डाला। तुम तो जानते हो अधेड तो वह था ही। बाल-बच्चे भी न थे। कोई आगे न पीछे। उसकी लाश पानी मे न मालूम कहाँ अटक गयी थी। तालाब से सडी बास आती थी। किन्तु जब लाश उठी तो उसकी तेलिया काली धोती दूर तक पानी म फैली हुई थी।

"उसी तरह वह तुम्हारा तिवारी। वह—पुरे की तेलिन। पाराशर के घर की बहू। ये सब सामाजिक-पारिवारिक उत्पीडन के ही तो शिकार थे · "

उसके इन शब्दो ने मुझ मे अस्वस्थ कुतूहल को जगा दिया। मेरी कल्पना उद्दीप्त हो उठी। आँखो के सामने जलते हुए फॉस्फोरसी रग के भयानक चित्र तैरने लगे, और मैं किसी गुहा के अन्दर के सिकुडी-ठण्डी नलीदार मार्ग के अँधेरे मे

उस आग के प्रज्ज्वलित स्थान की ओर जाता-सा प्रतीत हुआ जो उस गुहा के किसी निभृत कोण मे क्रुद्ध होकर जल रही है—जिस आग म (मानो किन्ही क्रूर आदिम निवासियो ने, जो वहाँ दीखते नही हैं, लापता है) मास के टुकडे भूने जाने के लिए रखे हैं जो मुझे ज्ञात होते-से लगते हैं कि वे किस प्राणी के है, किस व्यक्ति के हैं।

मेरे अस्वस्थ कुतूहल के धक्के ने मुझे ही विचलित कर दिया। मैं वे सब कहानियाँ जानना था जो मुझे बतलायी जा रही थी। किन्तु फिर भी मैं उन्हे सुनना चाहता था, दुबारा। कदाचित, मेरी निविड कल्पनाओ के वे अनुकूल थी अथवा सियाह तालाव की उपस्थिति ने मेरे मन की अपनी अस्वस्थताओ को असाधारण रूप से उत्तेजित कर दिया था।

यद्यपि बातचीत के दौरान मे अधिक बात मैंने नही, मेरे दोस्त ने की थी, फिर भी मुझे ऐसा सकारण प्रतीत हुआ मानो उससे तुलनानुसार कम बात करते हुए भी मैंने वार्तालाप की धारा को नियन्त्रित करते हुए अपनी इच्छानुसार चाहे जिधर मोडा, घुमाया फिराया और एक ओर से दूसरी ओर कर दिया है। कदाचित् मेरा दोस्त मुझसे कुछ और भी कहना चाहता हो। शायद उसके मन म घूमती हुई वह कहानी निकल नही पा रही हो, जो मैं चाहता हूँ कि बिना छेडे ही किसी उपचेतन तर्क-धारा के द्वारा अपने-आप ही सरसराती हुई निकल आये।

मित्र ने मुझे तिवारी की कहानी पूरी तरह से सुना डाली। उसकी आत्महत्या के एक दिन पहले तिवारी से उसकी मुलाकात हुई थी, किन्तु कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह खत्म हो जाने का इरादा कर रहा है। मित्र को जो बात उसके सम्बन्ध मे अजीब-सी लगी और जिसके सम्बन्ध में उसने उससे पूछा, और जिसके बारे में सन्तोषजनक उत्तर न मिल पाया, वह यह कि तिवारी का चेहरा विचित्र रूप से जडीभूत हो गया था। उसकी स्वभावगत चचलता तो काफूर थी ही, पर उसका स्थान किसी जडीभूत भावना ने ले लिया था, मानो मस्तिष्क के अतुलनीय भार के द्वारा दबकर चेहरे की मासपेशियो के स्तर घनीभूत होकर जडीभूत हो गये हो। उसका चेहरा यो लगता था मानो मिरगी से यदा-कदा आक्रान्त रहनेवाले मनुष्य का चेहरा ज्यो जागरण-काल मे भी असाधारण रूप से भार-ग्रस्त रहता है। किन्तु तिवारी की आँखो मे कोई चिनगारी न थी, जिससे उसके मानसिक उद्वेग की ज्वाला झलक उठे। मित्र के तिवारी से मिलने के बाद शायद कुछ हुआ हो जिसने उसे आकस्मिक और नैमित्तिक रूप से वह भयानक कदम उठाने के लिए मजबूर कर दिया हो। निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता, यह सच है।

एक दिन की बात है जब तिवारी से मिलने के लिए मेरा दोस्त गया था। वह शाम थी। मुख्य सडक को छोडकर बगलवाली गली से घुसने पर एक पुराना बाडा लगता था। उसके अँधेरे खतरनाक तीन जीने चढ जाने पर पुरानी पलस्तर-गिरी ऊँची दीवारो से घिरा बहुत ही बडा कमरा, जिसे हॉल कह सकते हैं, लगता था। हॉल की मिट्टी की जमीन उखडी हुई थी और उस पर चिडियो की सफेद विष्ठा के धब्बे इधर-उधर बिखरे हुए थे। कमरे के वातावरण को देखकर उसकी परित्यक्तावस्था और वीरानी का ही बोध होता था। सर्द-साँझ ऐसे एकान्त हॉल में घुमने की संवेदना रुचिकर न थी। परन्तु तिवारी का कमरा फिर भी अभी तक

मला न था। इतने मे परछाईं-सा एक व्यक्ति न दिख सकनेवाली गैलरी मे से आता हुआ दिखायी दिया।

उससे पता चला कि तिवारी का कमरा बायी ओर है।

बायी ओर के छोटे-ठिगने दरवाज़े से घुसने पर एक पुरानी चाँदनी लगी, जिसकी मुँडेर पर वेफिक्री के कारण, पानी न देते रहने से, सूखी हुई भूरी तुलसी और अन्य उसी तरह के दूसरे पौधे कुण्डो मे लगे हुए थे, जो हरियाली के अभाव न जगली, परित्यक्त और वीरानी की निशानी-से प्रतीत होते थे। वही खाटें पडी हुई थी जिन पर मैले व फटे हुए विस्तरे इकट्ठे भी नही किये गये थे।

"निवारी महाराज! तिवारी!" मित्र ने हाँफते हुए आवाज लगायी।

तीसरी खाट पर दरवाज़े की ओर पीठ किये हुए तिवारी बैठा हुआ था। *इतनी ज़ोर की आवाज से चकित होकर तिवारी ने मुडकर पीछे देखा और उसके* चेहरे पर बलात् मुसकान खेल गयी।

मित्र ने हाँफते हुए प्रवेश किया। "बाप रे! क्या आपके ज़ीने हैं! क्या आपका गाडा है! पूरा किला है! तिलिस्म है, तिलिस्म है, तिलिस्म!!" कहकर वह खलखिलाकर हँस पडा।

निवारी ने मुसकराकर जवाब दिया, "आला हज़रत, इस ज़ीने मे आदमी सीधा स्वर्गधाम पहुँचता है!'

[illegible] "भाई, इस सन्ध्या में विलकुल है।"

रहे।

वार्तालाप तिवारी से प्रेरित होकर मित्र की शादी के बारे में ही था। तिवारी *लगातार मजाक करता जाता था और तान कसता जाता था, यद्यपि मित्र को* रह-रहकर यह लगता कि अपने मीठे स्वभाव के विपरीत तिवारी व्यग्य क्यो कर रहा है, और वह भी स्वय मेरे विषय की चर्चा छेडकर! दूसरे, व्यग्य-ताने और मज़ाक वह इस तरह से करता था मानो उनके लिए श्रम कर रहा हो। कृत्रिम रूप से उन्हे मन मे उकसाने की चेष्टा कर रहा हो। निस्सन्देह, यह उसके स्वभाव के विपरीत था।

फिर वह अपने तानो और व्यग्यो पर विजय-हर्ष से हँस भी न पाता था, जैसा कि अकसर लोग किया करते हैं। इन सब बातो को देखकर इसका रहस्य जानने की भावना से मित्र ने उसकी ओर गौर से देखा।

तिवारी का चेहरा जडीभूत-सा था मानो दिमाग़ के किसी भयानक भार से दबकर चेहरे की मासपेशियाँ प्रस्तरीभूत हो गयी हो। पलकें कुछ हलकी सूजी हुई-सी और मुख लाल-सा और आँखे भारी भारी तथा ललाट की त्वचा निर्जीव और रक्तहीन!

मित्र का दिल धँस-सा गया, किन्तु अपनी भावनाओ को स्वय वह ठीक पहचान न पाया। *किसी दूरस्थित खतरे की छाया अपनी स्थिति की घोषणा करती हुई* भी प्रत्यक्ष और मूर्त्त नही हो पाती। एक बार उसको देखकर मन डर तो जाता है पर उसके रूप को पहचान नही पाता। इसलिए एक पल के बाद ही उसको भूलने का प्रयास कर मन उसे भूल जाने मे कामयाब हो जाता है। वही स्थिति मित्र की भी हुई।

मित्र ने पूछा, "क्या, तुम्हारी तबीयत खराब है क्या?"

तिवारी ने बनावटी अचरज से कहा, "न, नही तो ।"

"चेहरा तो तुम्हारा न मालूम कैसा मालूम होता है । रात को नीद नही हुई क्या ?"

"हाँ, यार । कल रात को बहुत देर तक जगते रहे ।"

"क्यो ?"

"उपन्यास मे कुछ ऐसा मन लगा कि बस ! समय का ध्यान ही न रहा ! और फिर मैं रात को जगता ही कब हूँ । उसके सघन वातावरण का पान करता रहा, समझिए !"

"वाह रे ! वातावरण का पान !" मित्र ने आश्चर्य और कुतूहल से उसकी ओर देखते हुए कहा ।

इस तरह की बातचीत चलती रही । न मालूम अवचेतन की किन-किन घूमती हुई पगडण्डियो से चलकर तिवारी के मुँह से यह निकल पडा, किसी आत्मिक सन्दर्भ से, किन्तु बातचीत के बाहरी सिलसिले से, जो मेरे मित्र के शब्दो मे निम्नलिखित प्रकार से है ।

"सोच नही पाता हूँ मैं कि आखिर यह सब क्यो ? सुबह से शाम तक न मालूम कितना पैसा खर्च हो जाता है, दोस्तो मे, इधर-उधर ! किन्तु सिवा समय कटन के और कुछ हो नही पाता । पढने मे मेरा जी नही लगता । पढने से फायदा क्या —नौकरी मिलेगी, जीविका चलेगी । लेकिन यह इतना महान् लक्ष्य नही है कि जो जिन्दगी को अपनी ओर खीचता रहे, उसे अपने आकर्षण से मन्त्रमुग्ध कर डाले !! सवाल सचमुच मन्त्रमुग्ध कर डालने का ही है । लेकिन फिर भी मैं पढता ही रहता हूँ, यद्यपि वह खाली-खाली-सा लगता है, जैसे मैं आसमान के खालीपन मे असहाय अवस्था मे उडता रहूँ । अध्ययन न करूँ तो आत्मा स्वय को ही कष्ट देती है । कमा नही लेता हूँ, ऐसा थोडे ही है । सवा सौ महीना मेरे लिए काफी है । न माँ, न बाप, न भाई, न बहन ! फिर भी कमाने की क्या आवश्यकता है, मित्रो की क्या आवश्यकता है स्वय की क्या आवश्यकता है ? रास्ते मे अकेले घूमते फिरना, या किसी दोस्त को पकडकर पैसा खर्च करना ! अपने से घबराहट, अपने खालीपन से भय ! यही तो मूल कारण है । फिर (हँसते हुए) रहा इश्क !! वह हरेक को नही मिला करता । वह सयोग की बात है । प्रत्येक आकर्षण इश्क नही है, यह मैं समझता हूँ । आकर्षण का अपना एक मजा है, पर उसमे अनुराग का उद्देश्य क्या ? इश्क का भी आखिर मतलब क्या ? जो सिनमाओ और कहानियो मे बतलाया जाता है, मूर्खतापूर्ण है सब बात ! मुझे सचमुच समझ मे नही आता कि जिन्दगी क्यो है ? महीने मे तनख्वाह मिलते ही मैं अपनी भाभियो (दोस्तो की स्त्रियो) और उनके बच्चो को खिलौने ला देता हूँ । खिलौने देकर भी कोई खास सन्तोष नही होता । आखिर, अन्दर के खालीपन को भरने के लिए ही तो यह सब किया गया है । कोई मुझे समझा दे कि शादी करके कौन सुख है ! मेरे दोस्तो ने शादियाँ की, घर बसाया । और ऐसी अपनी मिट्टी पलीद कर ली कि देखते ही बनता है । जिन्दगी है या जिन्दगी की कतरन ! समझ मे नही आता । अगर जिन्दगी मनबहलाव है तो बाज आया ऐसे मन बहलाव से, क्योकि इस तरह का मनबहलाव सिर्फ खालीपन और उदासी ही छोड जाता है । जीवन मे यदि केन्द्र-

स्थान न हो तो बडी भारी कोलाहल-भरी भीड से रहते हुए भी आप अकेले हैं, और यदि वह है तो रेगिस्तान के सूने मैदानो पर भी आपको सहचरत्व प्राप्त है और ज़िन्दगी भरी भरी है !! सिर्फ उपन्यास, पैसा, कमाई और अध्ययन, शादी, इत्यादि आप मे कुछ नही है, उसका उसके परे कुछ वृहद् लक्ष्य है और होना चाहिए। किन्तु वह सबको मालूम नही है, न तिवारी को आज मालूम है, जिसके लिए आज वह छटपटा रहा है।"

मित्र तिवारी के सम्बन्ध मे कहता गया, "इस आशय की उसने बातचीत की। यह नही कि वह सिलसिलेवार कहता गया। उसके मुँह मे उसकी गुत्थियाँ निकालनी पडी, लेकिन मैं उन गुत्थियो को हल न कर सका। सन्तोषजनक उत्तर न दे सका। वह एक मनोवैज्ञानिक पल था। उसमे मेरे सभी उत्तर फीके पड गये। मैंने तिवारी को समाज की व्यवस्था और स्थिति समझायी, उमे बतलाया कि उसका आइसोलेशन ही उसकी जिन्दगी के खालीपन का कारण है। आकर्षणहीनता का जो रोग उसे हो गया है, वह तभी दूर हो सकता है जब वह समाज के लिए उपयोगी बने, सामाजिक कार्य करे। उस मैंने साम्यवाद के भी सिद्धान्त बतलाये, उसके अन्तर्गत सामाजिक क्रान्ति के महत्त्व की भी उसके सामने सक्षेप म व्याख्या की, पर उसका प्रभाव न हो पाया। वह क्षण ही वैसा था।

"तिवारी से विदा लेते वक्त मैंने उस अपनी तबीयत की फिक्र लेने के लिए कहा, जिसे सुनकर उसने जवाब दिया, "तबीयत खुद अपनी फिक्र ले लेगी, मुझे अपनी चिन्ता करनी चाहिए।" वह स्वर जिन्दगी से उकताये और निराश व्यक्ति का स्वर था। जब मैं नीचे उतरकर घर रवाना हुआ, तब मैंने अपने को बिलकुल पराजित अनुभव किया और सोचता रहा कि मुझे एक मास्टरपीस कहानी का मसाला मिल गया है। किन्तु आगे चलकर मेरी अपेक्षाएँ भग होने को थी। यह मैं उस समय जान न सका। दूसरे दिन शाम को यह सुना गया कि तिवारी ने आत्महत्या कर ली है।"

पाँच मिनिट निस्तब्ध नीरवता के बाद मैंने मित्र स पूछा, "तुम सोचते हो कि उसने अपनी नि सगता और अर्थहीनता के भाव के कारण आत्महत्या कर ली है?"

उसने जवाब दिया, "पहले तो मेरा यही खयाल हुआ, पर वह गलत था। उसकी आत्महत्या के सही कारण क्या है, मुझे विस्तृत रूप से मालूम नही। किन्तु मेरा सोचना है कि पाराशर की बहू से उसका सम्बन्ध रहा होगा, जहाँ कि वह *अकसर आता-जाता रहा है।*"

मित्र के मुँह से पाराशर की बहू का नाम सुनकर मेरे शरीर मे यकायक ठण्डी सवेदना नखशिख तक दौड गयी और दिल बैठना-सा मालूम हुआ। मैं मन ही मन बुदबुदाया, "आखिर, मेरी अपेक्षा सच ही निकली।"

तालाब के इसी उत्तर-पश्चिमी कोने मे पीपल के पेड के नीचे उस टूटे घाट पर से उसने परमधाम प्राप्त किया। नहाने के लिए वह अपने धोने के कपडे लेती आयी थी। उनमे से आधे पानी म डूबी हुई पतली सीढी पर ही पाये गये, और आधे ऊपर

सूखी हुई जगह पर ही रखे थे। दूसरे दिन सुबह उसकी लाश करीब दस बजे ऊपर आती दिखायी दी। काई से आच्छादित रहने के कारण उसका शरीर हरा दिखायी देता था। उसका वह रूप बहुत ही भयानक था। वह नजारा मैंने अपनी आँखो देखा है" एक गहरी साँस लेकर मेरा मित्र कहते-कहते रुक गया। हमारे दोनो के बीच गहरी निस्तब्धता छा गयी।

किन्तु मेरा मन स्तब्ध नही था। आँखो के सामने पाराशर के घर की बहू का चित्र मूर्त हो उठा था।

उसकी गोरी छुई-मुई सी सूरत मुझे अब भी याद आती है। बचपन मे उसका चेहरा अत्यन्त मोहक था। अण्डाकार गौर वदन और कुछ कहती हुई सी गहरी उदास आँखें। वह एक निस्सग नीरव बालिका थी। जब मैं उसके बडे भाई के यहाँ कार्यवश आया करता था तो वह दिखायी देती। परछाईं-सी एक तरफ निकल जाती। बस। खेलते हुए वह मुझे कभी दिखायी नही दी। कभी मैंने उसे हँसते हुए भी नही देखा। उस समय उसकी आयु आठ या नौ साल के निकट होगी। उसके भाई के घर से हमारे घर का घरोपा था। इसलिए वह कभी-कभी हमारे यहाँ आया करती थी, सो भी किसी काम से। मुझे उसके शब्द अभी तक याद आ रहे हैं 'हमारी भाभी ने चलनी मँगायी है," 'हमारी भाभी ने मूसल मँगाया है," आदि।

कभी-कभी मेरी स्त्री पूछती, "भोजन कर लिया ?"

'हओ।"

'क्या-क्या खाया आज ?"

"सब खाया।"

"सुनूं तो।"

फिर वह क्या-क्या खाया, यह गिनाने लगती। दाल, भात, तरकारी, रोटी घी, चटनी। उसके बोलने की मीठी शैली से स्त्री प्रसन्न होती। किन्तु मैं अन्य कारण से नाराज होता। मैं जानता था कि वे लोग बडे गरीब है हमसे बहुत ज्यादा गरीब ! मैं जानता था कि गरीबो का भोजन क्या होता है ! स्त्री के इस प्रश्न और निर्मला के उत्तर के साथ ही मेरा मन विचित्र करुणा से भर उठता। मैं जानता था इस तरह का सवाल गरीबो का अपमान है। इस भाव के फलस्वरूप मैं अपनी स्त्री पर अधिक नाराज हो उठता।

निर्मला का चेहरा मुझे बहुत भाता। उसकी गम्भीर उदास आँखें, और दूज के फीके चाँद सा उसका मुखडा। (उन दिनो के) दुअन्नी वार सफेद कपडे या पोलका। उसकी गरीबी मातृ पितृहीनता और स्वभावगत अनावश्यक गम्भीरता ने मेरे हृदय मे घर कर लिया। अपनी उस छोटी उम्र म भी वह घर का सब काम करती तथा उसके मत भी बडे-बूढो के समान रहते।

मैं जानता था कि उसका मस्तिष्क और हृदय दमित और पीडित है। किन्तु उससे उद्धार का कोई उपाय न था। गरीब बडे भाई ने उसकी शादी उससे कुछ अच्छी स्थितिवाले घर मे कर दी। यही से उसकी जिन्दगी ने पलटा खाया। उस सयुक्त परिवार को खानदानियत का रोग था। अपने कुलशील के कारण, भावो को दबाकर वह अपनी जिन्दगी बसर करने लगी। किन्तु उस घर म रहने का औचित्य प्रदान करनेवाली स्थिति यानि पति का अस्तित्व थोडे ही दिनो मे खत्म

हो गया। उसकी बीमारी मे निर्मला के जो भी गहने थे सब व्यय हो गये। विधवा जीवन के चार वर्ष उसने भौजाइयो के कैदखाने मे काटे।

उसका चेहरा बदल गया था। गौरमुख सूख चुका था। गालो की हड्डियाँ और नाजुक नाक ऊपर उभर आयी थी, मानो सारे शरीर पर उन्ही का शासन हो। आँखो के आसपास त्वचा सूखकर काली पड गयी थी। नेत्र मे धुआँ था, वह धुआँ जिसका निमित्त पहचाना जा सकने पर भी, उसके वास्तविक कारण का आकलन नही किया जा सकता था।

आखिर, निर्मला का भविष्य यह था ! एक बार वह अपने घर पर आयी थी, बडे भाई की मृत्यु के अवसर पर। तब मैंने उसे फूट-फूटकर रोते हुए देखा। वह उसका युग-युगान्त का अकेलापन रो रहा था। निस्सगता धाड मारकर क्रन्दन कर रही थी। अपनी इसी असहाय स्थिति मे उसे अपने मृत पति के घर वापस जाना पड़ा, मात्र आजीविका के लिए।

वह स्वाधीन होना चाहती थी, किन्तु पढी-लिखी न थी। जन्मजात कठोर कार्यदक्षता के कारण वह उस सयुक्त परिवार मे अत्यन्त उपयोगी थी। इसलिए उसकी स्थिति घर के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक थी।

एक दिन वह मुझे रास्ते मे मिली। मैं रुकना चाहता था। वह भी रुकना चाहती थी, पर हम दोनो एक दूसरे के लिए रुके नही। बीच मे लज्जा-सकोच-भय की दीवार खडी थी।

जब वह मेरे दृष्टि-पथ पर से गुजरकर निकल गयी, तब मैंने पीछे मुडकर देखा। वह वैसी ही धीमी गति से चली जा रही थी। उसकी व्यवस्था बद्ध साडी उसकी परिष्कृत रुचि की परिचायक थी। मैंने पीछे से आवाज लगानी चाही। किन्तु न लगा सका। किन्तु यह क्या ? उसकी वेणी मे फूलो की माला पिरोयी हुई थी ! क्या यह नया सकेत नही था ?

मैं उसकी जिन्दगी पर सोचने लगा। मेरे मन मे उसकी हजारो यादें थी। उसकी दुख-भरी जिन्दगी क्या केवल उसी की है ? नही, बहुतो की ऐसी ही है। किन्तु, उसके जीवन मे मुझे एक विशेषता नजर आयी। विशेषता क्यो नजर आयी ? अन्यों मे क्यो नही दिखी ? क्या सब निर्विशेष और वही विशेष है ? इन प्रश्नो का जवाब मैं नही दे सका। किन्तु एक बात जानता हूँ कि उसकी सहज बुद्धि जितनी तीव्र थी उतना ही आत्मदमन घोर था। वह एक सचाई के बल पर अपनी सब प्रवृत्तियो को दबा रही थी। वह सचाई क्या थी, मै ठीक-ठीक नही बतला सकता। उसका किंचित वर्णन कर सकता हूँ। वह यह कि उसके अपने मनोभाव हैं, जो आज तक किसी पर प्रकट नही हुए। उसके प्रति की गयी बुराइयाँ और अन्याय उसके मन मे घिरकर घुसकर एक विशेष प्रकार की वज्रकठोरता प्रदान करता है। यह आत्मदमनशील वज्रकठोरता ही वह सत्य है जिसन निर्मला की गतिविधि को एक विशेष प्रकार की भव्यता, दूरी भरी स्पृहणीयता और, जिन्दगी के असख्य अपमानो क बावजूद, अपनी बचपन से चली आ रही मनोभावनाओ का गौरव प्रदान किया है, जो अटल है और डिगाया नही जा सकता।

किन्तु यह क्या ? उसकी वेणी म फूल की यह माला कैसी ! इस बात ने मेरे हृदय मे एक ही बात साफ रख दी कि आखिरकार निर्मला के प्राणो मे कही तो भी जीवन अकुरित हो रहा है। निस्सन्देह—मैंने सोचा—उसे पल्लवित हो उठना

चाहिए। समस्त बन्धन तोडकर, निर्मला को जिन्दगी मे आगे बढ जाना चाहिए।

मैंने उसे उसके बाद नही देखा। केवल यह सुना कि उस सयुक्त परिवार की खानदानियन के कारण, वह जडीभूत जिन्दगी की मिट्टी मे जिन्दा गाड दी गयी और उसी कब्र के अन्दर के अँधेरे मे उसने उस सयुक्त परिवार के लँगडे होमियोपैथ सदस्य से अपना सम्बन्ध स्थापित कर अपने पतित होने का प्रमाण-पत्र हासिल कर लिया। अर्थात् एक मृत पुन प्राप्त किया।

इस अफवाह के बाद की स्थिति मैं नही जानता। मैंने उसे बहुत दिनो से देखा ही नही था। नही जानता कि तिवारी की पहचान कैसे हो गयी, और वे दोनो कैसे यहाँ तक बढ गये। किन्तु पाराशर के परिवार मे भी विगत दस वर्ष मे कई परिवर्तन हो गये थे। वह इकाई स्वय छिन्न-भिन्न होकर नवीन इकाइयो मे रूपान्तरित हो गयी थी। किन्तु निर्मला तो अपने जेठ के पास ही रहती थी, उसी घर मे अपनी जेठानी के अनुशासन मे। मुझे आश्चर्य है कि तिवारी की वहाँ कैसे पहुँच हो गयी।

फिर भी अपने मित्र से तिवारी और निर्मला की खबर सुनकर प्रारम्भ मे तो नही किन्तु कुछ क्षणो बाद मैं खुश ही हुआ। तिवारी ने उस लडकी को पहचाना, इतना क्या कम है। तिवारी स्वयं बहुत ही सजीदा, साथ ही बहुत हृदयवान् प्राणी था, इसमे किसी को सन्देह नही है। निर्मला और वह एक दूसरे का सुख-दुःख देख पाये, यह मेरे और मेरी स्त्री के लिए खुशी की बात है। निर्मला और तिवारी-जैसे सैंकडो पडे हैं, यह उन दोनो के महत्त्व को कम नही करता, ऐसा मुझे लगा।

किन्तु, अपने मित्र से तिवारी और पाराशर की बहू निर्मला का हाल सुनकर मैं उस सियाह तालाब के विकराल आकार-प्रकार से घबरा-सा गया, और मुझे लगा कि न मालूम कितनी निर्मलाएँ यहाँ जल-समाधि लेती होगी। साथ ही मेरे मन मे निर्मला की तसवीर साफ-साफ खिंच आयी।

मित्र और मेरे बीच म पन्द्रह-बीस मिनट का घनघोर मौन था। मैंने वह भग किया, "तो क्या सचमुच तिवारी का निर्मला से सम्बन्ध रहा ?" मैंने कहा।

जवाब मे, मित्र हँस दिया। एक पल मौन के बाद बोला, "कहानी के लिए मसाला तो मिला, वह कहानी जो कभी नही लिखी जायेगी।"

मुझे सूझा, "ऐसी जिन्दा घटनाओं से कहानी नही बनती। वह तो इतिहास है। पर, क्यो जी, क्या यह सच है कि तिवारी से निर्मला का अनुचित सम्बन्ध रह गया ? अगर यह ठीक है, तो बहुत ही बुरी बात हो गयी। आई ऐम सॉरी फॉर हर (मुझे निर्मला के लिए खेद है)।"

मित्र ने कुतूहल स पूछा, "क्यो ? मैं तो इस पर दुखी नही।"

"मैंने निर्मला को बहुत ही पवित्र रूप मे देखा है। मैं उसे इस परिवर्तित अवस्था मे देखने का अभ्यस्त नही हूँ, न देखना चाहता हूँ।"

सियाह तालाब के उस पार से ठण्डी हवा बहने लगी। रात की गम्भीर मुद्रा अपरिवर्तित थी। उसका गहरा विस्तृत मौन कान मे कुछ बोलता हुआ-सा लगता था। दूर, सामने की सडक के कोने पर नीली रोशनीवाला होटल अभी तक खुला हुआ था। सडक पर इक्के-दुक्के आदमी आते-जाते दिखायी दे रहे थे।

इतने मे फायर ब्रिग्रेड की दो मोटरें ज़ोर-ज़ोर से घण्टी बजाती और सुनसान को गुँजाती हुई गुज़र गयी। जाने कहाँ आग लगी थी। हम तालाब के किनारे पर

रेल की पटरियों के पार—रेलवे यार्ड में ही—वहाँ के मध्यवर्गीय नौकरों के क्वार्टर्स बने हुए थे। बाहर ही, जो उसका आँगन कहा जा सकता है, दो खाटें समानान्तर बिछी हुई थीं जिनके बीच में एक छोटा-सा टेबल रखा हुआ था। उस पर एक आधुनिक लैम्प अपनी अध्ययन-समर्पित रोशनी डाल रहा था। एक खाट पर एक पुरुष कोई पुस्तक पढ़ रहा था और दूसरी पर घोर निद्रा थी। लैम्प की धुँधली रोशनी में घर के सामनेवाले बाजू पर एक काला-सा अधखुला दरवाजा और बाँस की चिमटियों से बनाये गये बन्द बराण्डे के लेटे-से चतुष्कोण साफ दीख रहे थे। उस घर की पंक्ति में ही कई क्वार्टर्स और दीख रहे थे, उसी तरह पंक्ति-बद्ध खाटें बराबर यथास्थान लगी हुई चली गयी थीं।

युवक के मन में एक प्यार उमड़ आया। ये घर उसे अत्यन्त आत्मीय-जैसे लगे, मानो वे उसके अभिन्न अंग हों।

यही बात उसकी समझ में नहीं आयी। इस अजीब आनन्दमय भावना ने उसके मन के सन्तुलित तराजू को झटके देने शुरू किये। वह भावनाओं से अब इतना अभ्यस्त नहीं रह गया था कि उनका आदर्शीकरण कर सके। रोज़ का कठिन, शुष्क, दृढ़ जीवन उसे एक विशेष तरह का आत्मविश्वास-सा देता था। परन्तु आज ।

वह बैठनेवाला जीव न था। रास्ते पर पैर चल रहे थे। मन कहीं घूम रहा था। दूसरे उसे अत्यन्त आत्मीय एकान्त—जहाँ उसकी सहज प्रवृत्तियों का खुला बालिश खिलवाड़ हो—बहुत दिनों से नहीं मिला था।

उसने सोचना शुरू किया कि आखिर क्यों यह अजीब जल के निर्मलिन सहस्र स्रोतों-सी भावना उसके मन में आ गयी।

उसको जहाँ जाना था, वहाँ का रास्ता उसे मिल नहीं सकता था। एक तो यह कि पाँच साल के बाद शहर की गलियों को वह भूल चुका था। दूसरे, जिस स्थान पर उसे जाना था वह किसी खास ढंग से उसे अरुचिकर मालूम हो रहा था। इसलिए लक्ष्यस्थान की बात ही उसके दिमाग से गायब हो गयी थी।

पैर चल रहे थे या उसके पैर के नीचे से रास्ता खिसक रहा था, यह कहना असम्भव है, परन्तु यह जरूर है कि कुछ कुत्ते—चिर-जाग्रत् रक्षक की भाँति खड़े हुए—भूँक रहे थे।

उसके मन में किसी अजान स्रोत से एक घर का नक्शा आया। उसका भी बराण्डा इसी तरह बाँस की चिमटियों से बना हुआ था। वहाँ भी वासन्ती रातों में नीम के झिरिर-मिरिर के नीचे खाटें पड़ी रहती थीं। युवक को एक धुँधली सूरत याद आती है, उसकी बहन की, और आते ही फौरन चली जाती है। बस चित्र इतना ही। यह मत समझिए कि उसके माता-पिता मर गये। उसके भाई हैं, माता-पिता हैं। वे सब वहीं रहते हैं जिस शहर में यह रहता है।

युवक हँस पड़ा। उसे समझ में आ गया कि क्यों उन क्वार्टरों को देखकर आत्मीयता उमड़ आयी। मजदूर चालों में, जहाँ वह नित्य जाता है, या उसके अमीर दोस्तों के स्वच्छ सुन्दर मकानों में, जहाँ से वह चन्दा इकट्ठा करता, चाय पीता, वाद-विवाद करता और मन-ही-मन अपने महत्त्व को अनुभव करता है—वहाँ से तो उसे कोई आत्मीयता की फसफसाहट नहीं हुई। हमारा युवक अपने पर ही हँसने लगा। एक सूक्ष्म, मीठा और कटु हास्य।

दूर एक दूकान पर साठ नम्बर का खास वेलजियम का विजली का लट्टू जल

आरामकुरसी

ट खा रहे थे।

उघाडे बदन,

टेवल पर रखे

सरे मुसलमान

सज्जन रोटी और मास की कोई पतली वस्तु खा रहे थ और बहुत प्रसन्न मालूम हो रहे थे। जो, होटल का मालिक था वह एक पैर पर अधिक दबाव डाले—उसको खूँटा किये खडा था, सिगरेट पी रहा था और कुछ खास बुद्धिमानी की बातें करता था जिसको सुनकर रोटी और मास की पतली वस्तु को दोनो हाथो का उपयोग कर खानेवाले मुसलमान सज्जन 'अल्लाहो अकवर', 'अल्ला रहम करे' इत्यादि भावनाप्लुत उद्‌गारो से उसका समर्थन करते जाते थे। सिगरेट का कश वह इतनी जोर से खीचता था कि उसका ज्वलन्त भाग विजली की भयानक रोशनी में भी चमक रहा था। उसका हाथ आराम से जघा-क्षेत्र मे भ्रमण कर रहा था।

दूकान के अन्दर से पानी को झाड़ू से फेंकने की क्रिया मे झाड़ू की कर्कश दाँत पीसती-सी आवाज और पानी के ढकेले जाने की बालिश रोतली ध्वनि आ रही थी, साथ ही उसके छोटे छोटे छोटे ककडो की भाँति लगातार बाहर उन्नतवक्र रेखा-मार्ग से चले आ रहे थे। बिजली का लट्टू दरवाजे के ऊपर लगे हुए कवर के बहुत नीचे लटक रहा था, जिस पर लगातार गिरनेवाले छोटे सूखकर धब्बे बन रहे थे।

इतने मे पुलिस के एक गश्तवान सिपाही लाल पगडी पहने और खाकी पोशाक में आकर बैठ गये। वे भी मुसलमान ही थे। उनकी दाढी पर छह बाल थे, और ओठो पर तो थे ही नही। चालीस साल की उम्र हो चुकी थी पर बालो ने उन पर कृपा नही की थी। नाक उनकी बुद्धि से व्यापक थी, काले डोरे की घुण्डी की भाँति चमक रही थी। आँख मे एक चुपचाप दयनीयता झाँक उठती। वह कोई मुसीवत-जदा प्राणी था—शायद उसे सूज़ाक था—या उसकी घरवाली दूसरे के साथ फरार हो गयी थी। या वह किसी अभागी वदसूरत वेश्या का शरीरजात था। उसे न जाने कौन-सी पीडा थी जो चार आदमियो मे प्रकट नही की जा सकती थी। वह पीडा तो दूसरो के आनन्द और निर्वाध हास्य को देखकर चुपचाप निविड आँखो मे चमक उठती थी। वह इस समय भी चमक रही थी, किसी ने उसकी तरफ ध्यान नही दिया। उसके सामने क्रमानुसार चाय आ गयी और वह फुर-फुर करते हुए पीने लगा।

ताँगेवाले महाशय का ताँगा वही दूकान के सामने सडक के दूसरे किनारे खडा था। घोडा अपने मालिक की भाँति बडा चढ़ैल और गुस्सैल था। एक ओर तो वह बिजली की रोशनी मे चमकनेवाली हरी घास को बादशाह की भाँति खा रहा था, तो दूसरी ओर आध घण्टे म एक बार अपनी टाँग ताँगे मे मार देता था। उसके घास खाने की आवाज लगातार आ रही थी और उसका भव्य सफेद गम्भीर चेहरा होटल को उपेक्षा की दृष्टि से देख रहा था।

ताँगेवाले महाशय ने चाय पीनी शुरू की। लगडा मुँह था। बेलौस सीधी नाक थी और उजला रग था। ठाठदार मोतिया साफ़ा अब भी बँधा हुआ था। बोल-

चाल निहायत शुस्ता और सलीके से भरी थी। चेहरे पर मार्दव था जो कि किसी अक्खड बहादुर सिपाही मे हो सकता है। आज दिन मे उन्होंने काफी कमाई की थी, इसीलिए रात मे जगने का उत्साह बहुत अधिक मालूम हो रहा था।

दूकान के अन्दर झाडू की कर्कश आवाज और पानी की खलखल ध्वनि बन्द हो गयी। छोटी-छोटी बूँदें टपकानेवाली मैली झाडू लिये एक पन्द्रह का लडका, एक आँख से काना, दरवाजे मे खडा हो गया। वह एक गन्दी बनियान पहने हुए और घुटने पर से फटे पाजामे को कमर पर इकट्ठा किये खडा था कि मालिक का अब आगे क्या हुक्म होता है। परन्तु बाहर मजलिस जमी थी। लाल साफेवाला

कुछ कहे ''।

। सब लोगो ने

आनेवाली उस

छाया का सिर्फ पैण्ट ही दिखायी दिया और कुछ थकी-सी चाल। युवक चुपचाप *उन्ही की ओर आया और हलकी-सी आवाज मे बोला, "चाय है?" उत्तर मे "हाँ"* पाकर और बैठने के लिए एक अच्छी आरामदेह कुरसी पाकर वह खुश मालूम हुआ। लोगो ने जब देखा कि चेहरे से कोई खास आकर्षक या असाधारण आदमी मालूम नही होता, तब आश्वास की साँस लेकर बाते करने लगे।

लाल पगडीवाला दयनीय प्राणी कुछ बोलना चाहता था। इतने म उसके दो साथी दूर से दिखायी दिये। उन्हें देखकर वह अत्यन्त अनिच्छा से वहाँ से उठने लगा। उसने सोचा था कि शायद है, कोई बैठने को कहे। परन्तु लोगो को मालूम भी नही हुआ कि कोई आया था और जा रहा है।

"माधव महाराज के जमाने मे ताँगेवालो को ये आफत नही थी, मौलवी सा'ब। मैंने बहुत जमाना देखा है। कई सुपुरडण्ट आये, चले गये, कोतवाल आये, निकल गये। पर अब पुलिसवाला ताँगे मे मुफ्त बैठेगा भी, और नम्बर भी नोट करेगा ''" *ताँगेवाले ने कहा।*

होटलवाला जो अब तक मौलवी साहब से कुछ खास बुद्धिमानी की बात कर रहा था, उसने अब ज़ोर से बोलना शुरू किया। धोती की तहमद बाँधे, बहुत दुबला, नाटे कद का एक अधेड हँसमुख आदमी था। वह बहुत बातूनी, और बहुत खुशमिजाज आदमी और अश्लील बातो से घृणा करनेवाला, एक खास ढग से संस्कारशील और मेहनती मालूम होता था। उसने कहा, "मौलवी सा'ब, दुनिया यो ही चलती रहेगी। मैंने कई कारोबार किये। देखा, सबमे मक्कारी है। और कारोबारी की निगाह मे मक्कारी का नाम दुनियादारी है। पुलिसवाले भी मक्कार हैं—ताँगेवाले कम मक्कार नही है। वह जैनुल आबेदीन—मिर्जावाडी मे रहनेवाला सुना है आपने किस्सा।"

मौलवी साहब ठहाका मारकर हँस पडे। 'या अल्लाह' कहते हुए दाढी पर दो बार हाथ फेरा और अपनी उकताहट को छिपाते हुए—मौलवी साहब को एक कप चाय और बिस्कुट मुफ्त या उधार लेना था—आँखो मे मनोरजक विस्मय कूडकर होटलवाले की बात सुनने लगे।

होटलवाले ने अपने जीवन का रहस्योद्घाटन करने से डरकर बात को बदलते हुए कहा, *"मैं आपको किस्सा सुनाता हूँ। दुनिया मे बदमाशी है, बदतमीज़ी है।* है, पर करता क्या? गालियो से तो काम नही चलता, क्यो रहीमबख्श (ताँगेवाले

[illegible] गुज़रती

ली—बस

मौलवी

सा'ब, मेरा दिल एक सच्चे सैयद का दिल है। एक दफा क्या हुआ कि हज़रत अली अपने महल मे बैठे हुए थे। और राज-काज देख रहे थे कि इतने मे दरबान ने कहा कि कुछ मिस्री सौदागर आये हैं, आपसे मिलना चाहते हैं। अब उनमें का एक सौदागर आलिम था।"

मौलवी सिर्फ़ उसके चेहरे को देख रहे थे जिस पर अनेक भावनाएँ उमड रही थी जिससे उसका चिपका-गाला चेहरा और भी विकृत मालूम होता था। दूसरे, वह यह अनुभव कर रहे थे कि यह अपना ज्ञान बघार रहा है और ज्ञान का अधिकार तो उन्हे है। तीसरे, उन्होंने यह योग्य समय जानकर कहा, "भाई, एक कप चाय और बुलवा दो।"

चाय का नाम सुनकर कुरसी पर बैठे हुए युवक ने कहा, 'एक कप यहाँ भी।"

पीछे से फटी चडडी पहने हुए गन्दा लडका ऊँघ रहा था। वह ऊँघता हुआ ही चाय लाने गया। ताँगेवाला रहीमबख्श बातों को ग़ौर स सुन रहा था। वह जानना चाहता था कि इस कहानी का ताँगेवालो से क्या सम्बन्ध है।

होटलवाले ने कहना शुरू किया, "उनम का एक सौदागर आलिम था। उसने हज़रत अली का नाम सुन रखा था कि ग़रीबो के ये सबसे बडे हिमायती है। शानो-शौकत बिलकुल पसन्द नही करत। और अब देखता क्या है कि महल की दीवारें सगमरमर से बनी हुई हैं, जिसम स्वाबकोह के हीरे दरवाजो के मेहराबो पर जडे हुए हैं और चबूतरा काले चिकने सगमूसे का बना हुआ है। हरे-हरे बाग हैं और फव्वारे छूट रहे हैं। वह मन-ही मन मुसकराया। गरमी पड रही थी, और रूमाल से बँधे हुए सिर से पसीना छूट रहा था।

"हज़रत अली के सामने जब माल की कीमत नक्की हो चुकी, तो सौदागर उनकी मेहरबान सूरत से खिचकर बोला कि 'बादशाह सलामत ! सुना था कि हज़रत अली ग़रीबो के गुलाम हैं। पर मैंने कुछ और ही देखा है। हो सकता है, ग़लत देखा हो।'

"सौदागर अपना गट्ठा बाँधते-बाँधते कह रह थे। हज़रत अली की आँख से एक बिजली-सी निकली। सौदागर ने देखा नही, उसकी पीठ उधर थी, वह अपने माल का गट्ठा बाँध रहा था।

"हज़रत अली ने कहा, 'ज्यादा बातें मैं आपसे नही कहना चाहता। आप मुझे इस वक्त महल मे देखत है, पर मैं हमेशा यहाँ नही रहता। बाज़ार मे अनाज के बोरे उठाते हुए मुझे किसी ने नही देखा है।' हज़रत अली की आँखें किसी खास बेचैनी मे चमक रही थी।

'वे रेशम का लम्बा शाही लबादा पहन हुए थ। उन्होंने उसके बन्द खोले।

'सौदागर ने आश्चर्य से देखा कि हज़रत अली मोटे बोरे के कपडे अन्दर से पहने हुए हैं।

'सौदागर ने सिर नीचा कर लिया।"

सैयद होटलवाले की आंखो म आँसू आ गये। मौलवी साहब ने सिर नीचा कर लिया, मानो उन्हे सौ जूते पड गये हो। चाय की गरमी सब खतम हो गयी।

ताँगेवाले को इसमें खास मजा नहीं आया। युवक अपनी कुरसी पर बैठा हुआ ध्यान से सुन रहा था।

होटलवाले ने कहा, "असली मजहब इस कहते हैं। मेरे पास मुस्लिम लोगी आते हैं। चन्दा माँगते है। मुस्लिम कौम निहायत गरीब है। मुझस पाकिस्तान नहीं माँगते। मुझसे पाकिस्तान की बातें भी नहीं करते। हिन्दू-मुस्लिम इत्तेहाद पर मेरा विश्वास है। लेकिन मैं जरूर दे देता हूँ। 'कौमी जग' अखबार देखा है आपने? उसकी पॉलिसी मुझे पसन्द है। लाल बावटेवालो का है। मैं उन्हें भी चन्दा देता हूँ। मेरा ममेरा भाई बिरला मिल म है। ख्नाता कमेटी का सेक्रेटरी है। वह मुझसे चन्दा ले जाता है।"

युवक अब वहाँ बैठना नहीं चाहता था। फिर भी, सैयद साहब की बातो को पूरा सुन लेने की इच्छा थी। मालूम होना था, आज वे मजे मे आ रहे हैं।

रात काफी आगे बढ चुकी थी। होटल के सामने म्युनिसिपल बगीचे के बडे-बडे दरख्त रात की गहराई म ऊँघ-से रहे थे जिनके पीछे आधा चांद, मुस्लिम नववधू के भाल पर लटकते हुए अलकार के समान लग रहा था।

नवयुवक जब उठा और चलने लगा तो मालूम हुआ कि उसके पीछे भी कोई चल रहा है। उन दोनो के पैरो की आवाज गूंज रही थी। परन्तु चांद की तरफ [illegible] रुचिर चेहरे [illegible], वह युवक [illegible] त आकाश [illegible] की क्रीडा मे गा उठती थी।

युवक ऐसी लम्बी एकान्त रात मे अर्ध-अपरिचित नगर की राह मे अनुभव कर रहा था कि मानो नग्न आसमान, मुक्त दिशा और (एकाकी स्वपथचारी सौन्दर्य के उत्साह-सा, व्यक्ति-निरपेक्ष मस्त आत्मधारा के खुमार-सा) नित्य नवीन चाँद से लाखो शक्ति-धाराएँ फूटकर नवयुवक के हृदय में मिल रही हो। नग्न, ठण्डे—पाषाण, आसमान और चाँद की भाँति ही—उसी प्रकार, उसका हृदय नग्न और शुभ्र शीतल हो गया है। द्रव्य की गतिमयी धारा ही उसके हृदय म बह रही है। पाषाण जिस प्रकार प्रकृति का अविभाज्य अग है, मनुष्य प्रकृति पर अधिकार करके भी अपने रूप से उसका अविभाज्य अग है।

चांद धीरे-धीरे आसमान में ऊपर सरक रहा था। वृक्षो का मर्मर रात के सुनसान अँधेरे मे स्वप्न की भाँति चल रहा था, परस्पर-विरोधी विचित्र गतिताल के सयोग-सा।

जो छाया दो कदम पीछे चल रही थी, वह नवयुवक के साथ हो गयी। नवयुवक ने देखा कि सफेद, नाजुक, लाठी के हिलते त्रिकोण पर चाँद की चाँदनी खेल रही है; लम्बी और सुरेख नाक की नाजुक कगार पर चांद का टुकडा चमक रहा है, जिससे मुँह का करीब-करीब आधा भाग छायाच्छन्न है। और दो गहरी छोटी आँखें चाँदनी और हर्ष से प्रतिबिम्बित है। उस वृद्ध मौलवी के चेहरे को देखकर नवयुवक को डी. एच. लॉरेन्स का चित्र याद आ गया।

उस अर्द्ध-वृद्ध ने आते ही अपनी ठेठ प्रकृति से उत्सुक होकर पूछा, "आप कहाँ रहते हैं?"

वृद्ध के चेहरे पर स्वाभाविक अच्छाई हँस रही थी। इस नये शहर के (यद्यपि नवयुवक पाँच साल पहले यहीं रहता था) अजनबीपन मे उसे इस मौलवी का स्वाभाविक अच्छाई से हँसता चेहरा प्रिय मालूम हुआ। उसने कहा, "मैं इस शहर से भली-भाँति वाकिफ नही हूँ। सराय मे उतरा हूँ। नीद नही आ रही थी, इसलिए बाहर निकल पडा हूँ।"

होटल मे बैठा हुआ यह वृद्ध मौलवी सैयद से हार गया था, मानो उसकी विद्वत्ता भी हार गयी थी। इस हारसे मन मे उत्पन्न हुए अभावऔर आत्मलीन जलन को वह शान्त करना चाहता था। "सैयद साहब बहुत अच्छे आदमी हैं, हम लोगो पर उनकी बडी मिहरबानी है।"

[illegible] करते हैं ?"

[illegible] र करने के लिए काफी हो [illegible] चुप होकर, गरदन झुका-कर नीचे देखने लगा। फिर कहा, "जी हाँ, दस साल पहले शादी हो चुकी थी। मालूम नही था कि वह गहने समेट करके चम्पत हो जायेगी। तब से इस मस्जिद मे हूँ।"

युवक ने देखा कि आधा-बूढा एक ऐसी बात कह गया है जो एक अपरिचित से कहना नही चाहिए। बूढे ने कुछ ज्यादा नही कहा। परन्तु इतने नैकट्य की बात सुनकर युवक की सहानुभूति के द्वार खुल गये। उसने बूढे की सूरत से ही कई बातें जान ली—वही दुःख जो किसी-न-किसी रूप मे प्रत्येक कुचले मध्यवर्गीय के जीवन मे मुँह फाडे खडा हुआ है।

"जी हाँ, मस्जिद में पाँच साल हो गये, पन्द्रह रुपया मिलते हैं, गुजर कर लेता हूँ। लेकिन अब मन नहीं लगता। दुनिया सूनी सूनी-सी लगती है। पर इस लडाई ने एक बात और पैदा कर दी है—दिलचस्पी! रेडियो सुनने मे कभी नागा नही करता। रोज़ कई अखबार टटोल लेता हूँ। जी हाँ, एक नयी दिलचस्पी। किताब पढने का मुझे शौक ज़रूर है। पर मैं तालीमयाफ्ता हूँ नही। तो, गर्ज़े-कि समझ मे नही आती।"

बूढा अपनी नर्म, रेशमी, सितार के हलके तारो की गूँज सी आवाज में कहता जा रहा था। बातें मामूली तथ्यात्मक थी, परन्तु उनके आसपास भावना का आलोकवलय था। उसकी जिन्दगी मे आहत भावनाओ की जो तर्कहीन शक्ति थी, वह उसकी बातो की साधारणता मे अपूर्व वैयक्तिक रंग भर देती थी।

युवक को यह अच्छा लगा। प्रिय मालूम हुआ। एक क्षण मे उसने अपनी सहानुभूति की जादुई आँख से जान लिया कि कोई असगत (अजीब) मस्जिद होगी, जहाँ रोज चुपचाप लोग यन्त्रचालित सी एक कतार मे प्रार्थना पढते होंगे। और [illegible]

और यह अनमने भाव से पढाता होगा, और अपनी जिन्दगी, दुनिया और दुपहर का सारा क्रुद्ध सूनापन इसके दिल म बेचैनी से तडपता होगा ...।

उसने मौलवी से पूछा, "आपकी उम्र क्या होगी ?"

युवक ने देखा कि मौलवी को यह सवाल अच्छा लगा। उसका चेहरा और

भी कोमल होता सा दिखायी दिया। उसने कहा, "सिर्फ चालीस। यद्यपि मैं पचास साल के ऊपर मालूम होता हूँ। अजी इन पाँच सालों ने मुझको खा डाला। फिर भी मैं कमजोर नहीं हूँ। काफी हट्टा कट्टा हूँ।'

मौलवी यह सिद्ध करना चाहता था कि वह अभी युवक है। जीवन की स्वाभाविक, स्वातन्त्र्यपूर्ण, उच्छृखल आकांक्षा-शक्तियाँ उसके सारे शरीर में तारल्य भर देती थी। उसके चलन में, बातचीत में, वह अन्तिमता नहीं थी जो शैथिल्य और उदासी में पक्वता का आभास पैदा कर देती है। उसने चालीस ठीक कहा था और नवयुवक को भी उसकी बात पर अविश्वास करने की इच्छा न हुई।

'ओफ्फो, तो आप जवान हैं!" युवक ने थमकर आगे कहा, "तो आपका दिमाग लड़ाई पर जरूर चलता होगा "

"अरे साहब, कुछ न पूछिए सैयद साहब मुझसे परेशान हैं।"

'आप 'कौमी जंग' पढ़ते हैं? आपके होटल में तो मैंने अभी ही देखा है।"

" 'कौमी जंग' तो हमारी मस्जिद में भी आता है। हमारे सबसे बड़े मौलवी परजामण्डल के कार्यकर्ता हैं। जमीयत उल-उलेमा हिन्द के मुअज्जिज हैं। वहीं के उलेमा हैं। सब तरह के अखबार खरीदते हैं। यहाँ उन्होंने मुस्लिम फारवर्ड ब्लाक खोल रखा है।"

युवक को यहाँ की राजनीति में उलझने की कोई जरूरत नहीं थी। फिर भी, उससे अलग रहने की भी कोई इच्छा नहीं थी। इतने में एक गली आ गयी जिसमें मुड़ने के लिए मौलवी तैयार दिखायी दिया। युवक ने सिर्फ इतना ही कहा, 'किताबों के लिए हम आपकी मदद करेंगे। अब तो मैं यहाँ हूँ कुछ दिनों के लिए। कहाँ मुलाकात होगी आपसे?"

सैयद साहब के होटल में। जी हाँ, सुबह और शाम।"

मौलवी साहब के साथ युवक का कुछ समय अच्छा कटा। वह कृतज्ञ था। उसने धन्यवाद दिया नहीं। उसकी जिन्दगी में न मालूम कितने ही ऐसे आदमी आये हैं जिन्होंने उस पर सहज विश्वास कर लिया, उसकी जिन्दगी में एक निर्वैयक्तिक गीलापन प्रदान किया। जब कभी युवक उन पर सोचता है तो अपने लिए अपने विकास के लिए उनका ऋणी अनुभव करता है। उनके झरनों ने उसकी जिन्दगी को एक नदी बना दिया। उनमें से सब एक सरीखे नहीं थे। और न उन सबको उसने अपना व्यक्तित्व दे दिया था। परन्तु उनके व्यक्तित्व की काली छायाओं, कण्टकों और जलते हुए फास्फोरिक द्रव्यों, उनके दागों से उसने नाक-भौं नहीं सिकोड़ी थी। अगर वह स्वयं कभी आहत हो जाता तो एक बार अपना धुआँ उगल चुकने के बाद उनके व्रणों को चूमने और उनका विष निकाल फेंकने के लिए तैयार होता। उनके व्यक्तित्व की बारीक से बारीक बातों को सहानुभूति के मायक्रोस्कोप (बृहद्दर्शक ताल) से बड़ा करके देखने में उसे वही आनन्द मिलता था जो कि एक डॉक्टर को। और उसका उद्देश्य भी एक डॉक्टर का ही था। उसमें का चिकित्सक एक ऐसा सीधा-साधा हकीम था जो दुनिया की पेटेण्ट दवाइयों के चक्कर में न पड़कर अपने मरीजों से रोज सुबह उठने, व्यायाम करने, दिमाग को ठण्डा रखने और उसकी दो पैसे की दो पुड़िया शहद के साथ चाट लेने की सलाह देता था। सहानुभूति की एक किरण, एक सहज स्वास्थ्यपूर्ण निर्विकार मुसकान का चिकित्सा सम्बन्धी महत्त्व सहानुभूति के लिए प्यासी, लँगड़ी दुनिया के लिए

कितना हो सकता है—यह वह जानता था। इसलिए वह मतभेद और परस्पर पैदा होनेवाली विशिष्ट विसवादी कटुताओ को बचाकर निकल जाता था। वह उन्हे जानता था और उसको उसे जरूरत नही थी। दुनिया की कोई ऐसी कलुषता नहो थी जिस पर उसे उलटी हो जाये—सिवाय विस्तृत सामाजिक शोषणो और उनस उत्पन्न दम्भो और आदर्शवाद के नाम पर किये गये अन्ध अत्याचारो, यान्त्रिक नैतिकताओ और आध्यात्मिक अहताओ की तानाशाहियो को छोडकर। दुनिया के मध्यवर्गीय जनो के अनेको विषो को चुपचाप वह पी गया था, और राह देख रहा था सिर्फ क्रान्ति-शक्ति की। परन्तु इसस उसको एक नुकसान भी हुआ था। व्यक्ति उसके लिए महत्त्वपूर्ण नही था, व्यक्तित्व अधिक, चाहे वह व्यक्तित्व मामूली ही हो और वह भी तभी तक जब तक उसकी जिज्ञासा और उष्णता का तालाब सूख न जाये। उसकी उष्णता का दृष्टिकोण भी काफी अमूर्त था, क्योकि उसके व्यक्तित्व का उद्देश्य अमूर्त था। इसलिए अपने आपमे व्यक्ति उससे यदा-कदा छूट जाता था, सिवाय उनके जो उसकी धडकनो और रक्त के साथ मिल गये हैं। हकीम मरीजो को फौरन भूल जाते हैं, और मर्ज के लिए और मर्ज के साथ-साथ वे याद आते हैं। परिणामत, उसकी सहज उष्णता पाकर व्यक्ति उसके साथ एक हो जाते, अपने को नग्न कर देते, और फिर उससे नाना प्रकार की अपेक्षाएँ करने लगते जो सम्भव होना असम्भव था।

मौलवी जब गली म मुडकर गया तो युवक की आँखें उस पर थी। मौलवी का लम्बा, दुबला और श्वेतवस्त्रावृत सारा शरीर उसे एक चलता फिरता इतिहास मालूम हुआ। उसकी दाढी का त्रिकोण, आँखो की चपल चमक और भावना-शक्तियों से हिलते कपोलो का इतिहास जान लेने की इच्छा उसमे दुगुनी हो गयी।

तब सडक के आधे भाग पर चाँदनी बिछी थी और आधा भाग चन्द्र के तिरछे होन के कारण छायाच्छन्न होकर काला हो गया था। उसका कालापन चाँदनी से अधिक उठा हुआ मालूम हो रहा था।

युवक के सामने समस्याएँ दो थी। एक आराम की, दूसरी आराम के स्थान की। और दो रास्ते थे। एक तो, कि रात-भर घूमा जाये—रात के समाप्त होने मे सिर्फ साढे-तीन घण्टे थे। और दूसरे, स्टेशन पर कही भी सो लिया जाये।

कुछ सोच विचारकर उसने स्टेशन का रास्ता लिया।

उसके शरीर मे तीन दिन के लगातार श्रम की थकान थी। और उसके पैर शरीर का बोझ ढोने से इनकार कर रहे थे। परन्तु जिस प्रकार जिन्दगी मे अकेले आदमी को अपनी थकान के बावजूद भी, भोजन खुद ही तैयार करना पडता है—तभी तो पेट भर सकता है—उसी प्रकार उसके पैर चुपचाप, अपने दु ख की कथा अपने से ही कहते हुए अपने कार्य मे सलग्न थे।

उसको एक बार मुडना पडा। वह एक कम चौडा रास्ता था जिसके दोनो ओर बडी-बडी अट्टालिकाएँ चुपचाप खडी थी जिनके पैरो नीचे बिछा हुआ रास्ता दो पहाडियो मे से गुजरे हुए रास्ते की भाँति गड्ढे मे पडा हुआ मालूम होता था। बायी ओर की अट्टालिकाओ के ऊपरी भाग पर चाँदनी बिछी हुई थी।

थकान मे शून्य मन मे नीद के झोके आ रहे थे, परन्तु एक डर था पुलिसवाले का, अगर रास्ते मे मिल जाये तो उसके सन्देहों को शान्त करना मुश्किल है। डर इसलिए भी अधिक है कि रास्ता अँधेरे से ढँका हुआ, सिर्फ अट्टालिकाओं पर गिरी

हुई चाँदनी से कुछ-कुछ प्रत्यावर्तित प्रकाश से रास्ते का आकार सूझ रहा है।

मन में शून्यता की एक और बाढ़! नींद का एक और झोंका!! रास्ता दोनों ओर से बन्द होने के कारण शीत से बचा हुआ है—उसमें अधिक गरमी है।

युवक कैसे तो भी चल रहा है। नींद के गरम लिहाफ में सोना चाहता है। नींद का एक और झोंका! मन में शून्यता की एक और बाढ़!

युवक के पैरों में कुछ तो भी नरम-नरम लगा—अजीब, सामान्यतः अप्राप्य, मनुष्य के उष्ण शरीर-सा कोमल। उसने दो-तीन कदम और आगे रखे। और उसका सन्देह निश्चय में परिवर्तित हो गया। उसका सारा शरीर काँप गया। उसकी बुद्धि, उसका विवेक काँप गया। वह यदि कदम नहीं रखता है तो एक ही शरीर पर—न जाने वह बच्चे का है या स्त्री का, बूढ़े का या जवान का—उसका सारा वज़न, एक ही पर जा गिरे। वह क्या करे? वह भागने लगा एक किनारे की ओर। परन्तु कहाँ—वहाँ तक आदमी सोये हुए थे। उनके शरीर की गरम कोमलता उसके पैरों से चिपक गयी थी। वहीं एक पत्थर मिला, वह उस पर खड़ा हो गया, हाँफता हुआ। उसके पैर काँप रहे थे। वह आँखें फाड़ फाड़कर देख रहा था। परन्तु अँधेरे के उस समुद्र में उसे कुछ नहीं दीखा। यह उसके लिए और भी बुरा हुआ। उसका पाप यों ही अँधेरे में छिपा रह जायेगा। उसकी विवेक-भावना सिटपिटाकर रह गयी, उसको ऐसा धक्का लग गया कि वह सँभलने भी नहीं पायी। वह पुण्यात्मा विवेक-शक्ति केवल काँप रही थी!

युवक के मन में एक प्रश्न, बिजली के नृत्य की भाँति मुड़-मुड़कर, मटक-मटककर, घूमने लगा—क्यों नहीं इतने सब भूखे भिखारी जगकर, जाग्रत् होकर, उसको डण्डे मारकर चूर कर देते हैं—क्यों उसे अब तक ज़िन्दा रहने दिया गया?

परन्तु इसका जवाब क्या हो सकता है?

वह हारा-सा, सड़क के किनारे-किनारे चलने लगा। मानो उस गहरे अँधेरे में भी भूखी आत्माओं की हज़ार-हज़ार आँखें उसकी बुज़दिली, पाप और कलंक को देख रही हों। स्टेशन की ओर जानेवाली सीधी सड़क मिलते ही युवक ने पटरी बदल दी।

लम्बी सीधी सड़क पर चाँदनी आधी नहीं थी क्योंकि दोनों ओर अट्टालिकाएँ नहीं थीं, केवल किनारे पर कुछ कुछ दूरियों से छोटे-छोटे पेड़ लगे हुए थे। मौन, शीतल चाँदनी सफ़ेद कफ़न की भाँति रास्ते पर बिछती हुई दो क्षितिजों को छू रही थी। एक विस्तृत, शान्त खुलापन युवक को ढँक रहा था और उसे सिर्फ़ अपनी आवाज़ सुनायी दे रही थी—पाप, हमारा पाप, हम ढीले-ढाले, सुस्त, मध्यवर्गीय आत्म-सन्तोषियों का घोर पाप! बंगाल की भूख हमारे चरित्र-विनाश का सबसे बड़ा सबूत। उसकी याद आते ही, जिसको भुलाने की तीव्र चेष्टा कर रहा था, उसका हृदय काँप जाता था, और विवेक भावना हाँफने लगती थी।

उस लम्बी सुदीर्घ श्वेत सड़क पर वह युवक एक छोटी-सी नगण्य छाया होकर चला जा रहा था।

[**हंस** में प्रकाशित, सम्भावित रचनाकाल 1948-58]

"वही है क्या ? वही ?" एक बार वह अपने से ही बुदबुदाया था।

साँझ के समय ऑफिस के कमरे से निकलकर एक चुस्त दुरुस्त लडकी मुँह पर का अनुमानित पसीना पोंछती हुई किसी की आँखो की राह गुज़र गयी थी।

वह फिर बुदबुदाया था अपने से ही। "वही है क्या, वही, वही ?"

अपने मन स ही फिर उसन सवाल पूछा था, 'वही ? वही कौन ?"

किन्तु वह इसका सन्तोषजनक उत्तर नही दे पाया था। अपने मन के प्रश्न को अपने मन का उत्तर न दे सका था।

शाम की ललाई मे निलाई मे घुले आसमान के चँदोवे के नीचे ऑफिस के अहाते म एक पुराने वरगद के बुजुर्ग दरख्त के अँधेरे म किशोर खडा हुआ था, एक मित्र की प्रतीक्षा मे। काम की थकान के अनुभव म वातावरण की मिठास घुल रही थी। क्लर्की की ज़िन्दगी के वाहियातपन पर जवानी अव भी छा जाती थी।

वह एक ऊँचे कद का तईससाला नौजवान था, और अपने भुलक्कडपन और अव्यवस्था के कारण बहुत बदनाम। ऑफिस का सुपुरडण्ट उससे सख्त नाराज़ रहता था। किन्तु उसक सहकर्मी उसे निरीह जीव जान, ज्यादा उसकी आफत न होन देते। ऑफिस की अपनी राजनीति मे वह कुछ इस तरह पृथक् रहता कि लेखक को भी उसे बेवकूफ बरतने की इच्छा होती है। किन्तु वह एक ऐसा व्यक्ति था जिसके आरपार देखा जा सकता है।

एक बात और थी। वह बेहद फिजूलखर्च था। और आज भी, जब शाम के साढे-पाँच बज चुके थे और ऑफिस की ज़िन्दगी शान्त हो रही थी—हो चुकी थी —वह अभी भी खडा था। किसी मित्र के लिए—शायद सिनेमा के वास्ते—वह अभी रुका हुआ था। जिस तरह गुड के पास चिउँटियाँ जमा हो जाती हैं, उसके आसपास चाय पीनेवाले दोस्त मँडराते रहते। कहना न होगा कि लेखक भी उनम से एक है।

शायद आज वह बहुत अकेला अनुभव कर रहा था। मित्र आने का नाम न लेता था और यह फिजूल इन्तज़ार किये जा रहा था। मन में एक प्रकार की शिथिलता व्याप्त हो रही थी। सूनेपन के कारण उत्पन्न होनेवाली अबूझ उद्विग्नता मन में जग रही थी कि इतने मे ···।

एक चुस्त दुरुस्त लडकी आँखो की राह गुज़र गयी।

और वह चौंधियाया-सा स्वय की ही किसी आन्तरिक वृत्ति की गति से प्रश्न पूछता, "वही है क्या ? वही ?" और उसकी आवृत्ति करता, 'वही है क्या ? वही ? वही ?"

कदाचित् उसके मन की शिथिलता की भूमि स ही यह प्रश्न निकला था। किन्तु निस्सन्देह वह चौंधिया गया था।

उस लडकी का चुस्त-दुरुस्त, फिट-फाट, रहन-सहन उसे चाबुक मारता। उसको लगता—मेरे व्यक्तित्व म इतना कैन्ट्रास्ट ! · वह कन्ट्रास्ट कि जिसमें एक विशेष स्तर पर घोर औचित्य है। नही तो वह · नहीं तो और···!

और भी तो लडकियाँ थीं, किन्तु वह उस नाम स जानता। किसी के बारे मे

उसके लिए इतनी सूचना होना बहुत बडी बात थी। वह अपने (महीनो मे पास रहनेवाले) पडोसियो के नाम तक न जानता था। यद्यपि कभी-कभी नमस्कार-विनिमय हो जाना अस्वाभाविक न था।

इस कदर बेखबर आदमी किस तरह ज़िन्दा रह सकता है यह बात कुछ लोगो के लिए अरुचि सूचक आश्चर्य, अन्यो के लिए कुतूहल, और स्वकीयो के लिए क्षम्य दुर्गुण का विषय थी।

वह बरगद के अँधेरे मे वैसा ही खडा था। सांझ की ओझल होती हुई परछाइयो मे वह थकान मे भर उठा था।

कि इतने में उसकी आंखो मे एक हँसता हुआ सयमित, सौम्य बुद्धिमान चेहरा घूम गया था।

और वह अपने से ही बुदबुदा उठा था, "वही है क्या? वही? वही?"

उस लडकी का नाम-धाम, अता-पता उसे दिया जा सकता था, दोहराया जा सकता था। किन्तु, शायद उसके प्रश्न का वह उत्तर न था।

[इस कहानी का परवर्ती अश इससे तनिक भी सम्बद्ध नहीं है और इसलिए यहाँ 'उपसहार' शीर्षक अलग से कहानी के रूप में प्रकाशित है।—स०]

उपसंहार

[यह कहानी 'सतह से उठता आदमी' सकलन मे छपी 'चाबुक' कहानी का अश है, पर यह अपने आप मे अलग से सम्पूर्ण है और इसका 'चाबुक' वाले अश से कोई भी सम्बन्ध नही है। इसलिए इसे इस नये शीर्षक के अन्तगत स्वतन्त्र रूप से रखा जा रहा है। 'चाबुक' कहानीवाला अश उसी शीर्षक से अलग से प्रकाशित है। ऐसा जान पडता है कि एक से कागजों पर लिखे होने के कारण ये दोनों अश एक साथ जुड गये और प्रकाशित हुए।—स०]

रात-भर हुई धुआँधार बरसात करीबन सुबह पांच बजे थम गयी थी। हलका, धुंधला प्रकाश, जो बादलो से उतर न पाता था, बहुत ही निर्जीव-सा था। रात-भर [illegible] मरी हुई, बुझी [illegible] नी, म्लान और

पूरी गली सुनसान थी। खिलौने बनानेवाले कुम्हार कारीगर केशव के पडोस का दूधवाला अपना एक पेटेण्ट भजन गुनगुनाता, साफ मँजी बालटी हिलाता हुआ निकल गया था।

[illegible] गुनायी दी। आहटें बढती [illegible]। किसी की नीद टूटी। [illegible] ढँककर सो गया। कोई

किसी फ़िक्र की बेचैनी से उठ बैठा और, बावजूद अधसोयी नींद के, आगे की तैयारी करने लगा।

एक आकृति ने दरवाज़ा खोला; धीरे से, जिससे अन्दर सोनेवालों की नींद न टूटे और बाहर की ठण्डी हवा न लगे। और फिर सतर्क पदचाप से वह आकृति गली में निकल आयी। हाथ में एक छोटा पीतल का बरतन था।

गली का नुक्कड़, जहाँ दूधवाला बैठता है, अभी खाली था। उस आकृति ने चारों ओर भ्रमित दृष्टि से देखा। दृष्टि ने खोजने की भी चेष्टा की। वह एक स्त्री की आकृति थी।.

अस्त-व्यस्त बाल और उतना ही अस्त-व्यस्त-सा स्वास्थ्य। एकदम बीमार और बेचैन छाया थी वह। आँखों के आसपास मरे हुए निर्जीव काले वर्तुल। और शरीर पर—वह मोटा होने पर भी—रक्त-हीनता की निर्जीव श्यामता थी। मैली, फटी हुई-सी मरदानी धोती पहने थी वह।

अपने इस पूरे साज में वह अत्यन्त नगण्य, तुच्छ मनुष्य की निराकारता हो सकती थी। किन्तु उसके चेहरे की सजीव सुघड़ नाक और छोटे-छोटे सुन्दर कान और अपनी परेशानी के बावजूद उसकी तरल आँखें यह बता देती थीं कि कभी 'यह इमारत बुलन्द थी'। कुछ लोगों को तो वह इस समय भी अपनी बेचैनी में भी गम्भीर, आघातशील और सोद्देश्य दिखायी दे सकती थी।

निराश-सी होकर वह लौट गयी। आँखों पर ज़्यादा ज़ोर हो जाने के कारण उसकी नसें दुख-सी रही थीं। अबूझ थकान से पैर भी सीधे नहीं पड़ रहे थे।

दरवाज़ों को उसने खोल दिया। लोग अन्दर सो रहे हैं, इसकी उसने ज़रा भी परवाह न की। अबूझ क्रोध से वह भर गयी। परेशानी जितनी बढ़ती गयी, वह क्रुद्ध होती चली—अपने पति पर, बच्चों पर, भाग्य पर।

एक क्षण पहले जब वह गली के नुक्कड़ पर खड़ी, खोज-भरी दृष्टि चारों ओर गाड़ रही थी, उसके मन में प्रार्थनाएँ चल रही थीं। 'उसे' क्या कहना चाहिए, इसका लगातार रिहर्सल चल रहा था। पहले वह गिड़गिड़ाकर, आँखों में दर्द भरकर, अपनी परिस्थिति का संक्षिप्त वर्णन कर, उसका मन जीत लेगी, और फिर चार दिन बाद पैसे दे डालने के सन्दिग्ध वादे करेगी। कठिनाई तो रहेगी ही। पर सुबह का संकट टल जायेगा (और शायद शाम तक कुछ-न-कुछ व्यवस्था हो जाये), किन्तु जितनी बार प्रार्थनाएँ दोहराती गयी, वह उतनी ही निस्सहाय अनुभव करती गयी। और उद्विग्न होती गयी।

किसी को भी वह नुक्कड़ पर न पाकर लौट आयी थी। घर के लोगों को उसने झकझोरकर उठा दिया। सिगड़ी मिलगा दी। इस अनावश्यक जल्दबाज़ी के कारण पति के नाराज़ शब्द गूँजे। उन्हें सुनकर वह और भी जल उठी। घर के सारे संकट की जड़ 'इनकी' बेफ़िक्री और आलस ही है।

पति ने रात को पत्नी को यह कहकर डरा दिया था कि कल ऑफ़िस की जाँच होनेवाली है। और उसे पिछड़ा हुआ काम पूरा कर डालने के लिए सुबह ही निकल जाना चाहिए, नहीं तो शायद नौकरी पर आघात हो जाये। ऑफ़िस में झगड़े चल रहे थे, जिनके पति द्वारा होनेवाले थोड़े-बहुत ज़िक्र से ही वह चंचल हो उठी थी।

किन्तु पति महाराज उठने का नाम न लेते थे। और, नाराजगी जाहिर की जा रही थी।

यदि वह इतनी सूख न गयी होती तो उसके छोटे-से तुनुकमिज़ाज चेहरे पर किसी को प्यार आ जाता। किन्तु गरीबी, अभाव, आपदा और अस्वास्थ्य के सम्मिलित योग से उसका शरीर एक विद्रूप छाया-दृश्य हो गया था, इतना कि आज के उसके चिड़चिड़ेपन को देख पति को भी क्रोध आ गया। अपनी सकटापन्न गिरस्ती की प्रतीक यह गृहिणी न स्वय सुखी होगी और न किसी को सुख दे सकेगी। उसका म्लान, निस्तेज, रक्तहीन, साँवला चेहरा मात्र कोप के और कुछ नहीं प्रदान कर सकता। रामलाल स्वय ऊपर से नीचे तक जल उठा।

रात-भर की बरसात के कारण सुबह भी गीली, धुंधली और मैली थी। निर्जीव था उसका प्रकाश।

वह अन्दर के कोठे मे चला गया। वह एक अँधेरा कमरा था—मानो एक बडा-सा सन्दूक हो। बीच में एक वस्तु पडी थी। पैर लगते ही वह टूट गयी। झीकता और झक मारता हुआ वह अन्दर चलता गया। रसोईघर पार कर वह आँगन की मोरी मे बैठकर हाथ-मुँह धोने लगा।

बहुत बार ऐसा होता था कि रामलाल बहुत देर तक हाथ-मुँह धोता रहता किसी अबूझ तन्द्रा मे। वह तन्द्रा नीद न थी। न नीद की श्रेणी अथवा शैली। कोई कुछ बोलता या सुझाता या बकता चलता था उसके दिमाग मे, और वह भी इस कदर धीरे (स्वर म) कि यदि उसका वह स्वय बौद्धिक रूप स आकलन करना चाहे तो असफल होगा, परेशान होगा। स्वर म धीमी, किन्तु गति मे द्रुत और दीर्घ थी वह बकवास जो दिमाग के अन्दर नीद से जागने पर भी, हाथ-मुँह धोते तक बराबर चला करती। उस बकवास का स्वर पहचाना-सा, अर्थ जाना-माना सा, उसकी मार बडी गहरी किन्तु—सजग होकर भाषा के बन्धन मे प्रकट किये जाने की तत्परता के साथ उसका अर्थ काफ़ूर, आशय काफ़ूर।

साधारण रूप से यह होता कि मन की ऐसी स्थिति मे यदि उसे चाय वक़्त पर न मिलती तो झल्लाहट की सियाह कडवी लहरें दिमाग को पकड लेती। किन्तु वह बक-झक न करता। धोती को कमर मे कसकर, दो बालटियाँ हाथ मे लटकाये वह कुएँ पर चल देता। घर की कोठी में बालटियो के ऊपर बालटियाँ जोशोखरोश से डलती हुई देखकर उसकी पत्नी मन ही मन मुसकराती, और उसे छेड़ने की गरज से कुछ ऐसे वाक्प्रहार करती कि पति की मुद्रा गम्भीर हो जाती। असल बात यह थी कि पति-पत्नी दोनो अपने तात्कालिक क्रोध को सगृहीत न कर पाते। पत्नी होशियार थी, पति के स्वभाव को जानती थी। उसके पैंतरे बडे तिरछे थे। उसके वाक्प्रहारो को सुनकर, दोनो हाथो मे बालटियाँ पकडे, पति का अर्धनग्न शरीर और चेहरा झल्ला उठता, और अधिक गम्भीर हो जाता। झल्ला इसलिए उठता कि उसके क्रोध को काफ़ूर करने की यह कूटनीतिक चाल है यह सोचकर; और गम्भीर इसलिए हो उठना कि उसका चेहरा सारी स्थिति की बेवकूफ़ी और स्त्री की चालबाज़ छद्म-व्यग्यवाली विनोद-पद्धति को देखकर हँस न पडे कही स्वय ठहाका मारकर हास्य-ध्वनि चहुँ ओर विस्तृत न कर दे।

उदाहरणत, एक बार जब पति महाराज अपने चिड़चिड़ेपन का इज़हार करते

हुए वग़ैर चाय पिये, हाथो मे वालटी लटकाये कुएँ की ओर चल पडे, और भरी हुई वालटियो सहित व
स्त्री कह रही थी,
होंगे, अपनी कम्पन
(बच्चो जैसे ही) निष्कलुष सीख-भरी वाणी मे वह कह रही थी।

जवाब मे वडा बच्चा अपने पैरो के तलुओ को छूते हुए, तुतलाते हुए कहता, "फिर हमे पैरों मे जूता ला देंगे।"

छोटा वच्चा वडे बच्चे की होड करता हुआ कहता, "हमे कमीज़ ला देंगे। हमे कोट ला देंगे।"

तमाशा यह कि बच्चे सिर्फ इसी खुशी मे नाचने लगते। और स्त्री पति के चेहरे को देख मुसकरा उठती।

रामलाल का दिल करुणा से भर उठता, और उसके दमन के फलस्वरूप चेहरा कठोर हो जाता, यद्यपि वह मात्र ऐसा ढोग था जो बुद्धू भी पहचान जाता।

उसकी यह स्थिति देखकर, उसके हाथो से वालटियो को छुडा, पति को चूल्हे के पास बैठा लेती। चाय की प्याली आगे कर पूछती, "नाराज़ क्यो हो?"

और रामलाल हँस पडता। उसके मन मे मिठास भर उठती। मन-ही-मन कहता, 'मुझे मिला नेन का अच्छा तरीका है।' जवाब देता, "और तुम क्यो नाराज़ थीं?"

और फिर वे एक-दूसरे की आँखो मे आँखें डालकर परस्पर का चेहरा देखते, और एक दूसरे को मनाती हुई मुद्रा मे हँस पडते।

किन्तु उनकी आँखो मे नाराजगी के कारणो के चित्र खिंच उठते। वे पहचान जाते कि एक दूसरे के प्रति अप्रसन्नता की आड मे अपनी जिन्दगी ही से नाराजगी छिपी हुई है। उनके जीवन की प्रधान समस्याएँ, जो उनके दिलो को निर्दयतापूर्वक कुचल करती हैं, आँखो के सामने मूर्त हो जाती।

चाय खत्म कर, पति अपनी स्त्री की पीठ ठपकारकर दिलासा और हिम्मत दिलाता हुआ उठ खडा होता। किन्तु स्त्री जानती है कि उसके दिल को समझाने मात्र के लिए बातें कही जा रही हैं।

वास्तविकता यह थी कि रामलाल अफसर नही, जण्डेल नही, अखबार का मालिक नही, वल्कि एक दरिद्र व्यक्ति हो रहा था, जो एक-एक पैसे के लिए मारा-मारा फिरता है। पति पत्नी दोनो के सामने आशा के स्वप्न-चित्र न थे, मूर्त-दृश्य आशा के महल—किसी भी तरीके से गुजारा हो, बीमार को दवा मिले और खाने को रोटी और तन को कपडा। उसकी दरिद्रता की ओर उँगली उठानेवाले समाज को बहुत दूर छोड वे दोनो इधर आ बसे थे।

फिर भी उनकी अल्प माँगें भी पूरी न होती। यदि वे पूरी न हो तो जिन्दगी चल नही सकती। इसके लिए उन्हे हजार ग़ैर-मुतअल्लिक तरीके अख्तियार करने पडते, और उसी के चक्कर म उनके दिमाग चला करते। उससे जिन्दगी कडवी हो जाती। उसमे स्वाद न रहता। किन्तु उनकी सबसे बडी पूँजी एक दूसरे से स्नेह और सहयोग था। शादी हुए इतने साल बीत जाने पर भी उनमे एक दूसरे के प्रति आकर्षण मौजूद था। एक ही जीवन-सघर्ष की प्रक्रियाओ म से गुजरने के कारण वे एक दूसरे के मित्र तथा सहायक हो उठे थे।

साढे-चार बजे के बाद रामलाल अग्रवाल घर के लिए बेचैन हो उठता, और घर मे बच्चे तथा स्त्री उसके लिए। शाम की चाय घर के लोग अलग पी लेते, किन्तु तभी से रामलाल की प्रतीक्षा का काल शुरू होता। सघर्ष, गरीबी और कष्ट —इन तीनो ने इस परिवार के सदस्यो को अभिन्न बना दिया था।

कल उसने अपनी स्त्री को गप दे दी थी कि उसे सुबह ऑफिस चले जाना है, चूंकि उस निहायत जरूरी काम है। वास्तविक बात यह है कि जिस काम के लिए उसे घर से बाहर निकलना था, वह ऐसा था जिसके लिए काफी मानसिक वीरता तथा, एक अर्थ म, निर्लज्जता की आवश्यकता थी। वह सरकारी काम न था। किन्तु स्त्री की ओर से समय की पाबन्दी रखवाने की ग़रज से झूठ का आसरा लेकर उसने अपना इरादा पूरा करना चाहा।

आँख तो उसकी खुल ही गयी थी। ५र ज्यो ही उस काम के लिए निकलन के खयालात उसे सताने लगे, त्यो ही उसके दिमाग मे एक अजीब-सी सुस्ती, एक विचित्र प्रकार का अवरोध काम करने लगा।

स्त्री का कुपित चेहरा देख, उसके मन मे भयानक बेचैनी हो उठी। वही चेहरा—जिसे उसकी अभावमयी सन्त्रस्त गिरस्ती का चेहरा कहना चाहिए। अभाव के उस प्रतीक पर वह मन ही-मन बिगड पडा, किन्तु समय कम रहने से, अपने को सयमित कर, वह दूध लाने निकल गया, और बगैर चाय का इन्तज़ार किये, वह घर स ही नही, मुहल्ले से भी दूर निकल गया।

किन्तु जो रास्ता उसने पकडा वह उस दिशा से नही जाता था जिस ओर वस्तुत उसे जाना था। फिर भी वह चलता गया।

उसके पास साइकिल थी। वह बहुत दूर तक निकल आया। उसने सोचा, सारा दिन उसके पास है, ऑफिस मे छुट्टी भी है। दिमाग मे जो कुछ था वह जोर-जोर से घूम रहा था और तब यकायक उस खयाल आया—अकस्मात् बिजली जैसा। पल-भर के लिए उसकी समस्त चेतना वहाँ पर केन्द्रित हो गयी।

किसी तेज रोशनी से चमकती हुई वे आँखें—मानो किसी पागल की हो। फिर भी वे सचेत थी अपनी हताशा म सम्मिलित प्रतिरोध से भरी हुई, सम्पूर्ण निरपेक्ष, किन्तु किसी को उसके कर्तव्य का भान कराती हुई, निराश, और किसी अमूर्त (यानी तुरत समझ मे न आ सकनेवाले कि क्यो ऐसा है) क्रोध और क्षोभ मे जलती हुई।

पीले, कृश, सुघड चेहरे की वे आँखें रामलाल के अन्त करण मे गडी जा रही

पल के भीतर ही रामलाल कई बार जन्मा और कई बार मर गया—उसके कई पुनर्जन्म हुए।

रामलाल के जीवन की पूरी कहानी, उसके स्वीकृत-अस्वीकृत, उद्घाटित-अनुद्घाटित अपराधो की तथा-कथा और यथा कथा, आंखो के सामने से विद्युत

की गति तथा प्रकाश का रूप और वेग लेकर सरक गयी। अनेक केन्द्रीय मत्य—उड़ते हुए नील स्फुलिंगो-से—अपनी उद्वेग-जनक आभा बिखेरते हुए विलीन हो गये। और उन निगाहो की तेज नोक रामलाल की अन्तश्चेतना की गहराई तक घुस गयी—उसने बहुत बडा घाव कर दिया, यद्यपि रामलाल उसके चिरस्थायी वेदनापूर्ण स्वरूप को उस समय पहचान न पाया।

साइकिल से वह तुरत उतर पडा, किसी आन्तरिक प्रवृत्ति से। और उसको लगा, जैसे उसका कुछ खो गया हो, मानो उसके पास दस रुपये का एक नोट था जो अब नही रहा। किसी ने उसको उडा लिया। किसी ने, शायद, उसकी जेब कतर ली। और वह सचमुच अपनी जेबों को टटोलने लगा कि शायद उसम उसे दस रुपये का नोट प्राप्त हो जाये।

तमाशा यह कि यह सब करते हुए भी उसका सचेत मन कह रहा था कि क्या तमाशा कर रहे हो ! तुम्हारा कुछ खोया नही है। दस रुपये तुम्हारी जेब मे हो ही कैसे सकते है। एक आना भी तुम्हारी जेब में है ? वाह रे पागलपन ! किन्तु अपने मन के इस स्वर की उपेक्षा करता हुआ उसका मन अस्वास्थ्य के गहन दुख का स्वाद लेने मे तन्मय था। वह अपनी जेबो की खानातलाशी लेने मे मशगूल था।

अकस्मात् उसने अपनी जेब के कोने मे से एक चवन्नी और एक आना बरामद किया, और वह खुश हो गया। उन पैसो ने प्रतीकात्मक रूप से उसे सन्तोष दिला दिया, कुछ पलों के लिए। यह सोचता हुआ कि उसके दिमाग मे जो अभी-अभी विप्लव हुआ है, उसके मूल सार-सूत्रो को वह पकड ले और फिर अपने काम पर आगे बढे। वह एक समीपस्थ काफे मे घुस गया। उसके एक कोने मे रखे हुए कुरसी-टेबिल की तरफ वह आकर्षित हुआ, और तुरन्त उस पर अधिकार कर लिया।

आधुनिक सुविधाओ से सुसज्जित यह काफे विशेष आकर्षणपूर्ण नही था, किन्तु उसका विशाल हॉल, जिसमे टेबिल-कुरसियाँ लगी हुई थी, हवा और प्रकाश का मुक्त प्रागण बना हुआ था। रामलाल का घर, जहाँ न प्रकाश था न हवा, उससे विरोधपूर्ण काफे की स्थिति के कारण उसे वह अच्छा लगता था। उसके एक कोने मे बैठकर वह विचार कर सकता था। मन की उद्वेगपूर्ण स्थिति मे वह वहाँ आता, बशर्ते कि जेब मे कुछ रहे। उसके मित्रो मे से कोई भी नही जानता था कि रामलाल अग्रवाल कभी-कभी यहाँ भी दिखायी देता है।

ज्यों ही वह कुरसी पर बैठा, उसने फिर उसी चेहरे को अपने मन मे विराजित, मूर्त करने की कोशिश की। चित्र मन मे उभरा, किन्तु उसके रग अब फीके पड गये थे। उसने जेब से एक मैला काग़ज और पेन्सिल निकाली और कुछ नोट करने लग गया।

बॉय कॉफी की ट्रे रखकर चला गया था। कप तैयार कर एक-एक घूँट वह पीता जाता था और लिखित पक्ति को पढता जाता था। पढ चुकने के बाद उसने वह काग़ज जेब म रख लिया और बुदबुदाया, 'आज शाम तक व्यवस्था हो ही जानी चाहिए।'

किन्तु इस सम्भावना की असम्भवता का खयाल आते ही उसके हृदय मे एक टीस उठी, मानो किसी ने उसके दिल मे खजर भोक दिया हो। जी धँस गया।

और उसके शरीर की सारी शक्ति और मन का बल लुप्त हो गया। और पैरो की नसो मे एक विचित्र प्रकार की ठण्डी ऐंठन शुरू हो गयी, जो कुछ क्षणो तक कायम रही।

कुछ पलों बाद बिजली की चमक सा एक चित्र उसके दिमाग म कौध गया। उसने उसक बारे म तो विचार ही नही किया था। वह अवश्य देगा। किन्तु कैसे देगा ? दे तो वह सकता है, किन्तु । मॉगे कैस ? उसे कैसे समझाया जाय ? यही तो समस्या है !

यह सोच लेन के बाद रामलाल फिर अपने पूर्व-विचार पर आ गया। जिस व्यक्ति के पास जान के लिए वह घर से निकला था, उसी ओर सक्रमण करना चाहिए, यही उसन निर्णय किया। उसे पल भर क लिए सन्तोप हुआ, जा काफूर हो गया इस खयाल के आते ही कि शायद वह व्यक्ति घर पर न हो अथवा गाव पर चला गया हो।

वह कुरसी से उठ खडा होन को ही था कि उसकी निगाह दूसरे टेबिल पर पडे एक अखबार पर गयी। उसके नीचे एक दूसरा अखबार भी था। यद्यपि उसे देर हो रही थी, वह मोह सवरण न कर सका, और उसन अखबारो का उठा लिया।

पन्ने पलटत पलटते वह एक समाचार पर ठिठका। मध्य प्रदेश के किसी कस्बे के एक ग्रामीण शिक्षक न आत्महत्या कर ली। रेल के नीचे वह कट गया। जेब म एक पुरजा पाया गया जिसम लिखा था कि 'चालीस रुपये माहवार तनख्वाह और पाँच रुपये महँगाई। कुल रुपये पैंतालीस म गुज़र-बसर करना असम्भव है। घर म बीमारी और वडा परिवार। जमाने से तग और दुनिया से हिरास, दिल स शिकस्त और तिश्नाकाम, मैं एक टीचर अपने प्यारे परिवार का उदर भरण करने म असमर्थ हूँ। पैंतालिस रुपये म पेट और घरवालो की सेहतें नही पाल सकता। नामुराद और नाकामयाब मै टीचर खुदकुशी कर रहा हूँ।"

यह खबर मोटे-मोटे हर्फो मे **ब्लिट्ज** मे उसन पढी। यह भी पढा कि जगह-जगह सभाएँ हो रही हैं। टीचर देशपाण्डे की स्मृति को अमर बनाने क लिए नौजवानो ने गरीब शिक्षको के सवाल पर आन्दोलन छेड दिया है। जिन-जिन शहरो, कस्वो और गाँवो मे सभाएँ हो रही थी उनक सक्षिप्त समाचार एक के नीचे एक दिये गये थे। जनसेवी उग्र राजनीतिक पार्टियो और स्वतन्त्र मतवादी कार्यकर्त्ताओ ने इस सवाल को अपने हाथो म ल लिया। सभाओ म सरकार की आलोचना की गयी और प्राथमिक शिक्षकसघ से आग्रह किया गया कि वह तुरन्त प्रान्त व्यापी आन्दोलन छेड दे। किन्तु शिक्षक सघ के फैसले के लिए रुकन की जरूरत नही। जहाँ-तहाँ स्थानीय सघर्ष छेड दिय जायें।

उस अखबार ने वडे अच्छे ढग से इस समाचार को छापा था। वह अक कुछ पुराना होन पर भी, रामलाल को बिल्कुल नया लगा। उसको पढत-पढते उसे भी जोश आ गया। उसक दिल की सारी नाउम्मीदी एक विश्व व्यापी अगार मे रूपान्तरित होकर उसके दिल को गरमी और आत्मा को किरण प्रदान करने लगी। बीमार को जैसे सेहत प्राप्त होती है, भूखे को जैसे अन्न मिल जाता है, निस्सहाय को जैस कोई उद्धारक अभिन्न-हृदय मित्र के दर्शन होते हैं—बिलकुल उसी तरह रामलाल को एक सत्य क दर्शन प्राप्त हुए, वह सत्य जिसका वह स्वय

एक अग है। रामलाल ने अपने-आपको प्राप्त कर लिया, अपने-आपको खोज लिया।

क्या रामलाल स्वय टीचर देशपाण्डे नही है, जो रेल के नीचे कटकर मर गया ? क्या उसन कभी नही सोचा था कि अपनी उलझनो की दुनिया से फरार होन के लिए निश्चय कर डाले ? पर हाँ, उसम और देशपाण्डे म एक फर्क था। ग्रामीण शिक्षक मामूली मैट्रिक पास था इसलिए उसे कट मरने की सूझी। रामलाल ग्रेजुएट है, उसन (अपनी कल्पना मे) एक रिवाल्वर पाया—भरा हुआ रिवाल्वर। उसन अपनी स्त्री पर दो फैर किये। एक एक फैर से दोनो बच्चो को खत्म कर दिया, और बाकी के सब फैर अपन सीने पर कर दिये। काम खत्म, पैसा हजम। खुद खत्म हुए, दुनिया खत्म हुई। उसकी लाचार बेबस गरीब जिन्दगी पर दया दिखानेवाले माँ-बाप, भाई-बहन और रिश्तेदारो की दया के भाव, उस व्यवस्था, उस पद्धति के खिलाफ घृणा—ज्वलन्त विपाक्त घृणा के रूप मे बदल गय। पर शायद रामलाल को देशपाण्डे से जिन्दा रहने का ज्यादा मौका था, इसीलिए वह अब तक जीवित रह सका। तो क्या हुआ ! देशपाण्डे और उसकी श्रेणी एक ही है।

रामलाल स्वय देशपाण्डे है, और विलखता परिवार भी है जो आज किसी गाँव मे—दूर किसी गाँव मे, जिन्दगी की सियाह चट्टानो पर बीज बोने की पागल कोशिश कर रहा है। रामलाल वह बेचैन नौजवान भी है जिसने देशपाण्डे की खुदकुशी की खबर सुन, इनक्लाब की आग लगाने की हिम्मत और जुर्रत की और गिरफ्तार हुआ। रामलाल वे सभाएँ, वे जलसे, वे पोलिटिकल डिमास्ट्रेशन भी है, जो देशपाण्डे और उसके परिवार के लिए आग के शोलो की मानिन्द भडक उठे। किन्तु सबसे खूबसूरत रामलाल की वह सूरत है, वह शक्ल है जो एक टीचर की होती है, बाल बढे हुए, पीले चेहरे पर थकान और सयम का सौन्दर्य। छोटे-छोटे ग़रीब, फटेहाल, बच्चो के दिलो-दिमाग मे ज्ञान का एक एक बीज डालने म प्रवीण, स्नेह-विश्वास सादगी की मूरत, वह झुलसा हुआ पर मुस्तकिल दिमाग़, फटेहाल पर गम्भीर, लाचार पर दृढ, ग़रीब पर इल्मोअमल का बहुत बडा पैगम्बर, वह मामूली ईमानदार टीचर, वह दिमाग़ी मजदूर। समाज मे जिसकी कोई वक्त नही, बनिया जिसे हिकारत की नजर स देखता है, अफसर जिसे तुच्छ समझता है, प्रोफेसर जिसे दयनीय मानता है, सरकार जिसे कीडा समझती है और जिससे इकतरफा बलिदान माँगा करती है, वह ग्रामीण शिक्षक ! रामलाल न अपनी सूरत अपने दिल मे देख ली।

इन सारे भावो को उसके हृदय म आने और अन्त करण मे निमग्न होने मे तीन मिनट से ज्यादा समय न लगा होगा कि उसने पाया, सामने की टेबिल पर एक परिचित सूरत दीख रही है। किन्तु अपन भावो की गरमी अभी गयी नही थी। उसे दूसरो की ओर झाँकने की अभी फुरसत कहाँ ! वह तो अभी सोच रहा है।

रामलाल न बौद्धिक रूप से भी कुछ निष्कर्ष निकाले। एक तो यह कि वह स्वय विशाल भव्य उपन्यास हो सकता है और उसका अगभूत एक पात्र भी। पर अभी वह कुछ नही। पर उस होना चाहिए। नवीन शक्तियो की ऊष्मा उसमे जरूरत से ज्यादा हो सकती है, और यकायक भडक सकती है, पर अभी तक वह अपने को उससे बचाता आ रहा है··पर कब तलक ? उसे उलझ ही जाना चाहिए। यही धर्म है।

उसने सिर ऊँचा कर काफे के हॉल में चारों ओर नजर दौडायी। पर पास की सूरत एकदम दिखायी न दी, किन्तु एक पल में अन्दर हॉल का रिव्यू समाप्त करने के बाद उस पर नजर ठिठकी।

चेहरे पर परिचय की मुसकराहट थी। वह मुसकराहट जो कुछ कहना चाहने के पहले ओठों पर खिल उठती है।

रामलाल के मुँह से फिसल गया, 'कहिए, आप इधर कैसे ?"

'क्यों, मैं तो अक्सर आती हूँ यहाँ।"

"सदर में रहती हैं क्या आप ?"

'नहीं, जब मैटिनी देखना होता है तो इधर भी "

रामलाल को खयाल आया कि हाँ, लोग छुट्टी के सुबह साढ़े-दस बजे मैटिनी देखने आया करते हैं। कला प्रेमी शिक्षा-प्राप्त नागरिक समुदाय इधर झुक जाया करता है। पर रामलाल क्यों इधर आया करता है ? पैसे की तलाश में निकला तो इधर भटक पड़ा। लाहौल विलाकूवत !

अपने अभाव के बोध से उसके हृदय में एक टीस उठी। वह अस्थिर हो गया। लड़की उससे कुछ नये प्रश्न-उत्तर यानी बात की अपेक्षा करती हुई नीचे गरदन डाले थी।

रामलाल ने ऊँची निगाह कर उसकी ओर देखा और लड़की ने उसकी ओर। पर वह कोरी और सूनी दृष्टि थी। परिचय की मुसकान के बाद सहज सकोच ने अपरिचय का जामा पहन लिया।

बहाने से रामलाल ने दूसरे अखबार भी उठा लिये। पर वह सोचता गया, 'होता है, कभी-कभी यह भी होता है। एक-दूसरे से बिलकुल अपरिचय रहते हुए भी लोग अपनी सारी अपरिचितता को यथास्थान सुरक्षित रखकर मात्र बातचीत करने के लिए कुछ बोल उठते हैं, उसी का यह उदाहरण है।'

किन्तु उस लड़की की सूरत मन में दो पल के लिए रँग गयी। सब कुछ व्यवस्था-बद्ध, चुस्त दुरुस्त। पोशाक बिलकुल सादा, यहाँ तक कि कपड़े की राशन दुकान से मिली हुई कत्थई किनार की मोटी साड़ी और सफेद जम्पर। किन्तु पहनने का तरीका ऐसा कि आँखों में भर उठे।

वह लड़की अपनी जगह से उठी और चुपचाप एक अखबार का फिल्मपेज रामलाल की ओर खिसकाते हुए बोली 'यह उसकी आलोचना। मोशिये वेर्दू है आज मेट्रो में।"

इतने में दो सज्जन काफे में घुसे। वे उस लड़की के पास आये और मराठी में कुछ बोले जिसे रामलाल ठीक ठीक न समझ सका। वे लौट गये। रामलाल ने सोचा, शायद सिगरेट-विगरेट लेने के लिए गये होंगे।

रामलाल ने आलोचना सरसरी तौर पर पढ़ ली और जो पहली चीज उसे लगी वह यह कि उन दोनों में कई बातें एक हैं। खुश होकर मुसकराता हुआ जब वह उस लड़की की ओर देखने लगा तो उसकी नज़र सहसा उसके गले में पड़ी सोने की माला पर गयी।

"ये जो दो सज्जन आये थे, आपके कौन हैं ?"

मेरे पिताजी और दूसरे मेरे मामा होते हैं।"

"पिताजी क्या करते हैं ?"

"वकालत, जो चलती नही।"

रामलाल ने कुतूहल मे सिर्फ गर्दन हिला दी।

लडकी कहती गयी, "इसीलिए मुझे नौकरी करनी पडती हे। उन्होने मुझे पढाया, अब मेरी बारी है दो छोटे भाइयो को पढाने की।"

इतन मे बाहर गये दोनो सज्जन लौट आये और लडकी उनसे बातें करने लगी। कॉफी की ट्रे भी आ गयी थी।

रामलाल फिर अकेला पड गया। उसके मन मे लडकी की सोने की माला चमकने लगी। वैसी माला अगर आज उसके पास होती तो उसकी कई कठिनाइयाँ दूर हो जाती। किन्तु जब रामलाल अग्रवाल ने होश सँभाला तो उस महाराष्ट्रीय लडकी से कही ज्यादा सोना उसके पास था। किन्तु आज कुछ भी नही। कठिनाइयो ने न सिर्फ सोना खा डाला बल्कि शरीर को भी झुलसा दिया। उसे कमजोरी और रोग का घर बना दिया। तनख्वाह की बडी रकम डॉक्टरो के पास जाने लगी और कर्ज का पहाड ऊँचा होता चला गया। चिन्ता का धुआँ दिलोदिमाग मे हमेशा के लिए भर उठा और आत्मा की लौ धुआँने लगी। जीवन म जीवन की अभिरुचि जाती रही। चलती का नाम गाडी है। किसी तरह जिन्दगी चले, इसी की फिक्र सवार रहने लगी।

रामलाल की बहू साविन्नी जब विवाहित होकर आयी थी तो उसका रूप ही कुछ और था। एकदम स्वस्थ और आकर्षक। स्वास्थ्य ऐसा कि जो किसी वृक्ष का स्वास्थ्य होना है, जिसमे बडी शक्ति और बहुत आत्मसामर्थ्य स्वाभाविक रहता है [illegible] होना रहता

वह एक

[illegible] सकता

है।

रामलाल के मन मे अपनी पत्नी का चेहरा उभर आया और तुरन्त ही उस रूप मे परिवर्तित हो गया जब साइकिल पर बैठे हुए इधर आते समय उसकी कल्पना मे विराजित हुआ था। उसका जी धँस गया। वह चेहरा एक कर्तव्य की ओर इशारा कर रहा था—वह कर्तव्य जिसका फल हो, न हो।

एक चिन्ता, एक घोर फिक्र का खेकडा उसके दिमाग मे दीवारो पर अपने आठो पाँवो से रेंगने लगा। और उसके दिमाग मे एक खयाल आया—एक ऐसा खयाल जिसकी सियाह शक्ल को न देखने की कोशिश म था कि इतने मे…

"सुना, आपने—इन्दौर मे मजदूरो पर गोली चल गयी!"

रामलाल अपनी वैचारिक तन्द्रा म मे जाग उठा। बगैर किसी औपचारिक परिचय, 'नमस्ते' आदि क्रियाकलापो के, लडकी के पिता का उसमे बात करना रामलाल के लिए थोडा आश्चर्यकारी सिद्ध हुआ। किन्तु उनके सौजन्य की प्रतीति के कारण अपना विस्मय प्रकट न करते हुए उसके मुँह स यह उद्गार फिसल पडा, 'एसा! जो हो जाये सो थोडा · जमाना बडा नाजुक है।"

लडकी के पिता ने, रामलाल का बुजुर्गाना जवाब सुनकर, बडे गौर से उसकी तरफ देखा। उनकी सूरत उसके प्रति हलके विस्मय और ध्यान के भाव मे इस तरह फँस और सिकुड गयी कि रामलाल उनके भाव को ताडकर एकबारगी हत-बुद्धि हो उठा। फिर भी, अपने-आपको सँभालकर वह कुछ कहने ही वाला था कि

पिताजी बोल पडे, "मुझे कहना चाहिए था कि जमाना नाजुक है · पर वह, दर-असल, इतना नाजुक नहीं जितना आप सोचते हैं। जमाना जा है और जो आ रहा है वह सख्त है, सख्त।"

रामलाल कुछ कहने के लिए कह गया, ' निहायत सख्त

" और वह सख्त कदम, सख्त आदमी सख्त संगठन पसन्द करता है " मूंछों मे मुस्कराते हुए उन्होंने कहा।

रामलाल ने सोचा, यह उस पर चोट है। पर, अदब के मारे जवाब न दे पाया। उसने कहा, 'घटना कब की है ?'

"कल की।"

पिताजी, जिस ढंग से बात किये जा रहे थे उसमें जाहिर था कि न सिर्फ उन्हें राजनीति में दिलचस्पी है, वरन् एक जनवादी दृष्टिकोण भी रखते हैं। बातचीत, बहस मुबाहिसा के शौकीन तो हैं ही साथ ही उन्हें दिल और दिमाग़ भी है। उस व्यक्ति ने रामलाल को अपनी गैर-रस्मी बेतकल्लुफ बातचीत से प्रभावित तो किया ही, मित्र-भाव से उसका आह्वान भी किया। फिर भी, रामलाल ने सोचा, उसको अपनी बुजुर्गी का खयाल कर उसे लौंडा ही समझना था। उसे आवश्यकता से अधिक प्रतिष्ठा और सम्मान दिया। रामलाल को यह सचमुच खटक गया।

"आप क्या समझते हैं ? कांग्रेसी हुकूमत चन्द दिनों की है। ऐसे जुल्म धक नहीं सकते। अंगरेजों के जमाने में इससे ज्यादा आज़ादी थी। मानते हैं या नहीं आप ? गोली चलाना तो एक खेल हो गया है पुलिसवालों के लिए "

इतने में एक सज्जन खादी का कोट-पैण्ट पहने हुए इसी ओर आते दिखायी दिये। और सीधे पिताजी की बग़लवाली कुरसी पर बैठ गये। वह गोरा, हजामत किये साफ चमकदार चेहरे का युवक था। मुख पर प्रतिभा महत्त्व और अहंकार की आभा झाँक मारती थी।

उसे बगल में बैठे देखकर पिताजी ने उसे इस तरह पूछा मानो उस डॉट रहे हो ' क्यों जी ठीक है न ?"

नवागन्तुक ने व्यंग्यपूर्ण स्मित किया जिसकी परवाह न कर, लडकी के पिता बारी-बारी से दोनों की ओर देखते हुए बोले, अब तो आ रहा है कम्युनिस्ट, कम्युनिस्ट ! ।"

उनके चेहरे पर ऐतिहासिक भवितव्य की आस्था और उसके ज्ञान की गर्व लौ उठ रही थी।

नवागन्तुक और लडकी के पिता में बहस छिड़ती हुई देख रामलाल ने अपने अकेलेपन का सँवारते हुए अपने को सँवारना चाहा। नवागन्तुक के आगमन की घटना ने उनके मन में एक विचार को जाग्रत् किया उस विचार ने दूसरे विचार को, दूसरे विचार ने तीसरे विचार को। इस तरह एक धारा चल पडी। इस मानसिक आवेग पर एक सांवली परछाइँ पडी हुई थी उसी सियाह शक्ल की जिसको भुलाने की कोशिश रामलाल ने की थी। पिताजी से बातचीत के दौरान में वह छाँह सिर्फ एक ओर हट गयी थी किसी कोने में घनीभूत होकर खडी हो गयी थी। किन्तु अकेलापन मिलते ही उसकी साँवली परछाइँ प्रत्येक भाव और विचार

पर पड़ने लगी।

गाँवली परछाईं-पड़े इस विचार भावावेग को धक्का देनेवाला वाक्य था वह, "अब तो आ रहा है। कम्युनिस्ट, कम्युनिस्ट!"

उस वाक्य ने रामलाल के भावों को और भी जटिल, तीव्र और वेदनापूर्ण बना दिया। अब वाक़े की स्थिति उसे असह्य मालूम होने लगी। उसे लगा, वह वहाँ से उठ पड़े। साथ ही उसे पिताजी का क्षोभ भरा वाक्य सुनायी पड़ा, "ग्वालियर में क्या किया!"

'वह किया जो होना नहीं चाहिए था।" बड़ी संजीदगी के साथ नवागन्तुक ने जवाब दिया।

"लेकिन इसकी जिम्मेदारी किस पर है?" उत्तेजित होकर पिताजी ने पूछा।

उन्हें समझाते हुए नवान्तुक ने जवाब दिया, "सरकार पर, जनता पर, शासन-यन्त्र पर, समाज पर, हम सब पर।"

पिताजी पकड़ में आ रहे थे। एक दूसरा तर्क घुसेड़ा जा रहा था। लड़की ने अधीर होकर कहा, "मुख्य रूप से किस पर? जनता पर या सरकार पर?"

निस्संकोच रूप से नवागन्तुक ने जवाब दिया, "जनता पर।"

इस उत्तर की किसी को अपेक्षा न थी। उनको हतबुद्धि होते देखकर उसने कैफियत पेश की, "सवाल यह है कि हम लोग अभी जनतान्त्रिक उपायों से अनभिज्ञ हैं। जनतन्त्र के सिद्धान्त समझते हुए भी हमारी आदतें ऐसी हैं कि सरकार को शक्ति का उपयोग करना पड़ता है। हममें जनतान्त्रिक संस्कृति की कमी है। क्या कारण है कि फ्रांस, इग्लैण्ड, अमरीका आदि देशों में इस तरह के दृश्य नहीं दिखायी देते? क्योंकि वे जानते हैं कि काम किस तरह करना चाहिए फिर हमारी आजादी को तीन ही साल हुए हैं।"

पिताजी ने क्षोभ और घृणा से उसकी ओर देखते हुए कहा, "हमारे शासक भी जनतन्त्र का उपयोग करते हैं? जन-नेता बने फिरते हैं! गुण्डा ऐक्ट कहाँ-कहाँ किस किस पर लगाया गया है, जानते हैं आप? विरोधी पार्टियों के नेताओं और कार्यकर्ताओं पर ही केवल नहीं, पुराने कांग्रेसी कार्यकर्ताओं पर जो सत्ताधारी दल के खिलाफ बोलते और कार्य करते थे, उन पर भी लगाया गया है। अजी, मेरा भतीजा कब से गुण्डा हुआ? आज उसे पन्द्रह साल हो गये कांग्रेस का काम करते-करते, कभी वह गुण्डा नहीं हुआ, और यकायक कांग्रेस पंचायत के चुनाव के मौके पर गुण्डा ऐक्ट के मातहत वह गिरफ्तार! वाह रे, जनतन्त्र! विद्यार्थी अपनी आवाज उठायें, मजदूर और किसान अपनी माँगें बुलन्द करें तो गोलियों की बौछार!"

लड़की ने भी अपनी प्रतिभा बताने की कोशिश की। "काला बाजार होता है तो जनता का गुनाह है, बनिये का नहीं। रिश्वतखोरी होती है तो जनता का गुनाह है! गोया हमारे नेता और नौकरशाही दूध के धोये हैं।"

मामा साहब को भी जोश आ गया। बोले, 'मुझे बताइए! इन्दौर के मजदूरों पर, जब वे अपनी माँगों के लिए मिल मैनेजर के आफिस के सामने प्रदर्शन कर रहे थे, गोली चलाने की क्या जरूरत पड़ गयी? वैसे ही ग्वालियर के विद्यार्थियों पर—अजी! ग्वालियर में दोबारा गोली चली उन्हीं विद्यार्थियों पर, जब वे सड़क

पर डिमास्ट्रेशन कर रहे थे ! और मध्य भारत सरकार ने प्रेस-कम्यूनिके निकाला एक शर्मनाक विज्ञप्ति थी वह। साहब अखबारों ने उस प्रेस कम्यूनिके की ऐसी धज्जियां उड़ायी !'

लड़की ने जोड़ा नवभारत टाइम्स ने तो अपने प्रधान वक्तव्य में उसकी खूब खबर ली।

मामा साहब ने उत्साह से कहा अजी ब्लिट्ज ने भी ऐसी खबर ली है और अभी तो ख्वाजा अहमद अब्बास का लास्ट पेज आने का है! और उन्होंने मुसकराकर नवागन्तुक की ओर देखा।

किन्तु नवागन्तुक के चेहरे पर लज्जा अथवा संकोच का बोध न था। उसने हँसते हुए चिल्लाकर कहा अरे मुझे कोई काफी तो पिलाओ ! अब्बास कम्युनिस्ट है। वह खतरनाक अभियोग सुनकर तीनों लोग बोल पड़े तो हम सब लोग कम्युनिस्ट हैं! माफ करना माधवप्रसाद !'

माधवप्रसाद बोले काफी आ गयी।

पर वह कम्युनिस्ट नहीं है कामिनफार्म कम्युनिस्ट! वे लोग और भी खतरनाक होते हैं! आपके लिए तो खास तौर पर मामा साहब ने धमकी दी।

मैं जानता हूँ कि फांसी पर लटका देंगे मुझे वे! माधवप्रसाद ने कहा।

रामलाल बीच में घुस पड़ा नमस्ते माधवप्रसादजी !

नमस्ते भाई नमस्ते ! तुम यहाँ कहाँ ! काफी पीओ ! ऐ बाय काफी लाओ। बहुत दिनों में दिखायी दिये यार ! (लड़की के पिता की ओर उन्मुख होकर) साहब यह मेरा छुटपन का साथी है—लंगोटिया यार ! यह आज से पन्द्रह साल पहले मुझसे लें मिज़रेबिल्स काउण्ट ऑफ माण्टक्रिस्टो और हंचबैक ऑफ नोत्रदाम ले गया सो ये आज तक लौटा रहा है। पन्द्रह साल के दरम्यान जब-जब ये मिलता रहा मैंने इसे याद दिलायी और यह हमेशा वचन देता रहा पर (हाथ के इशारे से) भूल गया। क्यों बे ! माधवप्रसाद ने प्यार से कहा।

सब लोग रामलाल सहित हँस पड़े।

रामलाल ने हृष से उत्फुल्ल होकर कहा और इससे पूछिए मेरी ये कितनी किताबें ले गया और बेचकर खा गया। मैंने इस बारे में जब इसके घर पर शिकायत की तो इतनी पिटाई उड़ी कि उसके दाग अभी भी पीठ पर हैं। बताओ तो पीठ खोलकर बताओ!'

हमारी इतनी बेइज्जती नहीं कर सकते जनाब आप !

तो क्या कर लोगे ! नौकरी से निकलवा दोगे और क्या !

माधवप्रसाद ने दुखी हो पड़ने का नाट्य किया। चेहरा कुछ लाल और गम्भीर बनाकर निगाहें उसकी ओर कर दीं। और फिर धीरे से धीमे स्वर में कहा ऐसी इच्छा होती तो न मालूम कब का तुम्हें निकलवा देता। पर कुछ सोचकर ही रह गया।

रामलाल ने जवाब देना उचित न समझा पर मन में कहा सो तो ठीक है शत्रु को नपुंसक बनाकर रखना भी तो एक करिश्मा है।

माधवप्रसाद ने कहा आप हैं हमारे वयोवृद्ध कांग्रेससेवी श्री आत्माराम दवीर एडवोकेट आप इनके मामा साहब और आप कुमारी दवीर।

परिचय हो चुका है! सन्ताप से गरदन हिलाते हुए रामलाल ने कहा।

वह आगे बोला, "तो मैं चलूँ, दजाजत हो।"

"अच्छा," सबने कहा। माधवप्रसाद ने मजाकिया स्वर में पूछा, "किताबें कब लौटा रहे हो?"

लडकी ने मुँह फेरकर उसकी ओर मुसकराते हुए अभिवादन किया। और उसकी सोने की माला रामलाल की आँखों में चमक उठी।

रामलाल के ओझल हो जाने पर लडकी के पिता ने महानुभूति के स्वर में कहा, "बहुत गरीब और नेक मालूम होता है," और उन्होंने माधवप्रसाद के मत के हेतु उसकी ओर देखा।

माधवप्रसाद ने एक गहरी उसाँस छोडते हुए कहा, "नेक तो खैर है ही," फिर कुछ रुककर आगे कहा, "लेकिन गरीब वह जान-बूझकर बना हुआ है।"

"सो कैसे?" लडकी ने उत्सुक होकर पूछा।

"जो आदमी गरीब बना रहना चाहता है, उसका कोई इलाज है? कितनी ही तो नौकरियाँ छोडी उसने। मात्र भावुकतावश। मैंने उसकी कई बार मदद की, पर उसने कभी अपनी हालत नहीं सुधारी। दिमागी फितूर उस पर आज भी सवार है।" उसने अर्थभरी मुसकान से तीनों की ओर देखा और कहा, "भाई, अगर रोटी कमाना हो तो उसका तरीका सीखो। दुनिया की फिक्र छोडकर अपनी बढती की चिन्ता करो। मैंने उसे इतने अच्छे-अच्छे काम दिलाये, पर उसने एक भी मन लगाकर नहीं किया…"

इतना कहकर माधवप्रसाद ने तीनों की ओर तृप्तिपूर्ण दृष्टि से देखते हुए आत्म-सन्तोष की साँस ली। किन्तु उसकी बातों में सन्निहित गुप्त व्यंग्य किसी से छिप न सका, जिसका उपसंहार उसने इस तरह किया, "ही इज ए नेवर-डु-वेल।" (वह एक निकम्मा और दयनीय व्यक्ति है।)

[सम्भवत अपूर्ण कहानी का अंश। सम्भावित रचनाकाल 1950]

नयी ज़िन्दगी

अँधेरी रात में सडक पर बिजली के बल्ब के नीचे दो छायाएँ दीख रही थीं। एकदम निर्जन वातावरण था। तालाब की लहरें थपेडे मारती हुई यहाँ से वहाँ तक एक दूसरे से स्पर्धा कर रही थीं। सिनेमा के दूसरे शो के लोग सडक से गुजर चुके थे। हवा तेजी से चल रही थी। दोनों छायाएँ एक चौराहे पर आ गयीं। तब एक ने दूसरे से कहा—

"देखो, सामने घण्टा-घडी दो बजा रही है, तुम जाओ।"

तिवारी ने इसका जवाब दिया, "कैसा वातावरण है, यह रात, यह घण्टाघर! यह ठण्डी हवा, और तुम कह रहे हो कि जाओ!"

रमेश ने तिवारी को आधे रास्ते तक और पहुँचाया और यह कहानी सुना दी

कि किस तरह रमेश कान पर जनेऊ लपेटे हाथ मे लोटा लिये घण्टो बात कर सकता है और फिर यह परवाह नही की ऑफिस भी जाना है। रमेश ने कहा "इस सम्बन्ध मे मैं बहुत बदनामशुदा हूँ,लेकिन समझदार होना चाहता हूँ। इसलिए अब तुम खिसक जाओ और मुझे भी जान दो।"

"लेकिन यार, बातें तुम्हारी कितनी नफीस होती है। तुम्हे छोड जाने का जी तो नही चाहता लेकिन जा रहा हूँ।"

जब तिवारी रवाना हो गया ता रमेश बहुत देर तक उसको देखता रहा, और मन ही मन बुदबुदाया, 'कितना भला आदमी है। लेकिन ··काश मैं लिख सकता तो उपन्यास मे चरित्र खडा कर देता।'

जीवन के घनिष्ठ क्षणो का जो एक आत्मविश्वास होता है वह रमेश के मन मे इस समय लहरा रहा था। शरत् और गोर्की, परिचितो के स्वभाव-चित्र आदि, निष्कर्ष रूप से, मनुष्य-सुधार की ओर जिस प्रकार इगित करते है, ठीक वही बात आज रमेश के मन म रस की भाति उमड रही थी। इस समय वह आनन्दमय था। उसको लग रहा था कि अपनी कोठरी म बन्द वह छोटी-सी इकाई मात्र नही, वरन् वह स्वच्छन्द समीर है जो सार ससार म व्याप सकता है।

आसमान मे तारे चमक रहे थे और सब ओर शीतलता की गन्ध फैल रही थी। रमेश खुश था।

किन्तु उसका यह आनन्द क्षणस्थायी था। बातें करके परिस्थिति नही सुधरा करती। सूने मे सपन दखने स ज़िन्दगी नही बना करती।

गली को पार करत ही घर की अवरुद्ध हवा न उसके दिल का कचाट लिया। उसकी स्त्री—माना एक बीमार छाया! उसक बच्चे—प्रूफ कापी म टूटे हुए अक्षर! और वह स्वय·

वह सोच रहा था कि घर म प्रवेश करते ही झिडकी मिलेगी और लडाई का पूरा वातावरण बन जायगा।

किन्तु सब दूर एकदम सुनसान शान्ति थी। एक ओर एक फटी चादर पर उसकी स्त्री सो रही थी। वही छाट बच्च आडे-तिरछ सो रहे थे। कोन मे लोहे के छोटे स्टूल पर टीन की ढिबरी जल रही थी। वही दरवाजे मे पति के लिए साफ बिस्तर बिछा दिया गया था।

थका हुआ चूर रमेश अपना साफ बिस्तर देख खुश हो गया। उसन स्नेहपूर्वक *अपने बाल बच्चो की तरफ, स्त्री की तरफ* दखा, चुपचाप पुस्तके उठा ली, चिमनी तकिए की तरफ रखी और लट हुए पढन लगा।

एक बच्चा चीख उठा। पत्नी की आख खुली। पति ने सहानुभूति, कोमलता और स्नेह उँडेलकर कहा, "तुमन खाना खा लिया?"

स्त्री ने जोरदार भयानक अवरुद्ध स्वर म उत्तर दिया, "भूख लगी हो तो खुद जाकर खा लो।"

इस आवाज़ को रमेश न पहचान लिया। बरसन के पहले गडगडाती हुई घनघटा-जैसी ही वह आवाज़ थी।

वह चुपचाप पडा रहा और किताब खोलकर दूसरा अध्याय पढने लगा।

लोगों मे जानकारी की इतनी भूख थी—खास तौर स इस पिछडे हुए मुहल्ले के जवानो मे ज्ञान की ऐसी प्यास थी कि रमेश अपने लोगो का मुखिया हो गया

था। किराने की छोटी-सी दूकान पर, पानवाले के नुक्कड पर, अथवा उस भूरे-मटमैले दीवनेवाले छोटे-से होटल में दुनिया की घटनाओ के बारे मे लोग उससे तरह तरह के सवाल पूछते, और वह उन्हे समझाता हुआ अपने जवाब देता। उसके विचारो की ईमानदारी और गम्भीरता, दरियादिली और फक्कडपन और उसकी जानकारी लोगो के दिल को छू लेती और दिमाग पर हावी हो जाती।

लेकिन रमेश ही था कि उनके उन्नयन की उसने ज्यादा परवाह नही की। वह तो इसी बात से खुश था कि लोग उसके प्रभाव म कितने शीघ्र आ जाते हैं। वह तो समाज की ऊँची-स-ऊँची सीढी पर चढना चाहता था। लेकिन उस चक्करदार जीने पर चढने की योग्यता उसमे न थी। फिर भी अगर उस समाज के कुछ लोग उससे बात कर लें या सभा-सोसाइटियो में उद्यत होकर वह अपना रग जमा दे तो उसे ऐसा लगता था मानो उसने नया किला सर कर लिया हो। पढने-पढाने और बात करने का उसे नशा था। अपने विचारों-भावो और इरादो ने ही, उसे इतने जोर का धक्का दिया था कि उसके आघातोसे वह धीरे-धीरे सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्र मे बढता चला गया, और उसकी आज इतनी ताकत हो गयी थी कि वह 'नेतृत्व की द्वितीय पक्ति' में आकर बैठ गया था। साथ ही, मजा यह है कि, उसे अपनी कर्तृत्व-शक्ति और प्रभाव के स्वरूप की ज्यादा जानकारी न थी। लोग, अनेक अवसरो पर, उसका मुँह जोहते, पर रमेश था कि अपने को निकम्मा समझकर भयानक हीन भाव से शिथिल हो जाता।

किन्तु, इसके ठीक विपरीत, रमेश म अपने मुहल्ले की मिट्टी बोलती थी। अगर देशभक्ति के मानी जनता की ज़िन्दगी मे दिली ताल्लुकात होते है तो रमेश मे सचमुच देश के प्रति प्रेम था। वह हमेशा यह सोचा करता कि हमारा उद्धार कैसे हो। नीम के पेड के नीचे टोकरी में गोबर भरती हुई लडकियाँ, छोटे-से टीले पर खडी हुई ध्यानमग्न बकरी, खोमचा बेचकर घर पर लौटा हुआ अधेड रामकिसन, मॉडेल मिल से हाथ मे टिफिन का खाली डिब्बा लेकर चलनेवाले नीचे मजदूरो का जत्था, विशाल बरगद का पेड और उसके नीचे रँभाती हुई गायें, उसकी कविता के प्रतीक हो सकते थे। वाणी का वह धनी था। उसकी सशक्त गद्य-वाणी मे से ज़िन्दगी के अनुभव, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के दृश्य, स्थानीय और प्रान्तीय हलचलो के नज़ारे कविता की भाँति फूट पडते।

एक दिन वह मेरे पास अत्यन्त उदास होकर बैठ गया और कहने लगा, "मुझे एक ऐसा गुरु चाहिए जो छडी मारे। वह मुझ-पत्थर मे से एक सच्चा मनुष्य पैदा कर सकता है।"

मैं उसकी आत्महननमयी आलोचना से विक्षुब्ध हो गया। जवाब दिया, "तुम एक लीडर हो, विचारक समझे जाते हो। फिर ऐसी बात क्यो ?"

मैंने उसकी पीठ थपथपायी और कहता गया, "आदमी खुद अपने मर्ज़ का डॉक्टर होता है, और आजकल तुम अपनी आलोचना खुद ही करने लग गये हो।"

रमेश जानता था कि मैं उसका मात्र प्रशसक ही नही हूँ, उसका आलोचक भी हूँ।

मेरी बातें सुनकर, उसने पलटकर व्यग्य मे जवाब दिया, "लेकिन मैंने अपनी आलोचना करना छोड दिया है, मेरे दोस्त उसे बखूबी कर लिया करते हैं।"

उसके इस स्वर में पीड़ा-भरा अहंकार था। अपनी बातें न छोड़ने की ज़िद थी। मैं उससे विक्षुब्ध नहीं हुआ। मैंने बात बदलते हुए कहा, "यालू के किनारे पर अमरीकी बमबारी की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रियाएँ क्या हुईं ?"

वह बुरी तरह हँस पड़ा। उसकी हँसी में विषाद था, खेद था और निस्सहायता थी। साथ ही आँखों में व्यंग्य की एक कठोर चमक थी। वह व्यंग्य जो स्वयं अपने ऊपर भी था और दूसरों पर भी।

यह मुझे मालूम था कि घर उसे काटने को दौड़ता है। उसका कारण था—दो भिन्न वातावरण। एक वह जो उसके मन में है, दूसरा वह जो उसके घर में है। दुनिया के बारे में सारी योजनाएँ अपनी जेब में लेकर चलनेवाले लोगों के जीवन में, उनकी सारी सफलताओं के बावजूद, अगर मैं उनमें अव्यवस्था, असगठन और आवारागर्दी देखता हूँ तो, न जाने क्यों, मुझे बहुत बुरा लगता है। रमेश जानता है कि कटु होकर, कठोर होकर, मैं उसे क्यों झिड़कारता रहता हूँ।

एक दिन, रमेश रात को बहुत देर से घर पर पहुँचा। अपनी डायरी में बहुत-सी बातें नोट की। वह सुबह किस वक़्त उठेगा, किस पुस्तक के कितने नोट्स लेगा और कहाँ-कहाँ पत्र लिखेगा, किन-किन मीटिंगों के लिए उसे भाषण तैयार करना है, किस आदमी से कौन-सी पुस्तकें प्राप्त होंगी, इत्यादि, इत्यादि।

यह सब हो चुकने के बाद उसे खयाल आया कि बीवी कह रही थी कि घर में सामान नहीं है। कैमिस्ट की दूकान से बच्चों के लिए कुछ दवाएँ लाना है, आदि। ऐसे खयाल आते ही रमेश की नानी मर गयी। उस पर दुःख के पहाड़ टूट पड़े। रमेश दुनिया इधर की उधर कर सकता है, लेकिन पैसे कमाना · और इतने पैसे कि घर का और उसका काम चल सके ''उसके बूते के बाहर की बात थी। उसने लेखनी फेंक दी, डायरी फेंक दी, बाल्ज़ॉक की कहानियाँ उठायीं और पढ़ते-पढ़ते सो गया।

सुबह वह सात-आठ बजे उठा। उसके दिमाग में अफ़सोस का धुआँ था। डायरी के प्रयोग ने उसे कोई सहायता न दी। अस्पष्ट दुःस्वप्न की भाँति, ज़िन्दगी के चित्र उसके दिमाग में उभरने लगे। उनसे पिण्ड छुड़ाने के लिए अपनी स्त्री गौरी के पास गया। वह बीमार बच्चे को लिये मुँह फुलाये हुए बैठी थी। हाथ-मुँह धोकर, चाय पीकर रमेश ने बीवी से कहा, "लाओ, मैं दवा ले आता हूँ।"

उस समय पौने दस बजे हुए थे। बाहर प्यारी मीठी सुनहली धूप खिली हुई थी। *रमेश की तबीयत खुश हो गयी, अफ़सोस भाग गया। अब रमेश दुनिया को* काबिज़ कर लेगा। उसके दिल में कल की मीटिंग की बातें तैरने लगीं। समाज के रूपान्तर की तैयारियाँ हो रही हैं। नयी ज़िन्दगी की ताकतें उभर रही हैं। और अरे रमेश, तू अब तक सोया पड़ा है! वह आगे बढ़ा। सामने के एक नुक्कड़ पर, अपनी चप्पल के लिए चमार की दूकान के पास स्थानीय पत्र के एक सम्पादक खड़े थे। रमेश ने सलाम ठोका। उन्होंने गाली देकर बुलाया और कहा, "वाह यार, लेख देते ही रह गये।"

रमेश फीकी हँसी हँसा। कहा कि "बच्चों की बीमारी के कारण वह काम पूरा न कर सका," जो कि सफ़ेद झूठ था। रमेश में फिर से अफ़सोस की लहर दौड़ गयी। जब वह कोई चीज़ नहीं कर सकता है तो वचन क्यों देता है।

लेकिन सम्पादकजी के मैत्रीपूर्ण चेहरे की हँसती हुई सद्भावना के वशीभूत

होकर रमेश ने कहा, "सच मानिए, परसों मैं आपको जरूर दे दूंगा।"

उसने सम्पादक मित्र ने रमेश की हालत देखी, दीन भाव देखा। सहानुभूति से पिघलकर, अधिकार जताते हुए कहा, "लो यह एडवांस ले जाओ, दस रुपये।"

रमेश एकदम खुश हो गया। उसने सोचा कि खुदा देता है तो छप्पर फाड़कर देता है। अब वह अपनी पत्नी को बतायगा कि वह कितना कर्तव्यपरायण है। दूसरा लाभ यह भी है कि केमिस्ट की दूकान से बच्चे के लिए दवा भी आ जायेगी।

सम्पादक से छुट्टी पाकर ज्यों ही वह आगे बढ़ा, उसने सोचा परसों तक तो लेख दे ही देना पड़ेगा, हर हाल में। ऐसा न हो कि फिर अफसोस का मौका आ जाय। कहीं मैं उसको फिर से उल्लू न बना दूं। यह उल्लू बनाना ही तो हुआ, नहीं तो क्या है?

लेकिन किसने किसको उल्लू बनाया? लेख के लिए मेहनत लगती है, सोचना पड़ता है, लिखे हुए को कम-से-कम दो बार लिखना पड़ता है। सम्पादक ने दस रुपये देकर पाँच रुपये कम कर दिये। कुल पन्द्रह होते हैं। लेकिन हर्ज क्या है। पिछले महीने पड़ोस की बुढ़िया से बीवी ने दस रुपये उधार लिये थे। उसने दो रुपये ब्याज के पहले ही काट लिये और आठ रुपये टिकाये और हमें दस वापस देने पड़े।

इन्हीं खयालों में रमेश आगे बढ़ता गया कि एक और सज्जन उसे मिले। ये उसके रोज़ के मिलनेवाले थे। उन्होंने पुकारकर जोर से कहा, "पण्डित नेहरू का वक्तव्य पढ़ा? अमरीकी हमलों के बारे में यालू के बिजलीघरों पर, न?"

"हाँ।"

दोनों के चेहरों पर एक-दूसरे को समझनेवाली मुसकराहटें खिल गयीं। सज्जन ने प्रस्ताव रखा, "चलो कॉफी हाउस चलते हैं, अभी लौट आते हैं।" कॉफी हाउस में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर बहस होती रही। युद्ध होगा या नहीं, होगा तो कब होगा, इत्यादि।

रमेश को इस बात का खयाल ही न रहा कि हाथ में एक और भी काम है जो उतना ही महत्त्वपूर्ण है। गपशप में घण्टा भर लगा। डॉक्टर के यहाँ और देर हो गयी। साढ़े ग्यारह बजे रमेश घर पहुँचा। उसकी स्त्री बीमार बच्चे को लिये बैठी थी। अच्छा हुआ कि उस दिन इतवार था।

रमेश के दिल में यह खटका लगा हुआ था कि बच्चा अधिक दिनों तक जीवित न रह सकेगा। घर में कोई देख भाल करनेवाला न था। बेहद गरीबी उसने विरासत के रूप में पायी थी। मध्यम-वर्ग का होते हुए भी वह उस वर्ग का न था। फल यह था कि न तो निचली श्रेणी के लोगों की लाभदायक आदतें और मनोवृत्तियाँ उसके पास थीं, न मध्यम-वर्ग के ऐसे प्रधान लाभ उसे उपलब्ध थे जो सामाजिक प्रभाव और बड़ी डिग्रियों से प्राप्त होते हैं। उसकी विधवा माँ ने दूसरों के घर रोटियाँ सकीं और अपने बच्चे को पाल-पोसकर बड़ा किया। नौवें दर्जे तक पढ़ाया। लड़के ने आवारागर्दी की। प्रतिष्ठित परिवारों ने उसे गुण्डा समझा। लेकिन उसने अपनी आवारागर्दी में ही पढ़ाई की, उन्नति की, लीडर बना, किन्तु असंयम और अव्यवस्था की आदतें न गयीं। शादी उसने अपने हाथों से की और

फिर स्त्री की तरफ कोई ध्यान नही दिया।

और आज वही रमेश अपनी अँधेरी कोठरी मे बैठे हुए सोच रहा था कि बच्चा जीवित न रह सकेगा। कल रात को उसे एक सपना आया था। उसने देखा कि ओवरब्रिज के उतार पर, सडक के बीचोबीच उसकी स्त्री बैठी हुई थी। सडक की ढाल पर से, बहुत तेज रफ्तार से, एक बैलगाडी आती है जो स्त्री पर से होकर निकल जाती है। रमेश भयानक रूप से अकुलाकर स्त्री और बच्चो को ढूँढ़ता है तो पाता है कि वह खुद गाडी मे बैठा हुआ है और गाडीवाले से पूछ रहा है कि तुम कौन हो? गाडीवाला जवाब देता है—तुम नही जानते। तुम तो मेरे मालिक हो। और मैं तुम्हारा सेवक। रमेश ठठाकर हँसता है। सपना टूट जाता है।

आज का सारा इतवार उसका भ्रष्ट हो गया। दिल मे न मालूम कैसा-कैसा हो रहा था। ऐसी कष्टप्रद स्थिति मे रमेश के पास एक ही रामबाण है वह है शारीरिक मेहनत।

उसने स्त्री से पूछा, "लकडी फोड दूँ?"

गौरी कुछ न बोली। वह न मालूम क्या सोच रही थी और मन ही मन रोती जा रही थी। रमेश उसकी स्थिति से समझ गया कि आज चूल्हा न सुलगेगा।

वह स्त्री के पास गया। बच्चा पीला दुबला, उदास गोदी मे ढीली गरदन किये बुखार मे पडा था। रमेश ने बच्चे को चुमकारा। बच्चे ने आँखें खोली और बाप को देखकर मुसकरा दिया। रमेश का जी न मालूम कैसा-कैसा हुआ मानो दिल के अन्दर आँसुओ के झरने फूट रहे हो।

रमेश चुपचाप उठा चूल्हा सुलगाया चाय का पानी रखा और कुल्हाडा लेकर सधे हुए हाथो मे लकडी फाडी। मेहनत के कारण उसका शरीर पसीने से घुल गया। फिर रस्सी कन्धे पर डाली और कुएँ की ओर चल पडा। कुएँ के पासवाले नीम के पेड पर कोयल गा रही थी। बरसात की पहली घटा क्षितिज से झाँक रही थी। ठीक तीन बजे का समय था।

स्त्री ने बच्चे को चुमकारा। पलने मे डाल दिया। लोरी गाने लगी। मटको मे भरे जानेवाले पानी की और बालटी की आवाज स्त्री के कानो मे आ रही थी और पति के कानो मे गूँज रहा था स्त्री की लोरी का स्वर

जब दो दिन तक रमेश मेरे घर पर नही आया तो मुझे चिन्ता हो गयी। उसका बच्चा कैसा है। उसे पैसो की तकलीफ तो नही है। (मानो वह कोई कहने की बात हो।)

घर पर पहुँचते ही मैं क्या देखता हूँ कि उसका कमरा सजा हुआ है और रमेश अपनी बीवी को अखबार पढकर सुना रहा है।

दोनो की नजर से ओट होकर मैं चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा। मुझे बुरी तरह हँसी आ रही थी। यह दृश्य मुझे विलक्षण मालूम हुआ। क्या यह कभी सम्भव है? मैंने अपने को स्थिर किया और अन्दर घुसते ही घोषणा की, 'अब तुम अपनी आलोचना कर सकते हो,, दोस्तो ने तुम्हारी आलोचना करना अब छोड दिया।"

उसने झेंपते हुए जवाब दिया, "हाँ अब मैं नयी जिन्दगी की सारी जिम्मेदारियो को एक साथ निबाहना चाहता हूँ, लेकिन मेरे लिए इससे तो तुम्हारी आवश्यकता

बड जाती है।"

और वह मुसकराता हुआ मेरी तरफ देखने लगा।

[प्रवाह, मार्च 1953 मे प्रकाशित]

प्रश्न

एक लडका भाग रहा है। उसके तन पर केवल एक कुरता है और एक धोती मैली-सी। वह गली म से भाग रहा है मानो हजारो आदमी उसके पीछे लगे हो भाले लेकर, लाठी लेकर, बरछियाँ लेकर। वह हाँफ रहा है, मानो लडते हुए हार रहा हो। वह घर भागना चाहता है, आश्रय के लिए नहो, छिपने के लिए नहीं, पर उत्तर के लिए, एक प्रश्न के उत्तर के लिए। एक सवाल के जवाब के लिए, एक सन्तोष के लिए।

गली म से दौडते दौडते उसका पेट दुखने लगता है, अन्तडियाँ दुखने लगती है, चेहरा लाल-लाल हो जाता है। वह पीछे देखता है, उसका पीछा करनवाला कोई भी तो नही है। गली सुनमान पडी है। हलवाई की दूकान पर लाल मक्खियाँ भिनभिना रही है, बीडी बनानवाला चुपचाप बीडी बनाता चला जा रहा है। और ऐसी दुपहर म यहाँ अँधेरा है। पर ऐसा कौन था जो उसका पीछा कर रहा था, लगातार पीछा कर रहा था? वह देखता है, हजारो प्रश्न लाल बर्रों-से उसके हृदय के अन्धकार-मार्ग पर वेग के कारण सूँ-सूँ करते हुए उसका बराबर पीछा कर रहे हैं। उसको पकडना चाहते हैं। मार डालना चाहते हैं।

वह दौडते-दौडते ठहर जाता है और धीरे-धीरे चलने लगता है, और मानो वे हजारो प्रश्न अपने करोडो ही डको को लेकर उसके आस-पास मँडरान लगते हैं। वे उसको व्याकुल कर देते है और वह नि सहाय उनम घिर जाता है, और निकल नही पाता।

परन्तु फिर भी एक उद्धार का रास्ता है, एक स्थान है जहाँ वह निश्चित आश्रय पा सकता है। परन्तु क्या वह मिल सकेगा?

उफ! कितनी घृणा! कितनी शर्म! इसस तो मर जाना ही अच्छा, जब कि आधारशिला ही डूब रही हो। मूल स्रोत ही सूख रहा हो। वह है, तो सब कुछ है, नही तो कुछ भी नहीं। कुछ भी नही।

"हाय, माँ," वह चिल्ला उठता है। परन्तु वह अपनी माँ को नही पुकारता, उस विश्वात्मक मातृशक्ति को पुकारता है कि वह आये और उसको बचाय। वह कर ही क्या सकता है, वह अपन आँचल से उस न हटाये!

"हाय! परन्तु क्या मेरा यह भी भाग्य है! तो फिर मुझे माता ही क्यो दी! वह मर " और वह अपनी जबान काट लेता है, सोचता है शायद यह गलत हो, जो कुछ सुना है, जो कुछ सुनता आ रहा है, वह भी गलत है। सब कुछ गलत हो

सकता है, जैसे सब कुछ सही हो सकता है! भाग्य की ही परीक्षा है तो फिर यही सही!!

और उस लडके को याद आ गया कि किस तरह स्कूल के लडके उसे छेड़ते हैं, उसे तग करते हैं, वह उनस लडता है, मार खा लेता है। उसके मित्र भी उस बेईमान समझने लग हैं, क्योकि वह तो एसी माता का पुत्र है। वे विषपूर्ण ताने कसते है। व्यग्य-भरी मुसकान मुसकराते हैं। क्या वे जो कुछ कहते हैं, सच है? क्या काका का और मेरी माँ का—छि छि, थू थू, छि छि, थू थू!

और वह तरह वरस का लडका रास्ते चलत-चलते घृणा और लज्जा की आग म जल जाता है। काका (जो उसके काका नही हैं) और माँ को उसने कई बार पास बैठे हुए दखा ह। पर उस शका तब नही हुई। कैस होती? पर आज वह उसको उसी तरह घृणा कर रहा है, जैस जलते शरीर के मास की दुर्गन्ध।

परन्तु फिर भी उस विश्वास-सा कुछ है। वह सोच रहा है, शायद ऐसा न हो!

और वह लडका अति व्याकुल होकर अपने पैर बढा लेता है। अँधेरी गलियो म से होता हुआ अपने भाग्य की परीक्षा करने के लिए चल पडता है।

जब वह घर की देहरी पर थमा तो पाया माँ सो रही है।

प्रसन्नता के समान दिखलायी देती थी। अस्तव्यस्तता के कारण गोरा पतला पेट खुला दिखलायी देता था और वह उसी तरह पवित्र सुन्दर मालूम होता था, जैसे *दो सघन श्यामल बादलो के बीच म प्रकाशमान चन्द्र, पैर उघाडे फैले हुए थ मुक्त,* जैसे जगल मे कभी-कभी कदली के लाल फूल वृक्ष की मर्यादा छोडकर टढे-मेढे रास्ते से होत हुए हरी घास के ऊपर अपन को ऊँचा कर देत है, फैला देते हैं। ऐसी *यह सुशीला, गरिमा और स्त्रीसुलभ कोमलता स पूर्ण, सोयी हुई थी।* उसके भाल पर सौभाग्य कुकुम नही था। उसक स्थान पर गोदा हुआ छोटा नीला-सा दाग ज़रूर दिखलायी दता था, और वह अपने कमनीय तारुण्य मे वैधव्य लिये हुए उसी तरह दिखलायी देती थी जैसे विस्तृत रेगिस्तान म फैली हुई ठिठुरते हुए शीतकाल म पूर्णिमा की चाँदनी।

लडके ने माँ को देखा कि यही पेट है, यह वही गोद है। उसके स्नेह-माधुर्य की उष्णता कितनी स्पृहणीय है।

और वह प्रश्न अधिक कटु होकर, दाहक होकर, दुर्दम होकर उसे बाध्य करन लगा। वह अपनी प्रेममयी माता से घृणा करे या प्रेम करे! यह प्यारी-प्यारी गोद, यह गरम-गरम स्नेह-भरा पेट जिसम वह नौ महीने रहा—क्या उससे घृणा करनी ही पडेगी? पर उफ्! यदि उसको सन्ताप हो जाये कि उसकी माँ ऐसी नही है, कि वह पवित्र है, यदि वह स्वय इतना कह दे कि कहनेवाले लोग ग़लत कहते है—हाँ वे गलत कहत है—तो उस सन्तोप हो जायेगा! वह जी जायेगा। उसकी प्यारी प्यारी माँ और वह!

एक-दो मिनट वह वैसा ही खडा रहा। और फिर वह उसके पास गया और उसके पेट पर सिर रख दिया। न जाने कहाँ से उसको रुलाई आने लगी और वह रोने लग गया। लोगो के किये हुए अपमान, व्यग्य का दु ख बहने लगा। पर वह तब तक ही था जब तक माँ सो रही थी। वह चाहता था कि वह मायी ही रहे, कि तब तक वह उस गोद को अपनी समझ सके जिस गोद मे उसने आश्रय पाया है।

लडके के गरम आँसुओ के स्पर्श से सुशीला जाग उठी। देखा तो नरेन्द्र गोद मे रो रहा है। उसे आश्चर्य हुआ, स्नेह भर आया। उसको पुचकारा और पूछा, "क्यो ? स्कूल से इतनी जल्दी कैसे आये, अभी तो ढाई भी नही बजा है।"

जैसे ही माँ जगी, नरेन्द्र का रोना थम गया। न जाने कहाँ से उसके हृदय मे कठोरता उठ आयी जैसे पानी मे से शिला ऊपर उठ आयी हो, और भयानक दाहक प्रश्नमयी ज्वाला उसके मन को जलाने लगी। सुशीला ने नरेन्द्र के गालो पर हलका थप्पड जमाते हुए कहा, "बोलो, न ?"

और नरेन्द्र गुमसुम। उसके गाल न जाने किस शर्म से लाल हो रहे थे, आँखें जल रही थीं।

नरेन्द्र माँ की गोद मे ही पडा था पर उसका उसे अनुभव नही हो रहा था।

"माँ," उसने कठोर, काँपते-सकुचाते हुए शब्दो मे पूछा।

[illegible]

[illegible] या है ? बोल जल्दी।"

नरेन्द्र ने धीरे-धीरे गोद मे से अपना लाल मुँह निकाला और माँ की ओर देखा। उसका वही, कुछ उद्विग्न पर स्मितमय, सुकोमल चेहरा। मानो वह अमृत वर्षा कर रही हो। आशा का ज्वार उमडने लगा। तो यह मेरी ही माता रहेगी।

उसने फिर कहा, "सच कहोगी, सचमुच ?"

"हाँ रे।"

"माँ, तुम पवित्र हो ? तुम पवित्र हो, न ?"

सुशीला को कुछ समझ मे नही आया, बोली, "माने ?"

नरेन्द्र ने विचित्र दृष्टि से उसकी ओर देखा। और सुशीला का आवलनशील मुख स्तब्ध हो गया। निर्विकार हो गया। वट्टर हो गया। उसकी जाँघ, जिस पर नरेन्द्र पडा हुआ था, सुन्न पड गयी। उसे मालूम ही नही हुआ कि कोई वजनदार वस्तु नरेन्द्र नाम की उसकी गोद मे पडी है।

उसने नरेन्द्र को एक ओर खिसका दिया और चुपचाप आँखो मे एक हिम्मत [illegible] अपनी कोई [illegible] पडा हुआ, [illegible] टे सब छूट [illegible] चली गयी [illegible] वाष्पपुंज लहराकर आसमान मे खो जाता है।

नरेन्द्र की नैया मानो इस महासागर मे डूब गयी। उसके जहाज के टुकडे-टुकडे हो गये उसी के सामने। वह क्रन्दनविह्वल होकर रोना चाहने लगा खूब ऊँचे स्वर मे कि आसमान भी फट जाये, धरती भी भग्न हो जाये। वह ऊँचे स्वर मे पुकारने

लगा   माँ !' मानो कोई यानी टूटे हुए जहाज के एक तख्ते से लगकर जो कि उसके हाथ से कभी भी छूट सकता है घनघोर लहराते हुए समुद्र म अपनी रक्षा क लिए चिल्ला उठता है। मरणदेश स यह जीवन क निए कातर पुकार !

परन्तु यह मत्यानाश उसक हृदय क अन्दर ही हुआ और उसका नि सहाय रोदन स्वर भी उसके हृदय म। वाहर से वह फटी हुई आखो स ससार को देख रहा था। क्या यह उसक प्रश्न का जवाब था ? वह निमट गया ठिठुर गया जैस ससार म उसे स्थान न०। है। और एक कोन म मुह ढाँपकर वह सिसकन लगा।

सुशीला अन्दर चली गयी जहा सामान रखा जाता है। वहा बैठ गयी एक डिब्बे पर। कमरे म सब दूर शान्त अधकार था।

अर यह लडका क्या पूछ बैठा ? कौन स पुरान घाव की अधूरी चमडी उसन खीच ली ? वह क्या जवाब दे जब कि वह स्वय ही प्रश्न लायी है। यही ता है जिसका जवाब वह चाहती है दुनिया से सवस !

और सुशीला की आँखो के सामने एक पुरानी तसवीर खिच आयी। तब नरेन्द्र का जन्म हुआ था एक गाँव म। एक अँधेरा कमरा जिसको सावधानी स वन्द कर दिया गया था चारो ओर स ताकि हवा न आ सके। सुशीला खाट पर शिथिल पडी थी। तब वह सालह वरस की थी और पास ह्री म शिशु नरेन्द्र और वे दरवाज़ म सामने खड थ। हाँ   वे जिनकी घुघराली मूछो म मुसकान समा नही रही थी। वे प्रसन्न थे। व चालीस वप पार कर रह थे तो क्या हुआ ? वे बड प्रम से सुशीला से वरतते थे। वहुत हृदय से उन्होने सुशीला के स्त्रीत्व को सँभाला। उस पर अपना आरोप नही होन दिया।

एक समय की बात है कि वे बहुत खुश थे। न जाने क्यो ? वे बिस्तर पर लेटे हुए थे। नरेन्द्र पास ही खेल रहा था। सुशीला उनके पास बैठी हुई थी। तब
सुशी मैंने तुम्हे बहुत दु ख

पप। पप
मैं तुमको सुख नही दे सका !
ऐसा मत कहो।'

नही सुशीले मैं अपने को धोखा नही दे सकता। मैंने तुम्हारे प्रति बहुत बडा अपराध किया है।

हो क्या गया है तुम्हे आज—तुम ऐसा मत कहो नही तो मैं रूठ जाऊँगी। और सुशीला हँस पडी। लेकिन व नहीं हँस।

वे कहते चले   मुझ तुमसे विवाह नही करना था तुमको एक सलोना युवक चाहिए था जिसके साथ तुम खल सकती कूद सकती। और वे सुशीला क पास सरक आये उसकी मोह भरी गोद मे ढुलक पड। अपना मुह छिपा लिया उसमे। शायद वे रो रहे थ न जाने किस रुदन स सुख के या दुख के। पर सुशीला का स्नहमय हाथ उनकी पीठ पर फिर रहा था। इतन प्रौढ पर इतन बच्च। इतने गम्भीर पर इतन आकुल। और सुशीला क हृदय म वह क्षण एक मधुर सरोवर की भाँति सुखद लहरा रहा था।

आज अपवित्रा सुशीला की आँखो म यह चित्र मघो की भाँति घुमडकर हृदय म श्रावण-वर्षा कर रहा है। इतना विश्वस्त सुख उसे फिर कब मिला था ? जीवन

के कुछ क्षण ऐसे ही होते हैं जो जन्म भर याद रहते हैं। उनके अपने एक विशेष महत्त्वरूपी प्रकाश से वे नित्य चमकते रहते हैं।

और न मालूम किस घड़ी से वे बीमार पड़ गये। उनकी विशाल शक्तिहीन देह मरणासन्न हो गयी। वह दृश्य सुशीला की आंखों में तैर आया। मरणशय्या पर पड़ हुए पति अँधेरे कमरे में उपचार करनेवाली केवल एक सुशीला और नरेन्द्र! फिर वही दृश्य पर कितना बदला हुआ! वही एकान्त पर कितना अलग! और पति कह रहे हैं मैंने तुम्हारे प्रति अपराध किया है मैं चला नरेन्द्र को सँभालना।' और नरेन्द्र को बुलाते हैं सुशीला नरेन्द्र को पकड़कर उनके मुंह के सामने रख देती है। वे चूमने की कोशिश करते हैं और उनकी आँखों से आँसू झर पड़ते हैं। और वे सुशीला का कहते हैं मैंने तुम्हारा अपराध किया है। और सुशीला रोती हुई नहीं नहीं कहती है समझाने की कोशिश करती है और वे कहते हैं नरेन्द्र को सँभालना।' इतने में मामा आ जाते हैं। सुशीला हट जाती है।

अन्तिम क्षण! पति के अन्तिम श्वास की घर्राहट! और सुशीला का हृदय भग्न फिर ऊँचा रोदन स्वर! मानो अब वह आसमान को फाड़ देगा।

वे कितने अच्छे थे! कितने स्नेहमय! कितने गम्भीर! कितने कोमल!!

और अपर्याप्त सुशीला फिर से दहाड़ मारकर रो पड़ती है। क्या उनको यह कभी मालूम था कि सुशीला को आगे कितना कष्ट सहन करना पड़ेगा?

यदि आज वे होते चाहे जैसे भी हो तो क्या इतना दुःख होता! कितनी सुरक्षित होती वह। मजाल होती किसी की कोई कुछ कह ले! उन्हीं तीस रुपये में वह अपनी गरीबी का सुख भोगती।

परन्तु विधि किसके इच्छानुसार चलता है? जब सुख बदा नहीं है तो कहां से मिलेगा।

घर के ठीकरे कुछ सोना चांदी की वस्तुएँ बेच-बाचकर और उसके जीवन में अचानक—विधवा के जीवन में अचानक उसका आना—एक का आना।

और रोती हुई सुशीला के सामने एक दृश्य आता है। दुपहर। नरेन्द्र सात वर्ष का है। वह एक का स्वेटर बुन रही है जिसके चार रुपये मिलेंगे। सारा ध्यान उसकी एक-एक सीवन में लग रहा है। बाहर दुपहर फैली हुई है भयानक!

उस समय नरेन्द्र आता है कहता है काका आये हैं। काका पड़ोस में रहते हैं। एक तरुण हैं अधशिक्षित। और वह खेलने चला जाता है।

वे आते हैं अत्यन्त नम्र शालीन। क्या? कुछ मालूम नहीं है? शायद वे उसके स्वर्गीय पति के कोई लगते हैं।

पर जब वे चले जाते हैं तब उसका हृदय उनकी सहानुभूति से आर्द्र हो जाता है। उनकी मानवतामय उदारता उसके हृदय को छू जाती है। वह उनका आदर करने लगती है। वे उसके पूज्य हो उठते हैं।

उनकी स्त्री होती है। रुग्णा। ईमानदार। और एक बच्चा सुधीर।

अब सुशीला उनके यहां आने-जाने लगी है। पति को उतनी फुरसत नहीं होती है कि वह हमेशा बैठा रहे स्त्री के पास। सुशीला उसकी सेवा करती है। नरेन्द्र सुधीर के साथ खेलता है।

ऐसे भी दिन थे। बहुत अच्छे दिन थे! निकल गये। निकल जानेवाले थे।

और एक समय आया जहाँ जीवन की सडक बल खाकर घूम गयी और वहाँ एक मील का पत्थर लग गया कि जीवन अब यहाँ तक आ गया है।

वह मील का पत्थर था काका की स्त्री का मरना ! कई दिनो के बाद जब सुशीला नरेन्द्र का नेकर उनके यहाँ गया तो सुधीर उनके पास खडा था।

वे रो पडे। सुशीला चुपचाप बैठी रही। क्या कहती वह ? वे और सुधीर सुशीला और नरेन्द्र ! क्या ही अजब जोडा था !

सुशीला जब लौटी तो सोच रही थी कि मुझे उनके पडोस मे ही जाकर रहना चाहिए जिसमे कि उन्हे दिलासा हो और उनकी जिन्दगी आराम से कटने लगे !

वह कितनी सुखमय पवित्र भूमि थी जिस पर उन दोनो का स्नेह आ टिका था। वे दोनो आमने सामने बैठ जाते—बीच मे चाय की ट्रे और दोनो बच्चे !

वे कब एक दूसरे की बाँहो मे आ गये इसका उनको स्वय पता नही चला। भले ही वे अलग-अलग रहते हो पर वे एक दूसरे के सुख दुःख मे कितने अधिक साथी थे।

और अपवित्रा सुशीला सोच रही है अपने अँधेरे कमरे मे कि उन्होने मेरे जीवन की दोपहर मे अपनी सहानुभूति का गीलापन दिया। फिर प्रेम दिया। मैं भीग उठी उनसे प्रेम किया और न जाने कब तन भी सौंप दिया ! उन दोनो का घर एक हो गया।

और एक रात !

दोनो बच्चे सो रहे थे। वह उनके लिए जाग रही थी। उसकी आँखें नही लगती थी। वे आ गये अपने सारे तारुण्य मे मस्त !

और जब वह उनके विह्वल आलिगन मे बिंध गयी तो अचानक सुशीला को अपने पतिदेव का खयाल आया। उनका स्नेहाकुल मुख कह रहा है तुमको सलोना युवक चाहिए था।'

और सुशीला की आँखो के सामने एक चित्र हो आया ! स्वर्ग मे ईश्वर अपने सिंहासन पर बैठा है । न्याय हो रहा है । सब लोग चुपचाप खडे हैं । सुशीला आती है । उसके हाथ-पैर जकड दिये गय हैं, उसी के समान दूसरी हजारो स्त्रियाँ आती हैं । ईश्वर पूछता है, "ये कौन है ?"

हवलदार कहता है, "अपवित्र स्त्रियाँ ।"

सुशीला पूछ बैठती है, "तो फिर पवित्र कौन हैं ?" ईश्वर के एक ओर पवित्र लोग श्वत-वस्त्र परिधान किये हुए कुरसियो की कतार पर बैठे हैं ।

क्रोधपूर्वक ईश्वर उनसे पूछता है, "क्या तुम सचमुच पवित्र हो ?" सब लोग ईश्वराज्ञानुसार अपने अन्दर देखने लगते हैं, पर वे पवित्र कहाँ थे ।

सुशीला चिल्ला उठती है उन्मादपूर्वक, "उनको कुरसियो पर से हटाया जाये !"

चित्र चला जाता है । सुशीला को नरेन्द्र का खयाल आता है । वह बाहर बैठा होगा ! उसको लडके छेडते होंगे । बात तो कब की फैल गयी है । उफ्, उसका भविष्य ! नही, मुझे उसी के भविष्य की चिन्ता है !

और सुशीला के हृदय मे कटुता, चिन्ता, विषाद भर आता है ।

हम दोनो साथ-साथ, पास-पास बैठते हैं, पर अब तक तो उसने कभी भी ऐसा नही किया । उसने तो उसे स्वाभाविक मान लिया । उसकी सारी सहज पवित्रता की सरलता को उसने स्वीकार कर लिया ।

फिर यह कैसा प्रश्न ? कैसी महान् विडम्बना है ! और मेरे प्रश्न का उत्तर कौन दे सकता है ? है हिम्मत किसी मे···?

•

इतने मे नरेन्द्र के साथ बहुत कुछ हो गया । काका चले आये । वे पढते हुए बैठे रहे । नरेन्द्र घृणा से जल रहा था । वे कुछ पूछते तो उन्हे वह काट खाता । यही तो है वह पुरुष जिसने उससे उसकी माता को छीन लिया ।

भाग्य था कि काका वहाँ से चले गये । नरेन्द्र सोच रहा था कि वह उन्हे मार डालेगा । पर वह चले गये तो आत्महत्या करने की सोचने लगा । वह फौरन जाकर अपनी जान दे देगा । उफ्, तीन घण्टे कितने घोर हैं !

माँ न जाने किस दु ख से शिथिल-सी चली आयी । उसका चेहरा तप्त था, हृदय जल रहा था । पर उसमे आँसुओ की बाढ आ रही थी ।

नरेन्द्र मुँह ढाँपे बैठा हुआ था ।

सुशीला उसके पास चली गयी । एकदम उसको अपनी गोद मे ले लिया । उसकी आँखो से जल-धारा बरसन लगी और वह जोर-जोर से चुम्बन लेने लगी । नरेन्द्र ने देखा जैसे उसकी माँ उसे फिर मिल गयी हो, पर वह खोयी ही कहाँ थी ? फिर भी वह कुण्ठित था, अकडा ही रहा ।

सुशीला अतिलीन होकर बोली, "तुम मुझे क्या समझते हो, नरेन्द्र ?"

नरेन्द्र सोचता रहा । उसकी जबान पर आ गया, 'पवित्र'; पर कहा नहीं; उसको गोद मे चिपक गया और उसके आँसू सहस्र धारा मे प्रवाहित होने लगे । युग-युग का दु ख बहा ले जान लगे । तब वे सच्चे माँ-बेटे थे ।

सुशीला ने डरते-डरते पूछा, "तुम उनको, 'काका' को, ग़ैर समझते हो ? साफ कहो ।"

नरेन्द्र ने सोचा, कहा, "नहीं।"

सुशीला ने पूछा, "नहीं, म !" और उसका मुँह नरेन्द्र के मन में समाया हुआ था।

सुशीला ने रोते हुए कहा, "तुम कभी उनको तकलीफ मत देना ''अँ।"

नरेन्द्र ने कहा, "नहीं, माँ।"

सुशीला स्थिर हो गयी। जाने किस हवा से मेघ आकाश से भाग गये।

वह तीव्र होकर बोली, "तो मैं अपवित्र कैसे हुई ?" नरेन्द्र के सामने वे सब लड़के, दूसर लोग आने लगे, जो उसे इस तरह छेड़ते हैं। उसने त्रस्त होकर कहा, लोग कहते है।" सुशीला और भी अधिक तीव्र हो गयी। बोली, "तो तुम उनसे जाकर क्यों नहीं कहते, बुलन्द आवाज़ मे, कि मेरी माँ ऐसी नहीं है !"

नरेन्द्र ने कहा, "वे मुझे छेड़ते हैं, मुझे तग करते हैं, मैं स्कूल नहीं जाऊँगा।"

"तुम बुज़दिल हो।"

और यह शब्द नरेन्द्र के हृदय में तीक्ष्ण पत्थर के समान जा लगा। वह बच्चा तो था लेकिन तिलमिला उठा। उसे भूला नहीं। अमूल्य निधि की भाँति उस घाव के सत्य को उसने छिपा रखा।

[illegible]

हूँ जिसकी पूजा सब लोग कर रहे हैं। मुझे बाद में मालूम हुआ कि यह नरेन्द्र कुमार का प्रकाश है। सुशीला की जन्मभूमि, हमारा गाँव, धन्य है।

[**नया खून**, अक्टूबर 1956 में प्रकाशित]

ब्रह्मराक्षस का शिष्य

उस महाभव्य भवन की आठवीं मंजिल के ज़ीने से सातवीं मंज़िल के ज़ीने की सूनी-सूनी सीढ़ियों पर नीचे उतरते हुए, उस विद्यार्थी का चेहरा भीतर के किसी प्रकाश से लाल हो रहा था।

वह चमत्कार उसे प्रभावित नहीं कर रहा था, जो उसने हाल-हाल में देखा। तीन कमरे पार करता हुआ वह एक विशाल वज्रबाहु हाथ उसकी आँखों के सामने फिर से खिंच जाता। उस हाथ की पवित्रता ही उसके खयाल में आती, किन्तु वह चमत्कार, चमत्कार के रूप में उसे प्रभावित नहीं करता था। उस चमत्कार के पीछे ऐसा कुछ है, जिसमें वह घुल रहा है, लगातार घुलता जा रहा है। वह 'कुछ' क्या एक महापण्डित की ज़िन्दगी का सत्य नहीं है ? नहीं, वही है ! वही है !!

पाँचवीं मंज़िल से चौथी मंज़िल पर उतरते हुए, ब्रह्मचारी विद्यार्थी, उस

प्राचीन भव्य भवन की सूनी-सूनी सीढ़ियों पर यह श्लोक गाने लगता है

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमं,
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः।

इस भवन से ठीक बारह वर्ष के बाद यह विद्यार्थी बाहर निकला है। उसके गुरु ने जाते समय, राधामाधव की यमुना-कूल-क्रीड़ा में घर भूली हुई राधा को बुला रहे नन्द के भाव प्रकट किये हैं। गुरु ने एक साथ शृंगार और वात्सल्य का बोध विद्यार्थी को करवाया। विद्याध्ययन के बाद, अब उसे पिता के चरण छूना है। पिताजी! पिताजी!! माँ! माँ!! यह ध्वनि उसके हृदय से फूट निकली।

किन्तु ज्यों ज्यों वह छन्द सूने भवन में गूँजता, घूमता गया त्यों-त्यों विद्यार्थी के हृदय में अपने गुरु की तसवीर और भी तीव्रता से चमकने लगी।

भाग्यवान् है वह जिसे ऐसा गुरु मिले।

जब वह चिड़ियों के घोंसलों और बर्रों के छत्तों भरे सूने ऊँचे सिंह-द्वार के बाहर निकला तो यकायक राह से गुजरते हुए लोग 'भूत' 'भूत' कहकर भाग खड़े हुए। आज तक उस भवन में कोई नहीं गया था। लोगों की धारणा थी कि वहाँ एक ब्रह्मराक्षस रहता है।

बारह साल और कुछ दिन पहले—

सड़क पर दोपहर के दो बजे, एक देहाती लड़का, भूखा-प्यासा अपने सूखे होंठों पर जीभ फेरता हुआ, उसी बगलवाले ऊँचे सेमल के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। हवा के झोंकों से, फूलों का रेशमी कपास हवा में तैरता हुआ, दूर-दूर तक और इधर-उधर बिखर रहा था। उसके माथे पर फिक्रें गुँथ बिंध रही थीं। उसने पास में पड़ी हुई एक मोटी ईंट सिरहाने रखी और पेड़-तले लेट गया।

धीरे-धीरे, उसकी विचार-मग्नता को तोड़ते हुए कान के पास उसे कुछ फुस-फुसाहट सुनायी दी। उसने ध्यान से सुनने की कोशिश की। वे कौन थे?

उनमें से एक कह रहा था, "अरे, वह भट्ट! नितान्त मूर्ख है और दम्भी भी। मैंने जब उससे ईशावास्योपनिषद की कुछ पंक्तियों का अर्थ पूछा, तो वह बौखला उठा। इस काशी में कैसे-कैसे दम्भी इकट्ठे हुए हैं!"

वार्तालाप सुनकर वह लेटा हुआ लड़का खट से उठ बैठा। उसका चेहरा धूल और पसीने से म्लान और मलिन हो गया था, भूख और प्यास से निर्जीव।

वह एकदम बात करनेवालों के पास खड़ा हुआ। हाथ जोड़े, माथा ज़मीन पर टेका। चेहरे पर आश्चर्य और प्रार्थना के दयनीय भाव! कहने लगा, "हे विद्वानो! मैं मूर्ख हूँ। अपढ़ देहाती हूँ। किन्तु ज्ञान-प्राप्ति की महत्त्वाकांक्षा रखता हूँ। हे महाभागो! आप विद्यार्थी प्रतीत होते हैं। मुझे विद्वान् गुरु के घर की राह तो बताओ!"

पेड़-तले बैठे हुए दो बटुक विद्यार्थी उस देहाती को देखकर हँसने लगे। पूछा, "कहाँ से आया है?"

"दक्षिण के एक देहात से। पढ़ने-लिखने से मैंने वैर किया तो विद्वान् पिता-जी ने घर से निकाल दिया। तब मैंने पक्का निश्चय कर लिया कि काशी जाकर

विद्याध्ययन करूँगा। जगल-जगल घूमता, राह पूछता, मैं आज ही काशी पहुँचा। कृपा करके गुरु का दर्शन करवाइए।"

अब दोनो विद्यार्थी जोर-जोर से हँसने लगे। उनमे से एक, जो विदूषक था, कहने लगा, "देख बे, वो सामने सिंह-द्वार है। उसमे घुस जा, तुझे गुरु मिल जायेगा।" कहकर वह ठठाकर हँस पडा।

आशा न थी कि गुरु बिलकुल सामने ही हैं। देहाती लडके ने अपना डेरा-डण्डा सँभाला और बिना प्रणाम किये तेजी से कदम बढाता हुआ भवन मे दाखिल हो गया।

दूसरे बटुक ने पहले से पूछा, "तुमने अच्छा किया उसे वहाँ भेजकर ?" उसके हृदय म खेद था और पाप की भावना।

पहला बटुक चुप था। उसने अपने किये पर खिन्न होकर सिर्फ इतना ही कहा, "आखिर ब्रह्मराक्षस का रहस्य भी तो मालूम हो।"

सिंह-द्वार की लाल-लाल बर्रें गूँ-गूँ करती उसे चारो ओर से काटने के लिए दौडी, लेकिन ज्यो ही उसने उसे पार कर लिया तो सूरज की धूप मे चमकनेवाली भूरी घास से भरे, विशाल, सूने आँगन के आस-पास चारो ओर, उसे बरामदे दिखायी दिये—विशाल, भव्य और सूने बरामदे, जिनकी छतो म फानूस लटक रहे थे। लगता था कि जैसे अभी-अभी उन्हे कोई साफ करके गया हो। लेकिन वहाँ कोई नही था। आँगन से दीखनेवाली तीसरी मजिल की छज्जेवाली मुँडेर पर एक बिल्ली सावधानी से चलती हुई दिखायी दे रही थी। उसे एक जीना भी दिखायी दिया, लम्बा-चौडा, साफ-सुथरा। उसकी सीढियाँ ताजे गोबर से पुती हुई थी। उसकी महक नाक मे घुस रही थी। सीढियो पर उसके चलने की आवाज गूँजती, पर कही कुछ नही ! वह आगे-आगे चढता-बढता गया। दूसरी मजिल के छज्जे मिले जो बीच के आँगन के चारो ओर फैले हुए थे। उनमे सफेद चादर लगी गद्दियाँ दूर-दूर तक बिछी हुई थी। एक ओर मृदग, तबला, सितार आदि अनेक वाद्य यन्त्र करीने से रखे हुए थे। रग-बिरगे फानूस लटक रहे थे और कही अगर-बत्तियाँ जल रही थी।

इतनी प्रबन्ध-व्यवस्था के बाद भी उसे कही मनुष्य के दर्शन नही हुए। और न कोई पैरो की आवाजें सुनायी दी, सिवाय अपनी पग-ध्वनि के। उसने सोचा शायद ऊपर कोई होगा।

उसने तीसरी मजिल पर जाकर देखा। फिर वही सफेद-सफेद गद्दियाँ, फिर वही फानूस, फिर वही अगरबत्तियाँ। वही खाली-खालीपन, वही सूनापन, वही विशालता, वही भव्यता और वही मनुष्य-हीनता।

अब उस देहाती के दिल मे से आह निकली। यह क्या ? वह कहाँ फँस गया ? लेकिन इतनी व्यवस्था है तो कही कोई और जरूर होगा। इस खयाल से उसका डर कम हुआ और वह बरामदे मे से गुजरता हुआ अगले जीने पर चढने लगा।

इन बरामदो मे कोई सजावट नही थी। सिर्फ दरियाँ बिछी थी। कुछ तैल-चित्र टँगे थे। खिडकियाँ खुली थी, जिनमे से सूरज की पीली किरणें आ रही थी। दूर ही से खिडकी के बाहर जो नजर जाती तो बाहर का हरा-भरा ऊँचा-नीचा, ताल-तलैयो, पेडो-पहाडोवाला नज्जारा देखकर पता चलता कि यह मजिल कितनी

ऊँची है और कितनी निर्जन !

अब वह देहाती लडका भयभीत हो गया। यह विशालता और निजनता उसे आतंकित करने लगी। वह डरने लगा। लेकिन वह इतना ऊपर आ गया था कि नीचे देखने ही से आँखो म चक्कर आ जाते। उसने ऊपर देखा तो सिर्फ एक ही मंजिल शेष थी। उसने अगले जीने से ऊपर की मंजिल चढना तय किया।

डण्डा कंधे पर रख और गठरी खोसे वह लडका धीरे धीरे अपनी मंजिल का जीना चढने लगा। उसके पैरो की आवाज उसी मे जाने क्या फुसलाती और उसकी रीढ़ की हड्डी म स सद संवेदनाएँ गुजरने लगती।

जीना खत्म हुआ तो फिर एक भव्य बरामदा मिला लिपा-पुता और अगरु गंध से महकता हुआ। सभी ओर मृगासन व्याघ्रासन बिछे हुए। एक ओर योजनो विस्तार दृश्य देखती खिडकी के पास देव-पूजा म सलग्न मन मुंदी आँखोवाले ऋषि मनीषि कश्मीर की कीमती शाल ओढ़ ध्यानस्थ बैठ।

लडके को हर्ष हुआ। उसने दरवाजे पर मत्था टेका। आनन्द के आसू आँखो म खिल उठ। उसे स्वग मिल गया।

ध्यान मुद्रा' भंग नही हुई तो मन ही मन माने हुए गुरु को प्रणाम कर लडका जीने की सर्वोच्च सीढी पर लेट गया। तुरन्त ही उसे नीद आ गयी। वह गहरे सपनो म खो गया। थकित शरीर और सन्तुष्ट मन ने उसकी इच्छाओ को मूर्त रूप दिया। वह विद्वान बनकर देहात म अपने पिता के पास वापस पहुँच गया है। उनके चरणो को पकड उन्हे अपने आसुओ से तर कर रहा है और आर्द्र हृदय होकर कह रहा है पिताजी ! मैं विद्वान बनकर आ गया मुझ और सिखाइए। मुझ राह बताइए। पिताजी ! पिताजी !! और मा अचल से अपनी आखें पोछती हुई पुत्र के ज्ञान गौरव से भरकर उसे अपने हाथ से खीचती हुई गोद म भर रही हैं। साश्रु मुख पिता का वात्सल्य भरा हाथ उसके शीश पर आशीर्वाद का छत्र बनकर फैला हुआ है।

वह देहाती लडका चल पडा और देखा कि उस तेजस्वी ब्राह्मण का देदीप्यमान चेहरा जो अभी-अभी मृदु और कोमल होकर उस पर किरनें बिखेर रहा था कठोर और अजनबी होता जा रहा है।

ब्राह्मण ने कठोर होकर कहा तुमने यहा आने का कैसे साहस किया ? यहाँ कैसे आय ?

लडका आतंकित हो गया। मुह स कोई बात नही निकली।

ब्राह्मण गरजा कसे आये ? क्यो आये ?

लडके ने माथा टेका भगवन् ! मैं मूढ हूँ निरक्षर हूँ ज्ञानार्जन करने के लिए आया हूँ।

ब्राह्मण कुछ हँसा। उसकी आवाज धीमी हो गयी किन्तु दृढता वही रही। रूखापन और कठोरता वही।

तूने निश्चय कर लिया है ?

जी !'

नही तुझ निश्चय की आदत नही है। एक बार और सोच ले ! जा फ़िलहाल नहा धो उस कमरे म वहा जा और भोजन कर लेट सोच विचार ! कल मुझ मिलना।

दूसरे दिन प्रत्यूष काल मे लडका गुरु से पूर्व जाग्रत हुआ। नहाया-धोया। गुरु की पूजा की थाली सजायी और आज्ञाकारी शिष्य की भाँति आदेश की प्रतीक्षा करन लगा। उसके शरीर म अब एक नयी चेतना आ गयी थी। नेत्र प्रकाशमान थे।

विशालबाहु पृथु-वक्ष तेजस्वी ललाटवाले अपने गुरु की चर्या देखकर लडका भावुक रूप से मुग्ध हो गया था। वह छोटे-से-छोटा होना चाहता था कि जिससे लालची चींटी की भाँति जमीन पर पडा, मिट्टी मे मिला, ज्ञान की शक्कर का एक-एक कण साफ देख सके और तुरन्त पकड सके।

गुरु ने सशयपूर्ण दृष्टि से देख, उसे डपटकर पूछा, "सोच-विचार लिया?"

"जी!" की डरी हुई आवाज़।

कुछ सोचकर गुरु न कहा, "नही, तुझे निश्चय करने की आदत नही है। एक बार पढ़ाई शुरू करन पर तुम बारह वर्ष तक फिर यहाँ से निकल नही सकते। सोच-विचार लो। अच्छा, मेरे साथ एक बजे भोजन करना, अलग नही।"

और गुरु व्याघ्रासन पर बैठकर पूजा-अर्चा मे लीन हो गये। इस प्रकार दो दिन और बीत गये। लडके ने अपना एक कार्यक्रम बना लिया था, जिसके अनुसार वह काम करता रहा। उसे प्रतीत हुआ कि गुरु उससे सन्तुष्ट है।

एक दिन गुरु न पूछा, 'तुमने तय कर लिया है कि बारह वर्ष तक तुम इस भवन के बाहर पग नही रखोगे?"

नतमस्तक होकर लडके न कहा, "जी!"

गुरु को थोडी हँसी आयी, शायद उसकी मूर्खता पर या अपनी मूर्खता पर, कहा नहीं जा सकता। उन्हे लगा कि क्या इस निरे निरक्षर के आँखें नहीं है? क्या यहाँ का वातावरण सचमुच अच्छा मालूम होता है? उन्होने अपने शिष्य के मुख का ध्यान से अवलोकन किया। एक सीधा, भोला-भाला निरक्षर बालमुख! चेहरे पर निष्कपट निश्छल ज्योति!

अपने चेहरे पर गुरु की गडी हुई दृष्टि से किंचित् विचलित होकर शिष्य ने अपनी निरक्षर बुद्धिवाला मस्तक और नीचा कर लिया।

गुरु का हृदय पिघला। उन्होन दिल दहलानवाली आवाज़ से, जो काफी धीमी थी, कहा, "देख! बारह वर्ष क भीतर तू वेद, शास्त्र, पुराण, गणित, आयुर्वेद साहित्य, सगीत आदि-आदि समस्त शास्त्र और कलाओ म पारगत हो जायेगा। केवल भवन त्यागकर तुझे बाहर जाने की अनुज्ञा नही मिलेगी। ला, वह आसन। वहाँ बैठ।"

और इस प्रकार गुरु ने पूजा पाठ के स्थान के समीप एक कुशासन पर अपने शिष्य को बैठा, परम्परा क अनुसार पहले शब्द रूपावली स उसका विद्याध्ययन प्रारम्भ कराया।

गुरु ने मृदुता से कहा, "बोलो बेटे—

राम:, रामौ, रामा:—प्रथमा

रामम्, रामौ, रामान्—द्वितीया।"

और इस बाल-विद्यार्थी की अस्फुट हृदय की वाणी उस भयानक नि सग, शून्य, निर्जन, वीरान भवन मे गूँज-गूँज उठती। सारा भवन गाने लगा—

'राम:, रामौ, रामा:—प्रथमा!"

धीरे-धीरे उसका अध्ययन 'सिद्धान्तकौमुदी' तक आया और फिर अनेक विद्याओ को आत्मसात् कर, वर्ष एक के बाद एक बीतने लगे। नियमित आहार विहार और सयम के फलस्वरूप विद्यार्थी की देह पुष्ट हो गयी और आँखो म नवीन तारुण्य की चमक प्रस्फुटित हो उठी। लडका, जो देहाती था, अब गुरु स सस्कृत मे वार्तालाप भी करने लगा।

केवल एक ही बात वह आज तक नही जान सका। उसने कभी जानने का प्रयत्न नहीं किया। वह यह कि इस भव्य-भवन मे गुरु के समीप इस छोटी-सी दुनिया में यदि और कोई व्यक्ति नही है तो सारा मामला चलता कैसे है? निश्चित समय पर दोनो गुरु-शिष्य भोजन करते। सुव्यवस्थित रूप से उन्हे सादा किन्तु सुचारु भोजन मिलता। इस आठवी मजिल से उतर सातवी मजिल तक उनम स कोई कभी नही गया। दोनो भोजन के समय अनेक विवादग्रस्त प्रश्नो पर चर्चा करते। यहाँ इस आठवी मजिल पर एक नयी दुनिया बस गयी।

जब गुरु उसे कोई छन्द सिखलाते और जब विद्यार्थी मन्दाक्रान्ता या शार्दूलविक्रीडित गाने लगता तो एकाएक उस भवन मे हलके हलके मृदग और वीणा बज उठती और वह वीरान, निर्जन शून्य भवन वह छन्द गा उठता।

एक दिन गुरु न शिष्य से कहा, "बेटा! आज स तेरा अध्ययन समाप्त हो गया है। आज ही तुझे घर जाना है। आज बारहवें वर्ष की अन्तिम तिथि है। स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त होकर आओ और अपना अन्तिम पाठ लो!"

पाठ के समय गुरु और शिष्य दोनो उदास थे। दोनो गम्भीर। उनका हृदय भर रहा था। पाठ के अनन्तर यथाविधि भोजन के लिए बैठे।

दूसरे कक्ष म वे भोजन के लिए बैठे थ। गुरु और शिष्य दोनो अपनी अन्तिम बातचीत के लिए स्वय को तैयार करते हुए कौर मुँह म डालने ही वाले थे कि गुरु ने कहा, 'बेटे, खिचडी मे घी नही डाला है?"

शिष्य उठने ही वाला था कि गुरु न कहा, "नही, नही, उठो मत!" और उन्होंने अपना हाथ इतना बढा दिया कि वह कक्ष पार जाता हुआ, अन्य कक्ष म प्रवेश कर एक क्षण के भीतर, घी की चमचमाती लुटिया लेकर शिष्य की खिचडी म घी उडेलने लगा। शिष्य काँपकर स्तम्भित रह गया। वह गुरु के कोमल वृद्ध मुख को कठोरता स देखने लगा कि यह कौन है? मानव है या दानव? उसन आज तक गुरु के व्यवहार म कोई अप्राकृतिक चमत्कार नही देखा था। वह भय-भीत, स्तम्भित रह गया। गुरु न दु खपूर्ण कोमलता से कहा, 'शिष्य! स्पष्ट कह दूँ कि मैं ब्रह्मराक्षस हूँ किन्तु फिर भी तुम्हारा गुरु हूँ। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए। अपने मानव-जीवन म मैंने विश्व की समस्त विद्या को मथ डाला, किन्तु दुर्भाग्य स कोई योग्य शिष्य न मिल पाया कि जिस मैं समस्त ज्ञान दे पाता। इसीलिए मेरी आत्मा इस ससार म अटकी रह गयी और मैं ब्रह्मराक्षस के रूप म यहाँ विराजमान रहा।

"तुम आये, मैंने तुम्हें बार-बार कहा लौट जाओ! कदाचित् तुमम ज्ञान के लिए आवश्यक श्रम और सयम न हो। किन्तु मैंने तुम्हारी जीवनगाथा सुनी। विद्या से वैर रखने के कारण, पिता द्वारा अनेक ताडनाओ के बावजूद, तुम गँवार रहे और बाद मे माता पिता द्वारा निकाल दिये जाने पर तुम्हारे व्यथित अहकार न तुम्हें ज्ञान-लोक का पथ खोज निकालने की ओर प्रवृत्त किया। मैं प्रवृत्तिवादी हूँ,

साधु नही। सैकडो मील जगल की बाधाएँ पार कर तुम काशी आये। तुम्हारे चेहरे पर जिज्ञासा का आलोक था। मैंने अज्ञान से तुम्हारी मुक्ति की। तुमने मेरा ज्ञान प्राप्त कर मेरी आत्मा को मुक्ति दिला दी। ज्ञान का लाया हुआ उत्तरदायित्व मैंने पूरा किया। अब मेरा यह उत्तरदायित्व तुम पर आ गया। जब तक मेरा दिया तुम किसी और को न दोगे तब तक तुम्हारी मुक्ति नही।

"शिष्य, आओ, मुझे विदा दो।

"अपने पिताजी और माँजी को प्रणाम कहना।"

'शिष्य ने साश्रुमुख ज्यो ही चरणो पर मस्तक रखा, आशीर्वाद का अन्तिम कर-स्पर्श पाया और ज्यो ही सिर ऊपर उठाया तो वहाँ से वह ब्रह्मराक्षस तिरोधान हो गया।

वह भयानक वीरान, निर्जन बरामदा सूना था। शिष्य ने ब्रह्मराक्षस गुरु का व्याघ्रासन लिया और उनका सिखाया पाठ मन ही मन गुनगुनाते हुए आगे बढ गया।

[नया खून, जनवरी 1957 मे प्रकाशित]

दो चेहरे

...लगा। क्षितिज पर बैंगनी और ... बीच कही-कही ... रही थी।

एक वृक्ष की घनी शान्त छाया के घेरे मे चद्दर डाले एक दाढी-धारी अधेड मुसलमान नमाज पढ रहा था। उसका व्यक्तित्व रोबदार था और वह शाही खानदान का मालूम होता था। कभी-कभी वह दोनों हथेलियाँ आगे कर खुदा से कुछ माँगता, उसके होठ बुदबुदाने लगते। उसके चेहरे पर भक्ति के दयनीय नम्र भाव फैलते रहते।

कभी-कभी वह नमाज के दौरान मे उठ खडा होता और हाथ मे हाथ फँसा-कर ध्यान मे मग्न हो जाता। फिर वह नीचे बैठता, ललाट से भूमि स्पर्श करता। तब उसका नितम्ब-पार्श्व ऊपर उठ जाता और वह कुछ क्षणों के लिए ध्यान मे खो जाता।

ऐसे ही किसी क्षण मे जब उसका नितम्ब-पार्श्व ऊपर उठा हुआ और ललाट भूमि से लगा हुआ था, उसे एकदम भान हुआ कि किसी ने उसके उठे हुए पिछले भाग पर ठोकर मार दी है। ठोकर सीधे पीछे से नही वरन् एक बाजू से लगी और दूसरे बाजू से घिसडती हुई निकल गयी।

उसका ध्यान टूटा और वह गौर से देखने लगा कि किसने उसे इतनी

वेमुरव्वती से ठोकर मारी।

उसको दिखायी दिया कि लगभग पचास गज़ के फासले पर एक नौजवान एक लडकी के साथ बातचीत करता हुआ आगे बढा जा रहा था। दिखायी दे रहा था लडकी का आधा चेहरा खूबसूरत-सा। और उसका रंगीन आँचल हवा में फडफडा रहा था।

अधेड मुसलमान ने भौंहे सिकोडकर जब उन दोनों को देखा तो ताड गया कि वे एक प्रेमी-प्रेमिका हैं। इस खयाल से वह और ज्यादा उत्तेजित हुआ और उसी क्षोभ मे उसने चीखकर पुकारा, "अबे ओ! "इधर आओ!"

पुकार सुनकर वे दोनो ठहर गये और पीछे मुडकर उन्होंने दूर एक तमतमाया रोबदार चेहरा देखा। भय, आतंक तथा विघ्न की आशका से ग्रस्त होकर वे क्षण-भर खडे रहे, फिर लौट पडे।

अधेड मुसलमान ने दोनो को सिर से पैर तक देखा और तेज़ी से कहा, "क्यो बे! देखकर नही चलता!!"

दोनो के चेहरे पर निर्दोष, निरीह भाव था। उनके लेखे इस व्यर्थ के आरोप से उनकी सूरत फीकी पड गयी। किन्तु ग़ौर से वे अधेड मुसलमान के चेहरे को देखने लगे कि क्या सचमुच उनके किसी तौर-तरीके से उस व्यक्ति को चोट पहुँची है। नौजवान ने अगवानी करते हुए कहा, "माफ कीजिए, क्या हमारे हाथ से कोई खता हुई!" अब उस व्यक्ति का शाही चेहरा और भी चिढ गया। उसने चिड-चिडाकर कहा, "जानते हो! कौन हूँ मैं?"

नौजवान और उसकी प्रेमिका आश्चर्य और आतंक से घबराकर सिर्फ चुप रहे। और व्यथित भाव से देखने लगे।

अधेड व्यक्ति को उनकी घबराहट देखकर ज़रा दया आयी और उसे अपना नाम कहने मे भी हिचकिचाहट हुई। किन्तु उन दोनो को और घबरा डालने के उद्देश्य से उसने कहा, "मैं हूँ तुम्हारा शहशाह अकबर!"

नाम सुनकर उस तरुण-तरुणी के चेहरे पर मानो भय की स्याही पुत गयी!

काटो तो खून नहीं!...उन्होने शहशाह के पैर पकड लिये और कहा, "हुजूर जो भी ग़लती हुई है वह भी *अनजाने मे हुई है, आप माफ करें!*" उनके स्वर में कातरता थी।

अकबर को कहते हुए सकोच तो हुआ लेकिन कहना ज़रूरी समझा, "मेरे करीब से गुजरते हुए तुमने पीछे से लात जमा दी और फिर भी कहते हो कि मालूम नही!"

यह कहकर जब अकबर ने उस नौजवान और उसकी प्रेमिका की तरफ फिर से देखा तो पाया कि उनके चेहरो पर गहरा भोलापन और मासूमियत है। उसे लगा कि वे झूठ नही बोल रहे हैं। अकबर उनके चेहरे के भाव को देखता ही रह गया। देखता ही रह गया मानो वहाँ आसमान छाया हुआ हो और उसमे एक मस्जिद का सफेद पवित्र गुम्बज दिखायी दे रहा हो। उसने एकदम कहा, "अच्छा जाओ, भागो! रवाना हो!!"

और तब अकबर ने पश्चिम की तरफ के आसमान की ओर फिर से मुह करके जब रंगीन धूप को देखा तो उसकी आँखो के सामने वे दोनो मासूम भोले चेहरे फिर से खिल उठे। उसकी अन्दर की ढँकी-मुँदी आवाज़ ने बन्धन तोडकर कहा

कि, "हाँ वे बातों मे इतने मशगूल थे, उसके रस में इतने ज्यादा डूबे हुए थे कि उन्हे पता भी न हो सका कि रास्ते चलते उन्होंने एक ठोकर मार दी है।"

परव

लेकि

मे ज

जब अकबर ने ललाट जमीन से फिर उठाया तो उसकी आँखें गीलेपन मे चमक रही थीं। लेकिन उसके चेहरे पर सन्ध्या का हल्का केसरी प्रकाश चमक रहा था।

[नया खून, 21 जून 1957 मे प्रकशित]

भूत का उपचार

मैंने एक कहानी लिखी। चार पन्ने लिखने के बाद मालूम हो गया कि वह उस तरह आगे नही बढायी जा सकती। मुख्य पात्र की जिन्दगी थी, मैं भाष्यकर्ता दर्शक की हैसियत से एक पात्र बना हुआ था। कहानी बढ सकती थी बशर्ते कि मैं मूर्खता को कला समझ लेता।

और अब मैं यह सोचने लगा कि कहानी आगे क्यो नही बढ रही है। एक दीवार खडी हो गयी है। वह क्यो हुई ? मेरे मन ने लिखने से क्यो इनकार कर दिया ?

मैंने लिखा था कि वह हाथ मटकाता हुआ, बुदबुदाता हुआ रास्ते पर चलता है, कि वह किसी बात पर एकाग्र नही हो पाता, कि वह निकर पहने हुए एक ठठरी है जो अँगरेजी बोलती है, कि जब-जब उसे बहुत गुस्सा आता है वह अत्यन्त शिष्ट बनता जाता है, और तब उसकी विनय, सकोच और शील सूचित करनेवाली आंखो की ललाई देखने योग्य होती है। वह एक दिन पिघलानेवाला देवता मालूम होता है।

कहानी ने आगे बढने से इनकार कर दिया। मैं पूछता हूँ कि क्यो ? कहानी मे कथानक नही था, लेकिन पात्र तो था। जिन्दगी तो थी। वह क्या है जिसने मेरे कानो मे यह फुसफुसाया कि लिखना बेकार है ?

बहुत दुख है कि मैं कहानी नही लिख पाया। बाद मे उसी तैश मे कुछ लकीरें शब्दो में बाँध दी, जो इस प्रकार हैं

'फाँसी पाना, मरना अच्छा होता है।
मन बच्चा है।
अगर आदमी बना न पाओ
उसे मार दो।

मन—
कच्ची, माटी आकार न दो उसको
अगर बनाओगे घट,
उसको भर न सकोगे
जब घट खाली रहा कि
कोई विशाल प्रतिध्वनि की गहरी आवाज
उभरती आयेगी उसमे से
इस घट मे से गहरी गूँज
निकलती है जो
उसे अनुसुनी कर, ओ जीनेवालो,
घडा फोड दो
उसकी आवाज न सह पाओगे !'

मुझे नही मालूम किस वस्तुगत सन्दर्भ से यह बात कही गयी। मैं घपले मे पडा हुआ हूँ। अरे, कोई मुझे सहायता दे !

लेकिन यह मैं कैसे कहूँ कि इस कविता का कोई अर्थ नही है ? अर्थ है, लेकिन वह मेरी बुनियाद नही है। बुनियाद कोई और थी, जहाँ पर मैं खडा था, जहाँ से मैं चला था।

कहाँ से मैं चला था ?

इसी कहानी के दौरान मे, मैंने एक और कविता भी लिख दी थी। अगर आप मुझे समझना चाहते है तो उसे कृपा कर पढ लीजिए। वैसे मुझे यह कविता सुनानी चाहिए। पहले की कविता पढने की थी, यह सुनाने की है—

'हाथ मटकाते हुए, कुछ बुदबुदाते हुए, पागल-सी भागती वे, और बुझती-भडकती वे क्षुब्ध चचल-सी, स्वय से विकसी भयंकर ज्वलन रेखाएँ झपटती-सी, लिपटती-सी चौमुखी वे अग्नि-शाखाएँ प्रकट होती, गुप्त होती, नील लहरें चौंधियाती हैं। आसमानी बादलो पर आत्म-चिन्ता फैल जाती है !'

कविताएँ मैंने आपको इसलिए बतायी कि जब कहानी लिख न पाया तब उसका भीतर का आवेग मन में बचा रहा। भाव नही, विचार नही, कथानक नही, पात्र नहीं, प्रसग नही। मात्र एक उद्वेग, मात्र एक आवेग। जब मैंने ये कविताएँ लिखीं तब मुझे समझ मे आया कि आवेग कितना जोरदार था। उसे किसी न किसी तरह अपने को प्रकट करके बिलकुल खो देना था।

प्रकट करके अपने को खो देनेवाली यह बात बडे मारके की है। शायद हर लेखक को इस समस्या का सामना करके हल खोज लेना पडता है। मैं तो क्षणिक उच्छ्वासो की कविता करना ही जुर्म समझता हूँ—मतलब कि लिखना टाल जाता हूँ।

लेकिन आज मुझे यह जरूरी हो गया कि मैं कुछ लिखूँ। जी नही लग रहा था। मन बेचैन था। अजीब परेशानी थी। अगर सुख प्राप्त कर लेना है तो इस तथाकथित आध्यात्मिक मचलाहट को निकालकर फेंक दूँ, क्योकि इसकी कोई कीमत नही है। कोई मूल्य नही है।

और मैंने एक चित्र बनाना चाहा।

एक ऐसा व्यक्ति जो द्विधा-ग्रस्त है, द्विधापन्न है। इस द्विधा का एक कोण यह

करनेवाला है ! जुआ, सचमुच खुला जुआ ! सट्टा ! मैं भौचक्का रह गया।

उसने मुसकराकर कहा—हे लेखक, तुम बेवकूफ हो ! मेरे विस्मय को सरासर बेवकूफी मानकर उसने कहा—हमारे डिपार्टमेण्ट मे आजकल मेरी बडी पूछ है।

मैंने कहा—क्या ? और मेरा मुँह खुला ही रह गया।

उसने कहा कि डायरेक्टर साहब आजकल मुझे बहुत चाहने लगे है। मैं डायरेक्टर को जानता था, वह मेरे पात्र को सिर्फ एक्सप्लॉइट कर रहा था।

मेरे चेहरे पर मुसकान की एक रेखा दौड गयी। डायरेक्टर साहब उस पहले से ही चाहते थे। लेकिन अब क्या नयी बात हुई ?

उसने कहा—नही, नही। मेरे एक दोस्त हैं जो जन्मकुण्डली बहुत अच्छी तरह देखने लगे हैं।

मैंने मजाक करना चाहा। तो छिपाते क्यो हो ? हमारे यहाँ के कई साहित्यिक, कई मिनिस्टर, *यहाँ तक कि कई खासे गुनहगार भी अच्छी कुण्डली देखते हैं।* सुनते हैं, यू पी के किसी मिनिस्टर ने यह भी कहा था कि लखनऊ विश्वविद्यालय में उसकी एक चेयर भी होनी चाहिए !

इस पर मेरा पात्र कुछ सकुचित हुआ। उसने गम्भीर होकर कहा—मेरी कुरसी के आसपास, ऑफिस में कई ऐसे हैं जो अच्छी कुण्डली देखते हैं। मेरे पिताजी ने मेरी कुण्डली बनवायी नही। नही तो मैं भी बहुत खुश होता। फिर भी, तरकीब तो आ ही गयी है। इसे मैं क्या करूँ ?

मेरा कुत्सा भाव समझकर मेरे पात्र ने व्याख्या करते हुए आगे कहा—डरो नही, मेरे डायरेक्टर मुझसे इसलिए खुश हैं कि मैं एक अच्छा गणितज्ञ होने के साथ ही खासा पोलिटिकल आदमी भी हूँ !

अब तो सचमुच ही मैं भौचक्का रह गया !

मेरी आँखो के सामने *महन्त रामनारायणदास, मुल्ला अब्दुल्ला ताहेरअली* दानो एम एल ए, प्रान्त-सन्त गोविन्दानन्द एम पी आचार्य खाण्डेकर पी एस पी, कामरेड बनर्जी कम्युनिस्ट, बल्लभभाई मुरलीदास पेन्सिलवाला जनसघ—न मालूम कितने ही लोग—परिचित-अपरिचित सामने हो लिये। फिर भी मेरा पात्र इनसे कुछ इतना भिन्न था कि जब उसने अपने को पोलिटिकल आदमी कहा तो मैं विश्वास न कर सका। और अविश्वास भी कैसे करता, वह मेरा पात्र जो था !

मैंने भौहें चढाकर उससे पूछा—डायरेक्टर साहब ने तुम्हे कैसे पोलिटिकल आदमी समझा ? या तो वह डायरेक्टर का बच्चा बेवकूफ है या ।

इतने मे बात काटकर, पात्र बोला—देखिए, दो वजह हैं। एक तो यह कि प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स एक्ट 1867 के अन्तर्गत मैंने दो अखबारो पर मुकदमा चला दिया है। मेरा व्यवसाय भी तो यही है, मैं इसी काम के लिए मुकर्रर हूँ, तैनात हूँ, मेरा सरकारी डेज़िग्नेशन जर्नलिस्ट का है। दूसरे, डायरेक्टर साहब खुद जर्नलिस्ट हैं। सरकार की नीति बहुत नरम है। लेकिन गैर-ज़िम्मेदार तत्त्वो पर कुछ अनुशासन भी जरूरी है। यह तो महज एक धमकी है।

मैंने उसके फूहडपन पर नाराज होकर उससे कहा—तीसरा कारण क्या है ?

वह बोला—हमारे छोटे-से दफ्तर म बडी इण्ट्रीग्स चलती हैं। या तो कुण्डली देखते हैं लोगबाग, या लडकियो की चर्चा होती है, या ब्यूह-रचना होती है ! मैं इस

भेद को जान गया हूँ।

मैंने अविश्वासपूर्वक पात्र से पूछा—तो क्या तुम शिकायत करने गये थे?

पात्र के माथे पर बल पड गये—बिरादरी के लोगो के विरुद्ध शिकायत! राम, राम!· चाहे वे कितने ही बुरे क्यो न हो, सामुदायिक नैतिकता है यह।

पात्र साभिप्राय हँसा। यह बात मुझे समझ मे नहीं आयी।

मैंने मुसकराकर पूछा—क्या बात है?

उसने जवाब दिया—कुछ नही। ऑफिस की एक लडकी ने डायरेक्टर से जाकर शिकायत कर दी। डायरेक्टर ने मुझे बुलाकर कहा कि तुम उम्र मे बडे हो, चौतरफ़ा नज़र रखो, और कोई ऐसी-वैसी गडबड न होने दो। मैं जब डायरेक्टर के यहाँ से अपने कमरे मे लौटा तो पहली बार—

मैंने कहा—हाँ, पहली बार तुमने उस लडकी की तरफ खुलकर देखा।

पात्र अपनी रौ मे कहता गया। बस इतनी-सी बात है। मैंने जब उस लडकी की तरफ साभिप्राय दृष्टि से देखा तो उसने मुझसे सिर्फ इतना ही कहा कि हाँ, मैं जानती थी कि डायरेक्टर तुमसे वैसा कहेगे।

मेरा पात्र न शरमाया, न मुसकराया, न खुश हुआ, न लज्जित। काठ का उल्लू था वह!

मैंने कहा—मिस्टर, जिन्दगी मैथमैटिक्स नही है, वह जिन्दा चीज़ है, सस्पन्द, क्या समझे?

वह इस तरह हँसा मानो मैं जो उसका स्रष्टा लेखक हूँ, निरा शब्द-तत्पर मूर्ख हूँ।

एकाएक मुझे प्रतीत हुआ कि पात्र का मस्तक दीप्त हो उठा है। वह कुछ कहना चाहता था। लडकी के बारे मे नही। ऑफिस के बारे मे, घर के झगडो के बारे मे नही। उस दिक् के बारे मे जो उस काल का ही एक विस्तार है। ऋण-एक का वर्गमूल निकालकर जो ऋण-राशि निकलती है वह एक काल्पनिक सख्या है। मेरे पात्र की यह दृढ धारणा है कि सृष्टि यानी प्रकृति इस काल्पनिक सख्या को मानती है और उसके गणित-शास्त्रीय नियमो के अनुसार बरताव करती है। गणित-विद्या अगर विज्ञान की रानी है तो इसी कारण (उस लडकी का नाम भी विद्या ही था।)शुद्ध तार्किक भाव—प्योर थॉट मे भी प्रतीक होते हैं—यहाँ ये साख्यिक प्रतीक हैं। इन प्रतीको की सगति-मूलक विभिन्न व्यूह-रचनाओ मे बिम्बित शुद्ध तार्किक भावो को मैं लेखक, जो महामूर्ख हूँ, क्या जानूँ! वह केवल वैज्ञानिक ही जान सकते हैं। चाँदनी रात मे खटिया पर लेटे हुए एक बार मेरे पात्र ने मुसकराकर मुझसे प्रश्न पूछा—एक+एक क्या होता है?

मैंने चट से कहा—दो।

पात्र ने सितारो की ठण्डी चमक की तरफ देखते हुए कहा—क्या यह सार्वभौम सत्य है? क्या सचमुच हमेशा ऐसा होता है? तुम्हारा बोसाके क्या कहता है?

मैंने झीककर जवाब दिया—अरे पात्र! मैंने तुझे बनाया है, तू मेरा इम्तिहान लेता है?

पात्र ने अप्रभावित होकर कहा—कोशिश करो, जवाब दे सकोगे।

मैंने बालक की भाँति शर्त लगाकर कहा—एक+एक हमेशा दो होते

आये हैं।

पात्र हँसा। उसने कहा—एक नदी इधर से आयी, एक नदी उधर से। दोनों एकाकार हो गयीं—एक हो गयी। जब नदी एक हो गयी तो उसे दो नहीं कहा जा सकता। एक+एक=एक भी हो सकता है, दो भी, ढाई भी, दो+दो=चार भी, तीन भी, पाँच भी। जड़ गणित के नियम प्रकृति हमेशा नहीं मानती। समझ गये! उसमें अपनी एक स्वयं गति है। स्वयं गति के नियमों को ढूँढ़ना पड़ता है। गणित के नियम उसके आधार पर चलते हैं। उनका काम प्रकृति का बरताव खोजना है, उसका चरम सत्य ढूँढ़ना है।

मैंने पात्र से चिढ़कर पूछा—लेकिन उससे मेरा क्या ताल्लुक? मैं लेखक हूँ, लिखता हूँ, कविताएँ। आज एक कहानी लिखने बैठ गया, तुम मुझ पर टूट पड़े। दिस इज़ टू बैड ऑफ यू।

पात्र ने चाँदनी रात में लेटे ही लेटे मुसकराकर पूछा—लकीर की क्या परिभाषा है?

अब तो मेरी घिग्घी बँध गयी।

मैं लेखक हूँ, मनुष्य-स्वभाव परखने की कोशिश करता हूँ। आड़ी, टेढ़ी, तिरछी या गोल लकीर से मेरा क्या काम!

जब पात्र ज्यादा ज़िद करने लगा तो मैंने हॉल एण्ड स्टीवेन्स ज्यॉमेट्री का सूत्र उसके सामने बक दिया!

उसने मुझसे नम्रतापूर्वक कहा—क्षमा करें, आप मेरे स्रष्टा हैं। मैंने सिर्फ आपसे दो सवाल पूछे, जिनका जवाब आप नहीं दे सके। स्थूल गणित मनुष्य-स्वभाव का भी होता है, सो आपने जान लिया। लेकिन आपमें ऑब्जेक्टिव इमेजिनेशन नहीं है। यही कारण है कि स्थूल गणित के सत्य आप सार्वभौम और सार्वकालिक मानते आये। सीधी लकीर की परिभाषा मैंने पूछी तो भी वही हाल हुआ। अगर आपकी लकीर को दीर्घतम कर दिया जाये तो वह पृथ्वी का चक्कर काटकर खुद उसी बिन्दु पर आ रुकेगी जहाँ से वह चली थी। अगर आपकी सीधी लकीर को सूरज से जोड़ दिया जाये तो वह पृथ्वी के साथ लगातार घूमती जायेगी। कहीं वह ज्यादा लम्बी होगी, कहीं कम, कहीं वह बल खा जायेगी। स्थिर चित्रात्मक कल्पनाओं का कोई वैज्ञानिक मूल्य नहीं है, समझे!

मैंने झींककर पात्र से पूछा—तुम ये ऐंडे-बेंडे सवाल मुझसे क्यों कर रहे हो?

पात्र ने मेरी झखमार के प्रति चिन्तित होकर कहा कि आपको रोमांस सिर्फ लड़की में दीखा—उन पेचीदा सवालों में नहीं जो मैं करता रहता हूँ। आपको क्या मालूम कि शुद्ध तार्किक भावों के मैदान में भी एक बड़ा भारी रोमांस होता है। नयी-नयी संगतियों की वह खोज आप नहीं पहचान सकते तो मैं क्या करूँ! आइन्स्टाइन ने दिक् को छोरहीन किन्तु सान्त बताया, अनन्त नहीं। क्या यह सच है? जहाँ तारा-बिन्दु गोल-गोल घूम रहे हैं वहाँ तो स्पेस या दिक् गोल मानी जा सकती है किन्तु सपाट फैले हुए ब्रह्माण्ड—जैसे सुदूर एक नेब्युला में, जो मान लीजिए स्थिर भी है, जो कि वह नहीं है, दिक् का रूप क्या होगा? गोल होगा? मान लीजिए, हम आइन्स्टाइन की दिक्-सम्बन्धी धारणा का खण्डन करना चाहते हैं, तो हमारे नये बीसियों महत्त्वपूर्ण तथ्यों का, हमारे सारे गणित के बावजूद बार-

बार परीक्षित-सुपरीक्षित करना पडेगा, जाँचना पडेगा। यह जाँच कठोर है, लेकिन जाँच और कठोरता, दोनो मे एक अजीब विश्वात्मक रोमास है ! उसे आप क्या जानो !

मुख्य बात सगति है, किन्तु उसका आधार होता है। उसी आधार से गणितिक प्रतीक प्रस्तुत होते है !

मैंने खीझकर पात्र से पूछा—आप मुझे अपना पाण्डित्य क्यो बता रहे हैं !

पात्र ने नम्रतापूर्वक जवाब दिया—मेरे भीतर का जीवन आप क्या जानो ! जो भीतर का है वह धुआँ या कुहरा है, यह गलत है ! आप मुझे ऐसा पेंट करना चाहते हो जैसे मैं दुख के, असगति के, कष्ट के, एक गटर का एक कीडा यानी निम्न-मध्यवर्गीय हूँ। [illegible] आधुनिक नही हूँ। मेरी आत्मा [illegible] ऽकार और बुद्धि आत्मा की इन्द्रियाँ [illegible] टैक्नोलॉजिकल के बदले मुझमे वे अधिक वैज्ञानिक हो गये, तो इसे मैं क्या करूँ !

ईश्वर के लिए, आप मुझे गलत चित्रित न कीजिए। ठीक है कि मैं तग गलियो मे रहता हूँ, और बच्चे को कपडे नही हैं, या कि मैं फटेहाल हूँ। किन्तु मुझ पर दया करने की कुचेष्टा न कीजिए।

अब मैं अपनी खटिया पर खट से उठ बैठा और पात्र के उस भोले-भाले मुख को परखने लगा। उसने मेरी ओर देखकर कहा—क्षमा कीजिए, लेकिन यह सच है कि आप लोग मन की कुछ विशेष अवस्थाओ को ही अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मानकर चलते हैं—विशेषकर उन अवस्थाओ को जहाँ वह अवसन्न है, और बाहरी पीडाओ से दुखी है। मैं इस अवसन्नता और पीडा का समर्थक नही, भयानक विरोधी हूँ। ये पीडाएँ दूर होनी चाहिए। लेकिन उन्हें अलग हटाने के लिए मन मे एक भव्यता लगती है—चाहे वह भव्यता पीडा दूर करने सम्बन्धी हो या गणितशास्त्रीय कल्पना की एक नयी अभिव्यक्ति। उस भव्य भावना को यदि उतारा जाये तो क्या कहना !

इसलिए, जनाबेआली, मैं इस बात का विरोध करता हूँ कि आप निम्न-मध्य-वर्गीय कहकर मुझे जलील करें, मेरे फटेहाल कपडो की तरफ जान-बूझकर लोगो का ध्यान इस उद्देश्य से खिचवायें कि वे मुझ पर दया करें। उन सालो की ऐसी-तैसी !

मुझे लगा कि मेरा पात्र अब मेरे पीछे पड गया है, कि वह ऐसा भूत है जो मेरा पिण्ड नही छोडेगा। इसलिए जरूरी है कि इस भूत को मार भगाया जाये।

[सम्भावित रचनाकाल 1957। कल्पना, अगस्त 1968 मे प्रकाशित]

समझौता

[illegible] । ऊँची छत
[illegible] । गूँज उठने-
[illegible] ा है। सूना
[illegible] च मे रुकता
[illegible] अंन, उदास
सूनापन इस दूसरी मंज़िल के कॉरिडॉर मे फैला हुआ है। मै तेज़ी से बढ रहा हूँ। मेरी चप्पलो की आवाज़ नही होती। नीचे मार्ग पर टाट का मैटिंग किया गया है।

दूर, सिर्फ एक कमरा खुला है। भीतर से कॉरिडॉर मे रोशनी का एक खयाल फैला हुआ है। रोशनी नही, क्योकि कमरे पर एक हरा परदा है। पहुँचने पर बाहर, धुंधले अँधेरे मे एक आदमी बैठा हुआ दिखायी देता है। मैं उसकी परवाह नही करता। आगे बढता हूँ और भीतर घुस पडता हूँ।

कमरा जगमगा रहा है। मेरी आँखो मे रोशनी भर जाती है। एक व्यक्ति काला ऊनी कोट पहने, जिसके सामने टेबिल पर कागज बिखरे पडे हैं, अलसायी-थकी आँखें पोछता हुआ मुसकराकर मुझसे कहता है, "आइए, हुजूर, आइए!"

मेरा जी धडककर रह जाता है। 'हुजूर' शब्द पर मुझे आपत्ति है। उसमे गहरा व्यग्य है। उसमे एक भीतरी मार है। मैं कन्धो पर फटी अपनी शर्ट के बारे मे सचेत हो उठता हूँ। कमर की जगह पैंट तानने के लिए बेल्टनुमा पट्टी के लिए जो बटन लगाया गया था, उसकी गैरहाजिरी से मेरी आत्मा भडक उठती है।

और मैं ईर्ष्या से उस व्यक्ति के नये फैशनेबल कोट की ओर देखने लगता हूँ और जवान चेहरे की ओर सूखी मुसकान भरकर कहता हूँ, "आपका काम खत्म हुआ!"

मेरी बात मे बनावटी मैत्री का रग है। उसका काम खत्म हुआ या नही, इससे मुझे मतलब?

उसकी अलसायी थकान के दौर मे वहाँ मेरा पहुँचना शायद उसे अच्छा लगा। शायद अपने काम से उसकी जो उकताहट थी, वह मेरे आने से भग हुई। अकेलेपन से अपनी मुक्ति से प्रसन्न होकर उसने फैलते हुए कहा, "बैठो, बैठो, कुरसी लो।"

उसका वचन सुनकर मैं धीरे-धीरे कुरसी पर बैठा। यदि कोई बडा अधिकारी छोटे को—बहुत छोटे को—कुरसी पर बैठने को कहे तो अनुशासन कैसे रहेगा! अनुशासन हमारे लिए, जो छोटे हैं और निर्बल हैं, जिन्हे दम घोटकर मारा जाता है और जिनसे काम करवाया जाता है। मुझे एक लोहे का शिकजा जकडे हुए है, कब छूटूँगा मैं इस शिकजे से! खैर, शिकजे को ढीला कर, ज़रा आराम ही कर लूँ।

मैं धीरे-धीरे कुरसी पर बैठता हूँ। वह अफसर फिर फाइलो मे डूब जाता है। दो पलो का वह विश्राम मुझे अच्छा लगता है। मैं कमरे का अध्ययन करने लगता हूँ। वही कमरा, मेरा जाना-पहचाना, जिसकी हर चीज़ मेरी जमायी हुई है। मेरी देख-रेख मे उसका पूरा इन्तज़ाम हुआ है। खूबसूरत आरामकुरसियाँ, सुन्दर टेबिल,

परदे, आलमारियाँ, फाइलें रखने के रैक आदि-आदि। इस समय वह कमरा अस्त-व्यस्त लगता है, और बेहद पराया। बिजली की रोशनी मे, उसकी अस्त-व्यस्तता चमक रही है, उसका परायापन जगमगा रहा है।

मैं एक गहरी साँस भरता हूँ और उसे धीरे-धीरे छोडता हूँ। मुझे हृदय-रोग हो गया है—गुस्से का, क्षोभ का, खीझ का और अविवेकपूर्ण कुछ भी कर डालन की राक्षसी क्षमता का।

मेरे पास पिस्तौल है। और, मान लीजिए, मैं उस व्यक्ति का—जो मेरा अफसर है मित्र है, बन्धु है—अब खून कर डालता हूँ। लेकिन पिस्तौल अच्छी है, गोली भी अच्छी है, पर काम बुरा है। उस वेचारे का क्या गुनाह? वह, मशीन का सिर्फ एक पुर्जा है। इस मशीन म गलत जगह हाथ आते ही वह कट जायेगा, आदमी उसम फँसकर कुचल जायगा, जैसे वैगन! सबसे अच्छा है कि एकाएक आसमान म हवाई जहाज मँडराये, बमवारी हो और यह कमरा ढह पडे, जिसमे मैं और वह दानो खत्म हा जायें। अलवत्ता, भूकम्प भी यह काम कर सकता है!

फाइल से सिर ऊँचा करके उसन कहा, "भाई, वडा मुश्किल है।" और उसने घण्टी बजायी।

एक ढीला-ढाला, बेवकूफ सा प्रतीत होनवाला स्थूलकाय व्यक्ति सामने आ खडा हुआ।

अफसर ने, जिसका नाम मेहरवानसिंह था, भौंहे ऊँची करके सप्रश्न भाव से कहा, 'कैण्टीन से दो कप गरम चाय ल आओ।" मेरी तरफ ध्यान स देखकर फिर उसस कहा, 'कुछ खाने को भी लेते आना।"

चपरासी की आवाज ऊँची थी। उसने गरजकर कहा, 'कैण्टीन बन्द हो गयी।"

'देखो, खुली होगी, अभी छह नही वजे होंगे।"

चाय और अल्पाहार के प्रस्ताव से मेरा दिमाग कुछ ठण्डा हुआ। जरा दिल मे रोशनी फैली। आदमीयत सब जगह है। इनसानियत का ठेका मैने ही नही लिया। मेरा मस्तिष्क का चक्र घूमा। पावलोव ने ठीक कहा था, कण्डिशण्ड रिफ्लैक्स!" खयाल भी रिफ्लैक्स ऐक्शन है लेकिन मुझे पावलोव की दाढी अच्छी लगती है। उससे भी ज्यादा प्रिय, उसकी दयालु, ध्यान-भरी आँखें। उसका चित्र मेरे सामने तैर आता है।

मैं कुरसी पर वैठे-वैठे उकता जाता हूँ। कोई घटना होनेवाली है, कोई बहुत बुरी घटना। लेकिन मुझे उसका इन्तजार नही है। मैं उसके परे चला गया। कुछ भी कर लूँगा। मेहनत, मजदूरी। फासी पर तो चढा ही नही देंगे। लेकिन, एक दॉस्तॉएवस्की था, जो फाँसी पर चढा और जिन्दा उतर आया। जी हाँ, ऐन मौके पर जार ने हुक्म दे दिया! देखिए, भाग्य ऐसा होता है।

मैं कॉरिडॉर म जाता हूँ। वहाँ अव घुप अँधेरा हो गया है। मैं एक जगह ठिठक जाता हूँ जहाँ से जीना घूमकर नीचे उतरता है। यह एक सँकरी आँगननुमा जगह है। मैं रेलिंग के पास खडा हो जाता हूँ। नीचे कूद पडूँ तो! बस काम तमाम हो जायेगा! जान चली जायेगी, फिर सब खत्म, अपमान खत्म, भूख खत्म, लकिन प्यार भी तो खत्म हो जायगा, उसको सुरक्षित रखना चाहिए। और फिर चाय आ रही है! चाय पीकर ही न जान दी जाये, तृप्त होकर, सबसे पूछकर।

बिल्ली जैसे दूध की आलमारी की तरफ नजर दौडाती है उसी तरह मैंने बिजली के बटन के लिए अँधेरे भरी पत्थर की दीवार पर नजर दौडायी। हाँ वो वही है। बटन दबाया। रोशनी ने आँख खोली। लेकिन प्रकाश नाराज-नाराज-सा उकताया उकताया सा फैला।

चलो मैंने सोचा चपरासी को रास्ता साफ दीखेगा।

मैंने एक ओर के दरवाजे से प्रवेश किया। दूसरी ओर के दरवाज़े से चपरासी ने। मेरा चेहरा खुला। मेहरबानसिंह नाटे-से काले-से कभी फीस की माफी के लिए हरिजन कभी गोंड ठाकुर अलमस्त और बेफिक्र जवान के तर्ज ल्लिस साफ अफसरी बू और आदमीयत की गन्ध ! और एक छोटा सा चौकोर चेहरा !

उन्होने हाथ ऊँचे कर देह मोडकर बदन से आलस मुक्त किया और एक लम्बी जमुहाई ली।

मेरा ध्यान चाय की ट्रे पर था। उनका ध्यान कागज़ पर।

उन्होंने कहा करो दस्तखत यहाँ यहा !

मैं धीरे धीरे कुरसी पर बैठा। आँखें कागज पर गडायी। भँवें सिकुडी और मैं पूरा का पूरा कागज मे समा गया।

मैंने चिढकर अँगरेज़ी म कहा यह क्या है ?

उन्होने दृढ स्वर म जवाब दिया इससे ज्यादा कुछ नही हो सकता।

विरोध प्रदर्शित करने के लिए मैं बेचैनी से कुरसी से उठने लगा तो उन्होंने आवाज म नरमी लाकर कहा भाई मेरे तुम्ही बताओ इससे ज्यादा क्या हो सकता है ! दिमाग़ हाजिर करो रास्ता सुझाओ !

लेकिन मुझ स्केपगोट बनाया जा रहा है मैंने किया क्या !

चाय के कप मे शक्कर डालते हुए उन्होंने एक और कागज मेरे सामने सरका दिया और कहा पढ लीजिए !

मुझ उस कागज़ को पढने की कोई इच्छा नही थी। चाहे जो अफसर मुझ चाहे जो काम नही कह सकता। मेरा काम बँधा हुआ है।

नियम के विरुद्ध मैं नही था वह था। लेकिन उसने मुझ जब डाटकर कहा तो मैंने पहले अदब से फिर ठण्डक से फिर और ठण्डक स फिर खीझकर एक जोरदार जवाब दिया। उस जवाब म नासमझ और नास्वाँद जैसे शब्द जरूर थे। लकिन साइण्टिफिकली स्पीकिंग गलती उसकी थी मेरी नही ! फिर गुस्से मे मैं नही वह था। एक जूनियर आदमी मेरे सिर पर बठा दिया गया जरा देखो तो ! इसीलिए कि वह फला फला का खास आदमी वह खास खास काम करता था। उस शख्स के साथ मेरी ह्यूमन डिफिकल्टी थी !

मेहरबानसिंह ने कहा भाई गलती मेरी थी जो मैंने यह काम तुम्हारे सिपुर्द करने के बजाय उसको सौप दिया। लेकिन चूंकि फाइलें दौड गयी हैं इसलिए ऐक्शन तो लेना ही पडगा। और उसमे है क्या ! वार्निंग है सिफ हिदायत !

हम दोनो चाय पीने लगे और बीच-बीच मे खाते जाते।

एकाएक उन्हे जोर की गगन भेदी हँसी आयी। मैं विस्मित होकर देखने लगा। वे ठठाकर हँस रहे थ हँसी की लहर फल रही थी। मानो पूरा कमरा ठठाकर हँस रहा हो। जब उनकी हँसी का आलोडन खत्म होने को था कि उन्होने

कहा, "लो, मैं तुम्हे एक कहानी सुनाता हूँ। तुम अच्छे, प्रसिद्ध लेखक हो। सुनो और गुनो !"

और, मेहरबानसिंह का छोटा-सा चेहरा गम्भीर होकर कहानी सुनाने लगा।

"मुसीबत आती है तो चारो ओर से। जिन्दगी मे अकेला, निस्सग और बी.ए. पास एक व्यक्ति। नाम नही बताऊँगा।

"कई दिनो से आधा पेट। शरीर से कमज़ोर। ज़िन्दगी से निराश। काम नही मिलता। शनि का चक्कर। हर भले आदमी से काम माँगता है। लोग सहायता भी करते हैं। लेकिन उससे दो जून खाना भी नही मिलता, काम नही मिलता, नौकरी नहीं मिलती। चपरासीगीरी की तलाश है, लेकिन वह भी लापता। कप-बशी धोने और चाय बनाने के काम से लगता है कि दो दिनो बाद अलग कर दिया जाता है। जेब मे बी ए. का सर्टिफिकेट है। लेकिन, किस काम का !"

मैंने सोचा, मेहरबानसिंह अपनी ज़िन्दगी की कथा कह रहे है। मुझे मालूम तो था कि मेरे मित्र के बचपन और नौजवानी के दिन अच्छे नही गये है। मैं और ध्यान से सुनने लगता हूँ।

मेहरबानसिंह का छोटा-सा काला चौकोर चेहरा भावना से विद्रूप हो जाता है। वह मुझसे देखा नही जाता। मेहरबानसिंह कहता है, "नौकरी भी कौन दे? नीचे की श्रेणी मे बडी स्पर्धा है। चेहरे से वह व्यक्ति एकदम कुलीन, सुन्दर और रौबदार, किन्तु घिघियाया हुआ। नीचे की श्रेणी में जो अलफतियापन है, गाली-गलौज की जो प्रेमपदावली है, फटेहाल ज़िन्दगी की जो कठोर, विद्रूप, भूखी, भयकर सभ्यता है, वहाँ वह कैसे टिके ! कमज़ोर आदमी, रिक्शा कैसे चलाये !

"नीचे की श्रेणी उस पर विश्वास नही कर पाती। उसे मारने दौडती है। उसका वहाँ टिकना मुश्किल है। दरमियानी वर्ग मे वह जा नही सकता। कैसे जाये, किसके पास जाय ! जब तक उसकी जेब मे एक रुपया न हो।"

मेहरबानसिंह के गले मे आँसू का काँटा अटक गया। मैं सब समझता हूँ, मुझे खूब तजरबा है, इस आशय से मैंने उनकी तरफ देखा और सिर हिला दिया।

उन्होने सूने मे, अजीब-से सूने मे, निगाह गडाते हुए कहा (शायद उनका लक्ष्य आँखो ही आँखो मे आँसू सोख लेने का था, जिन्हे वे बताना नही चाहते थे), "आत्महत्या करना आसान नही है। यह ठीक है कि नयीशुक्रवारी तालाब मे महीने में दो बार आत्महत्याएँ हो जाती है। लेकिन छह लाख की जनसख्या मे सिर्फ़ दो माहवार, यानी साल मे चौबीस ! दूसरी जर्दों से की गयी आत्महत्याएँ मिलायी जायें तो सालाना पचास से ज्यादा न होगी। यह भी बहुत बडी सख्या है। आत्महत्या आसान नही है।"

उनके चेहरे पर काला बादल छा गया। अब वे पहचान मे नही आते थे। अब वे मेरे अफसर भी न रहे, मेरे परिचित भी नही। सिर्फ एक अजनबी—एक भयानक अजनबी। मेरा भी दम घुटने लगा। मैंने सोचा, कहाँ का क़िस्सा उन्होंने छेड दिया ! मेहरबानसिंह ने मेरी ओर कहानीकार की निगाह से देखा और कहा कि, "उन दिनों शहर में एक सर्कस आया हुआ था। बड़ी धूम-धाम थी। बडी चहल-पहल।

"रोज सुबह-शाम सर्कस का प्रोसेशन निकलता, बाजे-गाजे के साथ, बैण्ड-

बाजे के साथ। जुलूस में एक मोटर का ठेला भी चलता, खुला ठेला, प्लेटफार्म नुमा। उस पर रंग-बिरंगे, अजीबोग़रीब जोकर विचित्र हावभाव करते हुए नाचते रहते। लोगों का ध्यान आकर्षित करते।

"जो एक लम्बे अरसे से बेघरबार और बेकार रहा है, उसकी इंस्टिंक्ट (प्रवृत्ति) शायद आपको मालूम नहीं। वह व्यक्ति क्रान्तिकारी नहीं होता, वह खासतौर से 'घुमन्तू 'जिप्सी' होता है। उसे चाहे जो वस्तु, दृश्य, घटना, दुर्घटना, यात्रा, बारिश, दूसरों की बातचीत, कष्ट, दुःख, सुन्दर चेहरा, बेवकूफ चेहरा, मलिनता, कोढ़—सब तमाशे-नुमा मालूम होता है। चाहे जो 'खींचता है'" आकर्षित करता है, और कभी-कभी पैर उधर चल पड़ते हैं।

"एक आइडिया, एक खयाल आँखों के सामने आया। जोकर होना क्या बुरा है! जिन्दगी—एक बड़ा भारी मज़ाक है, और तो और, जोकर अपनी भावनाएँ व्यक्त कर सकता है। चपत जड़ सकता है। एक दूसरे को लात मार सकता है, और, फिर भी, कोई दुर्भावना नहीं। वह हँस सकता है, हँसा सकता है। उसके हृदय में इतनी सामर्थ्य है।"

मेहरबानसिंह ने मेरी ओर अर्थ-भरी दृष्टि से देखकर कहा कि "इसमें कोई शक नहीं कि जोकर का काम करना एक परवर्शन (अस्वाभाविक प्रवृत्ति) है! मनुष्य की सारी सभ्यता के पूरे ढाँचे चरमराकर नीचे गिर पड़ते हैं, चूर-चूर हो जाते हैं। लेकिन असभ्यता इतनी बुरी चीज़ नहीं, जितना आप समझते हैं। उसमें इंस्टिंक्ट का, प्रवृत्ति का खुला खेल है, आँख-मिचौनी नहीं। लेकिन अलबत्ता, वह परवर्शन ज़रूर है। परवर्शन इसलिए नहीं कि मनुष्य परवर्ट है, वरन् इसलिए कि परवर्शन के प्रति उसका विशेष आकर्षण है, या कभी-कभी हो जाता है। अपने इंस्टिंक्ट के खुले खेल के लिए असभ्य और बर्बर वृत्ति के सामर्थ्य और शक्ति के प्रति खिंचाव रहना, मैं तो एक ढंग का परवर्शन ही मानता हूँ।"

मेहरबानसिंह के इस वक्तव्य में मुझे लगा कि वह उनका एक आत्म निवेदन मात्र है। मैं यह पहचान गया—इस वे भाँप गये। उनकी आँखों में एकाएक प्रकट-हुई और फिर वैसे ही तुरत लुप्त-हुई रोशनी से मैं यह जान गया। लेकिन मेरे खयाल की उन्होंने परवाह नहीं की। और उनकी कहानी आगे बढ़ी।

"आखिरकार, उसने जोकर बनने का बीड़ा उठाया। भूख ने उसे काफी निर्लज्ज भी बना दिया था।

"शाम को, जब खेल शुरू होने के लिए करीब दो घण्टे बाकी थे, उसने सर्कस के द्वार से घुसना चाहा कि वह रोक दिया गया। वह अन्दर जाने के लिए गिड़-गिड़ाया। दो मजबूत आदमियों ने उसकी दो बाँहें पकड़ लीं। वे गोआनीज़ मालूम होते थे।

" 'कहाँ जा रहे हो?'

"रौब जमाने के लिए उसने अँगरेज़ी में कहा, 'मैनेजर साहब से मिलना है।'

"अँगरेज़ी में जवाब मिला, 'वहाँ नहीं जा सकते! क्या काम है?'

"हिन्दी में, 'नौकरी चाहिए!'

"अँगरेज़ी में, 'नौकरी नहीं है, गेट-आउट।' और वह बाहर फेंक दिया गया।

' दिल को धक्का लगा। बाहर, एक पत्थर पर बैठे-बैठे वह सोचने लगा—कहीं भी जनतन्त्र नहीं है। यहाँ भी नहीं। भीख नहीं माँग सकता, यह असम्भव है,

इसलिए नौकरी की तलाश है। और वह मन ही मन न मालूम क्या-क्या बडबडाने लगा।"

मेहरबानसिंह ने कहा कि, "यहाँ से कहानी एक नये और भयकर तरीके से मुड जाती है। वह मैनेजर को देखने का प्रयत्न करे, या वापस हो ! बताइए, आप बताइए !" और, उन्होने मेरी आँखो मे आँखे डाली।

उनके प्रश्न का मैं क्या जवाब देता ! फिर भी, मैंने अपने तर्क मे कहा कि, "स्वाभाविक यही है कि वह मैनेजर से मिलने की एक बार और कोशिश करे। जोकर की कमाई भी मेहनत की कमाई होती है ! कोई धर्मादाय पर जीने की बात तो है नहीं।"

"एक्जैक्टली !" (ठीक बात है) उन्होने कहा। "उसने भी यही निर्णय किया, लेकिन यह निर्णय उसके आगे आनेवाले भीषण दुर्भाग्य का एकमात्र कारण था। वह निर्णयात्मक क्षण था, जब उसने यह तय किया कि मैनेजर से मिलने के लिए सर्कस के सामने वह भूख-हडताल करेगा। उसने यह तय किया, सकल्प किया, प्रण किया। और, यह प्रण आगे चलकर उनके नाश का कारण बना ! दिल की सचाई, और सही-सही निर्णय से दुर्भाग्य का कोई सम्बन्ध नही है। उसका चक्र स्वतन्त्र है, उसके अपने नियम हैं।"

मेहरबानसिंह अपनी कुरसी से उठ पडे। कोट की जेबो मे माचिस की तलाश करने लगे। मैंने अपनी जेब से उन्हे दियासलाई दी, जिसमे कुछ ही कडियाँ शेष थी। उन्होने मुझे सिगरेट ऑफर की। मैने 'नही-नही' कहा। कहा, "मेरे पास बीडी है।"

"अरे, लो ! कामरेड ! लाओ, मुझे बीडी दो ! मैं बीडी पीऊगा !"

कामरेड शब्द के प्रयोग पर मुझे ताज्जुब है। ऐसा उन्होने क्यो कहा ? मेरे लिए इस शब्द का आज तक किसी ने प्रयोग नही किया। मैं मेहरबानसिंह के अतीत के विषय मे कुछ जिज्ञासु और सशक हो उठा। मेरी कल्पना ने कहा—इनके भूतकाल मे कोई भूत जरूर बैठा है ! एक सेकण्ड क्लास गजेटेड अफसर की रैंक का आदमी इस शब्द का प्रयोग करता है, जरूर वह पुराने जमाने मे उचक्का रहा होगा !

मेहरबानसिंह ने भौंहो के परे देखते हुए, मानो आसमान की तरफ देख रहे हो, बीडी का एक कश खीचा, और कहा, "इसके आगे मैं ज्यादा नही कह सकूँगा, कुछ इम्प्रेशन्स ही कहूँगा।

"भूख हडताल के आसपास लोगो के जमाव से घबराकर नौकरो ने शायद मैनेजर के सामने जाकर यह बात कही। थोडे ही समय बाद, शामियाने के अन्दर ही बनाये गये एक कमरे मे वह ले जाया गया। भीड बाहर रोक दी गयी। थोडी देर बाद सर्कस शुरू हुआ।

"एक काले पैण्ट पर सफेद झक कोट पहने वह साढे छह फुट का मोटा-ताजा आदमी था, जो बिलकुल गोरा, यहाँ तक कि लाल मालूम होता था। वह या तो ऐंग्लो-इण्डियन होगा या गोआनीज ! आँखें कजी, जिसमे हरी झाँक थी। वह एकदम चीता मालूम होता था। उतना ही खूबसूरत, वैसा ही भयकर !

"उसने साफ हिन्दी मे कहा, 'क्या चाहते हो ?'

"उसे काटो तो खून नही। उसके राक्षसी भव्य सफेद सौन्दर्य को देखकर वह इतना हतप्रभ हो गया था।

"मैनेजर ने फिर पूछा, 'क्या चाहते हो ?'

"दिमाग सुन्न हो गया था। मैनेजर के आसपास खूबसूरत औरतें आ-जा रही थी। *गुलाब-सी खिली हुईं, या ज़िन्दा लाल मास-सी चमकती हुईं।* लेकिन भयकर आकर्षक।

"उसने सोचा, यह एक नया तजरबा है।

"उसने शब्दो म दयनीयता लाते हुए कहा, 'मुझे नौकरी चाहिए, कोई भी। चाहो तो झाड़ू दे सकता हूँ, कपडे साफ कर सकता हूँ। मुझे नौकर रख लो। चाहो तो मुझे जोकर बना दो। कई दिन से, पेट मे कुछ नही, कुछ नही! मैं आपके पाँव पडता हूँ।'

"तो, साहब, वह गिडगिडाहट जारी रही। शब्द, वाक्य बगैर कामा-फुलस्टाप के बहते गये, बहते गये। *वहाँ के वातावरण के चमत्कारपूर्ण भयकर आकर्षण ने* उसे जकड लिया। उसने निश्चय कर लिया कि मैं जान दे दूँगा, लेकिन यहाँ से टलूँगा नही।

"मैनेजर ने ऐसा आदमी नही देखा था। पता नही, उसने क्या सोचा। लेकिन उसके चेहरे पर आश्चर्य और घृणा के भाव रहे होगे।

"उसने कठोर स्वर मे कहा, 'मेरे पास कोई नौकरी नही है। लेकिन तुम्हे रख सकता हूँ, सिर्फ एक शर्त पर।'

"वह उसका चेहरा देखता खडा रह गया। इस अचानक दया से, उसके मुँह *से एक शब्द भी न निकला। उसने केवल इतना सुना, 'सिर्फ एक शर्त पर।'*

"उसने मौखिक व्यायाम-सा करते हुए कहा, 'मै हर शर्त मानने के लिए तैयार हूँ। मैं झाड़ू दूँगा। पानी भरूँगा। जो कहेगे सो करूँगा।' (जिन्दगी का एक ढर्रा तो शुरू हो जायेगा।)

"मैनेजर ने घृणा, तिरस्कार और रौब से उसके सामने एक रुपया फेंकते हुए कहा, 'जाओ, खा आओ, कल सुबह आना।' और मुँह फिराकर वह दूसरी ओर चलता बना। एक सीन खत्म हुआ।

"दुर्भाग्य के मारे इस व्यक्ति न फिर उस मैनेजर का चेहरा कभी नही देखा।"

मेहरबानसिह किस्सा कहते-कहते थक गये-से मालूम हुए। उन्होने एक सिगरेट मेरे पास फेंकी, एक खुद सुलगायी और कहने लगे, "किस्सा मुख्तसर मे यो है कि दूसरे दिन तडके जब वह व्यक्ति सर्कस मे दाखिल हुआ तो दो अजनबी आदमियो ने उसकी बाँहे पकड ली और उसे एक बन्द कोठे मे ले गये। उसे कहा गया कि उसकी ड्यूटी सिर्फ कमरे मे बैठे रहना है। उस दिन उसे खाना-पीना नही *मिला। कोठे म किसी जगली दरिन्दे की बास आ रही थी। उसके शरीर की उग्र* दुर्गन्ध वहाँ वातावरण म फैली हुई थी। कमरा छोटा था। और बहुत ऊँचाई पर एक छोटा-सा सूराख था, जहाँ से हवा और प्रकाश आता था, लेकिन वह अँधेरे के सूनेपन को चीरने मे असमर्थ था। वह व्यक्ति एक दिन और एक रात वहाँ पडा रहा। उसे सिर्फ दरिन्दो का खयाल आता। उनके भयानक चेहरे उसे दिखायी देते, मानो वे उसे खा जायेंगे।

"एक बडे ही लम्ब और कष्टदायक अरसे बाद, जब एक चमकदार यहूदी औरत ने कोठे का दरवाजा खोला और उसे कहा, 'गुड मार्निंग', तब उसे समझ मे

आया कि वह स्वयं जिन्दगी का एक हिस्सा है, मौत का हिस्सा नहीं। औरत बेतकल्लुफी से उसके पास बैठ गयी और उसे नाश्ता कराया, जिसमें कम-से-कम तीन कप गरम-गरम चाय, ताजा भुना गोश्त, अण्डा, सेण्डविचेज़ और कुछ भारतीय मिठाई भी थी।

"लेकिन इतना सब कुछ उससे खाया नहीं गया। मरे हुए की भाँति उसने पूछा, "मुझे कब तक कोठे में रखा जायेगा, मेरी ड्यूटी क्या है?'

"यहूदी औरत सिर्फ मुसकरायी। उसने कहा, "ईश्वर को धन्यवाद दो कि तुम्हारी तरक्की का रास्ता खुल रहा है। ये तो बीच के इम्तिहानात हैं, जिन्हें पास करना निहायत जरूरी है।'

"किन्तु, उस व्यक्ति का मन नहीं भरा। उसने फिर पूछा, 'क्या मैं मैनेजर से मिल सकता हूँ?'

"यहूदी औरत ने उसकी तरफ सहानुभूतिपूर्वक देखते हुए कहा, 'अब मैनेजर से तुम्हारी मुलाकात हो ही नहीं सकती। अब तुम दूसरे के चार्ज में पहुँच गये हो, वह तुम्हें मैनेजर से मिलने नहीं देगा।'

"यहूदी औरत जब वापस जाने लगी तब उसने कहा, 'कल फिर आओगी क्या?'

"उसने पीछे की ओर देखा, मुसकरायी और बगैर जवाब दिये वापस चली गयी। कोठे का दरवाजा बाहर से बन्द हो गया। और, एक बच्चे की भाँति वह उस चमकदार औरत के छाया-बिम्ब से खेलता रहा।

"किन्तु, उसका यह सुख क्षणिक ही था। लगभग दो घण्टे घुप अँधेरे में रहने के बाद दरवाज़ा चरमराया और काली वास्कट पहने हुए दो काले व्यक्ति हण्टर लिये हुए वहाँ पहुँचे।

"वे न मालूम कैसी-कैसी भयकर कसरतें करवाने लगे, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वे कसरतें नहीं थीं, शारीरिक अत्याचार था। जरा गलती होने पर वे हण्टर मारते। इस दौरान में उस व्यक्ति की काफी पिटाई हुई। उसके हाथ, पैर, ठोड़ी में घाव लग गये। वह कराहने लगा। कराह सुनते ही चाबुक का गुस्सा तेज़ होता। मतलब यह कि वह अधमरा हो गया। उसको ऐसी हालत में छोड़कर हण्टर-धारी राक्षस चले गये।

"करीब तीन घण्टे बाद चाय आयी, डॉक्टर आये, इंजेक्शन लगे, किन्तु किसी ने दरिन्दों की दुर्गन्ध से भरे हुए उस कोठे में से उसे नहीं निकाला।

"समय ने हिलना-डुलना छोड़ दिया था। वह जड़ीभूत सूने में परिवर्तित हो गया था।

"बाद में, दो-एक दिन तक, किसी ने उसकी खबर नहीं ली। उसे प्रतीत होने लगा कि वह किसी कब्र के भीतर के अन्तिम पत्थर के नीचे गड़ा हुआ सिर्फ एक अधमरा प्राण है।

"एकाएक तीन-चार आदमियों ने प्रवेश किया और उसे उठाकर, मानो वह प्रेत हो, एक साफ-सुथरे कमरे में ले गये। वहीं उसे दो-चार दिन रखा गया, अच्छा भोजन दिया गया।

"कुछ दिनों बाद, ज्योंही उसके स्वास्थ्य में सुधार हुआ, उसे वहाँ से हटाकर रीछों के एक पिंजरे में दाखिल कर दिया गया।

"अब उसके दोस्त रीछ बनने लगे। वही उसका घर था, कम-से-कम वहाँ हवा और रोशनी तो थी।

"लेकिन उसकी यह प्रसन्नता अत्यन्त क्षणिक थी। उसके शरीर पर अत्याचारों का नया दौर शुरू हुआ। उससे अजीबोगरीब ढंग की कवायदें करायी जाती। रीछों के मुँह में हाथ डलवाये जाते, रीछ छाती पर चढ़वाया जाता और ज़रा ग़लती की कि हण्टर। कुछ रीछ बड़े शैतान थे। उसका मुँह चाटते, कान काट लेते। उनके बालों में कीड़े रहा करते और हमेशा यह डर बना रहता कि कहीं रीछ उसे मार न डालें। शुरू-शुरू में व्यक्ति को भुना हुआ मांस मिलता। अब उसके सामने कच्चे मांस की थाली जाने लगी। अगर न खाये तो मौत, खाये तो मौत।

"और हण्टरों का तो हिसाब न पूछो। शायद ही कोई ऐसा दिन गया होगा, जब उस पर हण्टर न पड़े हों, बाद में भले ही टिंक्चरआयोडिन और मरहम लगाया गया हो।

"वह यह पहचान गया कि उसे जान-बूझकर पशु बनाया जा रहा है। पशु बन जाने की उसे ट्रेनिंग दी जा रही है। उसके शरीर के अन्दर नयी सहन-शक्ति पैदा की जा रही है।

"अब उसे कोठे से निकाल बाहर किया गया और एक दूसरे छोटे पिंजरे में बन्द कर दिया गया। वहाँ कोई नहीं था और वह एक निर्द्वन्द्व अकेला जानवर था। अकेलेपन में वह पिछली ज़िन्दगी से नयी ज़िन्दगी की तुलना करने लगता और उसे आत्महत्या करने की इच्छा हो जाती। इस नये क्षेत्र में, जीवन-यापन का एकमात्र स्टैण्डर्ड यह था कि वह पशु रूप बन जाये। उसने इसकी कोशिश भी की।

"एक अति-भीषण क्षण में चार-पाँच आदमी पिंजरे में घुसे और उसे घेर लिया। उसकी भयभीत पुतलियाँ आँखों में मछली-सी तैर रही थीं। वह डर के मारे बर्फ़ हो रहा था। शायद, अब उसे बिजली के हण्टर पड़ेंगे! पाँचों आदमियों ने उसे पकड़ लिया और उसके शरीर पर ज़बरदस्ती रीछ का चमड़ा मढ़ दिया गया और उससे कह दिया गया कि साले, अगर रीछ बनकर तुम नहीं रहोगे तो गोली से फ़ौरन से पेशतर उड़ा दिये जाओगे।

"यहाँ से उस व्यक्ति का मानव-अवतार समाप्त होकर ऋक्षावतार शुरू होता है। उससे वे सभी कवायदें करवायी जाती हैं जो एक रीछ करता है। उस सबकी प्रैक्टिस दी जाती है। और प्रैक्टिस भी कैसी? महाभीषण! और अगर नहीं की तो सभी आदमी एकदम उस पर हमला करते हैं। बिजली के हण्टरों की फटकार, गाली गलौज और मारपीट तो मानो रूटीन हो गयी है। जलते हुए लोहे के पहिए के बीच से उसे निकल जाने को कहा जाता है। उसे खौफनाक ऊँचाई से कुदवाया जाता है, आदि-आदि।

"फिर उसे कच्चा मांस, भुना मांस और शराब पिलायी जाती है और यह घोषित किया जाता है कि कल उसकी प्रैक्टिस अकेले-अकेले सिर्फ़ शेरों के साथ होगी।

"शीघ्र ही इम्तिहान का चरम क्षण उपस्थित होता है।

तो विश्वास नहीं कर पाता है कि वह इन्सान है। चले गये वे दिन जब वह किसी का मित्र तो किसी का पुत्र था। पेट भूखा ही क्यों न सही, आँखें तो सुन्दर दृश्य देख सकती थीं। और वह सुनहली धूप! आहा! कैसी खूबसूरत! उतनी ही मनोहर जितनी सुशीला की त्वचा! !

"लेकिन वह अपने पर ही विस्मित हो उठा। यह सब वह सह सका, जिन्दा रह सका, कच्चा मांस खा सका! मार खा सका और जीवित रह सका! क्या वह आदमी है? शायद, पशु बनने की प्रक्रिया पहले से ही शुरू हो गयी थी।

"नाश्ते का समय आया। किन्तु, नाश्ता गोल! राम-राम कहते-कहते भोजन का समय आया तो वह भी गैर-हाजिर! पेट का भूखा! क्या करे! शायद, भोजन आता ही होगा!

"लेकिन, उसे बिलकुल भूख नहीं है, ज़बान सूखी हुई है। अगर वह चिल्लाया तो, पहले की भाँति, मुँह में कपड़ा ठूँस दिया जायेगा और उससे और तकलीफ होगी। खैरियत इसी में है कि वह चुप रहे, और आराम से साँस ले।

"एकाएक सामने का एक बड़ा भारी पिंजरा खुला। अब तक उसमें कुछ नहीं था, लेकिन अब उसमें एक बड़ा-डरावना शेर हलचल करता हुआ दिखायी दे रहा था। एकाएक उसका भी पिंजरा खुला और दोनों पिंजरों के दरवाजे एक-दूसरे के सामने हो लिये। और, आदमियों की जो छायाएँ इधर-उधर दिखायी दे रही थीं, वे गायब हो गयीं।

"एकाएक शेर चिंघाड़ा! ऋक्षावतार का रोम-रोम काँप उठा, कण-कण में भय की मर्मान्तक बिजली समा गयी। रीछ को मालूम हुआ कि शेर ने ऐसी ज़ोरदार छलाँग मारी कि एकदम उसकी गरदन उस दुष्ट पशु के जबड़े में जकड़ी गयी। हृदय से अनायास उठनेवाली 'मरा-मरा' की ध्वनि के बाद अँधेरा-सा फैलने लगा। शेर की साँस उसके आसपास फैल गयी, शेर के चमड़े की दुर्गन्ध उसकी नाक में घुसी कि इतने में उसके कान में कुछ कम्पन हुआ, कुछ लहरें घुसीं जो कहने लगीं :

" 'अबे डरता क्या है, मैं भी तेरे ही सरीखा हूँ, मुझे भी पशु बनाया गया है, सिर्फ मैं शेर की खाल पहने हूँ, तू रीछ की!'

"इस बात पर रीछ को विश्वास करने या न करने की फुरसत ही न देते हुए शेर ने कहा, 'तुम पर चढ़ बैठने की सिर्फ मुझे कवायद करनी है, मैं तुझे खा डालने की कोशिश करूँगा, खाऊँगा नहीं। कवायद नहीं की तो हण्टर पड़ेंगे तुमको और मुझको भी! मैं तुझे खा नहीं सकता। आओ, हम दोस्त बन जायें। अगर पशु की जिन्दगी ही बितानी है तो ठाठ से बितायें, आपस में समझौता करके।"

मैं ठहाका मारकर हँस पड़ा। बात मुझ पर चस्पाँ हो गयी। बड़ी देर तक बात का मज़ा लेता रहा। फिर मेरे मुँह से निकल पड़ा, "तो गोया आप शेर है और मैं रीछ।"

मुझ पर कहानी का जो असर हुआ उसकी ओर तनिक भी ध्यान न देते हुए, अत्यन्त दार्शनिक भाव से मेरे अफसर ने कहा, "भाई, समझौता करके चलना पड़ता है जिन्दगी में, कभी-कभी जान-बूझकर अपने सिर बुराई भी मोल लेनी पड़ती है। लेकिन उससे फायदा भी होता है। सिर सलामत तो टोपी हज़ार।"

अफसर के चेहरे पर गहरा कड़वा काला खयाल जम गया था। लगता था मानो वह स्वयं कोई रटी-रटायी बात बोल रहा हो। मुझे लगा कि जिन्दगी से

मेरे कमरे मे जो प्रकाश आता है, वह इन लहरो पर नाचती हुई किरनों का उछलकर आया हुआ प्रकाश है। खिडकी की लम्बी दरारो में से गुजरकर, वह प्रकाश, सामने की दीवार पर चौडी मुँडेर के नीचे सुन्दर झलमलाती हुई आकृतियाँ बनाता है।

मेरी दृष्टि उस प्रकाश-कम्प की ओर लगी हुई है। एक क्षण मे उसकी अनगिनत लहरें नाचे जा रही हैं, नाचे जा रही हैं। कितना उद्दाम, कितना तीव्र वेग है उन झिलमिलाती लहरो मे। मैं मुग्ध हूँ कि बाहर के लहराते तालाब ने किरनो की सहायता से अपने कम्पो की प्रतिच्छवि मेरी दीवाल पर आँक दी है।

काश, ऐसी भी कोई मशीन होती जो दूसरो के हृदय-कम्पनो को, उनकी मानसिक हलचलो को, मेरे मन के परदे पर, चित्र रूप में, उपस्थित कर सकती।

उदाहरणत, मेरे सामने इसी पलँग पर, वह जो नारी-मूर्ति बैठी है, उसके व्यक्तित्व के रहस्य को मैं जानना चाहता हूँ, वैसे, उसके बारे मे जितनी गहरी जानकारी मुझे है, शायद और किसी को नही।

इस धुँधले और अँधेरे कमरे में वह मुझे सुन्दर दिखायी दे रही है। दीवार पर गिरे हुए प्रत्यावर्तित प्रकाश का पुन प्रत्यावर्तित प्रकाश, नीली चूडियोंवाले हाथों मे थमे हुए उपन्यास के पन्नो पर, ध्यानमग्न कपोलो पर, और आसमानी आँचल पर फैला हुआ है। यद्यपि इस समय, हम दोनो अलग-अलग दुनिया मे (वह उपन्यास के जगत् में और मैं अपने खयालो के रास्ते पर) घूम रहे हैं, फिर भी इस अकेले धुँधले कमरे मे गहन साहचर्य के सम्बन्ध-सूत्र तडप रहे हैं और महसूस किये जा रहे है।

बावजूद इसके, यह कहना ही होगा कि मुझे इसमे 'रोमास' नही दीखता। मेरे सिर का दाहिना हिस्सा सफेद हो चुका है। अब तो मैं केवल आश्रय का अभिलाषी हूँ, ऊष्मापूर्ण आश्रय का··

फिर भी, मुझे शका है। यौवन के मोह-स्वप्न का गहरा उद्दाम आत्मविश्वास अब मुझमे नही हो सकता। एक वयस्क पुरुष का अविवाहिता वयस्का स्त्री से प्रेम भी अजीब होता है। उसमे उद्बुद्ध इच्छा से आग्रह के साथ-साथ जो अनुभवपूर्ण ज्ञान का प्रकाश होता है, वह पल-पल पर शका और सन्देह को उत्पन्न करता है।

श्यामला के बारे मे मुझे शका रहती है। वह ठोस बातो की बारीकियो का बडा आदर करती है। वह व्यवहार की कसौटी पर मनुष्य को परखती है। यह मुझे अखरता है। उसमें मुझे एक ठण्डा पथरीलापन मालूम होता है। गीले सपनीले रगो का श्यामला मे सचमुच अभाव है।

ठण्डा पथरीलापन उचित है, या अनुचित, यह मैं नही जानता। किन्तु, जब औचित्य के सारे प्रमाण, उनका सारा वस्तु-सत्य, पॉलिशदार टीन-सा चमचमा उठता है तो, मुझे लगता है—बुरे फँसे, इन फालतू की अच्छाइयो म, तो दूसरी तरफ मुझे अपने भीतर ही कोई गहरी कमी महसूस होती है, और खटकने लगती है।

ऐसी स्थिति मे, मैं 'हाँ' और 'ना' के बीच म रहकर, खामोश, 'जी हाँ' की सूरत पैदा कर देता हूँ। डरता सिर्फ इस बात से हूँ कि कहीं यह 'जी हाँ', 'जी हुजूर' न बन जाये। मै अतिशय शान्ति-प्रिय व्यक्ति हूँ। अपनी शान्ति भग न हो,

इसका बहुत खयाल रखता हूँ। न झगडा करना चाहता हूँ, न मैं किसी झगडे मे फँसना चाहता ''।

उपन्यास फेंककर श्यामला ने दोनो हाथ ऊँचे करके ज़रा-सी अँगडाई ली। मैं उसकी रूप मुद्रा पर फिर से मुग्ध होना ही चाहता था कि उसने एक बेतुका प्रस्ताव सामने रख दिया। कहने लगी, "चलो, बाहर घूमने चलें।"

मेरी आँखो के सामने बाहर की चिलचिलाती सफेदी और भयानक गरमी चमक उठी। खस के परदो के पीछे, छत के पंखो के नीचे, अलसाते लोग याद आये। भद्रता की कल्पना और सुविधा के भाव मुझे मना करने लगे। श्यामला के झक्कीपन का एक प्रमाण और मिला।

उसने मुझे एक क्षण आँखो से तौला और फैसले के ढग से कहा, "खैर, मैं तो जाती हूँ। देखकर चली आऊँगी ''बता दूँगी।"

लेकिन चन्द मिनटो बाद, मैंने अपने को, चुपचाप, उसके पीछे चलते हुए पाया। तब दिल मे एक अजीब झोल महसूस हो रहा था। दिमाग के भीतर सिकुडन-सी पड गयी थी। पतलून भी ढीला-ढाला लग रहा था, कमीज के 'कॉलर' भी उलटे-सीधे रहे होंगे। बाल अनसँवरे थे ही। पैरो को किसी-न-किसी तरह आगे ढकेले जा रहा था।

लेकिन, यह सिर्फ दुपहर के गरम तीरो के कारण था, या श्यामला के कारण, यह कहना मुश्किल है।

उसने पीछे मुडकर मेरी तरफ देखा और दिलासा देती हुई आवाज मे कहा, "स्कूल का मैदान ज़्यादा दूर नही है।"

वह मेरे आगे-आगे चल रही थी, लेकिन मेरा ध्यान उसके पैरो और तलुओ के पिछले हिस्से की तरफ ही था। उसकी टाँग, जो बिवाइयो भरी और धूल-भरी थी, आगे बढने मे, उचकती हुई चप्पल पर चटचटाती थी। ज़ाहिर था कि ये पैर धूल-भरी सडको पर घूमने के आदी हैं।

यह खयाल आते ही, उसी खयाल से लगे हुए न मालूम किन धागो से होकर, मैं श्यामला से खुद को कुछ कम, कुछ हीन पाने लगा, और इसकी ग्लानि से उबरने के लिए, मैं उस चलती हुई आकृति के साथ, उसके बराबर हो लिया। वह कहने लगी, "याद है शाम को बैठक है। अभी चलकर न देखते तो कब देखते! और सबके सामने साबित हो जाता कि तुम खुद कुछ करते नही। सिर्फ जबान की कैंची चलती है।"

अब श्यामला को कौन बताये कि न मैं इस भरी दोपहर मे स्कूल का मैदान देखने जाता और न शाम को बैठक मे ही। सम्भव था कि 'कोरम' पूरा न होने के कारण बैठक ही स्थगित हो जाती। लेकिन श्यामला को यह कौन बताये कि हमारे आलस्य मे भी एक छिपी हुई, जानी-अनजानी योजना रहती है। वर्तमान सचालन का दायित्व जिन पर है, वे खुद सचालक-मण्डल की बैठक नही होने देना चाहते। अगर श्यामला से कहूँ तो वह पूछेगी, 'क्यो?'

फिर मैं क्या जवाब दूँगा? मैं उसकी आँखों मे गिरना नही चाहता, उसकी नजर मे और-और चढना चाहता हूँ। उसका प्रेमी जो हूँ, अपने व्यक्तित्व का सुन्दरतम चित्र उपस्थित करने की लालसा भी तो रहती है।

वैसे भी, धूप इतनी तेज़ थी कि बात करने या बात बढ़ाने की तबीयत नहीं हो रही थी।

मेरी आँखें सामने के पीपल के पेड की तरफ गयी, जिसकी एक डाल, तालाव के ऊपर, बहुत ऊँचाई पर, दूर तक चली गयी थी। उसके सिरे पर एक बडा-सा भूरा पक्षी बैठा हुआ था। उसे मैंने चील समझा। लगता था कि वह मछलियो के शिकार की ताक लगाये बैठा है।

लेकिन उसी शाखा की बिलकुल विरुद्ध दिशा मे, जो दूसरी डालें ऊँची होकर *तिरछी और बाँकी-टेढ़ी हो गयी है, उन पर झुण्ड के झुण्ड कौवे काँव-काँव कर रहे* हैं मानो वे चील की शिकायत कर रहे हो और उचक-उचककर, फुदक-फुदककर, मछली की ताक में बैठे उस पक्षी के विरुद्ध प्रचार किये जा रहे हो।

कि इतने में मुझे उस मैदानी-आसमानी चमकीले खुले-खुलेपन में एकाएक, सामने दिखायी देता है—साँवले नाटे कद पर भगवे रग की खद्दर का बण्डीनुमा कुरता, लगभग चौरस मोटा चेहरा, जिसके दाहिने गाल पर एक बडा-सा मसा है, *और उस मसे मे से बारीक बाल निकले हुए।*

जी धँस जाता है उस सूरत को देखकर। वह मेरा नेता है, सस्था का सर्वेसर्वा है। उसकी खयाली तसवीर देखते ही मुझे अचानक दूसरे नेताओ की ओर सचिवालय के उस अँधेरे गलियारे की याद आती है, जहाँ मैंने इस नाटे-मोटे भगवे खद्दर-कुरतेवाले को पहलेपहल देखा था।

उन अँधेरे गलियारो मे से मै कई-कई बार गुजरा हूँ और वहाँ किसी मोड पर, किसी कोने मे इकट्ठा हुए, ऐसी ही सस्थाओ के सचालको के उतरे हुए चेहरो को देखा है। बावजूद श्रेष्ठ पोशाक और 'अपटूडेट' भेस के, सँवलाया हुआ गर्व, बेबस गम्भीरता, अधीर उदासी और थकान उनके व्यक्तित्व पर राख-सी मलती है। क्यो?

इसलिए कि माली साल की आखिरी तारीख को अब सिर्फ दो या तीन दिन बचे हैं। सरकारी 'ग्राण्ट' अभी मजूर नही हो पा रही है, कागजात अभी वित्त-विभाग मे ही अटके पडे हैं। ऑफिसो के बाहर, गलियारे के दूर किसी कोने में, *पेशावघर के पास, या होटलो के कोनो मे क्लर्कों की मुट्ठियाँ गरम की जा रही हैं,* ताकि 'ग्राण्ट' मजूर हो और जल्दी मिल जाये।

ऐसी ही किसी जगह पर मैंने इस भगवे खद्दर-कुरतेवाले को ज़ोर-ज़ोर से अँगरेज़ी बोलते हुए देखा था। और, तभी मैंने उसके तेज़ मिज़ाज और फितरती *दिमाग का अन्दाज़ा लगाया था।*

इधर, भरी दोपहर मे, श्यामला का पार्श्व-सगीत चल ही रहा है, मैं उसका कोई मतलब नही निकाल पाता। लेकिन, न मालूम कैसे, मेरा मन उसकी बातो से कुछ सकेत ग्रहण कर, अपने ही रास्ते पर चलता रहता है। इसी बीच उसके एक वाक्य से मैं चौंक पडा, "इससे अच्छा है कि तुम इस्तीफा दे दो। अगर काम नही कर सकते तो गद्दी क्यो अडा रखी है।"

इसी बात को, कई बार, मैंने अपने से भी पूछा था। लेकिन आज उसके मुँह से ठीक उसी बात को सुनकर मुझे धक्का-सा लगा। और, मेरा मन कहाँ-का-कहाँ चला गया।

एक दिन की बात। मेरा सजा हुआ कमरा। चाय की चुस्कियाँ। कहकहे।

एक पीले रंग के तिकोने चेहरेवाला मसखरा, ऊलजलूल शख्स। बगैर यह सोचे कि जिसकी वह निन्दा कर रहा है, वह मेरा कृपालु मित्र और सहायक है, वह शख्स बात बढ़ाता जा रहा है।

मैं स्तब्ध। किन्तु, कान सुन रहे हैं। हारे हुए आदमी जैसी मेरी सूरत, और मैं।

वह कहता जा रहा है, "सूक्ष्मदर्शी यन्त्र? सूक्ष्मदर्शी यन्त्र कहाँ हैं?"

'है तो। ये हैं। देखिए।" क्लर्क कहता है। रजिस्टर बताता है। सब वर्तन हैं — हैं, हैं। ये हैं। लेकिन, कहाँ हैं? यह तो सब लिखित रूप में हैं, वस्तु-रूप में कहाँ हैं!

"वे खरीदे ही नहीं गये हैं! झूठी रसीद लिखने का कमीशन विक्रेता को, शेष रकम जेब में। सरकार से पूरी रकम वसूल!

"किसी खास जाँच के एन मौके पर किसी दूसरे शहर की "संस्था से उधार लेकर, सूक्ष्मदर्शी यन्त्र हाजिर! सब चीजें मौजूद हैं। आइए, देख जाइए। जी हाँ, ये तो हैं सामने। लेकिन, जाँच खत्म होने पर सब गायब, सब अन्तर्धान। कैसा जादू है। खर्चे का आँकड़ा खूब फुलाकर रखिए। सरकार के पास कागजात भेज दीजिए। खास मौकों पर आफिसों के धुँधले गलियारों और कॉरिडॉरों के कोनों में मुट्ठियाँ गरम कीजिए। सरकारी 'ग्राण्ट' मंजूर! और, उसका न जाने कितना हिस्सा, बड़े ही तरीके से संचालकों की जेब में! जी"'

भरी दोपहर में मैं आगे बढ़ा जा रहा हूँ। बाल के ऊपर धूप की [illegible] पड़ रही हैं। मैं व्याकुल हो उठता हूँ। श्यामला का पार्श्व-अन्तर्धान हो गया है। मुझे जबरदस्त प्यास लगती है! पानी, पानी!

कि इतने में एकाएक विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की [illegible] वाली इमारत सामने आ जाती है। तीसरा पहर। [illegible] इमारत की पत्थर-सीढ़ियाँ, लम्बी, मोतिया।

सीढ़ियों से लगकर, अभरक-मिली लाल मिट्टी के [illegible] काली 'शेवरलेट'।

भगवे खद्दर-कुरतेवाले की 'शेवरलेट', जिसके ऊपर [illegible] रहा हूँ—यों ही—कार का नम्बर—कि इतने में [illegible] जो आईने-सा चमकदार है, मेरी सूरत दिखायी देती है।

भयानक है वह सूरत! सारे अनुपात बिगड़ गये हैं। [illegible] और कितनी मोटी हो गयी है। चेहरा बेहद लम्बा [illegible] खड्डेदार। कान नदारद। भूत-जैसा अप्राकृतिक रूप। [illegible] विद्रूपता को, मुग्ध भाव से, कुतूहल से और आश्चर्य से [illegible]

कि इतने में मैं दो कदम एक ओर हट जाता हूँ, [illegible] उस काले चमकदार आईने में, मेरे गाल, ठुड्डी, नाक, [illegible] एकदम चौड़े। लम्बाई लगभग नदारद। मैं देखता ही [illegible] हूँ कि इतने में दिल के किसी कोने में कोई अँधियारा [illegible] है। वह गटर है आत्मालोचन, दुःख और ग्लानि का।

और, सहसा, मुँह से हाय निकल पड़ती है। [illegible] मेरा छुटकारा कब होगा, कब होगा!

और, तब लगता है कि इस सारे जाल मे, बुराई की इस अनेक चक्रोवाली दैत्याकार मशीन मे न जाने कब से मैं फँसा पड़ा हूँ। पैर भिंच गये है, पसलियॉं चूर हो गयी है, चीख निकल नही पाती, आवाज हलक मे फँसकर रह गयी है।

कि इसी बीच अचानक एक नजारा दिखायी देता है रोमन स्तम्भोवाले विश्वविद्यालय के पुस्तकालय की ऊँची, लम्बी, मोतिया सीढियो पर से उतर रही है एक आत्म-विश्वासपूर्ण गौरवमय नारीमूर्ति।

वह किरणीली मुसकान मेरी *ओर फेंकती-सी दिखायी देती है। मैं इस स्थिति* मे नही हूँ कि उसका स्वागत कर सकूँ। मैं बदहवास हो उठता हूँ।

वह धीमे-धीमे मेरे पास आती है अभ्यर्थनापूर्ण मुसकराहट के साथ कहती है, "*पढी है आपने यह पुस्तक ?*"

काली जिल्द पर सुनहले रोमन अक्षरो मे लिखा है, "आई विल नॉट रेस्ट।"

मैं साफ झूठ बोल जाता हूँ, "हाँ पढी है, बहुत पहले।"

लेकिन, मुझे महसूस होता है कि मेरे चेहरे पर से तेलिया पसीना निकल रहा है। मैं बार-बार अपना मुँह पोछता हूँ रूमाल स। बालो के नीचे ललाट—हाँ, ललाट (यह शब्द मुझे अच्छा लगता है) को रगडकर साफ करता हूँ।

और, फिर दूर एक पेड के नीचे, इधर आते हुए, भगवं खद्दर-कुरतेवाले की आकृति को देखकर श्यामला से कहता हूँ, "अच्छा, मैं जरा उधर जा रहा हूँ। फिर भेंट होगी।" और, सभ्यता के तकाजे स मैं उसके लिए नमस्कार के रूप मे मुसकराने की चेष्टा करता हूँ।

पेड !

अजीब पेड है, (यहाँ रुका जा सकता है), बहुत पुराना पेड है, जिसकी जड़ें उखडकर बीच मे से टूट गयी हैं, और जो साबित है, उनके आस-पास की मिट्टी *खिसक गयी है। इसलिए वे उभरकर ऐंठी हुई-सी लगती है। पेड क्या है, लगभग* ठूँठ है। उसकी शाखाएँ काट डाली गयी हैं।

लेकिन, कटी हुई बाँहोवाले उस पेड मे से नयी डालें निकलकर, हवा मे खेल रही हैं। *उन डालो मे कोमल-कोमल हरी-हरी पत्तियाँ झालर-सी दिखायी देती* है। पेड के मोटे तने मे से जगह-जगह ताजा गोद निकल रहा है। गोद की साँवली कत्थई गठानें मजे मे देखी जा सकती हैं।

अजीब पेड है, अजीब ! (*शायद, यह अच्छाई का पेड है*) इसलिए कि एक दिन शाम की मोतिया-गुलाबी आभा मे मैंने एक युवक-युवती को इस पेड के तले ऊँची उठी हुई जड पर आराम से बैठे हुए पाया था। सम्भवत, वे अपने अत्यन्त आत्मीय क्षणो मे डूबे हुए थे।

मुझे देखकर युवक ने आदरपूर्वक नमस्कार किया। लडकी ने भी मुझे देखा और झेंप गयी। हलके झटके से उसने अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। लेकिन, उसकी झेंपती हुई ललाई मेरी नजरो से न बच सकी।

इस प्रेम-मुग्ध युग्म को देखकर मैं भी एक विचित्र आनन्द में डूब गया। उन्हे *निरापद करने के लिए, जल्दी-जल्दी पैर बढाता हुआ मैं वहाँ से नौ-दो ग्यारह हो* गया।

यह पिछली गरमियो की एक मनोहर साँझ की बात है। लेकिन आज इस

भरी दोपहरी में श्यामला के साथ पल-भर उस पेड के तले बैठने को मेरी भी तबीयत हुई। बहुत ही छोटी और भोली इच्छा है यह !

लेकिन, मुझे लगा कि शायद श्यामला मेरे सुझाव को नही मानेगी। स्कूल-मैदान पहुँचने की उसे जल्दी जो है। कहने की मेरी हिम्मत ही नही हुई।

लेकिन, दूसरे क्षण, आप-ही-आप, मरे पैर उस ओर बढने लगे। और, ठीक उसी जगह मैं भी जाकर बैठ गया, जहाँ एक साल पहले वह युग्म बैठा था। देखता क्या हूँ कि श्यामला भी आकर बैठ गयी है।

तब वह कह रही थी, "सचमुच बडी गरम दोपहर है।"

सामने, मैदान-ही-मैदान हैं, भूरे मटमैले ! उन पर सिरस और सीसम के छायादार विराम चिह्न खडे हुए हैं। मैं लुब्ध और मुग्ध होकर उनकी घनी-गहरी छायाएँ देखता रहता हूँ।

क्योकि क्योकि मेरा यह पेड, यह अच्छाई का पेड, छाया प्रदान नही कर सकता, आश्रय प्रदान नही कर सकता, (क्योकि वह जगह-जगह काटा गया है) वह तो कटी शाखाओ की दूरियो और अन्तरालो म से केवल तीव्र और कष्ट-प्रद प्रकाश को ही मार्ग दे सकता है।

लेकिन, मैदानो के इस चिलचिलाते अपार विस्तार मे, एक पेड के नीचे, अकेलेपन मे, श्यामला के साथ रहने की यह जो मेरी स्थिति है उसका अचानक मुझे गहरा बोध हुआ। लगा कि श्यामला मेरी है, मेरी है, और वह भी इसी भाँति चिलमिलाते गरम तत्वो से बनी हुई नारी-मूर्ति है। गरम बफली हुई मिट्टी-सा चिलचिलाता हुआ, उसमे अपनापन है।

तो क्या, आज ही, अगली अनगिनत गरम दोपहरियो के पहले, आज ही, अगले कदम उठाये जाने के पहले, इसी समय, हाँ, इसी समय, उसके सामने, अपने दिल की गहरी छिपी हुई तह और सतहे खोलकर रख दूँ कि जिससे आगे चलकर, उसे ग़लतफ़हमी म रखन, उस धोखे मे रखने का अपराधी न बनूँ !

कि इतन मे, मेरी आँखो के सामन, फिर उसी भगवे खद्दर-कुरतेवाले की तसवीर चमक उठी। मैं व्याकुल हो गया, और उससे छुटकारा चाहने लगा।

तो फिर आत्म-स्वीकार कैसे करूँ, कहाँ से शुरू करूँ !

लेकिन, क्या वह मेरी बातें समझ सकेगी ? किसी तनी हुई रस्सी पर वजन साधते हुए चलने का, 'हाँ' और 'ना' के बीच म रहकर जिन्दगी की उलझनो मे फँसने का, तजुर्बा उसे कहाँ है !

हटाओ, कौन कहे !

लेकिन, यह स्त्री शिक्षिता तो है ! बहस भी तो करती है ! बहस की बातों का सम्बन्ध न उसके स्वार्थ से होता है, न मेरे। उस समय हम लड भी तो सकते हैं। और ऐसी लडाइयो मे कोई स्वार्थ भी तो नही होता। उसके सामने अपने दिल की सतहें खोल देन मे न मुझे शर्म रही, न मेरे सामन उसे। लेकिन, वैसा करने मे तकलीफ़ तो होती ही है, अजीब और पेचीदा, घुमती-घुमाती तकलीफ़ !

और उस तकलीफ को टालने के लिए हम झूठ भी तो बोल देते हैं, सरासर झूठ, सफेद झूठ ! लेकिन झूठ से सचाई और गहरी हो जाती है, अधिक महत्वपूर्ण और अधिक प्राणवान्, मानो वह हमारे लिए और सारी मनुष्यता के लिए विशेष सार रखती हो। ऐसी सतह पर हम भावुक हो जाते हैं। और, यह सतह अपने सारे

निर्जीपन मे बिलकुल बेनिजी है। साथ ही, मीठी भी ! हाँ, उस स्तर की अपनी विचित्र पीडाएँ है, भयानक सन्ताप है, और इस अत्यन्त आत्मीय किन्तु निर्वैयक्तिक स्तर पर, हम एक हो जाते है, और कभी-कभी ठीक उसी स्तर पर बुरी तरह लड़ भी पडते हैं।

श्यामला ने कहा, "उस मैदान को समतल करने मे कितना खर्च आयेगा?"

"बारह हज़ार।"

"उनका अन्दाज क्या है?"

"बीस हज़ार।"

"तो बैठक मे जाकर समझा दोगे और यह बता दोगे कि कुल मिलाकर बारह हजार से ज्यादा नामुमकिन है?"

"हाँ, उतना मैं कर दूँगा।"

"उतना का क्या मतलब?"

अब मैं उसे 'उतना' का क्या मतलब बताऊँ ! साफ है कि उस भगवे खद्दर [illegible] मैं उसके प्रति वफादार रहूँगा [illegible] भ्रष्टाचारी हो, किन्तु उसी के [illegible] क्ति-निष्ठा भी कोई चीज है, उसके कारण ही मैं विश्वास-योग्य माना गया हूँ। इसलिए, मैं कई महत्त्वपूर्ण कमेटियो का सदस्य हूँ।

मैंने विरोध-भाव से श्यामला की तरफ देखा। वह मेरा रुख देखकर समझ गयी। *वह कुछ नही बोली। लेकिन, मानो मैंने उसकी आवाज सुन ली हो।*

श्यामला का चेहरा 'चार जनियो-जैसा' है। उस पर सांवली मोहक दीप्ति का [illegible] आवाज वह इतनी सुरीली और मीठी [illegible] उस स्वर को सुनकर, दुनिया की

पता नही किस तरह की परेशान पेचीदगी मेरे चेहरे पर झलक उठी कि जिसे देखकर उसने कहा, "कहो, कहो, क्या कहना चाहते हो।"

यह वाक्य मेरे लिए निर्णायक बन गया। फिर भी, अवरोध शेष था। अपने जीवन का सार-सत्य अपना गुप्त-धन है। उसके अपने गुप्त सघर्ष हैं, उसका अपना एक गुप्त नाटक है। वह प्रकट करते नही बनता। फिर भी, शायद है कि उसे प्रकट कर देने से उसका मूल्य बढ जाये, उसका कोई विशेष उपयोग हो सके।

एक था पक्षी। वह नीले आसमान मे खूब ऊँचाई पर उडता जा रहा था। उसके साथ उसके पिता और मित्र भी थे।

(श्यामला मेरे चेहरे की तरफ आश्चर्य से देखने लगी।)

सब, बहुत ऊँचाई पर उडनेवाले पक्षी थे। उनकी निगाहे भी बडी तेज थी। उन्हे दूर-दूर की भनक और दूर-दूर की महक भी मिल जाती। [illegible]

है [illegible]

दीमक ला, एक पख दा।

उस नौजवान पक्षी को दीमको का शौक था। वैसे तो ऊँचे उडनेवाले पछियो

को, हवा मे ही बहुत-से कीडे तैरते हुए मिल जाते, जिन्हें खाकर वे अपनी भूख थोडी-बहुत शान्त कर लेते।

लेकिन दीमकें सिर्फ जमीन पर मिलती थी। कभी-कभी पेडो पर—जमीन से तने पर चढकर, ऊँची डाल तक, वे अपना मटियाला लम्बा घर बना लेती। लेकिन, ऐसे कुछ ही पड होते, और वे सब एक जगह न मिलते।

नौजवान पक्षी को लगा—यह बहुत बडी सुविधा है कि एक आदमी दीमको को बोरो मे भरकर बेच रहा है।

वह अपनी ऊँचाइयाँ छोडकर मँडराता हुआ नीचे उतरता है, और पेड की एक डाल पर बैठ जाता है।

दोनो का सौदा तय हो जाता है। अपनी चोच स एक पर को खीचकर तोडने मे उसे तकलीफ भी होती है, लेकिन उसे वह बरदाश्त कर लता है। मुँह मे बडे स्वाद के साथ दो दीमकें दबाकर वह पक्षी फुर्र से उड जाता है।

(कहते-कहते मैं थक गया शायद सांस लन के लिए। श्यामला ने पलकें झपकायी और कहा, "हूँ"।)

अब उस पक्षी को गाडीवाले से दो दीमकें खरीदने और एक पर देने की बडी आसानी मालूम हुई। वह रोज तीसरे पहर नीचे उतरता और गाडीवाले को एक पख देकर, दो दीमकें खरीद लता।

कुछ दिनो तक एसा ही चलता रहा। एक दिन उसके पिता न देख लिया। उसने समझान की कोशिश की कि बेटे, दीमकें हमारा स्वाभाविक आहार नही है, और उनके लिए अपने पख तो हरगिज नही दिय जा सकते।

लेकिन, उस नौजवान पक्षी न बडे ही गर्व स अपना मुँह दूसरी ओर कर लिया। उसे जमीन पर उतरकर दीमकें खान की चट लग गयी थी। अब उसे न तो दूसरे कीडे अच्छे लगते, न फल, न अनाज के दाने। दीमको का शौक अब उस पर हावी हो गया था।

(श्यामला अपनी फैली हुई आँखो स मुझे दख रही था, उसकी ऊपर उठी हुई पलकें और भँवें बडी ही सुन्दर दिखायी द रही थी।)

लेकिन, ऐसा कै दिनो तक चलता। उसके पखो की सख्या लगातार घटती चली गयी। अब वह, ऊँचाइयो पर, अपना सन्तुलन साध नही सकता था, न बहुत समय तक पख उस सहारा दे सकते थ। आकाश-यात्रा के दौरान उसे, जल्दी-जल्दी पहाडी चट्टानो, पेडो की चोटियो, गुम्बदो और बुर्जो पर हाँफते हुए बैठ जाना पडता। उसक परिवारवाले तथा मित्र ऊँचाइयो पर तैरते हुए आगे बढ जाते। वह बहुत पिछड जाता। फिर भी दीमक खाने का उसका शौक कम नही हुआ। दीमकों क लिए गाडीवाले को वह अपन पख तोड-तोडकर देता रहा।

(श्यामला गम्भीर होकर सुन रही थी। अब की बार उसने 'हूँ' भी नही कहा।)

फिर, उसन सोचा कि आसमान म उडना ही फ़िज़ूल है। वह मूर्खों का काम है। उसकी हालत यह थी कि अब वह आसमान मे उड ही नही सकता था, वह सिर्फ़ एक पेड स उडकर दूसरे पेड तक पहुँच पाता। धीरे-धीरे उसकी यह शक्ति भी कम होती गयी। और एक समय वह आया जब वह बडी मुश्किल से, पेड की एक डाल से लगी हुई दूसरी डाल पर, चलकर, फुदककर पहुँचता। लेकिन दीमक

खाने का शौक नहीं छूटा।

बीच-बीच में गाडीवाला दुत्ता दे जाता। वह कहीं नज़र में न आता। पक्षी उसके इन्तज़ार में घुलता रहता।

लेकिन, दीमकों का शौक जो उसे था। उसने सोचा, 'मैं खुद दीमकें ढूँढूँगा।' इसलिए वह पेड पर से उतरकर जमीन पर आ गया, और घास के एक लहराते गुच्छे में सिमटकर बैठ गया।

(श्यामला मेरी ओर देखे जा रही थी। उसने अपेक्षापूर्वक कहा, "हूँ।")

फिर, एक दिन उस पक्षी के जी में न मालूम क्या आया। वह खूब मेहनत से जमीन में से दीमकें चुन-चुनकर, खाने के बजाय, उन्हें इक्ट्ठा करने लगा। अब उसके पास दीमकों के ढेर के ढेर हो गये।

फिर, एक दिन एकाएक, वह गाडीवाला दिखायी दिया। पक्षी को बडी खुशी हुई। उसने पुकारकर कहा, "गाडीवाले, ओ गाडीवाले! मैं कब से तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा था।"

पहचानी आवाज सुनकर गाडीवाला रुक गया। तब पक्षी ने कहा, "देखो, मैंने कितनी सारी दीमकें जमा कर ली हैं।'

गाडीवाले को पक्षी की बात समझ में नहीं आयी। उसने सिर्फ इतना कहा, "तो मैं क्या करूँ।"

"ये मेरी दीमकें ले लो, और मेरे पंख मुझे वापस कर दो," पक्षी ने जवाब दिया।

गाडीवाला ठठाकर हँस पडा। उसने कहा, "बेवकूफ, मैं दीमक के बदले पंख लेता हूँ, पंख के बदले दीमक नहीं!"

गाडीवाले ने 'पंख' शब्द पर बहुत ज़ोर दिया था।

(श्यामला ध्यान से सुन रही थी। उसने कहा, "फिर?")

गाडीवाला चला गया। पक्षी छटपटाकर रह गया। एक दिन एक काली बिल्ली आयी और अपने मुँह में उसे दबाकर चली गयी। तब उस पक्षी का खून टपक-टपककर ज़मीन पर बूँदों की लकीर बना रहा था।

(श्यामला ध्यान से मुझे देखे जा रही थी, और उसकी एकटक निगाहों से बचने के लिए मेरी आँखें तालाब की सिहरती-काँपती, चिलकती-चमकती लहरों पर टिकी हुई थीं।)

कहानी कह चुकने के बाद, मुझे एक ज़बरदस्त झटका लगा। एक भयानक प्रतिक्रिया—कोलतार-जैसी काली, गन्धक-जैसी पीली-नारंगी।

"नहीं, मुझमें अभी बहुत कुछ शेष है, बहुत कुछ। मैं उस पक्षी-जैसा नहीं मरूँगा। मैं अभी भी उबर सकता हूँ। रोग अभी असाध्य नहीं हुआ है। ठाठ से रहने के चक्कर से बँधे हुए बुराई के चक्कर तोडे जा सकते हैं। प्राणशक्ति शेष है, शेष!"

तुरन्त ही लगा कि श्यामला के सामने फिज़ूल अपना रहस्य खोल दिया, व्यर्थ ही आत्म-स्वीकार कर डाला। कोई भी व्यक्ति इतना परम प्रिय नहीं हो सकता कि भीतर का नंगा, बालदार रीछ उसे बताया जाये! मैं असीम दुख के खारे मृतक सागर में डूब गया।

श्यामला अपनी जगह से धीरे से उठी, साडी का पल्ला ठीक किया, उसकी

सलवटें बराबर जमायी, बालो पर से हाथ फेरा। और फिर (अँगरेजी मे) कहा, "सुन्दर कथा है, बहुत सुन्दर!"

फिर, वह क्षण-भर खोयी-सी खडी रही, और फिर बोली, "तुमने कहाँ पढी?"

मैं अपने ही शून्य मे खोया हुआ था। उसी शून्य के बीच मे से मैंने कहा, "पता नही ··किसी ने सुनायी या मैंने कही पढी।"

और, वह श्यामला अचानक मेरे सामने आ गयी, कुछ कहना चाहने लगी, मानो उस कहानी मे उसकी किसी बात की ताईद होती हो।

उसके चेहरे पर धूप पडी हुई थी। मुखमण्डल सुन्दर और प्रदीप्त दिखायी दे रहा था।

कि इसी बीच हमारी आँखें सामने के रास्ते पर जम गयी।

घुटनो तक मैली धोती और काली, नीली, सफेद या लाल बण्डी पहने कुछ देहाती भाई, समूह मे, चले जा रहे थे। एक के हाथ मे एक बडा-सा डण्डा था, जिसे वह अपने आगे, सामने, किये हुए था। उस डण्डे पर एक लम्बा मरा हुआ साँप झूल रहा था। काला भुजग, जिसके पेट की हलकी सफेदी भी झलक रही थी।

श्यामला ने देखते ही पूछा, "कौन-सा साँप है यह?" वह ग्रामीण मुख, छत्तीसगढी लहजे में, चिल्लाया, "करेट है बाई, करेट!"

श्यामला के मुँह से निकल पडा, "ओफ्फो! करेट तो बडा जहरीला साँप होता है।"

फिर, मेरी ओर देखकर, कहा, "नाग की तो दवा भी निकली है, करेट की तो कोई दवा नही है। अच्छा किया, मार डाला। जहाँ साँप देखो, मार डालो, फिर, वह पनियल साँप ही क्यो न हो।"

और फिर, न जाने क्यो, मेरे मन मे उसका यह वाक्य गूँज उठा, "जहाँ साँप देखो, मार डालो।"

और ये शब्द मेरे मन मे गूँजते ही चले गये।

कि इसी बीच ··रजिस्टर मे चढे हुए आँकडो की एक लम्बी मीजान मेरे सामने झूल उठी, और गलियारे के अँधेरे कोनो मे गरम होनेवाली मुट्ठियो का चोर-हाथ।

श्यामला ने पलटकर कहा, "तुम्हारे कमरे मे भी तो साँप घुस आया था। कहाँ से आया था वह?"

फिर उसने खुद ही जवाब दे लिया, "हाँ, वह पास की खिडकी मे से आया होगा।"

खिडकी की बात सुनते ही मेरे सामने, बाहर की काँटेदार बेंत की झाडी आ गयी, जिसे जगली बेल ने लपेटकर रखा था। मेरे खद के तीखे काँटो के बावजूद, क्या श्यामला मुझे इसी तरह लपेट सकेगी! बडा ही 'रोमैण्टिक' खयाल है, लेकिन कितना भयानक!

···क्योकि श्यामला के साथ अगर मुझे जिन्दगी बसर करनी है तो न मालूम कितने ही भगवे खद्दर-कुरतेवालो मे मुझे लडना पडेगा, जी कडा करके लडाइयाँ मोल लेनी पडेंगी और अपनी आमदनी के जरिये खत्म कर देने होंगे। श्यामला का क्या है! वह तो एक गाँधीवादी कार्यकर्ता की लडकी है, आदिवासियों की एक

सस्था मे कार्य करती है। उसका आदर्शवाद भी भोले भाले आदिवासियो की उस कुल्हाडी जैसा है जो जगल म अपने बेईमान और बेवफा साथी का सिर धड से अलग कर देती है। बारीक बेईमानियो का सूफियाना अन्दाज उसम कहाँ !

किन्तु, फिर भी आदिवासियो-जैसे उस अमिश्रित आदर्शवाद म मुझे आत्मा का गौरव दिखायी देता है मनुष्य की महिमा दिखायी देती है पैन तर्क की अपनी अन्तिम प्रभावोत्पादक परिणति का उल्लास दिखायी देता है—और ये सब बातें मेरे हृदय को स्पर्श कर जाती है। तो अब मैं इसके लिए क्या करूँ क्या करूँ !

और अब मुझ सज्जायुक्त भद्रता के मनोहर वातावरणवाला अपना कमरा याद आता है अपना अकेला धुँधला-धुँधला कमरा। उसके एकान्त म प्रत्यावर्तित और पुन प्रत्यावर्तित प्रकाश के कोमल वातावरण म मूल रश्मियो और उनके उद्गम स्रोतो पर सोचते रहना, खयालो की लहरो म बहते रहना कितना सरल, सुन्दर और भद्रता-पूर्ण है। उमस न कभी गरमी लगती है, न पसीना आता है, न कभी कपडे मैले होते है। किन्तु प्रकाश के उद्गम के सामने रहना उसका सामना करना, उसकी चिलचिलाती दोपहर म रास्ता नापते रहना और धूल फाँकते रहना कितना त्रासदायक है! पसीने से तरबतर कपडे इस तरह चिपचिपाते हैं और इस कदर गन्दे मालूम होते है कि लगता है कि अगर कोई इस हालत म हमे देख ले तो वह बेशक हम निचले दर्जे का आदमी समझेगा। सजे हुए टेबल पर रख कीमती फाउण्टेनपेन-जैसे नीरव शब्दाकनवादी हमारे व्यक्तित्व, जो बहुत बड ही खुशनुमा मालूम होते है—किन्हीं महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो के कारण—जब वे आगन म और घर-बाहर चलती हुई झाड़ू जैसे काम करनेवाल दिखायी दें, तो इस हालत म वे यदि सडक-छाप समझ जाय तो इसम आश्चर्य ही क्या है!

लेकिन, मैं अब ऐस कामो की शर्म नही करूँगा क्योकि जहाँ मेरा हृदय है, वही मेरा भाग्य है!

[सम्भावित रचनाकाल 1959 के बाद। कल्पना दिसम्बर 1963 मे प्रकाशित]

क्लॉड ईथरली

पीली धूप से चमकती हुई ऊँची भीत जिसके नील फ्रेम म कांचवाले रोशनदान दूर सडक से दीखते हैं।

मैं सडक पार कर लेता हूँ। जगली, बेमहक लेकिन खूबसूरत विदेशी फूलो के नीचे ठहर-सा जाता हूँ कि जो फूल भीत के पासवाले अहाते की आदमकद दीवार के ऊपर फैल सडक के बाजू पर बाँहे बिछाकर झुक गय है। पता नही कैसे, किस साहस से व क्यो उसी अहाते के पास बिजली का ऊँचा खम्भा—जो पाँच छह दिशाओ मे जानेवाली सूनी सडको पर तारो की सीधी लकीरें भेज रहा है—मुझे दीखता है और एकाएक खयाल आता है कि दुमजिला मकानो पर चढने की एक

ऊँची निसैनी उसी से टिकी हुई है। शायद, ऐसे मकानों की लम्ब-तडग भीतो की रचना अभी भी पुराने ढग स होती है।

सहज जिज्ञासावश, दखे, कहाँ क्या होता है, दृश्य कौन-से कोण स दिखायी देता है, मैं उस निसैनी पर चढ जाता हूँ और सामनेवाली पीली ऊँची भीत के नीली फमवाले रोशनदान में से मेरी निगाहे पार निकल जाती हैं।

और, मैं स्तब्ध हो उठता हूँ।

छत से टँगे ढिलाई से गोल-गोल घूमत पखे के नीचे, दो पीली स्फटिक-सी तेज आँखें और लम्बी सलवटो-भरा तग मोतिया चेहरा है जो ठीक उन्ही ऊँचे रोशन-दानो म से, भीतर से बाहर, पार जान के लिए ही मानो अपनी दृष्टि केन्द्रित कर रहा है। आँखो से आँखें लड पडती है। ध्यान से एक दूसरे की ओर देखती हैं। स्तब्ध, एकाग्र!

आश्चर्य!

साँस के साथ शब्द निकले। ऐसी ही कोई आवाज उसन भी की होगी।

चेहरा बुरा नही है, अच्छा है, भला आदमी मालूम होता है। पैण्ट पर शर्ट ढीली पड गयी है। लेकिन यह क्या!

मैं नीचे उतर पडता हूँ। चुपचाप रास्ता चलने लगता हूँ। कम-से कम दो फर्लांग दूरी पर एक आदमी मिलता है। सिर्फ एक आदमी! इतनी बडी सडक होने पर भी लोग नही! क्यो नही?

पूछने पर वह शख्स कहता है "शहर तो इस पार है, उस ओर है, वही कही इस सडक पर बिल्डिंग का पिछवाडा पडता है। देखते नही हो!"

मैंने उसका चेहरा देखा ध्यान से। बायी और दाहिनी भौंहे नाक क शुरू पर मिल गयी थी। खुरदुरा चेहरा, पजाबी कहला सकता था। पूरा जिस्म लचकदार था। वह निःसन्देह जनाना आदमी होने की सम्भावना रखता है! नारीतुल्य पुरुष, जिनका विकास किशोर काल म ही रुक जाता है। यह विशेषज्ञो का विषय है।

इतने म, मैन उससे स्वाभाविक रूप से, अति सहज बनकर पूछा, 'यह पीली बिल्डिंग कौन-सी है।" उसन मुझपर अविश्वास करत हुए कहा, "जानते नहीं हो? यह पागलखाना है—प्रसिद्ध पागलखाना!"

"अच्छा—!" का एक लहरदार डैश लगाकर मैं चुप हो गया और नीची निगाह किय आगे चलने लगा।

और फिर हम दोनो के बीच दूरियाँ चौडी होकर गोल होने लगी। हमारे साथ हमारे सिफर भी चलने लगे।

अपने-अपने शून्यो की खिडकियाँ खोलकर मैंने—हम दानो ने—एक दूसरे की तरफ देखा कि आपस म बात कर सकते हैं या नही। कि इतने मे उसने मुझसे पूछा, "आप क्या काम करते हैं?"

मैंने झेंपकर कहा, "मैं? उठाईगीरा समझिए।"

'समझें क्यो? जो हैं सो बताइए!"

"पता नही क्यो, मैं बहुत ईमानदारी की जिन्दगी जीता हूँ, झूठ नहीं बोला करता, परस्त्री को नही देखता, रिश्वत नही लेता, भ्रष्टाचारी नही हूँ, दग़ा या फ़रेब नही करता, अलबत्ता कर्ज मुझपर जरूर है जो मैं चुका नही पाता। फिर भी

कमाई की एक रकम कर्ज में ही जाती है। इसपर भी मैं यह सोचता हूँ कि बुनियादी तौर से बेईमान हूँ। इसीलिए, मैंने अपने को पुलिस की जबान में उठाईगीरा कहा। मैं लेखक हूँ, अब बताइए आप क्या हैं?"

वह सिर्फ हँस दिया। कहा कुछ नहीं। जरा देर से उसका मुँह खुला। उसने कहा, *"मैं सी आई डी हूँ।"*

एकदम दबकर मैंने उससे शेकहैण्ड किया। (दिल में भीतर से किसी ने कचोट लिया। हाल ही में निसैनी पर चढ़कर मैंने उस रोशनदान में से एक आदमी की सूरत देखी थी, वह चोरी नहीं तो क्या थी। सन्दिग्धावस्था में उस साले ने मुझे देख लिया!)।

"बड़ी अच्छी बात है। मुझे भी इस धन्धे में दिलचस्पी है हम लेखकों का पेशा इससे कुछ मिलता-जुलता है।"

इतने में भीमाकार पत्थरों की विक्टोरियन बिल्डिंगों के दृश्य दूर से झलकने लगे थे। हम खड़े हो गये। एक बड़े से पेड़ के नीचे पान की दूकान थी, वहाँ एक सिलेटी रंग की औरत मिस्सी और काजल लगाये बैठी हुई थी।

मेरे मुँह से अचानक निकल पड़ा, "तो यहाँ भी पान की दूकान है!"

उसने सिर्फ इतना ही कहा, 'हाँ, यहाँ भी।"

और मैं उन अध-नंगी विलायती औरतों की तसवीरें देखने लगा जो उस दूकान की शौकत को बढ़ा रही थीं।

दूकान में आईना लगा था। लहरें थीं धुँधली, पीछे के मसाले के दोष से। ज्यों ही उसमें मैं अपना मुँह देखता, बिगड़ा नजर आता। कभी लम्बा, तो कभी चौड़ा। कभी नाक एकदम छोटी, तो कभी एकदम लम्बी और मोटी! मन में बड़ी वितृष्णा भर उठी। रास्ता लम्बा था, सूनी दुपहर। कपड़े पसीने से भीतर चिपचिपा रहे थे। ऐसे मौके पर दो बातें करनेवाला आदमी मिल जाना समय और रास्ता कटने का साधन होता है।

हम दोनों ने अपने-अपने और एक-दूसरे के चेहरे देखे। दोनों खराब नजर आये। दोनों रूप बदलने लगे! दोनों हँस पड़े और यही मजाक चलता रहा।

उससे वह औरत भी छेड़छाड़ करती रही। इतने में चार-पाँच आदमी और आ गये—उसी तरह विमानी, गरम और उकतानेवाले, जैसे टीन की तपती हुई चद्दर या लोहे के डण्डे। वे सब घेरे खड़े रहे। चुपचाप उन सबमें कुछ बातें होती रहीं। मुझे बिल्कुल मजा नहीं आया। उनकी आवाजें सिर पर से निकल जाती थीं।

मैंने गौर नहीं किया। मैं इन सब बातों से दूर रहता हूँ। जो सुनायी दिया उससे यह जाहिर हुआ कि वे या तो निचले तबके में पुलिस के इनफार्मर्स हैं या ऐसे ही कुछ!

पान खाकर हम लोग आगे बढ़े। पता नहीं क्यों मुझे अपने अजनबी साथी के जनानेपन में कोई ईश्वरीय अर्थ दिखायी दिया। जो आदमी आत्मा की आवाज दाब देता है विवेक-चेतना को अटाले में डाल देता है, उसे क्या कहा जाय! वैसे, वह शख्स भला मालूम होता था। फिर, क्या कारण है कि उसने यह पेशा इख्तियार किया! साहस? हाँ, कुछ साहसिक लोग पत्रकार या गुप्तचर या ऐसे ही कुछ हो

आते हैं, अपनी आँखों में महत्त्वपूर्ण बनने के लिए, अस्तित्व की तीखी संवेदनाएँ अनुभव करने और करते रहने के लिए।

लेकिन, प्रश्न यह है कि वे वैसा क्यों करते हैं! किसी भीतरी न्यूनता के भाव पर विजय प्राप्त करने का यह एक तरीका भी हो सकता है। फिर भी, उसके दूसरे रास्ते भी हो सकते हैं! यही पेशा क्यों? इसलिए, उसमें पेट और प्रवृत्ति का समन्वय है! जो हो, इस शख्स का जनानापन खास मानी रखता है!

हमने वह रास्ता पार कर लिया और अब हम फिर से फैशनबल रास्ते पर आ गये, जिसके दोनों ओर युकलिप्टस के पेड़ कतार बाँधे खड़े थे। मैंने पूछा, "यह रास्ता कहाँ जाता है?" उसने कहा, "पागलखाने की ओर।" मैं जाने क्यों सन्नाटे में आ गया।

विषय बदलने के लिए मैंने कहा, "तुम यह धन्धा कब से कर रहे हो?"

उसने मेरी तरफ़ इस तरह देखा मानो यह सवाल उसे नागवार गुज़रा हो। मैं कुछ नहीं बोला। चुपचाप चला, चलता रहा। लगभग पाँच मिनट बाद जब हम उस भैरो के गेरुए, सुनहली पन्नी-जड़े पत्थर तक पहुँच गये, जो इस अत्याधुनिक मुहल्ले में एक तार के खम्भे के पास श्रद्धापूर्वक स्थापित किया गया था, उसने कहा, "मेरा किस्सा मुख्तसर यों है। लाज-शरम दिखाव की चीज़ें हैं। तुम मेरे दोस्त हो, इसलिए कह रहा हूँ। मैं एक बहुत बड़े करोड़पति सेठ का लड़का हूँ। उनके घर में जो काम करनेवालियाँ हुआ करती थीं, उनमें से एक मेरी माँ है, जो अभी भी वहीं है। मैं घर से दूर पाला-पोसा गया, मेरे पिता के खर्चे से। माँ मिलने आती। उसी के कहने से मैंने बमुश्किल तमाम मैट्रिक किया। फिर, किसी सिफ़ारिश से सी. आई. डी. की ट्रेनिंग में चला गया। तब से यही काम कर रहा हूँ। बाद में पता चला कि वहाँ का खर्च भी वही सेठ देता रहा। उसका हाथ मुझपर अभी तक है। तुम उठाईगीरे हो, इसलिए कहा! अरे! वैसे तो तुम लेखक-वेखक भी हो। बहुत-से लेखक और पत्रकार इनफॉर्मर हैं! तो, इसलिए, मैंने सोचा, चलो अच्छा हुआ। एक साथी मिल गया।"

उस आदमी में मेरी दिलचस्पी बहुत बढ़ गयी। डर भी लगा। घृणा भी हुई। किस आदमी से पाला पड़ा। फिर भी, उस अहाते पर चढ़कर मैं झाँक चुका था। इसलिए, एक अनदिखती ज़ंजीर से बँध तो गया ही था।

उस जनाने ने कहना जारी रखा, "उस पागलखाने में कई ऐसे लोग डाल दिये गये हैं जो सचमुच आज की निगाह से बड़े पागल हैं। लेकिन उन्हें पागल कहने की इच्छा रखने के लिए आज की निगाह होना ज़रूरी है।"

मैंने उकताते हुए कहा, "आज की निगाह से क्या मतलब?"

उसने भौंहें समेट लीं। मेरी आँखों में आँखें डालकर उसने कहना शुरू किया, "जो आदमी आत्मा की आवाज़ कभी-कभी सुन लिया करता है और उसे बयान करके उससे छुट्टी पा लेता है, वह लेखक हो जाता है। आत्मा की आवाज़ जो लगातार सुनता है, और कहता कुछ नहीं है, वह भोला भाला सीधा-सादा बेवकूफ़ है। जो उसकी आवाज़ बहुत ज़्यादा सुना करता है और वैसा करने लगता है, वह समाज-विरोधी तत्त्वों में यों ही शामिल हो जाया करता है। लेकिन जो आदमी आत्मा की आवाज़ ज़रूरत से ज़्यादा सुन करके हमेशा बेचैन रहा करता है और उस बेचैनी में भीतर के हुक्म का पालन करता है, वह निहायत पागल है। पुराने

ज़माने मे सन्त हो सकता था। आजकल उसे पागलखाने मे डाल दिया जाता है।"

मुझे शक हुआ कि मैं किसी फ़ैण्टेसी में रह रहा हूँ। यह कोई ऐसा-वैसा गुप्तचर नही है। या तो यह खुद पागल है या कोई पहुँचा हुआ आदमी। लेकिन, वह पागल भी नही है, न वह पहुँचा हुआ है। वह तो सिर्फ़ ज़नाना आदमी है या, वैज्ञानिक शब्दावली प्रयोग करूँ तो, यह कहना होगा कि वह है तो जवान-पट्ठा, लेकिन उसमे जो लचक है वह औरत के चलने की याद दिलाती है।

मैंने उससे पूछा, 'तुमने कही ट्रेनिंग पायी है?"

"सिर्फ़ तजुर्बे से सीखा है। मुझे इनाम भी मिला है।"

मैंने कहा, "अच्छा!"

और मैं जिज्ञासा और कुतूहल से प्रेरित होकर उसकी अन्धकारपूर्ण थाहो मे डूबने का प्रयत्न करने लगा।

किन्तु उसने सिर्फ़ मुसकरा दिया। तब मुझे वह ऐसा लगा मानो वह अज्ञात साइंस के गणितिक सूत्र की अंक-राशि हो जिसका मतलब तो कुछ ज़रूर होता है लेकिन समझ म नही आता।

मन मे विचारो की पंक्तियाँ-पंक्तियाँ बनती गयी। पंक्तियो पर पंक्तियाँ! शायद उसे भी महसूस हुआ होगा! और जब दोनो के मन मे चार-चार पंक्तियाँ बन गयी कि इस बीच उसने कहा, "तुम क्यो नही यह धन्धा करते?"

मैं हतप्रभ हो गया। यह एक विलक्षण विचार था! मुझे मालूम था कि धन्धा पैसो के लिए किया जाता है। आजकल बड़े-बड़े शहरो के मामूली होटलो मे जहाँ दस-पाँच आदमी तरह-तरह की गप लडाते हुए बैठते हैं, उनकी बातें सुनकर, अपना अन्दाज जमाने के लिए, कई भीतरी सूची-भेद्य-तम-प्रवेशक आँखें भी सुनती बैठी रहती है। यह मैं सब जानता हूँ। खुद के तजुर्बे से बता सकता हूँ। लेकिन, फिर भी, उस आदमी की हिम्मत तो देखिए कि उसने कैसा पेचीदा सवाल किया!

आज तक किसी आदमी ने मुझसे इस तरह का सवाल न किया था। ज़रूर [illegible] कह सकता हूँ। मैंने अपने जीवन मे [illegible] ो मे जो विद्या और अविद्या उप- [illegible]

अतिशिक्षित हूँ, अतिसंस्कृत हूँ। लेकिन चूँकि अपनी इस अतिशिक्षा और अतिसंस्कृति के सौष्ठव को उद्घाटित करते रहने के लिए, जो स्निग्ध-प्रसन्न मुख चाहिए, वह न होने से मैं उठाईगिरा भी लगता हूँ—अपने-आपको!

तो मेरी इस महक को पहचान उस अद्भुत व्यक्ति ने मेरे सामने जो प्रस्ताव रखा उससे मैं अपने-आपसे एकदम सचेत हो उठा! क्या हर्ज है? इनकम का एक खासा ज़रिया यह भी तो हो सकता है।

मैंने बात पलटकर उससे पूछा, "तो हाँ, तुम उस पागलखाने की बात कह रहे थे। उसका क्या?"

मैंने गरदन नीचे डाल ली। कानों मे अविराम शब्द-प्रवाह गतिमान हुआ। मैं

सुनता गया। शायद, वह उसके वक्तव्य की भूमिका रही होगी। इस बीच मैंने उससे टोककर पूछा, "तो उसका नाम क्या है ?"

"क्लॉड ईथरली।"

'क्या वह रोमन कैथलिक है—आदिवासी ईसाई है ?"

उसने नाराज़ होकर कहा, "तो अब तक तुम मेरी बात ही नहीं सुन रहे थे ?"

मैंने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी एक-एक बात दिल में उतर रही थी। फिर भी उसके चेहरे के भाव से पता चला कि उसे मेरी बात पर यकीन नहीं हुआ। उसने कहा, "क्लॉड ईथरली वह अमरीकी विमान चालक है, जिसने हिरोशिमा पर बम गिराया था।"

मुझे आश्चर्य का एक धक्का लगा। या तो वह पागल है, या मैं ! मैंने उससे पूछा "तो इससे क्या होता है ?"

अब उसने बहुत ही नाराज होकर कहा, 'अबे बेवकूफ ! नेस्तनाबूद हुए हिरोशिमा की बदरंग और बदसूरत, उदास और गमगीन ज़िन्दगी की सदारत करनेवाले मेयर को वह हर माह चैक भेजता रहा जिससे कि उन पैसों से दीनहीनों को सहायता तो पहुँच ही, उसने जो भयानक पाप किया है वह भी कुछ कम हो।"

मैंने उसके चेहरे का अध्ययन करना शुरू किया। उसकी वे खुरदुरी घनी मोटी भौंहें नाक के पास आ मिलती थीं। कड़े बालों की तेज़ रेज़र से हजामत किया हुआ उसका वह हरा-गोरा चेहरा, सीधी-मोटी नाक और मजाकिया होंठ और गमगीन आँखें, जिस्म की जनाना लचक, डबल ठुड्डी, जिसके बीच में हल्का-सा गड्ढा।

यह कौन शख्स है, जो मुझसे इस तरह बात कर रहा है ? लगा कि मैं सचमुच इस दुनिया में नहीं रह रहा हूँ, उससे कोई दो सौ मील ऊपर आ गया हूँ जहाँ आकाश, चाँद-तारे, सूरज सभी दिखायी देते हैं। रॉकेट उड़ रहे हैं। आते हैं, जाते हैं, और पृथ्वी एक चौड़े नीले गोल जगत्-सी दिखायी दे रही है, जहाँ हम किसी एक देश के नहीं हैं, सभी देशों के हैं। मन में एक भयानक उद्वेगपूर्ण भारहीन चंचलता है। कुल मिलाकर, पल-भर यही हालत रही। लेकिन वह पल बहुत ही घनघोर था। भयावह और सन्दिग्ध ! और उसी पल से अभिभूत होकर मैंने उससे पूछा, "तो क्या हिरोशिमावाला क्लॉड ईथरली इस पागलखाने में है ?"

मेरा हाथ फैलकर उँगलियों से उस पीली बिल्डिंग की ओर इशारा कर रहा था जिसके अहाते की दीवार पर चढ़कर मेरी आँखों ने रोशनदान पार करके उन तेज़ आँखों को देखा था जो उसी रोशनदान में से गुज़रकर बाहर जाना चाहती हैं। तो, अगर मैं इस जनाने लचकदार शख्स पर यकीन करूँ तो इसका मतलब यह हुआ कि मेरी देखी वे आँखें और किसी की नहीं, खास क्लॉड ईथरली की ही थीं। लेकिन यह कैसे हो सकता है ?

उसने मेरी बात ताड़कर कहा, "हाँ, वह क्लॉड ईथरली ही था।"

मैंने चिढ़कर कहा, "तो क्या यह हिन्दुस्तान नहीं है ? हम अमरीका में ही रह रहे हैं ?"

उसने मानो मेरी बेवकूफी पर हँसी का ठहाका मारा, कहा, "भारत के हर बड़े नगर में एक-एक अमरीका है। तुमने लाल ओंठवाली चमकदार, गोरी-सुनहली

औरतें नही देखी, उनके कीमती कपडे नही देखे ? शानदार मोटरो मे घूमनेवाले अतिशिक्षित लोग नही देखे ? नफीस किस्म की वेश्यावृत्ति नही देखी ? समिनार नही देखे ? एक जमाने मे हम लन्दन जाते थे और इग्लैण्ड-रिटर्ण्ड कहलाते थे। और आज वाशिंगटन जाते है। अगर हमारा बस चले और आज हम सचमुच उतने ही धनी हो और हमारे पास उतने ही एटम वम और हाइड्रोजन बम हो और रॉकेट हो तो फिर क्या पूछना ! अखबार पढते हो कि नही ?"

मैंने कहा, "हाँ।"

"तो तुमने मैकमिलन की वह तकरीर भी पढी होगी जो उसने···को दी थी। उसने क्या कहा था ? यह देश, हमारे सैनिक गुट मे तो नही है, किन्तु सस्कृति और आत्मा से हमारे साथ है। क्या मैकमिलन सफेद झूठ कह रहा था ? कतई नही। वह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य पर प्रकाश डाल रहा था।

"और अगर यह सच है तो यह भी सही है कि उनकी सस्कृति और आत्मा का सकट हमारी सस्कृति और आत्मा का सकट है। यही कारण है कि आजकल के लेखक और कवि अमरीकी, ब्रिटिश तथा पश्चिम यूरोपीय साहित्य तथा विचार-धाराओ मे गोते लगाते हैं और वहाँ से अपनी आत्मा को शिक्षा और सस्कृति प्रदान करते हैं ! क्या यह झूठ है ? बोलो कि झूठ है ? और हमारे तथाकथित राष्ट्रीय अखबार और प्रकाशन-केन्द्र ! वे अपनी विचारधारा और दृष्टिकोण कहाँ से लेते हैं ?"

यह कहकर वह जोर स हँस पडा और हँसी की लहरो मे उसका जिस्म लचकने लगा।

उसने कहना जारी रखा, "क्या हमने इण्डोनेशियाई या चीनी या अफ्रीकी साहित्य से प्रेरणा ली है या लुमुम्बा के काव्य से ? छि छि ! वह जानवरो का, चौपायो का, साहित्य है ! और, रूस का ! अरे यह तो स्वार्थ की बात है ! इसका राज और ही है। रूस से हम मदद चाहते हैं, लेकिन डरते भी हैं।

"छोडो ! तो मतलब यह है कि अगर उनकी सस्कृति हमारी सस्कृति है, उनकी आत्मा हमारी आत्मा और उनका सकट हमारा सकट है—जैसा कि सिद्ध है कि है—जरा पढो अखबार, करो बातचीत अँगरेजीदाँ फरटिबाज लोगो से—तो हमारे यहाँ भी हिरोशिमा पर बम गिरानेवाला विमानचालक क्यों नही हो सकता और हमारे यहाँ भी साम्राज्यवादी, युद्धवादी लोग क्यो नही हो सकते ! मुख्तसर किस्सा यह है कि हिन्दुस्तान भी अमरीका ही है।"

मुझे पसीना छूटने लगा। फिर भी, मन यह स्वीकार करने के लिए तैयार नही था कि भारत अमरीका ही है, और यह कि क्लॉड ईथरली उसी पागलखाने मे रहते हैं—उसी पागलखाने मे रहता है ! मेरी आँखो मे सन्देह, अविश्वास, भय और आशका की मिली-जुली चमक जरूर रही होगी, जिसको देखकर वह बुरी तरह हँस पडा। और उसने मुझे एक सिगरेट दी।

एक पेड के नीचे खडे होकर हम दोनो बात करते हुए नीचे एक पत्थर पर बैठ गये। उसने कहा, "देखा नही ! ब्रिटिश-अमरीकी या फ्रान्सीसी कविता मे जो मूड्स, जो मन स्थितियाँ रहती है—बस वे ही हमारे यहाँ भी हैं, लायी जाती हैं। सुरुचि और आधुनिक भावबोध का तकाजा है कि उन्हे लाया जाय। क्यो ? इसलिए कि वहाँ औद्योगिक सभ्यता है, हमारे यहाँ भी। मानो कि कल-कारखाने खोले

जाने से आदर्श और कर्तव्य बदल जाते हों।"

मैंने नाराज होकर सिगरेट फेंक दी। उसके सामने हो लिया। शायद, उस समय मैं उसे मारना चाहता था। हाथापाई करना चाहता था। लेकिन, वह व्यग्य-भरे चेहरे से हँस पड़ा और उसकी आँखें ज्यादा गमगीन हो गयी।

उसने कहा, "क्लॉड ईथरली एक विमान-चालक था। उसके एटमबम मे

अंजाम होगा। उसके दिल मे निरपराध जनो के प्रेतो, शवो, लोथो, लाशो के कटे-पिटे चेहरे तैरने लगे। उसके हृदय मे करुणा उमड आयी। उधर, अमरीकी सरकार ने उसे इनाम दिया। वह 'वार हीरो' हो गया। लेकिन उसकी आत्मा कहती थी कि उसने पाप किया, जघन्य पाप किया है। उसे दण्ड मिलना ही चाहिए। नही! लेकिन, उसका देश तो उसे हीरो मानता था। अब क्या किया जाय! उसने सरकारी नौकरी छोड दी। मामूली काम किया। लेकिन, फिर भी वह 'वार हीरो' था, महान् था, क्लॉड ईथरली महानता नही, दण्ड चाहता था, दण्ड!

"उसने वारदातें शुरू की जिसमे कि वह गिरफ्तार हो सके और जेल मे डाला जा सके। किन्तु प्रमाण के अभाव मे वह हर बार छोड दिया गया। उसने घोषित किया कि वह पापी है, पापी है, उसे दण्ड मिलना चाहिए, उसने निरपराध जनो की हत्या की है, उसे दण्ड दो! हे ईश्वर! लेकिन, अमरीकी व्यवस्था उसे पाप नहीं, महान् कार्य मानती थी। देश-भक्ति मानती थी। जब उसने ईथरली की ये हरकतें देखी तो उसे पागलखाने मे डाल दिया। टेक्सॉस प्रान्त मे वाको नाम की एक जगह है—वहाँ उसका दिमाग दुरुस्त करने के लिए उसे डाल दिया गया। वहाँ वह चार साल तक रहा, लेकिन उसका पागलपन दुरुस्त नही हो सका।

"चार साल बाद वह वहाँ से छूटा तो उसे रॉय एल. मैंटट्रूथ नाम का एक गुण्डा मिला। उसकी मदद से उसने डाकघरो पर धावा मारा। आखिर मय-साथी के वह पकड लिया गया। मुकदमा चला। कोई फायदा नहीं। जब यह मालूम हुआ कि वह *कौन है और क्या चाहता है तो उसे तुरन्त छोड दिया गया।* उसके बाद, उसने डैल्लास नाम की एक जगह के कैशियर पर सशस्त्र आक्रमण किया। परिणाम कुछ नही निकला, क्योकि बडे सैनिक अधिकारियो को यह महसूस हुआ कि ऐसे 'प्रख्यात युद्ध वीर' को मामूली उचक्का और चोर कहकर उसकी बदनामी न हो। इसलिए, उसके उस प्राप्त पद की रक्षा करने के लिए, उसे फिर से पागल-खाने मे डाल दिया गया।

"यह है क्लॉड ईथरली! ईथरली की ईमानदारी पर अविश्वास करने की किसी को शका ही नही रही! उसकी जीवन-कथा की फिल्म बनाने का अधिकार खरीदने के लिए एक कम्पनी ने उसे एक लाख रुपये देने का प्रस्ताव रखा। उसने कतई इनकार कर दिया। उसके इस अस्वीकार से सबके सामने यह जाहिर हो गया कि वह झूठा और फरेबी नही है। वह बन नही रहा है।

"कौन नही जानता कि क्लॉड ईथरली अणुयुद्ध का विरोध करनेवाली आत्मा की आवाज का दूसरा नाम है। हाँ! ईथरली मानसिक रोगी नही है। आध्या-

त्मिक अशान्ति का आध्यात्मिक उद्विग्नता का ज्वलन्त प्रतीक है। क्या इससे तुम इनकार करते हो ?

उसके हाथ की सिगरट कभी की नीचे गिर चुकी थी। वह सनाना आदमी तमतमा उठा था। चेहरे पर बेचैनी की मलिनता छायी थी।

वह कहता गया इस आध्यात्मिक अशान्ति इस आध्यात्मिक उद्विग्नता को समझनवाले लोग कितन हैं ? उन्हे विचित्र विलक्षण विक्षिप्त कहकर पागलखाने म डालने की इच्छा रखनवाले लोग न जान कितने है ! इसीलिए पुरान जमान म हमारे बहुतेरे विद्रोही सन्तो का भी पागल कहा गया। आज भी बहुतो को पागल कहा जाता है। अगर वह बहुत तुच्छ हुए तो सिफ उनकी उपेक्षा की जाती है जिसम कि उनकी बात प्रकट न हो और फैल न जाय।

हमारे अपने-अपन मन हृदय मस्तिष्क म ऐसा ही एक पागलखाना है जहाँ हम उन उच्च पवित्र और विद्रोही विचारो और भावो को फक देते हैं जिससे कि धीरे धीरे या तो वे खुद बदलकर समझौतावादी पाशाक पहन सभ्य भद्र हो जायें यानी दुरुस्त हो जायें या उसी पागलखाने म पड रहे !

मै हतप्रभ तो हो ही गया ! साथ ही साथ उसकी इस कहानी पर मुग्ध भी। उस जीवन कथा से अत्यधिक प्रभावित होकर मैंने पूछा ता क्या यह कहानी सच्ची है ?

उसन जवाब दिया भई वाह ! अमरीकी साहित्य पढते हो कि नही ? अमरीकी अखबार भी नही ? ब्रिटिश भी नही ? तो क्या पढते हो खाक ! अरे भाई उस पर तो अनक भाषाओ म कई पुस्तकें निकल गयी है। तो क्या पत्थर *जानकारी रखते हो ! विश्वास न हो तो खण्डन करो जाओ टटोलो।* और इस बीच मैं इसी पागलखाने की सर करवा लाता हूँ।

मैंने हाथ हिलाकर इनकार करते हुए कहा नही मुझ नही जाना।

क्यो नही ? उसन झिडककर कहा आजकल हमारे अवचेतन म हमारी आत्मा आ गयी है चेतन म स्व हित और अधिचेतन में समाज स सामजस्य का आदश—भले ही वह बुरा समाज क्यो न हो ! यही आज के जीवन विवेक का रहस्य है।

तुमको वहाँ की सर करनी होगी। मैं तुम्हे पागलखाने ले चल रहा हूँ लेकिन पिछले दरवाज से नही खुले अगले से।

रास्ते मे मैंने उससे कहा मैं यह मानने के लिए तैयार नही हूँ कि भारत अमरीका है ! *तुम कुछ भी कहो ! न वह कभी हो ही सकता है न वह कभी होगा ही !'*

इस बात को उसने उडा दिया। उसे चाहिए था कि वह इस बात का जवाब देता। उसने सिफ इतना कहा मुश्किल यह है कि तुम मेरी बात नही समझते।

मैंने कहा कैसे ?

क्लाड ईथरली हमारे यहा भले ही देह रूप मे न रहे लेकिन आत्मा की वैसी बेचैनी रखनवाले लोग तो यहा रह ही सकत है।

मैंने अविश्वास प्रकट करके उसके प्रति घृणाभाव व्यक्त करके हुए कहा यह भी ठीक नही मालूम होता।

उसने कहा क्यो नही ! देश के प्रति ईमानदारी रखनेवाले लोगो के मन मे

व्यापक पापाचारों के प्रति कोई व्यक्तिगत भावना नहीं रहती क्या ?"

"समझा नही ।"

"मतलब यह कि ऐसे बहुतेरे लोग हैं जो पापाचाररूपी, शोषणरूपी डाकुओं को अपनी छाती पर बैठा समझते है । वह डाकू न केवल बाहर का व्यक्ति है, वह उनके घर का आदमी भी है । समझने की कोशिश करो !"

मैंने भौंहें उलझाकर कहा, "तो क्या हुआ ?"

"यह कि उस व्यापक अन्याय का अनुभव करनेवाले किन्तु उसका विरोध न करनेवाले लोगो के अन्त करण मे व्यक्तिगत पाप-भावना रहती ही है, रहनी चाहिए। ईयरली मे और उनमें यह बुनियादी एकता और अभेद है।"

"इससे यह सिद्ध हुआ कि तुम-सरीखे सचेत जागरूक सवेदनशील जन क्लॉड ईयरली हैं।"

उसने मेरे दिल मे खजर मार दिया । हाँ, यह सच था ! बिलकुल सच ! अवचेतन के अँधेरे तहखाने मे पडी हुई आत्मा विद्रोह करती है । समस्त आत्मा पापाचारो के लिए, अपने-आपको जिम्मेदार समझती है। हाय रे ! यह मेरा भी तो रोग रहा है।

मैंने अपने चेहरे को सख्त बना लिया । गम्भीर होकर कहा, "लेकिन, ये सब बातें तुम मुझसे क्यो कह रहे हो ?"

"इसलिए कि मैं सी आई. डी हूँ और मैं तुम्हारी स्क्रीनिंग कर रहा हूँ । मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे विभाग से सम्बद्ध रहो। तुम इनकार क्यो करते हो ! कहो कि यह तुम्हारी अन्तरात्मा के अनुकूल नही है।"

"तो क्या मुझे टटोलने के लिए तुम ये बातें कर रहे थे ? और, तुम्हारी ये सब बातें बनावटी थी ? मेरे दिल का भेद लेने के लिए थी ? बदमाश !"

"मैं तो सिर्फ तुम्हारे अनुकूल प्रसगो की, जो हो सकती थी वही [बातें] तो कर रहा था।"

[सम्भावित रचनाकाल 1959 के बाद]

जलना

ज्यो ही उसकी आँख खुली, उसने पाया कि छाती पर का उसका दबाव अभी तक दूर नही हुआ है। सपने मे न मालूम वह किस-किस पर चिड़चिड़ा रही थी, न मालूम कौन-कौन सामने-सामने या छिपे तौर पर उसे मुँह चिढा रहा था। सारी दुनिया कई टन वजन का टीला बनकर उसकी छाती पर बैठी हुई थी, वह अभी भी बैठी हुई है।

उसन आँखें खोलकर सामने के दरवाजे की तरफ़ देखा। वह अभी तक मुँदा

हुआ था। उस दरवाजे के भीतर से खाँसने-खँखारने की आवाजें आ रही थीं। वे
मतलब यह था
कप-बशियों की
लेकिन ज्यो ही
तेजाबी काला
गटर बहने लगा।

काले सल्फ़्यूरिक एसिड की भयानक बू-बासवाला वह गटर उसके भीतर-भीतर बहता ही गया, और वह वहाँ जा मिला जहाँ एक घटना का चित्र, एक व्यक्ति की मूर्ति खड़ी हुई थी।

यह वह आदमी था, जिस पर वह एक जमाने में जान देती थी। लेकिन अब वह बदल गया है। वह उसका पति है।

वह तट से एकदम उठी। दिल में ज़हर भरकर उसने अपनी बगल में सोये हुए बच्चे को इस तरह झकझोरकर जगा दिया जिससे वह खूब रो उठे, खूब चीखे, इतना तीखा शोर करे कि जिससे सब लोग, सास-ससुर, पति, बड़ा लड़का (जो बी एस-सी में पढ़ता है, और उसका कहना नहीं मानता), छोटे चिल्लर-पिल्लर, सब उस कर्कश क्रन्दन को सुनकर अशान्त और बेचैन हो उठें, हाय-हाय करने लगें। घर भर पर यह उसका प्रतिशोध था। वह सबसे बदला लेना चाहती थी, उस *आक्रोश के द्वारा कि जो उसका खुद का नहीं था।*

वह खाट से उठी। अपने बालों को अस्त-व्यस्त करके उसने रसोईघर में प्रवेश किया। उसका पति उकडूँ बैठा हुआ चुपचाप चाय बना रहा था। तीन साल का एक दुबला छोटा बच्चा, नंगा, वहीं बैठा हुआ था। बड़ी लड़की नल के पास खड़ी हुई टंकी में बालटी उड़ेल रही थी।

पानी बरस रहा था, आड़ा तिरछा। दो बच्चे, जिनमें से एक को दमे का रोग था, बगैर छाता लिये, बिना स्वेटर पहने, स्कूल चले गये थे। खुद उसको भी ब्रांकाइटिस की शिकायत रहती थी। लेकिन बिना खुद की या बच्चों की परवाह किये, उसने *रसोईघर की मज़बूती से बन्द की गयी खिड़की को खोल दिया।*

दूर दिखती हुई नीली पहाड़ी और सलेटी रंग के फैले हुए तालाब के कई फर्लांग फैले हुए तेज लहरदार पानी को पार कर, पेड़ों को अपने सामने झुकाती हुई तूफानी हवा रसोईघर में घुस पड़ी। और उसके साथ आये हुए छींटे कमरे को गीला करने लगे।

उबलती चाय को देखती हुई पति की आँखों ने अस्त-व्यस्त बालोंवाली अपनी स्त्री को देखा। और सन्न रह गया। उसने जान लिया कि आज उसे किन्हीं पेचीदा
मन अपनी ज़िन्दगी के पिछले वरक
चाय उड़ेलता जा रहा था, बच्चो
को दे आओ, वह कप नानी को दे
आओ।

उसकी नंगी पीठ पर पानी के बारीक छींटे पड़ रहे थे, धोती का एक पल्ला भी अधगीला महसूस हो रहा था। उसने बाहर से आते हुए छींटे बन्द करने के लिए खिड़की बन्द करनी चाही।

ज्यो ही वह पुरानी चौखट पर नये ठुके पल्लो को बन्द करने के लिए मुडा, उसकी आँखें दूर के बादलो मे उस पार क्षितिज पर टिक गयी, जिसमे पूर्व दिशा [illegible] र आक्रमण कर रही थी। तालाब का [illegible] रग मे डूबा दिखायी देता था, लेकिन [illegible] पर ललाई की सम्भावना प्रकट हो रही थी।

उस आरपार फैले हुए विस्तृत दृश्य को देख वह एकबारगी स्तब्ध हो गया। उस दृश्य मे इतनी ठण्डक और ताजगी थी कि दिल की मनहूसियत हवा हो गयी और एक अजीब-सी थिरकन नाचने के अन्दाज मे उभर उठी।

और फिर भी वह गम्भीर ही रहा। उसने खिडकी के पल्ले जबरदस्ती बन्द कर दिये। बच्चो को रसोईघर से भगा दिया। और खुद चाय का कप हाथ मे ले टेबिल के पास टीन की कुरसी पर जा बैठा। एक-एक घूंट चाय पीते हुए वह मन ही मन उस दृश्य का अवलोकन और पुनरवलोकन करने लगा।

और अकस्मात् उसे भान हुआ कि मनुष्य अपने इतिहास से जुदा नही है, वह कभी भी अपने इतिहास से जुदा नही हो सकता। न अपने बाह्य जीवन के इतिहास से, न अपने अन्तर्जीवन के इतिहास से। उसका अन्तर्जीवन अपने स्वप्नो मे, अपने तर्कों और विश्लेषणो मे, डूबता आ रहा है। उसे अधिकार है कि वह उसमे डूबता रहे, अपने से बाहर निकलने की उसे जरूरत नही है। अपने से बाहर वे निकलें जिनका बाह्य से कोई विरोध हो।

क्या यह सच नही है कि गणितशास्त्र मे, जिसका उसने एम एस सी तक अध्ययन किया था, एक काल्पनिक सख्या भी होती है? क्या यह काल्पनिक सख्या फिजूल है? क्या प्रकृति की सूक्ष्म क्रियाएँ इसी सख्या का अनुसरण नही करती। क्या ऋण-एक राशि का वर्गमूल एक भ्रामक वस्तु है? क्या सीधी रेखा वक्र रेखा ही का एक विशिष्ट रूप नही है? क्या यह झूठ है कि एक समय वह भी आयेगा, जब वैज्ञानिक विधि-शिल्प इतना बढ जायेगा कि मानव-जीवन प्रकृति की शक्तियो का आज से अधिक दोहन करके, अधिक विकसित होते हुए, अपने आपको बदल डालेगा। कि आज के प्रश्न और समस्याएँ इतिहास की वस्तु होकर बहुत बार हास्यास्पद भी प्रतीत होती होगी, उसी प्रकार हास्यास्पद जिस प्रकार बुन्देला-नरेश राणा धग के युद्ध! क्या यह सच नही है कि आज से सौ साल बाद सामान्य मनुष्य [illegible] यी सुविधाओ के कारण, वह [illegible] लगेगा? अजी, दुनिया और इतिहास की एक पलक उठती है और गिरती है कि एक सौ साल हो जाते है। उसमे धरा क्या है! मेरे बच्चे के बच्चे उस नयी आभा को अवश्य देखेंगे। अजी, उसके पहले भी यह सम्भव है। आई डोण्ट केयर। आई विल लिव इन माई ड्रीम्स, दिस इज माई प्रायवेट वर्ल्ड, एण्ड आई एम, एण्टाइटिल्ड टु लिव इन इट, आई एम नॉट प्रिपेयर्ड टु लेट अदर्स डिस्ट्रॉय इट!

उसको पता ही नही चला कि कब उसने चाय पी डाली और कब उसने कुरता पहना। उसे एक कप गरम-गरम चाय की और प्यास लगी कि इतने मे सफेद बालो

का उलझा हुआ जगल लिये हुए माँ का खाँसता-हाँफता बदन, जो रक्तहीनता के कारण कोयले से काला और विद्रूप हो रहा था, उसके पास झुककर खडा हो गया। उसने दयनीय भाव से गिडगिडाकर कहा—मुझे एक गरम चाय और दे, चुन्नू !

चुन्नू का हृदय उस आर्द्र वाणी को सुनकर दुखी हो गया। कहाँ गयी माँ की वह पुरानी शान, जब वह घर-भर पर शासन करती थी ! किन्तु आज वह निश्चित सख्या से अधिक एक कप चाय के लिए गिडगिडा रही है। नही, उसका यह कर्तव्य है कि दमे से जर्जर इस देह के लिए व्यवस्था की जाये। अवश्य, अवश्य !

पर कैसे ? उसने स्वय ही देखा था कि चाय के पहले दौर मे दूध खत्म हो गया है, सिर्फ दो चम्मच दूध गिना-गिनाया उसकी स्त्री के लिए रखा है। अब क्या किया जाये !

उसने माँ की तरफ देखा, और एकाएक जोर से हँस पडा। माँ को अपनी बाँहो मे भर लिया। उसके जोर से माँ की देह को तकलीफ होने लगी। उसे जगह-जगह दर्द होने लगा। वह चीख उठी—अरे छोड, अरे छोड, ! चुन्नू, छोड !

उसने माँ को जबरदस्ती हाथो से उठा लिया और उसको लेकर लगा नाचने गोल-गोल ! पास खडे हुए आठ साल के बबुआ को मजा आ गया। वह ताली पीटने लगा। तीन साल का बुन्दू यह दृश्य देखता हुआ खडा हो गया और आठ साल का एक 'उल्लू' अपनी माँ को (उसकी चिडचिडी स्त्री को) इस नाटक का समाचार देने के लिए पहुँच गया। रसोईघर के पासवाली छत स चिडचिडाते गुस्से के धमाके फूटने लगे।

और, अकस्मात्, यह नजारा सामने दिखायी दिया कि चुन्नू कमरे मे कागज पर कागज निकालकर फेंकता जा रहा है। वे कागज, जो उसने अवेर के रखे थे, सँभाल के रखे थे। कमरा बिखरे हुए कागज़ो से अजीब हो उठा है। उस बच्चे को, जिसे वह 'उल्लू' कहता है, बिखरे हुए कागजो को फिर से जमाने के लिए कहा गया है। वह बडी मुस्तैदी से और फिक्र के साथ उन्हे छाँट-छाँटकर जमा करता जा रहा है। और एक समय वह आया, जब वे कागज़ छोटे-छोटे गट्ठो मे बँध गये और एक बडी थैली मे समा गये। वे कागज़ क्या थे ? अखबारो के टुकडे, बच्चो की पुरानी बेकाम कापियाँ, अमरीकन और रूसी एजेंसियो के सरकारी समाचारो के बर[illegible] (जिनको अब तक उसने बहुत सँभाल-कर र[illegible]

[illegible] माँ, एम एस-सी,

असिर[illegible] लगा कि कही उसे इस सुबह सुबह भयानक दुर्घटना का सामना न करना पडे, यानी कि कही अपनी औरत से मुठभेड न हो जाये !

लेकिन नही, उसका यह भय निराधार था। रास्ता साफ था। उसके अपने स्वभाव के अनुसार, सुबह की रोशनी की ताजगी मे उसकी आँखो के सामने स्वप्न तैरने लगे। उसके बच्चे बडे हो गये हैं। वे खूब मेहनती निकले है। वे बहुत होशियार है। हाँ, सही है कि उनके कपडे फटे हुए हैं, लकिन वे काट और मार्क्स, सार्त्र और नेहरू के वचन अपने भाषणों मे सहज रूप से गूँथ जाते है। वे किसी

सुनहले लक्ष्य के लिए लड रहे हैं। उनके हृदय मे उत्साह है। जमाना बदल गया है, अब बड़ा परिवर्तन होने को है। मौजूदा पीढ़ी, अपनी बुढभस मे, हास्यास्पद प्रतीत हो रही है, इत्यादि-इत्यादि।

उधर बच्चो की माँ ने चाय बना ली थी। वह काली थी, दो चम्मच दूध ने चाय के रग मे विशेष परिवर्तन नही किया था। लेकिन उसका गरम-गरम घूँट हलक के नीचे उतरते ही उसे अच्छा लगा। जान मे जान आयी। तब उसने देखा कि रसोई-घर की जो खिडकी उसने खोल दी थी, वह फिर बन्द कर दी गयी है। वह एकदम उठी और उसके पल्लो को ज़ोर से खोल डाला।

बादल हट चुके थे और उसकी विपरीत दिशा में—पश्चिम मे—दौडते जा रहे थे। नवोदित सूर्य की गुलाबी, सुनहली, नारगी किरणे एक केन्द्र से चारो ओर दौड रही थी। तालाब के पानी में उनके प्रतिबिम्ब डूब गये थे। हरियाला मैदान लाल-सुनहला हो गया था। और दूर तिकोनी पहाड़ी एकदम नीली दिखायी दे रही थी।

वह उस दृश्य को देखती खडी रही। उस सौन्दर्याभा का जल उसके चेहरे पर छा गया। उसे अच्छा लगा। पास ही कमरे मे, नल से उसने बालटियाँ लगा दी।

फिर वह चूल्हे के पास आ बैठी। जिसके लाल अगारो पर उसकी दृष्टि स्थिर हो गयी। उसम लाल चट्टानें दिखायी दी, उनके भीतर से सुनहली ज्योति निकल रही थी। चट्टानो के पास महीन-गरम सफेद राख की गलियाँ बन रही थी। कही ज्वाला की हलकी लता हिलती हुई अपने किसी को बुला रही थी।

उसने दो छोटी-छोटी लकडियाँ और लगा दी। चूल्हे मे प्रकाश नाच उठा। एक गति, एक आवेग, सूर्य का वशधर बनने लगा। अब उसे और अच्छा लगा। उसने रसोईघर के चारों ओर नज़र दौडायी। भीत पर लगी हुई लकडी की पट्टियो पर पीतल के बरतन चमचम चमक रहे थे। उनके पीले रग मे खिडकी मे स आयी हुई सूर्य की क्रान्ति ललाई घोल रही थी।

एकाएक उसकी नज़र अपनी चूडियो पर गयी। वे नीली थी। उनकी नीलिमा की गोल प्रकाश रेखा उसकी कलाई को घेरे हुई थी। अकस्मात् किसी अवचेतन प्रेरणा स उसने हाथो की चूडियो से माथे को छू लिया, मानो कि वह किसी अदृश्य शक्ति के सामन नतमस्तक हो गयी हो। और, तब न मालूम कौन-सा स्वप्न उसकी पलको मे उभर आया। उसके होठो पर एक हलकी-सी मुसकान तैर गयी।

चूल्हे म आग तेज़ हो गयी। लाल और गेरुई, सिन्दूरी और सुनहली ज्वालाएँ ऊँची उठी, नाचने और लहराने लगी।

चूल्हा खाली था। उसने उस पर कुछ भी नही रखा था।

वह लकडियो को आगे सरकाती जा रही थी। उनका प्रकाश बढता जा रहा था। उनकी गरमी बढती जा रही थी। उसका मन पीछे की ओर दौडता जा रहा था। कल क्या हुआ था? हाँ, कल क्या हुआ था! वह घटना, जिसने उसके दिमाग को धो दिया था, जिसने उसको पागल बना दिया था।

और लाख कोशिश करने पर भी उसे उस घटना की याद नही आयी। सम्भवत. ऐसी कोई घटना हुई ही नही थी। शरीर के अस्वास्थ्यजनित विषो ने उसकी नस-नस म घुसकर उसे कमज़ोर और विक्षुब्ध कर दिया था। और उस

विक्षोभ ने उसके मन में आत्मनाशक सपने और भाव तैरा दिये थे। यही वे घटनाएँ थी, जो पकड में आनी नही थी, जा सिर्फ एक मानसिक वातावरण बनकर उसे खाये जा रही थी।

किन्तु उस समय जब चूल्हे की अगारी लाल घाटियो म सुनहली लताएँ और फूल खिल रहे थे, उस अपन बचपन और जवानी के दृश्य दिखायी देन लगे, और उसे अफसोस होन लगा कि अगर वह पढ़-लिख जाती और नौकरी करने लगती तो उसकी इतनी दुर्दशा न होती, तो उसके घर मे पिछवाडे से चुपचाप वह औरत न आती जो पठान से भी अधिक सूद लती है, तो उसको इतना अपमानित न होना पडता।

उसके सामन क्रमश वे दृश्य तैरन लग जब उसकी साथिनें पढ लिख गयी, जिनमें स एक प्राइमरी स्कूल की टीचर है, दूसरी किसी दफ्तर म क्लर्क है, तीसरी नर्स हो गयी है। यकायक उसके हृदय मे अभाव का, हानि का, दुख भरता गया। हर तीसरे साल बच्चे, जन्म और मृत्यु, कर्ज और अपमान, बढती हुई जिम्मेदारियाँ और पेट मे अन्न डालन की मुश्किलें और काम, काम, काम!

आश्चर्य की बात है कि इन सारे खयालो म पति का खयाल उस नही आया। पति के विरुद्ध विक्षोभ उसके मन म नही था, सो भी बात नही। परन्तु यह सच है कि वह उससे बहुत ही अधिक प्रेम करती थी। वह यह क्षण मात्र भी नही सोच सकती थी कि उसके दुख उसके पति क कारण है, यद्यपि वह अपन दुखो का ठीकरा पति के सिर पर ही फोडती है। मनुष्य का मन विचित्र है। और आज जब कि वह पति पर ही अत्यन्त क्रुद्ध है, पति क विरुद्ध विचार उसक मन मे आने चाहिए थे। सम्भवत इसका एक कारण यह भी था कि वह पढन-लिखने के प्रति अपनी उदासीनता को ही सर्वाधिक दोष देती थी।

यदि वह शिक्षित होती, तो शायद अधिक सुखी होती। वह यह समझती थी कि वह स्वय कार्यकुशल है, न कि उसका पति। वह अपन भोन हृदय को भी भोला आनन्द प्रदान कर सकता था। लकिन जिन्दगी की छोटी-छोटी बातो के लिए वह जद्दो जहद करन की ताकत और ताव नही रखता था। उसके अनुसार उसका पति सन्त था, सन्त। मूर्ख उस न कह सकती थी, न सोच सकती थी।

और इसी तरह के खयालो म गिरफ्तार वह स्त्री जब अपने बाल फैलाये हुए चुपचाप सोचती जा रही थी, कि उसके अनजाने म चूल्ह म की एक तडाक् म उठी हुई चिनगारी उसकी साडी के एक कोण म दुबककर बैठ गयी।

ठीक उसी वक्त उसका पति चुन्नीलाल एक मैले कुचैले पसारी की आलमारी [illegible] की तसवीर को
[illegible] थ मे उसके एक
[illegible]। उसे समझ मे

वह एक चिपचिपे स्टूल पर नीचे पडा हुआ पुराना अखबारी कागज रखकर बैठ गया। चुपचाप अपनी झोली म स रद्दी कागज निकालने लगा।

उन कागजो म उसक बच्चो की लिखावट थी। टूटे-फूटे बाँके तिरछे अक्षरो मे गणित क आंकडे, देश के विभिन्न राज्यो की राजधानियो के नाम, और सस्कृत की क्रियाओ के रूप लिख हुए थे।

वह फिर भविष्य की तरफ देखने लगा। उसके बच्चे बड़े होंगे। कॉलेज एजुकेशन तो क्या ले सकेंगे। इतना पैसा ही नहीं है कि उनके लिए किताबें खरीदें। लेकिन हाँ, मैं अपने सारे विचार, मेरी अपनी सारी कल्पनाएँ और धारणाएँ उन्हें बता दूंगा। उनका बिलकुल सिस्टमैटिकली अध्ययन करा दूँगा। मैं उन्हें बड़े आदमियों की ठिकों से दूर रखूँगा और इस तरह घुट्टी दूँगा कि वे उनके तौर तरीकों से घृणा करें, कि अपने-जैसे गरीबों में ही रहें और उन्हें लिखायें पढ़ायें उन्हें नये नये विचार दें, उनकी भविष्य-कल्पना तीव्र कर दें, उनकी जगत् चेतना को विस्तृत और यथार्थवादी बना दें, और उनमें मरें और जियें। मैं उन्हें क्रान्तिकारी बनाऊँगा। मैं उन्हें समाज की तलछट बनने के लिए प्रेरित करूँगा। वे वहाँ बैठ-बैठे किताबें लिखेंगे, पैम्फलेट छापेंगे, और जो मिलेगा उसे सबके साथ खाकर उन सब भड़कीले दम्भों से घृणा करेंगे कि जो शिक्षा और संस्कृति के नाम पर चलते हैं।

पसारी को यह कुछ मालूम नहीं था। वह तो सिर्फ इतना जानता था कि इस तरह की रद्दी छह आने सेर से ज्यादा नहीं बिकती। चुन्नीलाल ने जब अपने हाथ में पन्द्रह आने देखे तो वह बहुत खुश हो गया और पास ही के चायघर में दूध लेने के लिए पहुँच गया।

जब वह घर पहुँचा, तो पाया कि वहाँ कुहराम मचा हुआ है। बच्चे रो रहे हैं। बूढ़ी माँ रोती हुई काँप रही है, उसकी साँवली झुर्रियाँ गीली हैं। और बूढ़े बाप के चेहरे पर श्मशान की छाया है। वह बालटी-पर-बालटी डाल रहा है। नीचे चुन्नू की स्त्री औंधी पड़ी हुई है। पानी में तर है। सारा फर्श गीला है। उस पर मिट्टी के फफोले उभर आये हैं। बच्चों के रोने की आवाज़ें छत को फाड़कर खिड़की के बाहर निकल रही हैं। और इस सारे शोर में एक गहरा शून्य है और उस शून्य में उसकी स्त्री है।

वह स्त्री चुप है। उसकी खीझ गायब है, उसकी चिढ़ गोल हो गयी है। वह स्तब्ध है। उस घटना से उसके दिमाग को धक्का लगा था। आग ने उस पर चढ़ाई की, क्यों की क्यों की?

और फिर आग बुझायी गयी, बालटियाँ डालकर। पीठ पर का आँचल और आँचल के नीचे का जम्पर जल गया था। इस वक्त जले हुए हिस्से पर नीला सियाही लगायी जा रही है। बहुत-सी जगहों पर फफोले उठ गये हैं, कहीं चमड़ी खिंच आयी है।

खैरियत हुई, आग ज्यादा फैल नहीं पायी। बाल-बच्चों के भाग्य अच्छे थे। स्त्री अब भी चुप थी, वह निश्चेष्ट थी। वह अभी भी फटी फटी आँखों से न जाने क्या सोच रही थी। बूढ़े पिता और माता अपने-आपको दोषी अनुभव कर रहे थे। वे चुन्नू के दारिद्र्य को और भी भयावह कर देते थे। उनकी स्थिति दयनीय रहती थी। अब उनका मन भी दयनीय हो गया था।

लेकिन चुन्नू अपने-आपको दोषी समझते हुए आगे बढ़ा। उसने लज्जा छोड़ दी। निश्चेष्ट पड़ी हुई औरत का सिर हिलाया। उसे बिठा देने की कोशिश की।

वह उठ बैठी। अधिक सचेत हुई और पति को सामने पाकर आँखें कुछ संकोच से दूसरी ओर कर लीं, वहाँ सभी लोग खड़े थे, इसलिए।

और अकस्मात्, चुन्नीलाल को लगा कि अब वह अपने एकान्त की रक्षा नही कर सकेगा। उसे लडाई मे कूद पडना होगा, उसे मुठभेड करनी ही होगी। उसे अपने सपने भूल जाने होगे, परिस्थितियो को वश मे करने के कार्य मे उसे दक्ष और समर्थ होना पडेगा।

बर्नोल "वैद्य"' डॉक्टर ये शब्द उसके मन मे गूँज गये। पैसा—यह शब्द *उसकी अन्तर्गुहा मे चीख उठा। सहायता—यह स्त्री-लिंगी ध्वनि उसके हृदय मे* दुन्दुभि बजाने लगी।

उसने अपनी स्त्री की पीठ पर के घाव देखे—वे छह थे। उनमे तीन कुछ बडे थे, बाकी छोटे—पैसे के आकार के। और तब उसके मस्तिष्क ने तुरन्त सोच डाला कि उसके लिए बर्नोल काफी है। वैद्य और डॉक्टर बुलाने की जरूरत नही है।

उसने बीवी को वही छोड दिया। पडोसी की साइकिल उठायी और तुरन्त ही बर्नोल के लिए निकल पडा।

तब तक वातावरण बदल गया था। स्त्री वैसी ही शान्त और चुप पडी थी। पर अब उसके फैले हुए पैरो पर नन्हा खेल रहा था, बडा बच्चा उसकी पीठ के दागो पर नीली सियाही लगा रहा था। बूढी माँ रसोईघर मे घुस गयी थी।

जब वह बर्नोल लेकर लौटा तो वह बीवी के पास जा बैठा, उसकी अपलक, न देखती हुई आँखो मे उसने आँखें डाल दी। उसके गाल छुए। और तब उसने पाया कि उसकी आँखो मे चेतना मुसकरा उठी है। उसके होठ भी किसी नम्र, दीन दयनीय स्मित मे तिरछे हो रहे हैं। चुन्नू के हृदय मे एकाएक अपने स्वय के ही भाग्य पर बडी ही दया उत्पन्न हुई। दया इसलिए कि उसके भाग्य मे यह बदा था कि उसके आसपास के लोग किसी उपन्यास के केवल पात्र हो, जो लेखक के अत्यन्त निकट होते है, और फिर भी दूर, वे उसके अपने होते हुए भी केवल छायात्मक होते हैं।

किन्तु इस विचार के उत्पन्न होते ही, उस विचार के लगभग विपरीत, चुन्नीलाल ने अपनी स्त्री को बग़ल मे खीच लिया।

और तब एक क्षण के बाद, उसकी स्त्री के गले से आवाज निकली। क्षीण, दुर्बल और प्रार्थना करती हुई आवाज़ थी वह। स्त्री ने कहा, "तुम मुझे छोडकर मत जाया करो।" वह आवाज़ बहुत ही क्षीण और करुणापूर्ण थी। किन्तु चुन्नीलाल को लगा कि वह आवाज़ किसी पार के परली तरफ के परे से आ रही है, इतनी दूर से कि वह उसी कारण तीखी हो उठी है और हृदय-विदारक भी।

चुन्नीलाल ने अपनी पत्नी को वही ज़मीन पर लिटा दिया। सिरहाने लकडी का पटा रख दिया और किसी उत्तेजित अवस्था मे रसोईघर की खिडकी खोलकर वह बाहर देखने लगा।

वहाँ उसे शहर ही शहर और गाँव ही गाँव, सडकें ही सडकें, गलियाँ ही गलियाँ दिखायी दी, जिनके भीतर से उठती हुई गूँज उसके पास आकर कहने लगी, "तुम मुझे छोडकर मत जाया करो।"

माता रसोईघर मे एक ओर दुबकी बैठी थी। वह स्तब्ध और निश्चेष्ट थी। चुन्नीलाल ने चूल्हे पर चाय का पानी चढा दिया। चूल्हे म आग अभी भी दहक रही थी। चाय भरे प्याले जब वह एक-एक को देने लगा तो बच्चो के पीले उतरे चेहरो मे से, बाप की बूढी शिकनो मे से, माँ की आँखो के सफ़ेद पड रहे कोयो मे

से, उमे माफ़ झलक उठा कि मानो वे भी कह रहे हों—तुम मुझे छोड़कर मत जाया करो।

और जब वह एक कप चाय लेकर बीवी को देने गया, तब पाया कि उसकी आँख लग गयी है। चुन्नीलाल ने जगाने की कोशिश करनी चाही, पर वह एक दृश्य देखता ही रहा। नन्हा बालक अभी भी उसके फैले हुए पैरों के बीच में खेल रहा था। तीन साल का बच्चा अपनी जेब में से चाक के टुकड़े गिन रहा था। आठ साल का बड़ा लड़का घर की हालत और स्कूल-दफ्तर का समय सोचकर थाली में अरहर की दाल बीन रहा था। उसके हाथ में अभी भी नीली सियाही लगी थी, मानो दावात से खिलवाड़ किया हो।

चुन्नी का दिल इस दृश्य को देख पिघल गया। वह उसे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत हुआ। उसका मन बेहद के मैदान में चला गया। इन सब लोगों का प्यार वह अपने में नहीं सँभाल सकता। उसका दिल मिट्टी का घड़ा है, उसमें ज्यादा भरोगे तो वह टूट जायगा।

एकबारगी उसने अपने सारे घर पर दृष्टि डाली। यह उसका जगत् है, उसे सबकी सेवा करनी है। वह ज़रूर-ज़रूर करेगा। नहीं तो ज़िन्दगी का कोई मतलब नहीं।

उसने अपनी बीवी को जगाया नहीं। पिताजी को चाय का कप दे दिया। और फिर रसोईघर में आ गया। और खुद गरम-गरम चाय पीने लगा।

ज्यों ही उसने एक घूँट अपने होंठों से लगाया कि एकाएक उसे खयाल आया कि उसने बर्नोल का प्रयोग अभी तक नहीं किया, उसके घावों पर बर्नोल लगाना भूल गया।

उसने चाय-भरी बशी नीचे धर दी, और आसमान फाड़कर एक तसवीर उसके सामने आ गयी। वह उसकी अपनी समस्या थी।

वह बर्नोल लगाना क्यों भूल गया?

वह अपने कामों से, दुनिया से रिश्ते जोड़े, न कि सिर्फ़ दिल के उड़ते हुए टुकड़ों से। कि इतने में बड़े बच्चे ने आकर सूचना दी, "माँ चाय माँगती है।"

चुन्नू को खुशी हुई। वह तुरन्त गरम चाय लेकर स्त्री के पास जा बैठा। बच्चों ने देखा कि उनके बूढ़े, झुकी झुकी कमरवाले नाना के हाथ में बर्नोल है, और वे चुन्नीलाल के हाथ में उसे दे रहे हैं।

[सम्भावित रचनाकाल 1960 के आसपास। धर्मयुग, अप्रैल 1968 में प्रकाशित]

काठ का सपना

घिरे हुए कन्धे आगे बढ़ रहे हैं, जिन पर पीली मिट्टी का-सा चौड़ा चेहरा। उस पर काले कोयले के-से दाग़। कोई पूरा जलाती हुई, बू-भरी, धुँआती मैली आग जो

मन मे है और कभी-कभी सुनहली आँच भी देती है पूरा शनिश्चरी रूप।

वे एक बालिका के पिता हैं, और वह बालिका एक घर के बरामदे की गली मे निकली मुँडेर पर बैठी है, अपने को देखती हुई। उन्हे देख उसके दुबले पीले चेहरे पर मुसकराहट खिलती है। और वह अपने दोनो हाथ आगे कर देती है जिससे कि उसके काका उसे अपने कन्धो पर ले लें।

उसके पिता अपनी बालिका को देख प्रसन्न नही होते हैं। विक्षुब्ध हो जाता है उनका मन। नन्ही बालिका सरोज का पीला चेहरा, तन मे फटा हुआ सिर्फ एक 'फ्रॉक' और उसके दुबले हाथ उन्हे बालिका के प्रति अपने कर्त्तव्य की याद दिलाते हैं, ऐसे कर्त्तव्य की जिसे वे पूरा नही कर सके, कर भी नही सकेंगे, नही कर सकते थे। अपनी अक्षमता के बोध मे वे चिढ जाते हैं। और वे उस नन्ही बालिका को डाँटकर पूछते हैं, "यहाँ क्यो बैठी है? अन्दर क्यो नही जाती?"

बालिका सरोज, गम्भीर, वृद्ध दार्शनिक-सी बैठी रहती है। अपने क्रोध पर पिता को लज्जा आती है। उनका मन गलने लगता है। उनके हृदय मे बच्ची के प्रति प्यार उमडता है। वे उसे अपने कन्धे पर ले लेते हैं। ऊँचे उठने का सुख अनुभव कर, बच्ची मुसकरा उठती है।

पिता बच्ची को लिये घर मे प्रवेश करते है, तो एक ठण्डा, सूना, मटियाली वास-भरा अँधेरा प्रस्तुत होता है, जिसके पिछवाडे के अन्तिम छोर मे आसमान की नीलाई का एक छोटा चौकोर टुकडा खडा हुआ है। वह दरवाजा है।

घर मे कोई नही है।

सिर्फ दो साँसें हैं।

एक पिता की।

दूसरी पुत्री की।

वे एक अँधेरे कोने मे बैठ जाते हैं और उनके घुटनो मे वह बालिका है। उसका चेहरा पिता को दिखायी नही देता। फिर भी, वह पूरा का पूरा महसूस होता है। वे चुपचाप उसके गाल पर हाथ फेरते हैं। हाथ फेरते जाते हैं और सोचते है कि यह लडकी मेरे समान ही धैर्यवान है, सबकुछ समझती है, सबकुछ पहचानती है। बडी प्यारी लडकी है। उन्हे लगता है कि उनकी आँखें तर हो रही हैं।

एकाएक खयाल आता है कि अगर घर मे बडा आईना होता तो अच्छा होता, अपनी बडी आँसू-भरी सूरत की बदसूरती देख लेते। उन्हे उमररसीदा आदमियो का रोना अच्छा नही लगता।

सामने, अँधेरे मे, रग-बिरगी पर धुँधली आकृतियाँ तैर जाती हैं। सुन्दर चेहरेवाली एक लडकी है, वह उनकी सरोज है। नारगी साडी है, सुनहली किनारी है, सफेद चम्पई ब्लाउज है। गले मे हार है। हाथो मे रग-बिरगी चूडियाँ—एक-एक दर्जन। पति के घर से वापस लौटी है। खुश है, दामाद मैकेनिकल इजीनियर है। जिसकी गरीब सूरत है। और वह बाहर बरामदे मे कुरसी पर बैठा है, क्या करे सूझता नही।

घर मे उनकी स्त्री पूडी बना रही है, पकौडियाँ बन रही है। बहुत-बहुत-सी चीजें हैं। भाग-दौड है। हल्ला-गुल्ला है। शोर-शराबा है। लोग आकर बैठ रहे हैं—आ रहे हैं, जा रहे हैं। पास-पडोस की लुगाइयाँ चौके मे मदद कर रही हैं। और उनके दिल मे ''क्या करें, क्या न करें, सबकुछ कर डालें। क्या ही अच्छा

होता कि उनमें यह ताक़त होती कि वे सबको प्रसन्न कर सकते और सारी दुनिया को खुश देख सकते।··· कि इतने में सपना टूट जाता है।

बरामदे का दरवाज़ा बज उठता है। पैरों की आवाज़ से साफ ज़ाहिर है कि स्त्री, जो कहीं गयी थी, लौट आयी है।

अन्दर आकर देखती है। उसे अचम्भा होता है। "यहाँ क्या कर रहे हो?"

उसकी आवाज़ गूँजती है, जैसे लोहे की साँकल बजती है, जैसे ईमान बजता है!

"सरोज कहाँ है?"

कोई आवाज़ नहीं। सरोज और उसके पिता स्तब्ध बैठे हैं।

पिता बोलते हैं मानो छाती के कफ को चीरती हुई घरघराती आवाज़ आ रही हो। कहते हैं, "कहाँ गयी थी? घर बड़ा सूना लग रहा था।"

स्त्री कोई जवाब न देकर वहाँ से चली जाती है। आँगन में पहुँचकर, ज़मीन में गड़ा हुआ एक पुराना पेड़ जो कट चुका है और जिसकी झिल्लियाँ बिखरी हैं, उस पर पैर रखकर खड़ी होती है। ज़मीन में उस कटे पेड़ में से ज़मीन की तहें छूते हुए, नये अंकुर निकले हैं। बाद में, ऊपर से उतरकर, वह झिल्लियाँ बीनती है। पड़ोस से लायी हुई कुल्हाड़ी चलाकर, उन अधकटे ठूँठों से लकड़ी निकालने का खयाल आता है। लेकिन काटने का जी नहीं होता। इसलिए झिल्लियाँ बीनकर, वह उनका एक ढेर बना देती है और फिर आँगन की दीवाल की मुँडेर पर चढ़ जाती है, क्योंकि उस मुँडेर के एक ओर नीम की एक सूखी डाल निकल आयी है।

उसे वह तोड़ती है। ऊँची मुँडेर पर चढ़कर नीम की सूखी डाल तोड़ लाने का जो साहस है, उस साहस से दीप्त होकर वह प्रफुल्ल हो जाती है। सारी लकड़ी ठण्डे चूल्हे के पास लाती है, जमा कर देती है।

सरोज पिता की गोद से उठ आयी है। वह देखती है कि चूल्हे में सुनहली ज्वाला निकल रही है। वह देखती है, और देखती रह जाती है। उसे उस ज्वाला का रंग अच्छा लगता है। वह चूल्हे के पास जाकर बैठ गयी है। उसकी रीढ़ की हड्डी दुख रही है, पर चूल्हे में जलती हुई ज्वाला उसे अच्छी लग रही है।

सारा चौका सुहाना हो उठता है—भूरा-मटियाला, साफ-सुथरा। भीत की पटिया पर रखी पीतल की एक भगोनी, छोटे-छोटे दो गिलास और दो कटोरियाँ, कैसी चमचमा रही हैं, कितनी सुन्दर! उनपर माँ का हाथ फिरा है। तभी तो··· तभी तो ··।

सुबह के पकाये भात में पानी डाला जाता है और नमक। चूल्हे पर चढ़ गया है भात। सुबह का बेसन भी है। उसमें पानी मिला दिया जाता है। उसे भी चूल्हे के दूसरे मुँह पर रख दिया गया है, सीझता रहेगा।

सरोज बोलती नहीं, माँ बोलती नहीं, पिता बोलते नहीं।

जब यह नन्ही बालिका भोजन कर चुकी तो उसकी जान में जान आयी। बोरे पर बिछे, माँ के चिथड़े से बने, अपने मुलायम बिस्तर पर वह सो गयी। उसे नींद आ गयी। पिताजी के बिस्तर से सटा हुआ उसका बिस्तर है। वे उसे अपने पास नहीं लेते। रात को वह बिस्तर गीला करती है, इसीलिए।

वे तथाकथित बिस्तरों पर लेट गये हैं। दोनों को नींद नहीं। दोनों एक-दूसरे से कुछ कहना चाहते हैं, कहना आवश्यक है। किन्तु वे जानते हैं कि दोनों को

मालूम है कि उन्हे एक-दूसरे से क्या कहना है। उस पूर्व-ज्ञान को वे कहना-सुनना नहीं चाहते। वह पूर्व-ज्ञान वेदनाकारक है, इसलिए उसे न कहना ही अच्छा। फिर भी, न कहने से काम नही बनता, क्योकि कह-सुन लेने से अपने-अपने निवेदनो पर सील लग जाती है, व्यक्तिगत मुहर लग जाती है। वह व्यक्तिगत मुहर अभी लगी नहीं है। हर एक उत्तर हर एक ज्ञान है। फिर भी, बहुत कुछ अज्ञात छूट जाता है!

वे नही चाहते थे कि रात मे नीद के पहले के ये कुछ क्षण खराब हो जायें, मन.स्थिति विकृत हो, और दुर्दमनीय चिन्ता से ग्रस्त होकर वे रातभर जागते-कराहते रहे, नही ऐसा नही ! चिन्ता सुबह उठकर करेंगे। रात है। यह रात अपनी है। कल की कल देखी जायेगी।

किन्तु इन खयालो से माथे का दुखना नही थमता, देह की थकन दूर नही होती, असन्तोष की आग और बेबसी का धुआँ दूर नही होता।

नही, उसका एक उपाय है। जबरदस्ती नीद लाने के लिए आप एक से सौ तक गिनते जाइए ! इस तरह, जब आप कई बार गिनेंगे, दिमाग थक जायेगा और आप ही आप भीतर अँधेरा छा जायेगा। एक दूसरा तरीका भी है। रेखागणित की एक समस्या ले लीजिए। मन-ही-मन चित्र तैयार कीजिए। उसके कोणो को नाम दीजिए और आगे बढते जाइये। अन्त तक आने के पहले ही, नीद घेर लेगी। एक और भी मार्ग है, जिसे इस लेख का लेखक अकसर अपनाया करता है। मस्तिष्क की सारी नसें ढीली कर दीजिए ! आँखें मूँदकर पलकें बिलकुल बन्द करके, सिर्फ अँधेरे को एकाग्र देखते रहिए। तरह-तरह की तसवीरें बनेंगी। पेड़-दार रास्ते और उसपर चलती हुई भीड, अथवा पहाड और नदियाँ जिनको पार करती हुई रेलगाडी·· भक-भक-भक।

अँधेरा जड हो गया और छाती पर बैठ गया। नही, उसे हटाना पडेगा ही—सरोज के पिता सोच रहे हैं। और उनकी आँखें, बगल मे पडे हुए बिस्तर की ओर गयी।

वहाँ भी हलचल है। वहाँ भी बेचैनी है। लेकिन कैसी ?

··लेकिन उन दोनो मे न स्वीकार है, न अस्वीकार ! सिर्फ एक सन्देह है, यह सन्देह साधार है कि इस निष्क्रियता मे एक अलगाव है—एक भीतरी अलगाव है। अलगाव मे विरोध है, विरोध म आलोचना है, आलोचना मे करुणा है। आलोचना पूर्णतः स्वीकारणीय है, क्योकि उसका सकेत कर्तव्य-कर्म की ओर है, जिसे इस पुरुष ने कभी पूरा नही किया। वह पूरा नही कर सकता।

कर्तव्य-कर्म को पूरा करना केवल उसके सकल्प द्वारा ही नही हो सकता। उसके लिए और भी कुछ चाहिए। फिर भी, वह पुरुष मन-ही-मन यह वचन देता है, यह प्रतिज्ञा करता है कि कल जरूर वह कुछ न कुछ करेगा, विजयी होकर लौटेगा।

पुरुष मे भी आवेश नही है। वह भी ठण्डा है, सिर्फ गरमी लाने की कोशिश कर रहा है।

वह उसकी बाँहो मे थी। निश्चेष्ट शरीर ! फिर भी, उसमे एक ऊष्मा है, जो मानो सौ नेत्रो से अपने पुरुष को देख रही हो, निर्णय प्रदान करने के लिए प्रमाण एकत्र कर रही हो। फिर भी निश्चेष्ट और सक्रिय !

पुरुष संवेदनाओं के जाल मे खो गया। उसे स्त्री के होठ गुलाब की सूखी पखुडियों-से लगे, जिनसे उसे सूरज की गरमी की याद आयी। उसके कपोल मिट्टी-से थे—भुसभुसी, नमकीन, शुष्क मृत्तिका। उसका हृदय एक अनजानी गूढ करुणा की सूचना से भर उठा।···हाँ, उसके पेट, उसकी त्वचा मे तो घरेलू बास थी। उसने उसे अपनी बाँहों मे भर लिया और वह, मन-ही-मन, उस पूरी गरम चिलकती हुई पृथ्वी की याद करने लगा जिस पर वह बेसहारा मारा-मारा फिरता है। क्या यह पृथ्वी उतनी ही दुखी रही है जितना कि वह स्वयं है।

एक ऊर्जा उठी और गिर गयी। पुरुष निश्चेष्ट पड़ा रहा। पर मन जाग्रत् था।

···दोनो स्त्री-पुरुष के जीवन पर विराम का पूर्ण चिह्न लग गया है, काठ हो गये हैं। बाढ आती है। किनारे पर पड़े हुए काठो को बहाकर ले जाती है। जल-विप्लव है। काठ बहते जाते हैं, फिर भी वे प्राणहीन काठ, आपस मे गुँथे हुए बहे जा रहे हैं।

बादल-तूफान के कारण, पेड तिरछे हो रहे हैं। पर वे गुँथे-बँधे बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं · और, हाँ, गुँथे-बँधे काठ खाली नही है। उनपर एक बालिका बैठी हुई है। हाँ, वह सरोज है। अपने नन्हें दो हाथ उसने दोनो काठों पर टेक दिये हैं, जिनके सहारे वह स्वयं चली जा रही है।

सरोज की उस बाल मूर्ति की रक्षा करनी ही होगी। उन दो निष्प्राण काठ-लट्ठों का यही कर्तव्य है।

पुरुष इस स्वप्न को देखता ही रहता है। बारह का गजर होता है। रात और आगे बढती है। सप्तर्षि जो अब तक एक कोने मे थे, सामने आकर साफ दिखायी देते हैं।

[कल्पना, अप्रैल 1963 मे प्रकाशित]

विद्रूप

सभ्यता के पूर्वकाल मे मनुष्य जाति कबीलों मे रहा करती और सुबह से शाम तक खाद्य के एकत्रीकरण मे जुटी रहती। फल तोडना, फल बीनना, शिकार करना, थककर सो जाना, और फिर दूसरे दिन—वही, वही।

[illegible]

जाय। लेकिन जिससे वह भिड जाया करता वह गुत्थाडा नही था, सिर्फ़ गुत्थी थी, सवाल थे जो एक-दूसरे से मिलकर उलझ गये थे।

भीड में भी अगर सर्वेटे अकेला रहे तो इसमें उसका कोई दोष नही था। वह

मालूम है कि उन्हे एक-दूसरे स क्या कहना है। उम पूर्व-ज्ञान को वे कहना-सुनना नही चाहते। वह पूर्व ज्ञान वेदनाकारक है, इसलिए उस न कहना ही अच्छा। फिर भी, न कहने से काम नही बनता, क्योकि कह-सुन लेने से अपने-अपने निवेदनो पर सील लग जाती है, व्यक्तिगत मुहर लग जाती है। वह व्यक्तिगत मुहर अभी लगी नही है। हर एक उत्तर हर एक ज्ञान है। फिर भी, बहुत कुछ अज्ञात छूट जाता है।

वे नही चाहते थे कि रात मे नीद के पहले के ये कुछ क्षण खराब हो जायें, मन स्थिति विकृत हो, और दुर्दमनीय चिन्ता से ग्रस्त होकर वे रातभर जागते-कराहते रहे, नही एसा नही। चिन्ता सुबह उठकर करेंगे। रात है। यह रात अपनी है। कल की कल देखी जायेगी।

किन्तु इन खयालो मे माथे का दुखना नही थमता, देह की थकन दूर नही होती, असन्तोष की आग और बेवसी का धुआँ दूर नही होता।

नही, उसका एक उपाय है। जबरदस्ती नीद लाने के लिए आप एक से सौ तक गिनते जाइए। इस तरह, जब आप कई बार गिनेंगे, दिमाग थक जायेगा और आप ही आप भीतर अँधेरा छा जायेगा। एक दूसरा तरीका भी है। रेखागणित की एक समस्या ले लीजिए। मन-ही मन चित्र तैयार कीजिए। उसके कोणो को नाम दीजिए और आगे बढते जाइये। अन्त तक आने के पहले ही, नीद घेर लेगी। एक और भी मार्ग है, जिस इस लेख का लेखक अकसर अपनाया करता है। मस्तिष्क की सारी नसें ढीली कर दीजिए। आँखें मूँदकर पलकें बिलकुल बन्द करके, सिर्फ अँधेरे को एकाग्र देखते रहिए। तरह-तरह की तसवीरें बनेंगी। पेड-दार रास्ते और उसपर चलती हुई भीड, अथवा पहाड और नदियाँ जिनको पार करती हुई रेलगाडी भक-भक-भक।

अँधेरा जड हो गया और छाती पर बैठ गया। नही, उसे हटाना पडेगा ही—सरोज के पिता सोच रहे है। और उनकी आँखें, बगल मे पडे हुए बिस्तर की ओर गयी।

वहाँ भी हलचल है। वहाँ भी बेचैनी है। लेकिन कैसी?

लेकिन उन दोनो मे न स्वीकार है, न अस्वीकार। सिर्फ एक सन्देह है, यह सन्देह साधार है कि इस निष्क्रियता मे एक अलगाव है—एक भीतरी अलगाव है। अलगाव मे विरोध है, विरोध म आलोचना है, आलोचना मे करुणा है। आलोचना पूर्णत स्वीकारणीय है, क्योकि उसका सकेत कर्तव्य-कर्म की ओर है, जिसे इस पुरुष ने कभी पूरा नही किया। वह पूरा नहीं कर सकता।

कर्तव्य-कर्म को पूरा करना केवल उसके सकल्प द्वारा ही नही हो सकता। उसके लिए और भी कुछ चाहिए। फिर भी, वह पुरुष मन-ही-मन यह वचन देता है, यह प्रतिज्ञा करता है कि कल जरूर वह कुछ न कुछ करेगा, विजयी होकर लौटेगा।

पुरुष म भी आवेश नही है। वह भी ठण्डा है, सिर्फ गरमी लाने की कोशिश कर रहा है।

वह उसकी बाँहो म थी। निश्चेष्ट शरीर। फिर भी, उसमे एक ऊष्मा है, जो मानो सौ नेत्रो से अपन पुरुष को देख रही हो, निर्णय प्रदान करने के लिए प्रमाण एकत्र कर रही हो। फिर भी निश्चेष्ट और सक्रिय।

पुरुष संवेदनाओ के जाल मे खो गया। उसे स्त्री के होठ गुलाब की सूखी पखुड़ियों-से लगे, जिनसे उसे सूरज की गरमी की याद आयी। उसके कपोल मिट्टी-से थे—भुसभुसी, नमकीन, शुष्क मृत्तिका। उसका हृदय एक अनजानी गूढ करुणा की सूचना से भर उठा।'' हाँ, उसके पेट, उसकी त्वचा मे तो घरेलू बास थी। उसने उसे अपनी बाँहो मे भर लिया और वह, मन-ही मन, उस पूरी गरम चिलकती हुई पृथ्वी को याद करने लगा जिस पर वह बेसहारा मारा-मारा फिरता है। क्या यह पृथ्वी उतनी ही दु खी रही है जितना कि वह स्वय है !

एक ऊर्जा उठी और गिर गयी। पुरुष निश्चेष्ट पडा रहा। पर मन जाग्रत् था।

'''दोनो स्त्री-पुरुष के जीवन पर विराम का पूर्ण चिह्न लग गया है, काठ हो गये हैं। बाढ आती है। किनारे पर पडे हुए काठो को बहाकर ले जाती है। जल-विप्लव है। काठ बहते जाते हैं, फिर भी वे प्राणहीन काठ, आपस मे गुँथे हुए बहे जा रहे हैं।

बादल-तूफान के कारण, पेड तिरछे हो रहे हैं। पर वे गुँथे-बँधे बहे जा रहे हैं, बहे जा रहे हैं ' और, हाँ, गुँथे-बँधे काठ खाली नही है। उनपर एक बालिका बैठी हुई है। हाँ, वह सरोज है। अपने नन्हे दो हाथ उसने दोनो काठो पर टेक दिये हैं, जिनके सहारे वह स्वय चली जा रही है।

सरोज की उस बाल मूर्ति की रक्षा करनी ही होगी। उन दो निष्प्राण काठ-लट्ठो का यही कर्तव्य है।

पुरुष इस स्वप्न को देखता ही रहता है। बारह का गजर होता है। रात और आगे बढती है। सप्तर्षि जो अब तक एक कोने मे थे, सामने आकर साफ दिखायी देते हैं।

[कल्पना, अप्रैल 1963 मे प्रकाशित]

विद्रूप

सभ्यता के पूर्वकाल मे मनुष्य जाति क़बीलों मे रहा करती और सुबह से शाम तक खाद्य के एकत्रीकरण मे जुटी रहती। फल तोडना, फल बीनना, शिकार करना, थककर सो जाना, और फिर दूसरे दिन—वही, वही।

मर्वेंट भी यही करता है, लेकिन क़बीले के भीतर रहकर नही, क्योकि आधुनिक सभ्यता मे क़बीलो का लोप हो चुका है। वह अकेला रहता है अकेला डोलता है [illegible]

[illegible]

भीड मे भी अगर मर्वेंट अकेला रहे तो इसमें उसका कोई दोष नही था। वह

समझता था कि उसकी स्थिति दयनीय है, इसलिए और भी अकेला महसूस करता। हमदर्दी मिलना आसान था, सहायता मिलना लगभग असम्भव था। हमदर्द वही थे और हो सकते थे जो उसके जैसे लाचार हों। वे क्या सहायता देते? स्वयं की लाचारी की भावना, उस व्यक्ति को मन-ही-मन और अकेला बना देती है।

इसका एक छोटा-सा कारण और भी था, और वह यह कि सर्वटे यद्यपि दिखने में, बात में, चाल-ढाल में, दयनीय था, फिर भी अपने को दयनीय नहीं समझता था। और समझता भी था तो वह आत्मगौरव कई बार खो चुका था। वह जिसे आत्मगौरव समझता है यदि उसकी वह रक्षा करता, तो अपने परिवार का पालन-पोषण उसके लिए असम्भव हो जाता। वह कई बार अपने को वेश्या कह चुका है।

सर्वटे अपने आपको दया का पात्र इसलिए नहीं समझता कि वह जिस व्यक्ति से यदा-कदा सहायता प्राप्त करता था, उस व्यक्ति से वह आप-ही-आप घृणा करने लगता। सहायता देनेवाले व्यक्ति से सर्वटे अपने को (जो सहायता प्राप्त कर रहा है) बहुत ऊँचा समझता। उसका खयाल था कि जो उसे सहायता दे रहा है, वह उसकी स्थिति पर दया करके। अपनी मजबूरियों के बोध के कारण, उसे सहायता तो लेनी ही पड़ती। किन्तु सहायक उसके हृदय से दूर, दूर, बहुत दूर, हट जाता। उसे लगता कि वह सहायक से घृणा कर रहा है, यद्यपि लेते समय वह सहायक को ईश्वर का अवतार ही समझता। किन्तु पीठ फिरते ही, सर्वटे के हृदय में जहर उबलने लगता, धुआँ निकलने लगता। और तब वह पाता कि वह सचमुच बेसहारा है, अकेला है, भयानक अकेला। क्योंकि मानवोचित जिन्दगी बसर करके वह मनुष्य भी नहीं बन सकता। वह निरा पशु है।

इस प्रकार सर्वटे कभी अपने आपको पशु, कभी बन्दर, कभी रीछ, कभी सिर्फ कुत्ता अनुभव करते हुए, पुराने असभ्य वर्बर आदिवासी की भाँति दिन के भोजन की तलाश में निकल पड़ता। दिन-भर की अवारथ आधी पेट मेहनत के पसीने से वह क्रुद्ध हो जाता, चीख उठता (और बड़बड़ाता कि आत्महत्या कर ली जाये। आत्महत्या की भावना तुरन्त ही शारीरिक प्रतिशोध की भावना में बदल जाती) किन्तु, सर्वटे अपने आपको चाहे जितना वर्बर मान ले, वह वर्बर समाज का अंग नहीं था।

इसीलिए, रास्ता काटकर, कन्नी काटकर, निकल जाने की उसकी आदत थी। मुझे अगर दूर से उसने आते देखा, तो वह तुरन्त ही दूसरी गली से निकल जायेगा। इसका कारण सिर्फ इतना ही था, वह यह सोचता था कि उस पर, जिस समाज में मैं घूमता हूँ उस समाज का नियम-विधान लागू हो जायेगा। उस समाज के मान-दण्ड लागू हो जायेंगे इत्यादि-इत्यादि। और, वह ठीक इन्हीं चमकदार नियमों और भड़कीले विधानों से डरता, चिढ़ता और लड़ता था।

मिस्टर सर्वटे मेरे तईं एक अत्यन्त साधारण और साधारणता की इस आत्यन्तिकता में असामान्य मनुष्य था। हाँ, मैं उसे मनुष्य ही कहूँगा, उसकी सारी घृणा के बाद।

रात का वक्त। मैं शहर के बँगले में हूँ जो असल में बाहर भी है, और शहर के अन्दर भी। मेरे दोमंज़िले मकान के पीछे ही, रेल की पटरियाँ चली गयी हैं। इस मुहल्ले में शाम के सात बजे ही शान्ति छा जाती है। रास्ते पर आवा-जाही लगभग

बन्द हो जाती है और खम्भो पर बिजली के बल्ब अकेले टिमटिमाने लगते हैं।

दूसरी मंजिल की गैलरीवाली खिडकी के पास, अपने कमरे मे मैं अकेला बैठा हूँ और सुबह को पूरा न पढे अखबार म दिल जमाने की कोशिश कर रहा हूँ। किन्तु साथ ही मेरा ध्यान कोने के गोल छोटे टेबिल पर रखे हुए टिफिन के पीतली डब्बे पर भी है, जिस पर बिजली के प्रकाश के कारण एक चमक-सी आ गयी है। मुझे यहाँ से डब्बा अच्छा लग रहा है, और सोचता हूँ, ठण्डा होने के पहले ही भोजन कर लूँ।

किन्तु, इतने मे मेरा ध्यान शेख अब्दुल्ला से पत्रकारो की भेंट पर जाता है, और उसके वक्तव्य को पूरा का पूरा पी जाने की इच्छा होती है। मुझे लगता है कि राजनीतिक मत उसके चाहे जो भी हो, किन्तु उस पर गुजरी है इसलिए उसकी बौखलाहट अच्छी लगती है। साथ ही, उसकी सूरत भी मुझे पसन्द है जो यहाँ की स्टेट कांग्रेस के एक प्रभावशाली नेता से मिलती-जुलती है।

खट, खट, खट, साँकल खटखटाने की एक डरती-सी आवाज़!

शायद, पडोस मे कहीं साँकल खटखटायी गयी है। शेख अब्दुल्ला की सूरत की तरफ मैं ध्यान से देखता हूँ। शेरे-कश्मीर की तकदीर खराब है, (मैंने सोचा) नही तो बहकने की इतनी जरूरत क्या थी। अजी, देखिए न, जब पी एस पी वाले कांग्रेस मे ·

खट, खट, खट। फिर से साँकल की डरी हुई, किन्तु शायद कुछ ज्यादा ज़ोर की आवाज़।

मैंने कान खडे किये। हाँ, शायद कोई मेरी तरफ है। लेकिन, फिर भी कौन आयेगा! पडोस मे साँकल बज रही है। लेकिन वे उल्लू हैं। अजी, उनके यहाँ ऐसा ही होता है। कोई किसी की नही सुनता। तो, हाँ, अब शेख अब्दुल्ला क्या करेगा! असल मे, अब उसे कश्मीर का पैदल दौरा करना चाहिए, ढिंढोरा न पीटते हुए, लेकिन इससे भी पहले वह भारत मे कश्मीर के विलय का समर्थन करते हुए एक वक्तव्य ज़रूर दे दे। लेकिन यह क्या, इस समाचार मे तो यह भी लिखा है कि शेख अब्दुल्ला गौहाटी कांग्रेस मे···

खट-खट-खट-खट-खट ··

अपने दरवाजे की साँकल पर कुछ नाराज़ होता हुआ मैं अपनी जगह से उठा तो देखता क्या हूँ कि पेट मे भूख के नश्तर भी चुभ-से रहे हैं। नश्तर एक नही, कई हैं, और लगता है कि वे आँतो मे कई जगह चुभ रहे हैं। शायद होटल का लडका टिफिन का डब्बा वापस लेने आया है। मैंने तो उसे कह दिया था कि वह उसे सुबह वापस ले जाये। पैसे मैं काहे के देता हूँ!

अन्दर से ऊपर की चटखनी खोलते हुए मुझे लगा कि दरवाज़े के बाहर बिलकुल शून्य है। मैंने किवाड खोलते ही पाया कि वहाँ सचमुच कोई नही था, केवल काला अँधेरा जो अन्दर के प्रकाश से फट गया था। कोई तो नही है! कहीं चोर तो नही है! मैंने जीने के नीचे झाँककर देखा—कोई खडा था। हलका-सा भय!

इसके पहले कि मैं कुछ कहूँ, या डर के मारे चिल्लाऊँ, एक आकृति जीना चढने लगी।

दिल मे एक भुतही थरथरी छा गयी। और मैं दो कदम पीछे हट गया। और फिर धैर्य से अपनी कुरसी की तरफ कदम बढाता हुआ कहने लगा, "मालती यहाँ

नहीं है वह एक महीने से लखनऊ है। यहाँ कोई नहीं है।

लेकिन पहले की भाँति कुरसी पर बैठने के पहले ही मुझे लगा कि वह भीतर आ रही है।

वह एक स्त्री की दुबली पीली चम्पई छाया थी जिसने आधुनिक तर्ज की हलकी पीली साड़ी पहन रखी थी। वह एक क्षण भर यह सोचकर खड़ी रही कि मैं उसे बैठने के लिए कुरसी या कोई और आसन दूंगा। लेकिन यह देख कि मैं कुरसी पर बैठ गया हूँ उसने अगल बगल देखते हुए एक कुरसी खींची और कुरसी की सीट के किनारे पर हलके से धीरे से बैठ गयी।

अब मैं एक बात कह दू कि स्त्रियों को चोरी-चोरी देखने की मेरी आदत है। सामने देखते ही मेरे होशोहवास गुम हो जाते हैं इसलिए मैं चट से किसी दूसरी ओर देखने लगता हूँ। किन्तु अब तो उसकी ओर देखना आवश्यक ही था।

उसकी पीली सूरत को एक बार मुह भर देखा कि सामने छोटी गोल टेबिल पर रखे टिफिन के डब्बे की पीतली पीली चमक मुझे दिखायी दी। लेकिन अब के पेट में नश्तर नहीं चुभे। क्षण भर के अथाह गहन तनाव भरे साँवले मौन के बाद मैंने सप्रश्न दृष्टि से उसकी ओर फिर देखा।

उसने नज़र नीची करके फिर बगल में देखते हुए कहा आपने मुझे पहचाना नहीं ! मैं प्रमिला हूँ।

प्रमिला कौन प्रमिला ? कौन हूँ हूँ !

मेरे मस्तक में ये नीरव शब्द गडगडाने लगे। उसने एक गहरी उसाँस भरकर गोद में हथेली के ऊपर हथेली रखकर कहा अच्छा जाने दीजिए। मालतीजी कब आयेंगी ?

लेकिन उसके सवाल पर मेरा ध्यान नहीं गया। जैसे मैदान के घनघोर अँधेरे में किसी दूर टूटे फूटे मन्दिर से किसी आरती की घण्टा ध्वनि घूमती फिरे वैसे कोई हलकी-सी याद बजी गूँजी और मिटी और मैं पहचान नहीं पाया कि वह घण्टा ध्वनि किस ओर से किस मन्दिर से आ रही है।

प्रमिला ने एकाएक कहा या मुझे यह आकस्मिक प्रतीत हुआ कौन जाने ! मैंने यह सुना मैं सवटे की बहू हूँ।

एक सपाटे-बन्द खंजर जैसे मेरे दिल में चुभ गया हो। एक साथ कई भाव उठे और मिटे। सन्देह क्रोध नाराज़गी मिठास और विद्रूप की भावना आपस में टकराने लगी। शायद प्रमिला ने देखा होगा कि मेरे चेहरे पर कई छाहें गुज़र रही

नो थैंक्स !'

अरे तुम तो अँगरेज़ी बोलती हो ! मेरे मुह से निकल गया।

प्रमिला कुछ नहीं बोली। वह वहाँ बैठी ही रही। मैंने सोचा वह एक या दो

मिनिट मे चली जायेगी या उसे चले जाना चाहिए। इसलिए मैं टेबिल पर खाना जमाने के गुन्ताडे मे लगा।

"अभी भी तुमको घर मे लल्लू ही कहते है क्या ?"

न मालूम किस मूड मे मैं था। मैंने छूटते ही कहा, "लल्लू तो घरवाले अब नही कहते, लेकिन मैं उल्लू कहता हूँ अपने को। अगर ऐसा न होता तो मैं तुम्हे कमरे मे घुसने ही न देता।"

उसने आँख गडाकर मेरे चेहरे के प्रदेश म भाव ढूँढना चाहे। स्पष्ट ही, उस पर एक झीक और झखमार पुती हुई दिखायी दी।

प्रमिला ने सिर्फ इतना कहा, "आपके पडोस मे दोपहर से मेरी माँ आयी हुई हैं, लेकिन वहाँ बूढी काकी के सिवा और कोई नही है। वह बीमार भी हैं। मैं उनके बिस्तर के पास देर तक बैठी रही, किन्तु आग मेरा मन नही लगा। इसलिए मालतीजी की तलाश मे यहाँ चली आयी! अब चलूँ!"

मैं अपने मुँह मे कौर के ऊपर कौर डालता जा रहा था। लेकिन मेरा ध्यान प्रमिला की तरफ़ भी था। मेरे यहाँ इतनी रात उसके आने के कारण की व्याख्या मैं असन्तोषजनक समझता हूँ, लेकिन उस समय असन्तोषजनकता का भान नही हुआ। वह बिलकुल सन्तोषजनक लगा, क्योकि उस समय तक मैंने प्रमिला पर विश्वास करना शुरू कर दिया था। मैंने पुराने घरौवे के भाव से कहा, "मैं जब तक खाना खा रहा हूँ, तब तक बैठो।"

वह एक क्षण भर उसी कुरसी पर बैठी रही। फिर धीरे से टेबिल के पास कुरसी सरका ली, क्योकि उस टेबिल पर मैं खाना खा रहा था।

यह मैं कैसे कहूँ कि उसकी तबीयत हुई थी कि वह स्वय परोसे। लेकिन, सकोचवश, मैंने उसे वैसा करने नही दिया। अब चूँकि उसकी कुरसी पास ही थी, इसलिए उसके चेहरे के अध्ययन का भी अवसर मिल गया। -

प्रमिला ने धीरे से सकोच से कहा, "पन्द्रह साल के पहले की बात है। मैंने तुम्हे खूब पीटा था। याद है ?"

"प्रमिला, तुम तो सिनेमा-जैसी बात कर रही हो। यह तो बताओ कि तुम क्यो आयी, सर्वेंट क्यो नही आया ?"

प्रमिला ने एक गोली दाग दी चुपचाप। उसकी कोई आवाज नही हुई। मैं जानता था कि सर्वेंट नही आयेगा। प्रमिला का मौन, उसकी अचकचायी हुई शारीरिक हरकत, उसके चेहरे का कठोर भाव ही वह बन्दूक की गोली थी।

उसने कहा, "मैंने इनस कहा था आने को।"

"लेकिन, वह यहाँ आने को डरता क्यो है ?"

वह हँस पडी। और तब मैं चौकन्ना हुआ। उसन कहा, "जब तक आपका कमरा हमारा कुट्ठर नही हो जाता, कपडो से भी आप मुहताज नही हो जाते, तब तक आपके मित्र यहाँ नही आयेंगे।" प्रमिला के हृदय म विरक्ति का भाव था।

मैंन कहा, "क्यों, मुझ पर इतनी मेहरबानी क्यो है ?"

"आप पर मेहरबानी का सवाल नही है। वह सारी दुनिया पर मेहरबानी है।" प्रमिला ने मुँह पर एक विनम्र घनिष्ठता का भाव लाते हुए कहा, "उन्हें किसी व्यक्ति से कोई लेना-देना नही है। न किसी के लिए उनके मन मे कोई दुर्भाव

है। लेकिन, सच, उनकी एक फिलॉसफी है। फिलॉसफी अजीब जरूर है। उन्होंने इस फिलॉसफी की घुट्टी मुझे भी पिला दी है। अच्छी तरह। मैं उस फिलॉसफी की कायल तो नहीं हूँ, लेकिन वह उपयोगी बहुत है।"

अब प्रमिला और सर्वटे दोनो मे मेरी दिलचस्पी ज्यादा बढने लगती है। मैं हाथ-मुंह धोकर स्टोव के पास जाकर चाय बनाने लगता हूँ। चूंकि स्टोव रसोई-घर में है, इसलिए वहाँ प्रमिला नहीं आती। प्रमिला सिर्फ वहीं से बैठे-बैठे कहती है, "अरे, आपने चाय बनाना क्यो शुरू किया ?"

मैंने जवाब दिया, "अरे, आप महाराष्ट्रीयन्स हैं—चाय बहुत पीते हैं। और क्या खातिरदारी करूँ ?"

चाय लेकर मैं ज्यो ही प्रमिला के पास जाता हूँ, देखता क्या हूँ कि वह अखबार लेकर कुछ पढना चाह रही है।

मैंने पूछा, "बताइए, वह कौन-सी फिलॉसफी है ?"

प्रमिला हँस पडी। उसने कहा, "फिलॉसफी-विलॉसफी कुछ नही। सिर्फ कुछ नियम, कुछ कानून और कुछ दण्ड-विधान, बस।"

"तो भी ?"

"उनका पहला कानून यह है कि मनुष्य को सिर्फ एक ही बार खाना खाना चाहिए। दोबारा नही। इतनी कमाई नहीं है। जब कमाई नहीं है तो खाना क्यों खाया जाये, और वह भी दोबारा ? मेरे लडके को भी उन्होने घर से बाहर निकाल दिया, इसलिए कि वह एक बार शाम को दूध पी गया था। छोटी लडकी ने जब एक बार ज्यादा जिद की तो उन्होंने उसे उलटा टाँगकर मारा। वे अपने को भी खूब दण्ड दे लेते हैं। एक बार उन्होने गलती से शाम को एक पार्टी मे कुछ खा लिया। उन्हें मालूम था कि घर में शाम को कोई नही खाता। वे दो दिन तक लगातार भूखे रहे और काम करते रहे। वे अपनी एक शर्ट चार दिन चलाते हैं, भले ही वह कितनी मैली क्यो न हो जाये। उनका नियम है कि सबके कपडो में हर हफ्ते सिर्फ दो आने का साबुन लगना चाहिए। इससे ज्यादा नही। उनके कपडो को देख चाहे लोग हँसें या गाली दें, उनको इसे परवाह नही। फिर भी वे उनकी परवाह करते जरूर हैं, क्योकि इसीलिए वे उनका मुँह भी नही देखना चाहते और उनकी छाया से भी भागते है। शायद इसीलिए वे आपसे भी भाग रहे है।"

प्रमिला ने मेरी तरफ सार्थक दृष्टि से देखा। मैंने पूछा, "क्या सर्वटे बहुत गरीब खानदान से आया है ?"

उसने कहा, "नही, मेरे पिताजी अच्छे वकील थे, उनका घर तो हमसे भी अच्छा खाता-पीता था।"

मैंने उत्सुक होकर पूछा, 'फिर सर्वटे की इतनी बुरी दशा क्यो ?"

प्रमिला के चेहरे पर दुख और ग्लानि के साथ एक बात और झलक गयी। उसका चेहरा लाल हो गया। मानो एक झेंप की आग छा गयी हो। उसने सिर्फ इतना ही कहा, "इसका कारण सिर्फ मैं ही हूँ।"

कारण समझने मे मुझे देर न लगी। मैंने सिर्फ इतना ही कहा, "तो पिताजी ने दण्ड-विधान लागू किया ?"

प्रमिला कुछ न बोली और कुछ क्षणो तक मौन छाया रहा। और विचार व भाव तैरते रहे। फिर उसी ने शून्य भग करके कहा, "अगर वे ग़रीब परिवार से

आते तो उनके मन मे इतने कॉम्पलेक्सेज न रहते। वे जिस श्रेणी से आये हैं, उस श्रेणी से गिरे हुए है, इसीलिए उससे नफरत है, और इसी की उन्होने एक फिलॉसफी बना रखी है। वह फिलॉसफी वे मुझ पर भी सक्रिय रूप से लागू करते हैं और अपने ऊपर भी। देखिए न, उन्होने आपके यहा आने से मुझ बार-बार मना किया था, कहा था कि मेरा अपमान होगा। आखिर, मैंने जिद ही पकड ली। तो उन्होंने कहा कि अब आधुनिक काल मे सुदामा की औरत श्रीकृष्ण के यहाँ जायेगी, सुदामा नही। यह मैं तुम्हे शाप देता हूँ। इन्होने मुझे बहुत-से शाप दिये हैं—बहुत-से, बहुत-से।"

यह कहकर प्रमिला रोने लगी। उसके आँसू नही थमे। अनवरत बहते रहे।

वह एक अजीब दृश्य था। रात का सन्नाटा। एक मामूली सी परिचित स्त्री आपके एकान्त मे, फिर भी अकेले, रो रही है। और आप उसकी कोई सहायता नही कर सकते। उसको दिलासा भी नहीं दे सकते। उसकी पीठ पर हाथ भी नही फेर सकते। उसे छू भी नही सकते। वह दूसरे की स्त्री है। मेरे मित्र की स्त्री, इसी-

. . . .

व्यक्ति तुम्हारा तिरस्कार करेगा।' यह कहते-कहते वे ज़ोर से हँस पडे। लेकिन मुझे बहुत बुरा लगा। मैं उनका घर चलाने की बहुत फिक्र करती हूँ। दाल मे इतना पानी डाल देती हूँ कि वह दो बेर के बजाय तीन बेर चले। उनके नियम को मैं बिलकुल भी नही तोडती। मैं उनसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। उनके साथ हर हालत मे खुश हूँ। लेकिन उनसे मुझे डर लगता है। वे चाहे जो कर सकते हैं। इसका कारण उनकी फिलॉसफी है। उनके कोई दोस्त नही है। दिल उन्होने कठोर बना रखा है, जो कि वस्तुत कठोर है नही। वह बिलकुल मुलायम है। इसीलिए मुझे उनसे डर लगता है—क्योंकि वह कठोरता भावना का कठोर पत्थर है। वह चाहे जिसको लग सकता है, सबसे ज्यादा उनको खुद को।"

यह कहते-कहते प्रमिला की आँखें छलछला उठी।

[सम्भवत किसी लम्बी कहानी का अश। सम्भावित रचनाकाल 1963-64]

सतह से उठता आदमी

अजीब घर है जिसके पिछले छज्जे मे बैठकर लगता है, चारो ओर सटे हुए मकानो की दीवारें, छतें, जीने, खिडकियाँ सिर्फ ज्यामितिक आकृतियाँ बना रही हैं।

कन्हैया धूल से भरी टेबिल के पास कुरसी पर बैठा हुआ एक रद्दी कागज पर

उन सटे हुए मकानों की ज्यामितिक आकृतियाँ बनाता जा रहा है।

खूब धूप खिली हुई है, जिससे वे मकान नहाये हुए-से हैं, और उनके कत्थई, सफेद, राख-जैसे, काले साँवले रंग उभरकर निखर उठे हैं। कन्हैया को लगा कि हाँ, इन मकानों की आकृतियों में पलनेवाला आदमी अरूप चित्रकार होगा, नहीं तो क्या।

इतने में एक पीले दुबले लम्बे चेहरेवाली लड़की चाय ले आती है। चाय से भाप उठ रही है। ऐसे सुनहले समय ऐसी बढ़िया चाय!

वह प्रसन्न हो जाता है। लड़की का जम्पर फटा हुआ है, और फ्रॉक भी। लेकिन, कन्हैया को उससे कुछ महसूस नहीं होता। क्योंकि वह जानता है कि यद्यपि यह एक प्राइमरी टीचर का घर है, फिर भी उसका यह अपना मकान है, पास के गाँव में सड़क से लगकर उसके खेत हैं, और घर में छह महीने का गेहूँ, चावल, दाल और गुड़ भरा हुआ है। हाँ, यह जरूर है कि ये लोग कीमती शहराती कपड़े नहीं पहनते, या कम पहनते हैं। लेकिन, उनका भोजन अच्छा और रुचिकर होता है।

उसका अपना खयाल है कि कुछ रोज में वह मास्टर साहब के पास पाँच सौ रुपये उधार लेने का प्रस्ताव भी रखेगा (क्योंकि आखिर ये लोग ब्याज-बट्टा भी तो करते हैं)।

चाय पीने के बाद कन्हैया ने अपनी कीमती पैण्ट पर टैरीलिन की बुश्शर्ट चढ़ायी, जल्दी-जल्दी कंघी की। तेज उतारवाले जीने पर सँभलकर पैर जमाते हुए नीचे के आँगन में पहुँचा जो बहुत गीला था, क्योंकि वहाँ बरतन मले जाते और वहीं नहाया जाता था। एक पुराने ढंग के ठिगने दरवाजे को पार कर वह तंग गली में घुसा। यह गली मकानों की पीठों को देखती हुई बढ़ रही थी। वह किसी दूसरी गली से जाकर मिली—एक टूटी-फूटी सड़क से, जिसकी छाती पर की गिट्टी उखड़ रही थी।

कन्हैया खुश था। खब धूप छायी थी। नौ का वक्त था। वह लम्बे डग बढ़ाता हुआ आगे बढ़ने लगा।

लगभग चार फर्लांग पर, पूरब की ओर, उसे एक बँगलानुमा घर मिला। वह खड़ा हुआ और पुकारने लगा, "कृष्णस्वरूप साहब, कृष्णस्वरूप!"

बहुत पुकारने के बाद, पैण्ट पहने हुए बड़े पेटवाला एक आदमी दरवाजे पर दिखायी दिया। उसके हाथ में फूलों का एक गुलदस्ता था। और पास में पन्द्रह साल की लड़की। दोनों कोई बातचीत करते हुए दरवाजा खोलने आये थे।

कन्हैया ने उन्हें नहीं पहचाना। उसने सड़क पर से ही कहना चाहा, मैं कृष्णस्वरूप साहब से मिलना चाहता हूँ। लेकिन, वह उस लड़की की ओर ही देखता रहा। वह लड़की खूबसूरत नहीं थी। उसके लाल टमाटर जैसे गाल बुरे लगते थे। बाल उलझे हुए और अस्त-व्यस्त थे। वह पंजाबी ढंग की पोशाक किये हुए थी, लेकिन वह उसे सजती नहीं थी।

क्षण-भर लगा कि यह कृष्णस्वरूप का घर नहीं हो सकता, ये लोग कोई और हैं। कि इतने में एक जोरदार हँसी के साथ आवाज फूट पड़ी, "ओफ्फो, तुम कब आये? भई, वाह!"

तब कन्हैया को लगा कि वह कृष्णस्वरूप ही है। वह मारे खुशी के आगे बढ़ा

और दोनों दोस्त चमकती हुई आँखें एक दूसरे पर गडा-गडाकर देखने लगे। और एक दूसरे के बगल मे पहुँच गये।

कन्हैयालाल के चेहरे पर खुशी आयी हुई थी। बढिया चाय और नाश्ता कर चुकन के बाद, उसका बदन हलका-सा हो गया था। उसे इस कमरे का वातावरण बहुत अच्छा मालूम हुआ। दीवारें नीली थी, खिडकियो पर नीले परदे लगे हुए थे। एक छोटे-मे खुशनुमा स्टूल पर रेडियो रखा हुआ था और रेडियो पर भी परदा था। एक ओर नीले रग का उपा फैन रखा हुआ था। खिडकियो और दरवाजो से, बावजूद परदो के, धूप आ रही थी। वह स्वय गद्देदार बढिया कोच पर बैठा था और सामने एक छोटी टेबिल रखी हुई, जिस पर एक सुन्दर ऐशट्रे थी, और वह सिगरेट पीता हुआ वहाँ बैठा था।

कन्हैया जहाँ बैठा था वहाँ से ठीक सामने के दरवाजे मे से आँगन का एक हिस्सा दिखता था। हाँ, यह सही है कि दायें ओर के बाजू से जो आँगन का हिस्सा दीखता है, उसमे एक टूटी हुई खाट पडी है, और एक पुरानी अलमारी भी है जिसकी लकडियाँ सडकर झूल गयी है। साथ ही, एक पुरानी सिगडी जग लगी हुई पडी है। एक अजीब अस्त-व्यस्तता और टूटे-फूटेपन का भान वहाँ हो रहा है।

कन्हैया को लगता है कि पिछली जिन्दगी का वह हिस्सा है, उस पिछली जिन्दगी का, जब कृष्णस्वरूप बिलकुल गरीब था। वह अस्त-व्यस्त दृश्य उस पुरानी ग़रीबी और पिछडेपन का ही तो प्रतीक है! पुराने और सामने दीखनेवाले इस नये का योग कन्हैया को भला मालूम हुआ।

कृष्णस्वरूप काम से ज़रा बाहर चला गया था। कन्हैया उस नीले एकान्त म सपनों में खो गया। लगभग बीस साल पहले कृष्णस्वरूप की कैसी दुर्दशा थी! कन्हैया ने उसे एक बार पाँच रुपये उधार दिये थे, जिन्हे कृष्णस्वरूप ने कभी वापस नही किया। आज उसी कृष्णस्वरूप के घर मे सोफा-सेट है, उपा फैन है, रेडियो है। भई वाह! उन दिनो कृष्णस्वरूप रोज गीता पढता था। और, आत्म-नियन्त्रण के अनेक उपाय किया करता था।

घर मे उसके झगडा रहता था। बीवी उसस चिढती थी। इससे अनबन, उससे बेबनाव, हरेक अपन दुख का कारण दूसरे मे ढूँढता था। और, कृष्णस्वरूप कहता था कि हरेक का अपना व्यक्तिगत इतिहास है, और हरेक के व्यवहार का अपना-अपना औचित्य है। हर आदमी एक दूसरे की परिस्थिति है, एक दूसरे का परिवेश है। हरेक आदमी फासलो म खोया रहता है। कौन गलत है, कौन सही—इसका निर्णय नही हो सकता। यानी ऐसे निर्णय मे बौद्धिक कल्पना की आवश्यकता होती है।

यह वही कृष्णस्वरूप जो कहता था कि त्याग और आत्मदमन ही जीने का एकमात्र उपाय है। क्यो? इसलिए कि 'पैर उतन ही पसारो, जितनी चादर है'—यह सिद्धान्त था उसका। सिद्धान्त अपनी जगह सही था। लेकिन इसके औचित्य के लिए वह फिलॉसफी लाता था। वह कहा करता था, 'चाहिए, चाहिए, चाहिए' ने सभ्यता को विकृत कर डाला है, मनुष्य-सम्बन्ध विकृत कर दिये हैं। तृष्णा बुरी चीज है। हमारा जीवन कुरुक्षेत्र है। वह धर्मक्षेत्र है। हर एक को योद्धा होना चाहिए। आसक्ति बुरी चीज है।

लेकिन, कभी-कभी कृष्णस्वरूप अपन आध्यात्मिक उच्चता-भाव को छोड़कर

नीचे आ जाता। वह कन्हैया मे चुपचाप कहा करता कि उससे मनोनिग्रह नही हो पाता। होटल मे चाय पीता है, और अपनी बीवी की आँख चुराकर, किसी कोने में छिपाकर रखे पैसे झटक लेता है। यह बुरी चीज है। लकिन, वह क्या करे ! केवल ज्ञान काम मे नही आता। उन दिनो कृष्णस्वरूप कन्हैया को यह कहा करता :

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्ति
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि ॥

हाँ, उन दिनो कृष्णस्वरूप यह भी कहता था कि उसके स्वप्न मे शकराचार्य, महात्मा गाँधी और जवाहरलाल भी आते हैं। कृष्णस्वरूप सचमुच कन्हैया को प्रभावित करता था। लेकिन, किस ढग से ?

हाँ, यही तो बात है, उसको फिलॉसफी की जरूरत थी, इसलिए कि उसका जीवन दुर्दशाग्रस्त था। अपने मन को मजबूत बनाने के लिए फिलॉसफी के पलस्तर की जरूरत थी। ऐसी फिलॉसफी कन्हैया को हमेशा अप्राकृतिक मालूम हुई।

क्यो मालूम हुई ? इसलिए कि कृष्णस्वरूप बडा ही हिसाबी आदमी था। खाने का तेल, सेर-भर, अगर नियत समय के पहले खर्च हो जाये तो वह बडी कडाई से पेश आता था। हर चीज घर म वह गिनकर और तौलकर रखता था। यहाँ तक कि अगर उसके किसी बालक ने घी ले लिया तो वह डाँट देता था। अचार की एक फाँक अगर किसी ने ज्यादा ले ली, तो वह भडकता था। अपने बच्चो का खाना उसकी आँखो म आ जाता था।

ऐसा था वह कृष्णस्वरूप ! लेकिन, आज ? वह खुशहाल तो है ही, खुशहाली से कुछ ज्यादा है। उसकी चाल-ढाल बदल गयी है। वह मोटा हो गया है। पेट निकल आया है। ढाई सौ रुपये का सूट पहनता है। सम्भवत उसके पास इस तरह के कई सूट होंगे।

इनकमटैक्स की नौकरी सचमुच बडी अच्छी होती है। काश, कन्हैया भी उसी ऑफिस मे काम करता !

इतने मे कृष्णस्वरूप बाजार स बहुत-सी चीजें लाकर सीधे रसोईघर मे घुस गया। वहाँ स्त्री से उसकी कुछ बक-झक सुनायी दी। वह वहाँ से फौरन लौट पडा। और ड्राइगरूम मे आकर कन्हैया स कहने लगा, "लीजिए, वह आपके सामने आती ही नही, उस अभी भी शर्म मालूम होती है।"

"तुम क्यो आधुनिक बनाने पर तुले हुए हो !"— यह कहना चाहता था कन्हैया, लेकिन, कहा नही। सिर्फ मुसकराकर रह गया।

इसके बाद कृष्णस्वरूप ने बडे उत्साह और उत्कण्ठा से कन्हैया को अपने पूरे मकान मे घुमाया। एक रसोईघर और आँगन छोडकर वे सब कमरो म घूम आये। कृष्णस्वरूप उत्साह से सब बताता गया। कन्हैया भद्र सज्जन की भाँति तारीफ करता रहा। और अन्त म वे ड्राइगरूम म चले आये। उससे लगे हुए एक कमरे मे रेफ्रीजरेटर था, और वार्डरोब था। ड्राइगरूम मे कोच पर बैठने ही जा रहा था कन्हैया, कि उसने कहा, 'नही, नही, यह कमरा भी देख लो !"

शालीनतावश, कन्हैया उठा और उस छोटे कमरे मे भी गया। वहाँ बिलकुल सफेद रेफ्रीजरेटर भी रखा था। और उसके पास ही वार्डरोब खडा था। वार्डरोब

सचमुच बहुत अच्छा था। कृष्णस्वरूप ने कहा कि उसने उसे सेकेण्डहैण्ड खरीदा है सिर्फ डेढ सौ मे, जब कि उसकी आज कीमत आठ-एक सौ रुपये है! यहाँ की रियासत की भूतपूर्व रानी ने जब अपन महल का फर्नीचर बेचा तब हमे किफायत से बहुत-सी चीजें मिल गयी। उसके काम भी तो बहुत-से किये थे। लेकिन उसके दीवान की कृपा से सस्ते मे सब चीजें पा गये।

कृष्णस्वरूप ने वार्डरोब खोलकर बतलाया। सचमुच उसके अन्दर कई ऊनी और सादे—लेकिन सब कीमती, कोट और टाई और पैण्ट लटक रहे थे। लेकिन उसमें उसकी बीवी की कोई साडी न थी।

कन्हैया वार्डरोब के भीतर के कपडे देखकर सचमुच प्रसन्न हो गया। एक जमाना था जब कृष्णस्वरूप फटेहाल घूमता था। सर्दी मे ठिठुरता था, सिर्फ जाँघिया पहने घर मे घूमता था, और फटी सतरजी ओढकर ठण्ड निकालता था। आज उसके पास पहनने का इतना सामान देखकर कन्हैया को सचमुच खुशी हुई। कम-से-कम उसने अपने बच्चो का तो भाग्य बनाया।

उसके उत्साह को देखकर कन्हैया ने कहा, "यार, एक रेडियोग्राम और खरीद लो। जरूरी है।"

कृष्णस्वरूप ने कहा, "नही यार, पहले मैं एक कार खरीदूँगा। सरकार ने ऐसा कुछ झमेला लगा रखा है कि नयी कार के लिए बडा इन्तजार करना पडता है!"

कन्हैया ने कृष्णस्वरूप की पीठ थपथपायी, और फिर वह ड्राइगरूम मे पहुँचा कि इतने मे एक घटना हो गयी।

एकदम बहुत कीमती और बढिया सूट पहने हुए एक भयानक आदमी ने ड्राइगरूम म प्रवेश किया। उसकी सूरत देखते ही कृष्णस्वरूप को काठ मार गया। वह ज्यो-का-त्यो बुतनुमा खडा हो गया। उसकी आँखें फटी-सी रह गयी और होठ कुछ बुदबुदाने-से लगे।

कन्हैया ने उस आदमी की शकल देखी और फिर वह कृष्णस्वरूप की हालत देखने लगा, किन्तु उसका अनुमान नही कर सका। उसने सोचा कृष्णस्वरूप का मूड बिगड गया है। बस, इतना ही।

लेकिन, ज्यो ही उस भयानक आदमी ने कन्हैया को देखा, वह उससे मारे खुशी के झूल गया, "अरे वाह, कब आये, हमे मालूम ही नही था! यार, दुबले हो गये!" कन्हैया को उसने बोलने ही नहीं दिया और खुशी का बेहद शोर करता चला गया। और फिर उसने कृष्णस्वरूप का हाथ पकड लिया और उसे भी जबर-दस्ती कोच पर बैठा दिया। और फिर वह खुद ही बात करता गया।

कन्हैया को इतना-भर लगा कि वह कृष्णस्वरूप का मजाक उडाता है। बीच-बीच मे कुछ ऐसी फबती कस देता है कि कृष्णस्वरूप गुमसुम हो जाता है। और लगातार बात करता जाता है।

हाँ, उसकी बात म मजा आता है। भाषा पर उसका प्रचण्ड अधिकार है। और ऐसा लगता है, जैसे दुनिया की हर चीज से उसका निजी सम्बन्ध हो। उसकी बात जायकेदार और मजेदार है। बात मे उसकी उद्दण्डता और तीखापन भी झलकता है। और एक बात साफ होती है कि उसके हृदय मे कृष्णस्वरूप के प्रति असम्मान के भाव हैं। लेकिन मजा यह है कि उसके आगे कृष्णस्वरूप की तूती बन्द

हो जाती है। वह हकलाने-सा लगता है। हाँ, एक बात साफ है, और वह यह कि वह कृष्णस्वरूप का गहरा दोस्त है, अगर ऐसा न होता तो कृष्णस्वरूप के अन्तर्मन की उसे इतनी ज्यादा जानकारी न होती। उसके सामने कृष्णस्वरूप दब्बू बनकर बैठा है। वह लगातार बोलता जा रहा है, बोलता जा रहा है!

इतने मे फिर चाय आयी, नाश्ता आया।

कृष्णस्वरूप ने गला साफ कर सिर्फ इतना कहा, "लीजिए, साहब, इनकी भाभी ने (कृष्णस्वरूप की स्त्री ने) इन्हे देखते ही नाश्ता भिजवा दिया।"

"जी हाँ, और तुम होते तो मुझे घर से बाहर निकलवा देते, अबे साले!" और वह हँस पडा।

कृष्णस्वरूप ने अब हिम्मत करके, और साथ ही आगन्तुक की खुशामद करके उसके विरोधी रुख को कम करने के लिए कहा, "भाई साहब, आज मैं जो कुछ हूँ, सिर्फ इनके कारण हूँ, सिर्फ इनके कारण!"

आगन्तुक ने कृष्णस्वरूप द्वारा अपनी प्रशसा को सम्भवत अपने लिए अपमानजनक समझा, या क्या, ईश्वर जाने! वह भभक उठा। उसने तेजी से कहा, "क्या बात करते हो, तुम मेरी कब से तारीफ करने लगे!"

इस घुडकी को सुनने के बावजूद, कृष्णस्वरूप ने गम्भीर भाव से कहा, "नही, मैं तुम्हारी खुशामद नही कर रहा हूँ। यह एक वाकया है। आज जो मैं इस हालत मे पहुँचा हूँ, इसका कारण तुम हो।"

कन्हैया बारी-बारी से इन दोनो को देखता जा रहा था। उसे कुछ समझ मे नही आ रहा था। एक बात साफ थी और वह यह कि इन दोनो के रिश्ते गैर-मामूली हैं। लेकिन क्या हैं, इसे समझना टेढी खीर थी।

आगन्तुक सचमुच हतप्रभ था। शायद उसे भी यह बात नयी मालूम हुई। वह घडी-भर चुप रहा और उसने गरदन-नीची कर ली। और कहा, "लीजिए, चाय ठण्डी हो रही है।"

एकाएक शान्ति छा गयी। शोरगुल खत्म हो गया। कन्हैया सिर्फ चाय पी रहा था। उसका ध्यान सिर्फ पीने मे था। कृष्णस्वरूप रामनारायण के बारे में—हाँ, उस भयानक आगन्तुक का नाम रामनारायण ही था—सोच रहा होगा। किन्तु, आगन्तुक क्या सोच रहा था?

एकदम बैठक बरखास्त हो गयी। आगन्तुक दरवाजे के सामने नजर आया। उसने बडे अदब से कन्हैया को सलाम किया और कहा, "जी हाँ! फिर मुलाकात होगी। आपसे तो जरूर! शाम को मिलूँगा।"

और, तब कन्हैया न देखा कि यद्यपि रामनारायण कीमती सूट पहने है, फिर भी वह मैला-कुचैला है, उस पर पान के दाग पडे है। शायद, वह उसे पहनकर ही सोया होगा। कोट के नीचे कुर्त्ते का कॉलर फटा हुआ है और कोट के नीचे की जेब में एक काग़ज बाहर निकला जा रहा है।

सचमुच वह भयानक लगता था! चेहरे पर कम-से-कम दो महीने की घनी लम्बी दाढी बढी हुई थी। किसी बैरागी की दाढी की भाँति ही वह थी। एक आँख इतनी लाल थी, मानो उसमें खून आकर जम गया हो। लेकिन आँखें बडी-बडी थी। चेहरा बडा था, और माथा भी। लेकिन सिर पर बाल कम थे—जो थे, बिखरे हुए थे और काले थे। और सिर के बीचोबीच साँवली चाँद थी। और उस

चाँद के बीचोंबीच, खजूर की भाँति लम्बा गोल, एक बडा मसा था, जो किसी छोटे-से स्तूप की भाँति दिखायी देता था। सारे चेहरे पर एक भयानक अनगढपन, एक विचित्र विद्रूपता थी। और ऐसा लगता था कि शायद कोई इसके साथ घूमना पसन्द न करता होगा, क्योंकि विस्मय और कौतूहल के अतिरिक्त एक विद्रूप जिज्ञासा का वह विषय बन जाता होगा। उस आदमी के बारे मे कन्हैया की राय बहुत खराब हो गयी, यद्यपि उसने उसे प्रकट नही होने दिया।

जब वह मकान के बाहर सडक पर साइकिल से रफूचक्कर हो गया, तब कही कृष्णस्वरूप ने आराम की साँस ली। उसके मुँह से निकल पडा, "ही इज ए जीनियस, यस, जीनियस!"

कन्हैयालाल विस्मय से देखता रहा। वह कुछ नही बोला, चुप रहा, मन ही मन गुनता रहा।

ज्यो ही कन्हैया घर वापस आया, उसे ऐसा लगा जैसे वह किसी शून्य म आ पहुँचा है। उसे यहाँ नही आना चाहिए था। सभी कुछ दूर-दूर-सा लगने लगा उसे। क्यो न वह सिविल लाइन्स तक हो आये। जरा तफरीह रहेगी।

लेकिन यह खयाल उठते ही डूब गया। जो कमरा अब तक उसका इन्तजार कर रहा था, अब मानो उसका कोई मूल्य ही न रहा। फिर भी उसका मूल्य था, क्योकि उसमे एक खाट थी, जिस पर वह बैठ सकता था, लेट सकता था। कन्हैया ने उसे देखा, उस पर बिखरी पडी किताबें देखी। उन्हे जरा एक ओर करके वह टाँग पसारकर लेट गया। और रामनारायण के बारे म सोचन लगा, कृष्णस्वरूप के बारे मे सोचने लगा। कल्पना तेज हो गयी। उसे लगा कि रामनारायण मे अजीब रहस्य है, एक अजीब भुतहापन है, बावापन है। उसे देखकर श्मशान की याद आती है, श्मशान की राख नगी देह पर मलनेवाले तान्त्रिक योगियो की-सी झलक दिखायी देती है। लेकिन उसके सामने कृष्णस्वरूप क्यो इतना पीला पड जाता है, इतना थका-थका सा, ऊबा-सा, हतबुद्धि-सा घबराया-सा, क्यो दिखायी देता है? इन दोनो के बीच कोई रहस्य है। कोई गुप्त षड्यन्त्र है, जिसके ये दोनो साझीदार हैं। नही तो भला कृष्णस्वरूप क्यो कहता कि रामनारायण के कारण उसे बरक्कत हुई है। सम्भव है, किसी अनुचित और गलत किस्म के मामले मे दोनो हिस्सा लते हो और पैसा कमाते हो। हिकमत कृष्णस्वरूप की हो, असली काम रामनारायण करता हो। जरूर इन दोनो के बीच मे कोई खास बात है।

यह सब वह सोच ही रहा था कि जीने पर भारी धपधप की आवाज शुरू हुई। और वह देखता क्या है कि छोटे-स कमरे के उस भूरे दरवाजे म खुद कृष्णस्वरूप खडा है।

जीना चढने के कारण कृष्णस्वरूप कुछ हाँफ-सा रहा था। कोट के बटन उलटे-सीधे लगे हुए थे। लगभग बदहवास था। दरवाजे से ही उसने एक मनीबैग फेंक-कर कहा, "इसे मेरे यहाँ भूल आये थे।"

मनीबैग खाट पर धप से गिर पडा। कन्हैया आश्चर्य स उसे देखता रहा। हाँ, सचमुच वह उसी का था, उसका नाम भी तो उस पर था। कन्हैया को खोयी चीज वापस पाकर खुशी हुई। अपने भुलक्कडपन पर उसे आश्चर्य हुआ।

"लेकिन, तुम फोन कर देते, यहाँ तक आने की तकलीफ क्यो की!" उसने कहा।

"मैं नही जानता था कि तुम यहाँ तक पहुच गये हो। सोचा, मनीबैग की तलाश में इधर-उधर घूम रहे होंगे। इसलिए, सोचा कि मनीबैग दे आऊँ और एक चिट्ठी भी वहीं रख दूँ।" कहकर कृष्णस्वरूप धीरे-धीरे खिडकी के पास जाकर खडा हो गया।

कन्हैया ने कुरसी आगे सरकाकर कहा, "नही, नही, ऐसे बैठो।"

और अकस्मात् कन्हैया को लगा, कृष्णस्वरूप मनीबैग देने नही, किसी और काम से आया है। वह काम क्या है?

कृष्णस्वरूप खिडकी के पास खडे-खडे ही कहता गया, "साले ने सारा मजा किरकिरा कर दिया। मैं तो तुम पर अपना रोब जमा रहा था। लेकिन उसने आकर फुगे को फोड दिया। मेरे लिए एकदम ऐन्टीक्लाइमेक्स कर डाला।"

कन्हैया क्या कहता, वह सहानुभूति से सुनने की चेष्टा कर रहा था। फिर भी उसने कहा, "तुम तो उसे जीनियस कहते थे।"

"बिलकुल ठीक कहता हूँ।"

मानो कि इसी का उदाहरण देने के लिए स्वय कन्हैया ने अपनी ओर से कहा, "इसीलिए, शायद उसने मुझे एकदम पहचान लिया, और लपककर गले मिला। मैं उसे नही पहचानता। भावना का नाट्य करनेवाले लोग मुझे पसन्द नही।"

कृष्णस्वरूप ने अत्यन्त गम्भीर और सार्थक वाणी से धीरे-धीरे कहा, 'नही, वह तुम्हे अवश्य पहचानता होगा, और तुम्हारे बारे मे उसके अच्छे खयाल होंगे। नही तो वह देखते ही गाली से बात करता!"

उस समय कन्हैया को लगा जैसे कृष्णस्वरूप आगे आनेवाली बात की भूमिका बाँध रहा है, कि मानो रामनारायण के सम्बन्ध म वह कोई रहस्य खोलने के लिए आतुर है, और उसका सम्बन्ध कृष्णस्वरूप के किसी मर्म से है। कन्हैया को लगा कि वह धीरे-धीरे कृष्णस्वरूप के जीवन मे फिर से प्रवेश कर रहा है। बीस साल पहले एक बार कन्हैया उसके जीवन का एक अग था। लेकिन तब परिस्थितिवश वह उसके बाहर निकल आया। और अब शायद फिर से उसे प्रवेश करना होगा।

और, धीरे-धीरे, क्रमश, जो कहानी उसके मन में अपना विस्तार करने लगी वह न सिर्फ अजीब थी, वरन् मनुष्य की असगतियो की सगति उसम कुछ इस तरह थी कि दार्शनिक होना पडता था। कन्हैया के मन मे एक के बाद एक नये-नये सवाल खडे होने लगे। और वे सवाल भी इतन कुछ तीखे थे कि उनम मन घुलता [illegible] ने लगा।

[illegible] शु-तुल्य नग्नता को [illegible] गाँधीवादी दर्शन गरीबो के लिए बडे काम का है। वैराग्य भाव, अनासक्ति और कर्मयोग सचमुच एक लौह-कवच है, जिसको धारण करके मनुष्य आधा नगापन और आधा भूखापन सह सकता है। सिर्फ सहने की ही बात नही, वह उसके आधार पर आत्मगौरव, आत्मनियन्त्रण और आत्मदृढता का वरदान पा सकता है। और, भयानक प्रसगो और परिस्थितियो का निर्लिप्त भाव से सामना कर सकता है। मृत्यु उसके लिए केवल एक विशेष अनुभव है। गरीबी एक अनुभवात्मक जीवन है। कठोर से कठोर यथार्थ चारो तरफ से घेरे हुए है, एक विराट् नकार, एक विराट् शून्य-सा छाया हुआ है। लेकिन, इस शून्य के जबडे मे मासाशी दाँत और रक्तपायी जीभ

है ! कन्हैया इसे जानता है !

और ठीक इसी आर्थिक और दार्शनिक स्थिति में कृष्णस्वरूप घूमता है। घर काटने को दौड़ता है, क्योंकि उसकी दीवार एक सवाल लेकर खड़ी हो जाती है, हर चेहरा एक प्रश्न उपस्थित करता है, और वह यह कि तुम मेरे लिए क्या कर रहे हो !

यह सवाल, जिसे घर की हर चीज़ और हर व्यक्ति उपस्थित करता है, कृष्णस्वरूप के हृदय में भी खटकता रहता है। इस प्रश्न का एकमात्र उत्तर है—पैसों की कमाई !

कृष्णस्वरूप को नौकरी के अलावा और कोई आसरा नहीं। यद्यपि वह बी ए है, तब भी उसे कुछ नहीं होता। सवा सौ रुपये में खाना दाना भी नहीं चलता। वह हिसाब से काम करता है। लेकिन हिसाब पेट तो नहीं भर सकता और घर का हर आदमी उसे आँखों-आँखों ही से पूछता है—तुम मेरे लिए क्या कर रहे हो !

कृष्णस्वरूप नि सज्ञ है, उसको रास्ता दिखानेवाला कोई नहीं। हाँ, समय काटने के लिए वह शाम को लायब्रेरी चला जाता है। अखबार पढ़ता है। पत्र-पत्रिकाएँ पढ़ता है। और वहीं बैठकर किताबें भी पढ़ता है। लायब्रेरी के हॉल में भाषण भी होते हैं। शरद व्याख्यानमाला और वसन्त व्याख्यानमाला चलती हैं। अन्य अवसरों पर भी विद्वानों के भाषण होते हैं।

कृष्णस्वरूप हॉल के पीछे की कुरसियों पर चुपचाप भाषण सुनता है। कभी नोट्स भी लेता है। और मन-ही-मन गुनता रहता है। उसमें इतना साहस नहीं है कि वह विद्वानों से दो सवाल पूछे। वे बड़े लोग और वह छोटा आदमी। फिर, उसके कपड़े भी अच्छे नहीं रहते, जिन्हें देखकर लोग समझते हैं कि वह कोई चपरासी या डाकिया या ऐसा ही कोई आदमी होगा। हाँ, कृष्णस्वरूप खुद जानता है कि उसमें हीनताग्रन्थि है। लेकिन उसकी अवस्था सचमुच हीन है, यह एक प्रकट सत्य है। ऐसी ही उसकी अवस्था देखकर साधारण खाते-पीते लोग भी अपने को उससे ऊँचा समझते हैं। यही क्यों, अपमान भी कर जाते हैं। दुनिया में अपमान-जैसा और कोई दुख नहीं होता। कृष्णस्वरूप पलटकर जवाब नहीं दे पाता, लेकिन अपमानकर्ता का शत्रु ज़रूर बन जाता है। उसे वह माफ नहीं कर सकता। इसी-लिए, वह सबसे बचकर रहता है। दबना, कतराना और दूर खड़े होकर तमाशा देखना व बात सुनना, जहाँ महत्त्व की बात है वहाँ सतर्क होकर बात गाँठ से बाँध लेना, उसका मानसिक जीवन है।

उसकी इस मनोवृत्ति के कारण ही लायब्रेरी में उसके खास दोस्त नहीं बन पाते। वहाँ या तो पेन्शनर बूढ़े आते हैं या नवयुवक विद्यार्थी। और कोई नहीं। ऐसे नि सग, उद्विग्न और चिन्तापूर्ण जीवन में, एक अजीबोग़रीब शख्स सामने आता है। उसकी सूरत भयानक है। एक आँख लाल है, चेहरे पर दाढ़ी है, मानो वैरागी हो, गजे सिर पर एक मोटा मसा है—मानो कोई छोटा स्तूप हो। वह एक अजीब ढग का मटमैला तग पाजामा पहनता है। कुरते के ऊपर एक फटा स्वेटर, कभी ऊनी तो कभी सूती। स्वेटर से वह कोट का काम लेता है।

हाँ, कृष्णस्वरूप को पहले-पहल उससे डर लगा। उस डर का बयान नहीं हो सकता। अज्ञात अप्राकृतिक विचित्रता का वह भय था। कृष्णस्वरूप के कपड़े अत्यन्त

साधारण और मैले रहते, लेकिन उनसे कोई विचित्रता नहीं झलकती। लेकिन, उस अजनबी की पोशाक भी उसे विचित्र बना देती थी। चेहरा तो भयानक और बदसूरत था ही।

बातचीत लायब्रेरी में हुई। उसे अजनबी ने ही शुरू किया। कैसे शुरू हुई, राम जाने। वह किसी किताब पर से शुरू हुई। और, वह अजनबी कृष्णस्वरूप को लायब्रेरी के नीचे के रेस्तोराँ में ले गया। कृष्णस्वरूप वहाँ पहली बार पहुँचा था।

अजनबी धारा प्रवाह अँगरेज़ी और हिन्दी बोलता था। सही-सही और ज़ोरदार लफ़्ज़ों में वह बात करता था। ऐसा लगता था कि जो बातें वह कह रहा है, उन पर उसने बरसों मनन-चिन्तन किया है। वह एक दबंग और पुरज़ोर शख़्सियत रखता था।

उसकी जेबों में कई नोट थे—पाँच के, दस के। वह ग़रीब नहीं था। सिर्फ़ उसका वेश विरक्तिजनक था। वह बेतहाशा पैसा ख़र्च करता था। पैदल नहीं, बल्कि रिक्शा में घूमता। अठन्नी उसके लिए दो पैसों के बराबर थी।

तंग हालत की तंग दीवारों के बीच घिरे हुए कृष्णस्वरूप को वह केवल भयानक ही नहीं मालूम हुआ। उस आदमी में मैदान का फैलाव था, अजीबोग़रीब भयानक बरगद की ऊँचाई और घनापन था। कृष्णस्वरूप के उद्विग्न, निःसंग, एकान्त जीवन का शून्य उससे टूट गया।

वह उस रात को मेट्रो सिनेमा में ले जाता। अँगरेज़ी फ़िल्में देखने जाते। दोनों रात को देर से लौटते। और विनोबा भावे के सर्वोदयवाद और एम. एन. राय के रेडिकल ह्यूमैनिज़्म से लेकर सार्त्र के एक्ज़िस्टेंशियलिज़्म तक की बातें होतीं। नयी कविता और ऐब्स्ट्रैक्ट पेण्टिंग की भी चर्चा होती। उस अजनबी ने, जिसका नाम रामनारायण था, कृष्णस्वरूप के सामने नयी दुनिया ही खोल दी।

कृष्णस्वरूप के सारे ध्यान, कार्य और अनुराग का केन्द्र अब वह व्यक्ति हो गया। यह भी सही है कि रामनारायण ने समय-समय पर कृष्णस्वरूप को आर्थिक मदद भी की। दोनों एक-दूसरे के घनिष्ठ हो गये। उसकी संगत में रहकर कृष्णस्वरूप का दिल खुलने लगा, मन में विस्तार उत्पन्न हुआ।

लेकिन, बावजूद इसके, दोनों व्यक्ति एक-दूसरे की जीवन-परिधि के आसपास ही घूमते रहे। किसी ने एक-दूसरे के वैयक्तिक जीवन में प्रवेश करने का प्रयत्न नहीं किया।

किन्तु, क्या यह सम्भव था कि कृष्णस्वरूप सचमुच रामनारायण के जीवन से अनभिज्ञ रहता? वैसे उसे बहुत सी उड़ती-उड़ती जानकारी थी। लेकिन, उससे मन तृप्त न होता। हाँ, यह सही है कि खाली वक़्त में कृष्णस्वरूप रामनारायण के व्यक्तित्व की एक रूपरेखा तैयार कर लेता।

सबसे पहली बात जो उसके ख़याल में आती वह यह कि रामनारायण को यह मालूम नहीं है कि उसे क्या चाहिए। हाँ, यह ज़रूर मालूम है कि उसे क्या नहीं चाहिए। परिणामतः, वह हर बात में दोष निकालता। उसकी आलोचनात्मक दृष्टि में मार्मिकता और प्रखरता थी, उद्दण्डता और निर्भयता थी। साथ ही, एक खारापन, एक बेसहारापन, एक मारा-मारापन, एक मरा-मरापन था। चक्करदार राहों पर गोल-गोल घूमते रहने-जैसी कोई मानसिक स्थिति वह थी। उसने न मालूम कितने ही दर्शनों और विचारधाराओं, व्यक्तियों और व्यक्तित्वों में दोष

निकाले। उन दोषो को वह इतनी कडवाहट के साथ कहता मानो उसकी कोई निजी हानि हुई हो। वह बात इस तरह करता मानो उन चीजो का उससे कोई आत्मीय रहस्यमय सम्बन्ध हो। निषेध, निषेध, निषेध! कृष्णस्वरूप को यह पहचानने मे देर न लगी कि निषेध का उसका स्रोत बौद्धिक नही है, वही कही तो भी भीतर है।

वह सारे भद्र समाज से चिढता। वह नगर के एक-एक बडे आदमी से परिचित था। अनगिनत छोटे आदमियो से उसकी अच्छी पहचान थी। निर्भीक और उद्दण्ड होने के कारण बहुत-से अच्छे आदमी उसके पास खिंच जाते। उनमे से कई उसकी मार्मिक वाक्-धारा से प्रभावित थे। असल मे, वह खूब अच्छी और सही-सही गालियाँ देना जानता था। और, कुछ लोग इस तरह के औघड आदमी के खुरदुरे-पन को बेहद पसन्द करते।

भद्र समाज का वह बेशक दुश्मन हो गया था। वह उनके दम्भ और अहकार के तरह-तरह के किस्से बताया करता और वह भी इस तरह से कि सचमुच श्रोता का मन दुख और अवसाद, ग्लानि और विरक्ति मे डूब जाता। एक आभ्यन्तर तिक्त-आम्ल अनुभव से भर उठता। बडे-बडे अखबारो के मालिक, महत्त्वाकाक्षी राजनैतिक नेता, मन्त्री और उपमन्त्री, डायरेक्टर और सेक्रेटरी, यहाँ तक कि साहित्यिक भी, उसकी कथाओ के पात्र रहते। उनका वह एकदम सही-सही विश्लेपण करता। इन लोगो के बारे मे उसके पास इतनी जानकारी थी कि कुछ पूछो मत। व्याख्यान-सभाओ मे वह स्वय बोलने खडा हो जाता तो शहर के जितने बुद्धिमान पढने-लिखनेवाले, लेकिन आवारा, लोग थे, उनके हृदय का वह हार हो जाता था। वे खूब ताली पीटते। धीरे-धीरे उसकी सोहबत से, शहर मे उसके-जैसे और कई निकल आये। उनके सबके सम्मिलित प्रयत्नो से, एक के बाद एक कई साप्ताहिक पत्र धूम-धडाके से निकले। बडे-बडे लोगो पर, प्रमाण सहित, कीचड उछाला गया। सरकारी फाइलो के अश भी प्रमाणरूप छापे जाने लगे।

यद्यपि वह स्वय भद्र-समाज का भयानक विरोधी था, वह खुद गुण्डा नही था। उसका व्यवसाय तो जी भरकर आलोचना करना था, सफाईदार भाषा मे। किन्तु, उसके आस-पास जो 'स्वतन्त्रचेता' व्यक्ति इकट्ठे हो गये थे, उन्हे वह खूब प्रेरणा देता रहा। ये सब 'स्वतन्त्रचेता' लोग अपने-अपने समाज, वर्ग और परिवार से कटे हुए लोग थे। उनमे से लगभग सभी जोशीले और पढने-लिखनेवाले, और (साथ ही) कुचक्री थे।

कृष्णस्वरूप सरकारी नौकर था। उसमे बुद्धि थी लेकिन दम नही था, ऊधम नही था। और इन ऊधमियो के बीच मे रहने से बिजली के मीठे-मीठे धक्के लगे। वह उनका आदर्शीकरण करने लगा, जबकि असल मे, वे सारे-के-सारे बिकने के लिए तैयार बैठे थे। सिर्फ कीमत का सवाल था। कम कीमत मे बिकने के लिए कोई राजी नही था। और, सबसे बडी चीज तो यह थी कि वे सब प्रतिभावान् और साहसी नौजवान अखबारनवीस थे।

फिर भी, कृष्णस्वरूप यह सोचने को तैयार नही था कि वह 'विद्रोह' केवल बुद्धि का या जीवन-नीति का विद्रोह है। क्योंकि अगर वैसा विद्रोह होता तो आलोचना के साथ-ही-साथ रचना—ये दोनो बातें चलती। सब अन्वेषी थे, सब खोजी थे। यानी, 'मन चाहे जिधर भटको और अन्वेषण का नाम दो' वाली नीति

सबकी अपनी कार्यनीति थी। अद्वैतवाद का अध्ययन करते-करते कृष्णस्वरूप को इतना तो मालूम हो गया था कि अन्य दर्शनों की आलोचना करते-करते नये दर्शन की रचना होती है, नयी जीवन-नीति की रचना होती है। लेकिन, व्यवहार तथा बुद्धि दोनों के क्षेत्र में, यहाँ केवल निषेध था। यानी, उन्हें क्या नहीं चाहिए—यह खूब मालूम था, लेकिन क्या चाहिए—इसकी कोई खास रूपरेखा उनके पास न थी, क्योंकि उनमें से कोई वस्तुत गम्भीर नहीं था।

कृष्णस्वरूप उन सब पर मन्त्र-मुग्ध था, फिर भी, कभी-कभी उसकी बुद्धि और हृदय उनकी वाचालता और दुर्व्यवहार के प्रति विद्रोह कर उठते। फिर भी, स्वभावत दब्बू होने से उनका विरोध करने का उसने कभी साहस नहीं किया। साहस करता भी तो पिट जाता।

लेकिन उसकी आस्था तो रामनारायण पर थी। वह रामनारायण की छाया बन गया था। वह रामनारायण के अन्तर्जीवन में प्रवेश करना चाहता था, उसके चारों कोने छू लेना चाहता था।

एक दिन रामनारायण कृष्णस्वरूप को अपने घर ले गया। उस मकान को देखकर कृष्णस्वरूप को विस्मित हो जाना पड़ा। वह आलीशान मकान था। वह कोठी थी जिसके अब पलस्तर गिर रहे थे। ठीक सड़क से लगे हुए उस मकान की सात मंजिलें बड़ी दूर से दीखती थी। दूर से वह मकान बहुत सुन्दर मालूम होता था, उसकी सबसे ऊँची छतों पर मेहराबदार मण्डप थे और मन्दिर-नुमा शिखिर थे।

लेकिन, सबसे आकर्षक वस्तु थी रामनारायण की माँ। वह यद्यपि बूढ़ी थी और चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी थी, फिर भी उसका रंग एकदम चम्पई था। वह अब भी खूबसूरत थी। उसका नाक-नक्श मानो स्फटिक से गढ़ा हुआ था। उसको देखकर किसी को भी नम्र और शालीन हो जाना पड़ता। उस परिवार में अब केवल दो ही व्यक्ति थे—माता और पुत्र। और दो नौकर। दो भैंसें भी थी, जो आँगन में बँधी हुई थी।

रामनारायण के कमरे तक पहुँचने के लिए जीना चढ़कर हॉल पार करके जाना पड़ता। हॉल सजा हुआ था। उसकी छत से अभी भी फानूस लटक रहे थे। सबमें पुरानापन था। पुराने काँच लगे हुए थे, टेबिल लगी हुई थी, आदमकद आईने दीवारों से सटे थे, छत और दीवारों से तनकर एक कोण बनाते हुए अजीबो-ग़रीब पुरखों की रंगीन तसवीरें लगी हुई थी। और सब पर सूनेपन की साँस जमी हुई थी।

फिर भी एक बात साफ़ थी। हर चीज पुरानी होते हुए भी करीने से लगी थी। इसके विपरीत रामनारायण का कमरा था। वह अस्त-व्यस्त था। वहाँ भी टेबिल कुरसी, फ़ैन और एक फोटो लगा हुआ था।

कृष्णस्वरूप ने पूछा, "यह फोटो किसका है ?"

रामनारायण ने कहा, "मेरा।"

"नहीं, जी !" कृष्णस्वरूप के मुँह से निकल गया।

रामनारायण ने कुछ नहीं कहा। सचमुच वह फोटो खूबसूरत जवान का था। वह उसी का था। अपने बीसवें साल में वह इतना खूबसूरत था। फिर, क्या कारण है कि उसने अपना चेहरा इस तरह बिगाड़ लिया ? आखिर रामनारायण ने अपने

का इतना विद्रूप क्यों बना लिया ? कृष्णस्वरूप कुछ क्षण सोचता रहा।

माँ से भेंट हुई। माँ ने बड़ी आवभगत की। कृष्णस्वरूप अब रामनारायण के यहाँ माँ से मिलने के लिए जाने लगा। धीरे-धीरे उसे पता लगा कि माता और पुत्र में अगर वैर नहीं तो मनोमालिन्य अवश्य है।

कृष्णस्वरूप ने रामनारायण के सामने माँ की बातचीत करना चाही, दोहराना चाही। लेकिन रामनारायण ने कोई दिलचस्पी नहीं ली। जब भी बात निकलती वह उसे उड़ा देता। और उदास हो जाता।

ऐसा तो हो नहीं सकता कि कृष्णस्वरूप से दोनों के सम्बन्ध छिपे रहे। असलियत यह थी कि रामनारायण के पिता बड़े ही मस्त और फक्कड़ आदमी थे। ऊँच-नीच का उन्हें कोई खयाल नहीं था। चपरासी के साथ गाँजे की दम लगाने बैठ जाते। हाथ में लुटिया और कान में जनेऊ लपेटे, किसी भी पड़ोसी से घण्टों गप लड़ाते रहते। वे कलाप्रेमी थे। संगीत और साहित्य के शौकीन। खुद भी अच्छे गायक थे, भजन बनाते और शेर भी गढ़ लेते। नामी संगीतज्ञों, चालू शायरों की संगत में उठते-बैठते और उन्हीं के समान कुछ-कुछ सनकी भी थे। महफिलबाज थे। उनकी महफिल प्रसिद्ध थी। उसमें बनारस की रण्डियाँ और लखनऊ के शायर भी हिस्सा लेते। अपनी इस धुन में उन्होंने बाप-दादों से चली आयी हुई जायदाद का बड़ा हिस्सा खत्म कर दिया।

शायद, इसीलिए उनकी अपनी पत्नी से नहीं बनती थी। उनकी पत्नी एक शानदार और खूबसूरत औरत थी जिसकी मुख्य अभिरुचि थी प्रबन्ध और व्यवस्था करना। वह साम्राज्ञी थी, जिसे अपनी जायदाद के काम-काज को ठीक ढंग से चलाने, उसे बढ़ाने का शौक था। वह हुकूमत करना जानती थी। उसके पति उसके सौन्दर्य पर मुग्ध एक बालक थे। बालक स्वभाव के अनुसार ही, उसके पति महोदय जिद्दी और चंचल, कर्तव्य-कर्म के नितान्त अयोग्य और अव्यवस्थित थे, जबकि पत्नी स्वयं दृढ़-बुद्धि और लक्ष्य-परायण थी। इस प्रकार दोनों के स्वभाव-वैषम्य के कारण, पति-पत्नी में कई घटना-प्रधान दुखान्त नाटक हो जाते। नौजवानी में वे दुखान्त नाटक सुखान्त नाटक में भी बदल जाते। लेकिन, ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती गयी, भावना कम होती गयी और अहंकार की बाढ़ आती गयी, त्यों-त्यों परस्पर आकर्षण के अभाव में एक-दूसरे के प्रति कठोरता उत्पन्न होती गयी।

माता-पिता के इस झगड़े को कोमल मनवाले छोटे-से बालक रामनारायण ने खूब देखा है। उसने कभी पाया कि उसकी माँ शान से पलँग पर बैठी हुई है और उसके पिता पलँग के नीचे बैठे स्त्री की गोद में मुँह दुबकाये रो-से रहे हैं। कभी उसने देखा कि माँ कह रही है, "तुम्हें अपनी इज्जत का खयाल नहीं है, घराने का खयाल नहीं है, चपरासी के साथ गाँजा पीते हो, उस साले ओछे धोबी के घर जाकर शराब पीते हो। तुम्हें अपने घर में शायद कुछ भी नहीं मिलता—खाने को भी नहीं मिलता! इसीलिए कमीनों की सोहबत में रहते हो। उनके यहाँ जाकर खाते हो!"

और पिता ये बातें सुनकर मुसकराकर कह रहे हैं :

"जाति - पाँति पूछै नहिं कोई,
हरि को भजै सो हरि का होई।"

इस पर माँ कहती है, "अरे, तुम क्या हरिभजन करोगे! जाओ, उस रण्डी के

पास जाकर बैठो।"

और पिताजी ज़ोर से हँस पड़ते हैं और कहते हैं कि सचमुच उन्हें हरि से उतना प्रेम नहीं है जितना खुद से है। और एक गजल सुनाने लगते हैं। वह गज़ल क्या थी, रामनारायण को याद नहीं है।

इस तरह की कुछ धुँधली-धुँधली तसवीरें रामनारायण को याद है। रामनारायण ने बहुत चाहा था कि ये तमाम बातें वह कृष्णस्वरूप को न बताये। लेकिन जब कृष्णस्वरूप रामनारायण की माँ का लाडला बन गया, तब रामनारायण ने अपनी उभरती भावना को दबा-दबाकर रुकते-रुकते, उखड़ते-उखड़ते, ये बातें कृष्णस्वरूप से कही।

किस्सा मुख्तसर यह है कि पिताजी जायदाद लुटाने लगे और मॉर्फिया का इन्जेक्शन लेकर दिन गुज़ारने लगे। माताजी की इच्छा थी कि उन्हें रायबहादुरी का खिताब मिले, वे समाज में नाम कमायें, बड़े राष्ट्रीय नेता बन जायें। और हुआ यह कि वे एक दिन अपनी पत्नी से बुरी तरह झगड़कर एक दूरदराज़ शहर में चले गये, और वहीं एक दिन आकस्मिक कारणों से मृत्यु हो गयी।

इधर, पिता की मृत्यु पर, माताजी खूब रोयीं-धोयीं, लेकिन रामनारायण को लगा कि उनके आँसू बनावटी हैं, दिखावे के हैं। उसने प्रण कर लिया कि वह अपनी माँ से कभी प्यार नहीं करेगा, कि पिता की मृत्यु का कारण स्वयं उसकी (रामनारायण की) माता है।

पिता की मृत्यु होने पर रामनारायण अकेला पड़ गया। इस डर से कि कहीं लड़का पिता की भाँति ही बिगड़ न जाये, माँ ने उस नौकर को छुड़वा दिया जो बालक रामनारायण का रक्षक और सेवक था। इस प्रकार रामनारायण और भी अकेला और अनाथ हो गया।

माता उसे कभी भी यथावत् मातृत्व प्रदान न कर सकीं। उसको ट्यूटर लगाये गये। राजकुमार कॉलेज में भरती किया गया। ज्यों-त्यों उसने कैम्ब्रिज किया। वहाँ के अत्यन्त अनुशासनबद्ध जीवन से तंग आकर वह भाग निकला। कुछेक साल बेकार रहा। फिर बी. ए. की तैयारी करने लगा। लेकिन उसे भी पास नहीं कर सका। शहर-भर घूमना, और किताबें पढ़ना, यही उसका मुख्य व्यवसाय था। माता ने उसका विवाह कर देना चाहा, वह भी उसने नहीं किया तब तक वह एक खूबसूरत नौजवान था।

लेकिन ज्यों ही वह शहर में घूमने लगा, माता ने जिन-जिन बातों का निषेध करके रखा था, उन-उन बातों को गिन-गिन करके उसने किया।

माता उसे भद्र परिवार के भद्र और सौजन्यपूर्ण पुत्र के रूप में देखना चाहती थी। ठीक इसके विपरीत उसने अपना वेश बना लिया। कपड़ों की उसने परवाह नहीं की—यह बताने के लिए कि वह भद्र परिवार का नहीं है। यह सब लगभग अनजाने ढंग से हुआ (किसी आभ्यन्तर ग्रन्थि ने एक विचित्र प्रकार के मानवतावाद का रूप धारण कर लिया था)। वह भयानक मैले-कुचैलेपन में आनन्द लेने लगा। भद्र परिवारों से उसने फासले खड़े कर लिये। और इन फासलों में उसकी गालियाँ गूँजने लगीं। वह 'कमीनों' के घर जाकर अब गाँजे और चरस का भी दम लगाता और कभी-कभी वहीं पड़ा रहता। उसने इस प्रकार उनसे खूब अच्छा सम्बन्ध बना लिया। धीरे-धीरे उसकी जिन्दगी ने एक ढर्रा अख्तियार कर लिया।

यहाँ तक कि वह अब निचली जातियो की लडकियो से सम्बन्ध भी रखने लगा। पैसों की उसके पास कमी नही थी। फलत, गाँजा, चरस और स्त्री-सम्बन्ध उसके लिए बहुत मामूली बातें थी।

इसी बीच वह एक पूजनीय नेता के चक्कर मे आ गया। उनका उस पर बहुत प्रभाव पडा। चुनावो के दौरान मे वह उनका खूब काम करता। अगर वे कांग्रेस न छोडते तो वे मुख्यमन्त्री होते। उन्ही के सम्पर्क के कारण, वह बडे-बडे नेताओ और साहित्यिको और सेठो के सम्पर्क मे भी आया। निर्भीकता, वाणी की स्वच्छता, भाषा-प्रवाह आदि के फलस्वरूप वह नितान्त उपेक्षणीय नही रहा। उन पूजनीय नेता की मृत्यु के बाद (जिसका उसे बहुत धक्का लगा) अनेक पार्टियो के नताओ ने उसे गूँथना शुरू किया, क्योकि वही एक ऐसा था जो गरीबो की गन्दी बस्ती मे महीनो और सालो छिपा रह सकता था। लेकिन उसकी आलोचनात्मक दृष्टि, जो पहले श्रद्धावान् थी, अब वह देखने लगी कि बुजुर्ग नेता एक के बाद एक स्वार्थ-बद्ध हो चुके है। उनमे कुलीनता का वही अभिमान, धन-सत्ता का वही गर्व, दीन-हीन के प्रति वही उपेक्षा-भाव, और दम्भ तथा अहकार के अतिरिक्त, शासन की वही तृष्णा है, जिसका साकार रूप उसे अपनी माँ म दिखायी पडता था।

माँ, माँ, माँ! जो भी उसने पुत्र से चाहा, ठीक उसके विपरीत उसके पुत्र ने किया—ठीक उसके विपरीत उसका पुत्र बना। लगातार नशे से और अव्यवस्थित, उत्तेजनापूर्ण और असयत जीवन से उसका चेहरा बिगड गया, आकृति बिगड गयी, और वह इस बिगाड को अच्छा समझने लगा। दाढी बढा ली, जैसे कोई बैरागी हो, शरीर दुर्बल हो गया। और यदि कोई व्यक्ति उसके इस विद्रूप व्यक्तित्व के विरुद्ध मजाक करता या आलोचना करता तो वह उसका शत्रु हो जाता। माँ ने चाहा कि वह बडा आदमी बने, अच्छे ढग से रहे, समाज मे प्रभाव और दबाव रखे, इगलैण्ड से डिग्री लेकर आये, जायदाद बनाये और बढाये, लेकिन लडका तो बाप म सवाया बनने ही की कोशिश करता रहा।

प्रश्न यह है कि पूँजीवाद के विरुद्ध, धन-सत्ता के विरुद्ध, उसकी अपनी माता के विरुद्ध, उसकी यह प्रतिक्रिया क्या सचमुच सिद्धान्त और आदर्श के अनुसार है? निषेध, निषेध और निषेध करके वह क्या सचमुच शोषितों का उपकार कर रहा है?

इसी बीच किस्सा यो बढता है कि कृष्णस्वरूप को उसकी माँ अच्छी लगती है। कृष्णस्वरूप ने उसे बुढापे मे देखा है, जबकि उसकी पुरानी शान और अह-मन्यता का थोडा सा भी लेश नही है। उसके पुत्र ने उसे कठोर यातनाएँ दी। वह माँ अपने पुत्र के रूप और जीवन-चर्या की शिकायत कृष्णस्वरूप से करने लगी, यह सोचकर कि सम्भव है कि कृष्णस्वरूप के प्रभाव से उसका लडका पटरी पर चलने लगे। उसका दुखपूर्ण मातृ-हृदय कातर होकर कृष्णस्वरूप के सामने अपना रोना रोता। कृष्णस्वरूप को यह दुख सात्विक लगा। उसमे माता की स्वाभाविक चीत्कार और करुण पुकार थी। धीरे-धीरे कृष्णस्वरूप उसकी माता का दुलारा बन गया। और अब जो भी काम वह करना चाहती, करवाना चाहती, वह कृष्णस्वरूप से कहती। और कृष्णस्वरूप उसे सहर्ष करता, दौडकर करता।

किन्तु यह भी सच है कि कृष्णस्वरूप नि स्वार्थ भाव से ऐसे काम न करता। उसके हृदय मे एक लोभ था, लालच था। वह सोचता कि बडे और धनी आदमियों के समाज मे अगर उसका किसी से परिचय है तो उसी बूढी औरत से। इसलिए

वह परिचय उसके लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कृष्णस्वरूप गरीब था। उसे आश्रय की आवश्यकता थी। सक्टपूर्ण परिस्थिति हमेशा ही रहती थी। इसलिए उस बूढी औरत को वह माता या देवी के समान मानने लगा। साथ ही, उस बूढी माँ को एक ऐसे आदमी की जरूरत थी जो अपनी जिम्मेदारी समझता हो, जो पैसे की वकत करता हो, जिसे जिन्दगी बनान का शौक हो। सक्षेप मे, रामनारायण की माँ कृष्णस्वरूप को अपना मातृ-तुल्य प्रेम और साथ ही सम्मान प्रदान करने लगी। यहाँ उसकी पुरानी धार्मिक दृष्टि भी उसके काम आयी। उसकी धार्मिक दृष्टि को देखकर, रामनारायण की माँ उसकी और भी इज्जत करने लगी। इसका नतीजा यह हुआ कि बहुत-सी बातो म रामनारायण की माँ कृष्णस्वरूप पर निर्भर रहने लगी। उस लगता कि अगर कृष्णस्वरूप-जैसा उसका बेटा होता तो कितना अच्छा होता! उसी की सहायता स कृष्णस्वरूप ने, नौकरी करते हुए भी लॉ कर लिया और बाद म एम ए भी कर डाला। और क्रमश वह रामनारायण की माँ की बची खुची जायदाद भी सँभालने लगा, जायदाद सँभालने के दौरान मे कई अफसरो से उसका साबिका पडा। वैसे भी गम्भीर और कर्तव्य-परायण होने के कारण, उसका प्रभाव अच्छा पडता। माँ को तसल्ली हुई कि कृष्णस्वरूप के सहयोग से ही क्यो न सही, उसकी जायदाद बढ रही है।

हाँ, यह सही है कि इस जायदाद पर कृष्णस्वरूप की आँख नही थी। वह ईमानदारी से काम करके पैसा कमाना चाहता था। जायदाद अपनी आँखो से बढती हुई देखकर रामनारायण की माँ बहुत प्रसन्न थी ही, उसने भी अब कृष्ण-स्वरूप के जीवन के लिए स्थायी प्रबन्ध करने का प्रयत्न किया।

रामनारायण की माँ, अपने पिता और पति दोनो के सम्बन्धसूत्रो द्वारा नगर और प्रान्त के बडे आदमियो से जुडी हुई थी। एक बार सक्रिय होने की ही तो बात थी। उसने कोई बात उठा नही रखी। आखिर कृष्णस्वरूप को सेण्ट्रल गवर्नमेण्ट की नौकरी दिला ही दी। और वहाँ से बदलकर वह इनकमटैक्स विभाग का एक ऊँचा अधिकारी बन गया।

और, इस प्रकार क्रमश कृष्णस्वरूप का सारा दारिद्र्य निकल गया। घर भर गया और कुछ पूँजी इकट्ठी हो गयी। यहाँ तक कि बहुत-से ठेकेदार लोग अब उससे रुपया उधार लेकर नये काम हाथ म लेने लगे।

कृष्णस्वरूप सामने बैठा है। यह कहानी कहते हुए बीच-बीच मे वह भावना के उद्रेक के कारण हाँफता जाता है रुक-रुककर कहता है। कन्हैया तन्मय होकर यह कहानी सुनता जाता है।

"अब मुझे बताओ पूँजीवाद के विरुद्ध, धन-सत्ता के विरुद्ध अपनी माता के विरुद्ध, रामनारायण की यह प्रतिक्रिया क्या सचमुच सिद्धान्त और आदर्श के अनुसार है? और, कन्हैया, अब तुम यह भी बताओ कि मैं जो पहले अनासक्ति, निष्काम कर्म और आत्म-वश रहने की बात करता था, अद्वैतवाद की बात करता था, तो क्या मेरी इस भौतिक, आर्थिक उन्नति म मेरा व्यक्तिश अध पतन नही हुआ है? इसका निर्णय तुम करो।

"जब-जब मैं रामनारायण को देखता हूँ, तब-तब मैं अपने आपको ओछा और नीचा पाता हूँ। लेकिन जब उसके बारे म सोचता हूँ तो लगता है कि वह मुझसे

भी गया-बीता और निकम्मा है। फर्क यही है कि उसने अपने गये-बीतेपन और निकम्मेपन पर किसी विरोधशील दार्शनिक धारा का आवरण चढा लिया है। इससे ज्यादा मुझे उसमे तन्त नही दीखता। उसके सब अखबारनवीस साथी अब या तो बडे लीडर हो गये है और पैसे कमाने की भूमिगत मशीन मे फँस गये हैं, या पैसे कमाने की खुली मशीन मे मजे मे अडे हुए हैं। उनमे से आज कई ऊँचे पदो पर हैं। तो बताओ, मेरे प्रश्न का उत्तर दो।"

कन्हैया इस सवाल का क्या जवाब दे! वह शून्य मे देखता है। सुनहली किरणो से चमक रही खिडकी की सिल पर बैठी हुई चिडिया को देखता है, जो दाने चुग रही है।

एकाएक कन्हैया पूछ बैठा, "लेकिन, यार, तुम्हारे यहाँ जब सुबह रामनारायण आया था तो कीमती सूट पहने हुए था। हाँ, वह गन्दा जरूर था। लेकिन सूट क्यो? उसे तो तुम्हारी कहानी के अनुसार फटे कपडे पहनने चाहिए थे।"

कृष्णस्वरूप मार्मिक भाव से मुसकराया। उसने कहा, "अब क्या बताऊँ! मेरे यहाँ जान-बूझकर सूट पहनकर आता है। उसका मुझ पर यह आरोप है कि यदि वह दलिद्दर पोशाक मे आयेगा तो मैं उसे घर के बाहर निकाल दूँगा। मुझे जान-बूझकर चिढाने के लिए वह वैसा कहता है और सूट पहनकर आता है।"

कन्हैया हँस पडा। उसके मुँह से अनायास निकल पडा, "स्साला बडा बदमाश है।"

"परवर्टेड जीनियस," कृष्णस्वरूप ने कुत्सा के भाव से कहा। फिर भी तुरत ही जोड दिया, "लेकिन, आज मैं जो कुछ हूँ, उसके कारण हूँ; इसीलिए आज भी मैं *उससे दबता हूँ, और आगे चलकर न भी दबूँ तब भी दबने का नाट्य करूँगा।"* और यह कहकर कृष्णस्वरूप हँस पडा।

फिर उठते हुए बोला, "तुमने मेरे सवाल का जवाब नही दिया।"

कन्हैया ने एक उसाँस छोडी और कहा, "मुझे सोचना पडेगा। मेरे खयाल से तुम दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हो। खैर, जो भी हो, आज रामनारायण ने तुम्हे चिढाने के लिए सूट पहना है, कल वह तुम्हे नीचा दिखाने के लिए अपनी जायदाद खुद सँभालेगा। और तब चक्र पूरा घूम जायेगा। अगले दस साल के बाद मुझे रिपोर्ट देना। समझे!"

कृष्णस्वरूप को विदा करने जब कन्हैया नीचे पहुँचा तब न मालूम क्यो उसने गटर में थूक दिया। क्यो? पता नही।

[सम्भावित रचनाकाल 1963-64]

जंक्शन

रेलवे स्टेशन, लम्बा और सूना। कडाके की सर्दी। मैं ओवरकोट पहने हुए इत्मीनान से सिगरेट पीता हुआ घूम रहा हूँ।

मुझे इस स्टेशन पर अभी पाँच घण्टे रुकना है। गाडी रात के साढे-बारह बजे आयेगी।

रुकना, रुकना, रुकना। रुकते-रुकते चलना। अजीब मनहूसियत है !

प्लेटफॉर्म के पास म गुजरनेवाली लोहे की पटरियाँ सूनी हैं। शण्टिंग भी नही है। पटरियो के उस पार, थोडी ही दूर पर रेलवे का अहाता है, अहाते के उस पार सडक है। शाम के छह बजे ही सडक पर और उससे लग हुए नये मकानो म बिजलियाँ झलमलाने लगी हैं।

उदास और मटमैली शाम। एक बार टी स्टॉल पर जाकर चाय पी आया हूँ। फिर कहाँ जाऊँ ! शहर मे जाकर भोजन कर आऊँ ? लेकिन यहाँ सामान कौन देखेगा ? आस-पास बैठे हुए मुसाफिर फटी चादरो और धोतियो को ओढे हुए, सिमटे-सिमटे, ठिठुरे-ठिठुरे चुपचाप बैठे हैं। इनके भरोसे सामान कैसे लगाया जाये ! कोई भी उसम से कुछ उठाकर चम्पत हो सकता है।

टी स्टॉल की तरफ नजर डालता हूँ। इक्के दुक्के मुसाफिर घुटने छाती स चिपकाये बैठे हुए दिखायी दे रहे हैं। गरम ओवरकोट पहनकर चलनवाला सिर्फ मैं हूँ, मैं।

अगर कोई भी मुझे उस वक्त देखता ता पाता कि मैं कितने इत्मीनान और आत्मविश्वास के साथ कदम बढा रहा हूँ। इतनी शान मुझे पहले कभी महसूस नही हुई थी। यह बात अलग है कि गरम ओवरकोट उधार लिया हुआ है। राजनाँदगाव स जबलपुर जाते समय एक मित्र ने कृपापूर्वक उसे प्रदान किया था। इसम सन्देह नही कि समाज मे अगर अच्छे आदमी न रहे, तो वह एक क्षण न चले।

किसी पर रौब झाडने की तबीयत होती है। इन सब टूटे हुए अक्षरमुखी (प्रस टाइप) जैस लोगो के बीच म से गुजरकर अपन को काफी ऊँचा और प्रभावशाली समझने लगता हूँ। सच कहता हूँ इस समय मेरे पास पैसे भी हैं। अगर कोई भिखारी इस समय आता तो मैं अवश्य ही उसे कुछ प्रदान करता। लेकिन, भिखारी बेवकूफ थोडे ही था जो वहाँ आये, वहाँ तो सभी लगभग भिखारी थे।

सोचा कि ट्रक खोलकर सामान निकालकर कुछ जरूरी चिट्ठियाँ लिख डालूँ। मैंने एक सम्माननीय नता को इसी प्रकार समय का सदुपयोग करते हुए देखा था। अभी उजाला काफी था। दो-चार चिट्ठियाँ रगडी जा सकती थी। ट्रक के पास मैं गया भी। उसे खोल भी दिया। लकिन कलम उठान के बजाय मैंने पीतल का एक डिब्बा उठा लिया। ढक्कन खोलकर, मैंने उसम से एक शाकर-लड्डू निकाला

सच नही है कि बच्चो को सिर्फ आधा-आधा ही दिया गया है। फिर मैं तो एक खा चुका हूँ।

पानी पीने के लिए निकलता हूँ। मुसाफिर वैसे ही ठिठुरे-ठिठुरे सिमटे-सिमटे बैठे है। उनके पास गरम कोट तो क्या, साधारण कपडे भी नही है। (उनमे से कुछ बीडी पी रहे है।) किसी के पास गरम कोट नही है, सिवाय मेरे। मैं अकडता हुआ स्टॉल पर पानी की तलाश मे जाता हूँ।

मैं पूर्ण आत्म-सन्तोष का आनन्द लाभ करता हुआ वापस लौटता हूँ कि अब इस कार्यक्रम के बाद कौन-सा महान् कार्य करूँ।

दूर से देखता हूँ कि सामान सुरक्षित है। शाम डूब रही है। अँधेरा छा गया है। अभी कम से कम चार घण्टे यही पडे रहना है। एक पार्टर से बात करते हुए कुछ समय और गुजार देता हूँ।

और फिर होल्डॉल निकालकर बिस्तर बिछा देता हूँ। सुन्दर, गुलाबी अलवान और खुशनुमा कम्बल निकल पडता है। मैं अपने को अब वाकई भला आदमी समझने लगता हूँ, यद्यपि यह सच है कि दोनो चीजो मे से एक भी मेरी नही है।

ओवरकोट समेत मैं बिस्तर पर ढेर हो जाता हूँ। टूटी हुई चप्पलें बिस्तर के नीचे सिर के पास इस तरह जमा कर देता हूँ कि मानो वह धन हो। धन तो वह हुई है। कोई उस मार ले तो! तब पता चलेगा!

गुलाबी अलवान ओढकर पड रहता हूँ। अभी तक स्टेशन पर कपडो के मामले मे मुझ चुनौती देनेवाला कोई नही आया। (शायद यह इलाका बहुत गरीब है)। कही भी, एक भी खुशहाल, सुन्दर, परिपुष्ट आकृति नही दिखायी दी।

कैसा मनहूस प्लेटफार्म है!

मेरे बिस्तर के पास एक सीमेण्ट की बेंच है। वहाँ गठरियाँ रखी हुई है। सोचता हूँ, उस पर अपना ट्रक क्यो न रख दूँ। गठरियाँ नीचे भी डल सकती है। ट्रक उनस उम्दा चीज है, उसे साफ-सुथरी बेंच पर होना चाहिए।

लेकिन, उठने की हिम्मत नही होती है। कडाके का जाडा है। अलवान के बाहर मुँह निकालने की तबीयत नही हो रही है, लेकिन नीद भी तो आँखो से दूर है।

विचित्र समस्या है! खुद ही अकेले मे, अपने को अकेले ही शानदार समझते रहो। इसमे क्या धरा है! शान का सम्बन्ध अपने से ज्यादा दूसरो से है, यह अब मालूम हुआ। लेकिन, किस मुश्किल मे!

इसी बीच, एकाएक, न मालूम कहाँ से, चार फीट का एक गोरा-चिट्टा लडका सामने आ जाता है। वह टेरीलीन की बुश्शर्ट पहने हुए है। खाकी चड्डी है। चेहरा लगभग गोल है। गोरे चेहरे पर भँवो की धुँधली लकीर दिखायी देती है। या उनका भी रग गोरा है।

वह सामने खडे ही खडे एक चमडे के छोटे-से बैग की ओर इशारा करते हुए कहता है, "मा'ब, जरा ध्यान रखियेगा। मैं अभी आया।" एकाएक किसी का इस तरह आकर कुछ कहना मुझे अच्छा लगा। उसकी आवाज कमजोर है। लेकिन, उस आवाज म भले घर की झलक है। उसके साफ-सुथरे कपडो से भी यही बात झलकती है।

मुझे इस स्टेशन पर अभी पाँच घण्टे रुकना है। गाडी रात के साढे-बारह बजे आयेगी।

रुकना, रुकना, रुकना। रुकते-रुकते चलना। अजीब मनहूसियत है!

प्लेटफॉर्म के पास से गुज़रनेवाली लोहे की पटरियाँ सूनी हैं। शण्टिंग भी नही है। पटरियो के उस पार, थोडी ही दूर पर रेलवे का अहाता है, अहाते के उस पार सडक है। शाम के छह बजे ही सडक पर और उससे लगे हुए नये मकानो मे विजलियाँ झलमलाने लगी हैं।

उदास और मटमैली शाम। एक बार टी-स्टॉल पर जाकर चाय पी आया हूँ। फिर कहाँ जाऊँ! शहर मे जाकर भोजन कर आऊँ? लेकिन, यहाँ सामान कौन देखेगा? आस-पास बैठे हुए मुसाफिर फटी चादरो और धोतियो को ओढे हुए, सिमटे-सिमटे, ठिठुरे-ठिठुरे चुपचाप बैठे है। इनके भरोसे सामान कैसे लगाया जाये! कोई भी उसमें से कुछ उठाकर चम्पत हो सकता है।

टी-स्टॉल की तरफ नजर डालता हूँ। इक्के-दुक्के मुसाफिर घुटने छाती से चिपकाये बैठे हुए दिखायी दे रहे हैं। गरम ओवरकोट पहनकर चलनेवाला सिर्फ मैं हूँ, मैं।

अगर कोई भी मुझे उस वक्त देखता तो पाता कि मैं कितने इत्मीनान और *आत्मविश्वास के साथ कदम बढा रहा हूँ। इतनी शान मुझे पहले कभी महसूस* नही हुई थी। यह बात अलग है कि गरम ओवरकोट उधार लिया हुआ है। राजनांदगाँव से जबलपुर जाते समय एक मित्र ने कृपापूर्वक उसे प्रदान किया था। इसमे सन्देह नही कि समाज मे अगर अच्छे आदमी न रहे, तो वह एक क्षण न चले।

सिगरेट पीते हुए मैं मुसाफिरखाने की तरफ देखता हूँ। वहाँ आदमी नही, आदमीनुमा गन्दा सामान इधर-उधर बिखेर दिया गया है। उनकी तुलना मे सचमुच मैं कितना शानदार हूँ।

अनजाने ही मैं अकडकर चलने लगता हूँ, और किसी को ताव बताने की, किसी पर रौब झाडने की तबीयत होती है। इन सब टूटे हुए अक्षरमुखी (प्रेस टाइप) *जैसे लोगो के* बीच मे से गुज़रकर अपने को काफी ऊँचा और प्रभावशाली समझने लगता हूँ। सच कहता हूँ, इस समय मेरे पास पैसे भी है। अगर कोई *भिखारी इस समय आता तो मैं अवश्य ही उसे कुछ प्रदान करता।* लेकिन, भिखारी बेवकूफ थोडे ही था, जो वहाँ आये, वहाँ तो सभी लगभग भिखारी थे।

सोचा कि ट्रक खोलकर *सामान निकालकर कुछ जरूरी* चिट्ठियाँ लिख डालूँ। मैंने एक सम्माननीय नेता को इसी प्रकार समय का सदुपयोग करते हुए देखा था। अभी उजाला काफी था। दो-चार चिट्ठियाँ रगडी जा सकती थी। ट्रक के पास मैं गया भी। उसे खोल भी दिया। लेकिन, कलम उठाने के बजाय, मैंने पीतल का एक डिब्बा उठा लिया। ढक्कन खोलकर, मैंने उसमे से एक शक्कर-लड्डू निकाला और मुँह मे भर लिया। बहुत स्वादिष्ट था वह। उसमे गुड और डालडा भी मिला हुआ था। कि इसी बीच मुझे घर के बच्चो की याद आयी। और मैंने दूसरा लड्डू मुँह मे डालने की प्रवृत्ति पर पाबन्दी लगा दी।

तभी मुझे गान्धीजी की याद आयी। क्या सिखाया है उन्होने? पर-दुख-कातरता! इन्द्रिय-संयम! यह मैं क्या कर रहा हूँ! यद्यपि लड्डू मेरे ही लिए दिये गये हैं और मैं पूर्णत उन्हें खाने का नैतिक अधिकार भी रखता हूँ। लेकिन क्या यह

मच नहीं है कि बच्चों को सिर्फ आधा-आधा ही दिया गया है। फिर मैं तो एक खा चुका हूँ।

पानी पीने के लिए निकलता हूँ। मुसाफ़िर वैसे ही ठिठुरे-ठिठुरे सिमटे-सिमटे बैठे हैं। उनके पास गरम कोट तो क्या, साधारण कपड़े भी नहीं हैं। (उनमें से कुछ बीड़ी पी रहे हैं।) किसी के पास गरम कोट नहीं है, सिवाय मेरे। मैं अकड़ता हुआ स्टॉल पर पानी की तलाश में जाता हूँ।

मैं पूर्ण आत्म-सन्तोष का आनन्द-लाभ करता हुआ वापस लौटता हूँ कि अब इस कार्यक्रम के बाद कौन-सा महान् कार्य करूँ।

दूर से देखता हूँ कि सामान सुरक्षित है। शाम डूब रही है। अँधेरा छा गया है। अभी कम से कम चार घण्टे यहीं पड़े रहना है। एक पोर्टर से बात करते हुए कुछ समय और गुज़ार देता हूँ।

और फिर होल्डॉल निकालकर बिस्तर बिछा देता हूँ। सुन्दर, गुलाबी अलवान और खुशनुमा कम्बल निकल पड़ता है। मैं अपने को अब वाकई भला आदमी समझने लगता हूँ, यद्यपि यह सच है कि दोनों चीज़ों में से एक भी मेरी नहीं है।

ओवरकोट समेत मैं बिस्तर पर ढेर हो जाता हूँ। टूटी हुई चप्पलें बिस्तर के नीचे सिर के पास इस तरह जमा कर देता हूँ कि मानो वह धन हो। धन तो वह हुई है। कोई उसे मार ले ता ! तब पता चलेगा !

गुलाबी अलवान ओढ़कर पड़ रहता हूँ। अभी तक स्टेशन पर कपड़ों के मामले में मुझे चुनौती देनेवाला कोई नहीं आया। (शायद यह इलाका बहुत गरीब है)। यहाँ भी, एक भी खुशहाल, सुन्दर, परिपुष्ट आकृति नहीं दिखायी दी।

कैसा मनहूस प्लेटफार्म है !

मेरे बिस्तर के पास एक सीमेण्ट की बेंच है। वहाँ गठरियाँ रखी हुई हैं। सोचता हूँ, उस पर अपना ट्रंक क्यों न रख दूँ। गठरियाँ नीचे भी टल सकती हैं। ट्रंक उनसे उम्दा चीज़ है, उस साफ़-सुथरी बेंच पर होना चाहिए।

लेकिन, उठने की हिम्मत नहीं होती है। कड़ाके का जाड़ा है। अलवान के बाहर मुँह निकालने की तबीयत नहीं हो रही है, लेकिन नींद भी तो आँखों से दूर है।

विचित्र समस्या है ! खुद ही अकेले में, अपने को अकेले ही शानदार समझते रहो। इसमें क्या धरा है ! शान का सम्बन्ध अपने से ज़्यादा दूसरों से है, यह अब मालूम हुआ। लेकिन, किस मुश्किल से !

इसी बीच, एकाएक, न मालूम कहाँ से, चार फ़ीट का एक गोरा-चिट्टा लड़का सामने आ जाता है। वह टेरीलीन की बुशशर्ट पहने हुए है। खाकी चड्डी है। चेहरा लगभग गोल है। गोरे चेहरे पर भौंवों की धुँधली लकीर दिखायी देती है। या उनका भी रंग गोरा है।

वह सामने खड़े ही खड़े एक चमड़े के छोटे-से बैग की ओर इशारा करते हुए कहता है, "सा'ब, ज़रा ध्यान रखियेगा। मैं अभी आया।" एकाएक किसी का इस तरह आकर कुछ कहना मुझे अच्छा लगा। उसकी आवाज़ कमज़ोर है। लेकिन, उस आवाज़ में भले घर की झलक है। उसके साफ़-सुथरे कपड़ों से भी यही बात झलकती है।

मैं 'हाँ' कह ही रहा था कि उसके पहले लडका चला गया। मैं उसके बारे मे सोचता रहा, न जाने क्या।

आधे घण्टे बाद वह फिर आया। और चुपचाप चमडे के बैंग के पास जाकर बैठ गया। सर्दी के मारे उसने अपनी हथेलियाँ खाकी चड्डी की जेब म डाल रखी थी। मैंने गुलाबी अलवान के नीच से मुँह उठाकर उसे देखा।

भले ही वह टेरीलीन की बुशर्ट पहन हो, वह खूब ठिठुर रहा था। बुशर्ट के नीचे एक अण्डरवीयर था। बस! उसके पास ओढन-विछाने के भी कपड नही थे।

कुछ कुतूहल और कुछ चिन्ता से मैंने पूछा, "तुम ओढने के कपडे लेकर क्यो नही आये? कितना जाडा है! ऐसे कैसे निकल आये!"

[उसने जो उत्तर दिया, उसका आशय यह था कि यहा स करीब पचास मील दूर शहर बालाघाट मे एक बारात उतरी थी। उसमे वह, उसके घरवाले और दूसरे रिश्तेदार भी थे। एक रिश्तेदार वहाँ से आज ही नागपुर चल दिया, लेकिन अपना चमडे का बैंग भूल गया। चूँकि वहाँ वालो को मालूम था कि गाडी नागपुर-वाली उस स्टेशन से बहुत देर से छूटती है, इसीलिए उन्होन इस लडके के साथ यह बैंग भेज दिया।

लेकिन, अब यह लडका कह रहा है कि रिश्तेदार कही दिखायी नहीं दे रहे हैं। वह दो बार प्लेटफॉर्म का चक्कर लगा आया। शायद वे सम्बन्धी महोदय बस से नागपुर रवाना हो गये। और अब चमडे का बैंग सँभाले हुए यह लडका सर्दी मे ठिठुरता हुआ यहाँ बैठा है। वह भी मेरी साढे बारह बजेवाली गाडी से बालाघाट पहुँच जायेगा। यह गाडी वहाँ रात के डेढ बजे पहुँचती है।]

कडाके का जाडा और रात के डेढ। मैंने कल्पना की कि इसकी माँ फूहड है, या वह उसकी सौतेली माँ है। आखिर, उसने क्या सोचकर अपने लडके को इस भयानक सर्दी मे, बिना किसी खास इन्तजाम के एक जिम्मेदारी देकर, रवाना कर दिया।

मैंने फिर लडके की तरफ देखा। वह मारे सर्दी के बुरी तरह ठिठुर रहा था। और, मैं अपने अलवान और कम्बल का गरम सुख प्राप्त करते हुए आनन्द-मगल कर रहा था।

मैं बिस्तर स उठ पडा। ट्रक खोला। उसम से डबलरोटी के दो टुकडे निकाले। फिर सोचा, एक लड्डू भी निकाल लूँ। किन्तु यह विचार आया कि लडका टेरीलीन की बुशर्ट पहन है। फिर लड्डू गुड के हैं। वह उसका अनादर कर सकता है।

उसके हाथ म, डबलरोटी के दो टुकडे और चायवाले से लिया हुआ एक चाय-कप देते हुए कहा, "तुमने अभी कुछ नही खाया है। लो, इसे लो।"

"नहीं-नही, मैंने अभी भजिये खाये हैं।" और लडके के नन्हे हाथो ने तुरन्त ही लपककर उसे ले लिया। उसको खाते-पीते देखकर मेरी आत्मा तृप्त हो रही थी।

मैंने पूछा, "बालाघाट से कब चले थे?"

"तीन बजे।"

"तीन बजे से तुमन कुछ नही खाया?"

"नही तो, दो आने के भजिये खाये थे। चाय पी थी।"

मेरा ध्यान फिर उसके माता-पिता की ओर गया और मैं मन-ही-मन उन्हे गाली देने लगा।

मुझे नींद नही आ रही थी। मैंने लडके से कहा, "आओ, बिस्तर पर चले आओ। साढे-दस बजे उठा दूँगा।"

लडके ने तुरन्त ही चमडे के अपने कीमती जूते के बन्द खोले, मोजे निकाले। सिरहाने रख दिये। और बिस्तर के भीतर पैठ गया।

मैं ट्रंक के पास बैठा हुआ था। लडका मेरे बिस्तरे पर। मैं खुद जाडे मे। वह गरमी महसूस करता हुआ।

किन्तु मेरा ध्यान उस लडके की तरफ था। कितना भोला विश्वास है उस चेहरे पर।

और मैं सोचने लगा कि मनुष्यता इसी भोले विश्वास पर चलती है। और इस भोले विश्वास के वातावरण मे ही कपट और छल करनेवाले पनपते हैं।

मेरे बदन पर ओवरकोट था, लेकिन अब वह कोई गरमी नही दे रहा था।

मैं फिर से टी-स्टॉल पर गया। फिर एक कप चाय पी। और, मनुष्य के भाग्य के बारे मे सोचने लगा। मान लीजिए, इस लडके के पिता ने दूसरी शादी कर ली है। इस लडके की माँ मर गयी है, और जो है, वह सौतेली है। अगर अभी से वह लडके की इतनी उपेक्षा करती है तो हो चुकी अच्छी तालीम! क्या पता, इस लडके का भाग्य क्या हो।

लडके ने मेरी दी हुई हर चीज लपककर ली थी। मुझ पर खूब गहरा विश्वास कर लिया था। क्या यह इसका सबूत नही है कि लडके के दिल मे कहीं कोई जगह है जो कुछ माँगती है, कुछ चाहती है। ईश्वर करे, उसका भविष्य अच्छा बने।

इन्ही खयालो मे डूबता-उतराता मैं अपने बच्चो को देखने लगा जो घर मे दरवाजे बन्द करके भी तेज सर्दी महसूस कर रहे होगे। उनके पास रजाई भी नही है। तरह-तरह के कपडे जोड-जाडकर जाडा निकालते है। इस समय घर सूना होगा और वे मेरी याद करते बैठे होंगे। बच्चे, बच्चे! और उनकी वह माँ, जो सिर्फ भात खाकर मोटी हुई जा रही है, लेकिन चेहरे पर पीलापन है।

मैंने बच्चो को सिखा दिया है कि बेटे, कभी इच्छामय दृष्टि से दुनिया को मत देखना। वह मामूली-से-मामूली इच्छा भी पूरी नही कर सकती। और चाहे जो करो, मौका पडने पर झूठ बोल सकते हो, लेकिन यह मत भूलना कि तुम्हारे ग़रीब माँ-बाप थे। तुम्हारी जन्मभूमि जमीन और धूल और पत्थर से बनी यह भारत की धरती ही नही है, वह है—ग़रीबी। तुम कटे-पिटे दागदार चेहरेवालों की सन्तान हो। उनसे द्रोह मत करना। अपने इन लोगो को मत त्यागना। प्रगतिवाद तो मैंने अपने घर से शुरू कर दिया था। मेरे बडे बच्चे को यह कविता रटा दी थी—

"जिन्दगी की कोख मे जन्मा
नया इस्पात
दिल के खून मे रँगकर!
तुम्हारे शब्द मेरे शब्द

मानव-देह धारण क'
अरे चक्कर लगा घर घर सभी स कह रहे ह
सामना करना मुसीबत का
बहुत तनकर
खुद को हाथ म रखकर।
उपेक्षित काल—पीडित सत्य-गा के यूथ
उदासी से भरे गम्भीर
मटमैल गऊ चेहरे।
उन्ही को देखकर जीना
कि करुणा शान्ति की मा है।
बाकी सब हवा सा है धुआ सा है।

लेकिन यह थोड ही है कि लडका मेरी बात मान हा जायगा। मनुष्य म कैस कैस परिवतन होते हैं। सम्भव है वह थानदार बन जाय और डण्ड चलाये। कौन जानता है!

मैं अपनी ही कविता का मजा लेता हुआ और भीतर झूमता हुआ वापस लौटता हूँ। उस वक्त सर्दी मुझ कम महसूस होन लगती है। बिस्तर के पास जाकर खडा हो जाता हूँ। और गुलाबी अलवान और नरम कम्बल के नीचे सोय हुए उस बालक की शान्त निद्रित मुद्रा को मग्न अवस्था म देखन लगता हू। और मेरे हृदय म प्रसन्न ज्योति जलने लगती है।

कि इसी बीच बैठ जाने की तबीयत होती है। पासवाली सीमेण्ट की बच पर जरा टिक जाता हूँ। और बायी ओर रेलव अहात क पार देखने लगता हू।

बायी ओर बेंच पर रखी गठरियो के पास बठी हुई एक दूसरी आकृति की ओर ध्यान जाता है।

हरी धारीवाली एक सफद शट पहन वह बालक है जो घुटनो को छाती स चिपकाये बैठा है। बाहो स उसने अपन घुटनो को छाती से जकड लिया है और ऊपरवाली बीच की पोली जगह म उसन अपना मुह फसा लिया है। मुझ उसका मुह नही दीखता सिफ उसका सिर और बाल दीखते है। वह न मालूम कब स बैसा बैठा है। और ठिठरा ठिठरा (गठरियो के बीच) वह खुद गठरी बनकर लुप्त सा हो गया है।

अगर मैं अपने लडके को आज रात का सफर कराता तो शायद वह भी इसी तरह बैठता। क्यो बठता! मैं तो उसका इन्तजाम करके भेजता किसी भी तरह क्योकि मेरे कनेक्शन्स (सम्बन्ध) अच्छे है। इस बेचारे गरीब दहाती लडके के सम्बन्ध क्या हो सकते है!

मैं उस लडके को पुन एकाग्रचित्त से देखन लगता हू। उसका मुह अभी तक घुटनो के बीच फँसा है। अपने अस्तित्व को नगण्य और शून्य बनाकर वह किसी नि सग अन्धकार मे विलीन होना चाह रहा है।

मैं उसके पास जाकर खडा हो जाता हू ताकि उसकी हलचल अगर है तो दिखायी दे। लेकिन नही उसने तो अपन और मेरे बीच एक फासला कर लिया है!

लेकिन क्या यह सच नही है कि मैं उसे उठा सकता हूँ मैं उसे कुछ-न-कुछ

उठा सकता हूँ। मैं उसे भी डवलरोटी का एक टुकडा और एक चाय देकर उसके भीतर गरमी पैदा कर सकता हूँ।

मैं उसके पास खडा हूँ। एक क्षण मे नवीन कार्य-शृ खला गतिमान कर सकता हूँ। काम तो यान्त्रिक रूप से चलते हैं। एक के वाद एक।

लेकिन, मैं वहाँ से हट जाता हूँ। फिर बेंच के किनारे पर बैठ जाता हूँ। और फिर, प्लेटफॉर्म की सूनी वत्तियो को देखने लगता हूँ। मेरा मन एकाएक स्तब्ध हो जाता है।

मेरे विस्तर पर सोनेवाला बालक अपने ठीक समय पर आप-ही-आप जाग उठा। तुरन्त मोज़े पहने, चमडे का कीमती जूता पहना, वन्द बाँधे। अपनी टेरीलीन की बुशर्ट को ठीक किया। नेकर की जेब मे स कघी निकालकर वालो को सँवारा।

और विस्तर से बाहर आकर खडा हो गया, चुस्त और मुस्तैद। और फिर अपनी उसी कमजोर पतली आवाज़ मे कहा, "टिकट-घर खुल गया होगा?"

मैंने पूछा, "टिकट के लिए पैसे है, या दूँ?"

"नही, नही, वह सब मेरे पास हैं।" यह उसने इस तरह कहा जैसे वह अपनी देखमाल अच्छी तरह कर सकता हो।

वह चला गया। मुझे लगा कि टेरीलीन की बुशर्टवाले इस वालक को दूसरो की सहायता का अच्छा अनुभव है। और वह स्वय एक सीमा तक छल और निश्छलता का विवेक कर सकता है।

मेरा बिस्तर खाली हो गया और अब मैं चाहूँ तो बेंच के दूसरे छोर पर घुटनो मे मुँह ढाँपे इस दूसरे बालक को आराम की सुविधा दे सकता हूँ।

और मैं अपने मन के नि सग अन्धकार मे कहता जाता हूँ, "उठो, उठो, उस बालक को विस्तर दो!"

लेकिन मैं जड हो गया हूँ। और, मेरे अँधेरे के भीतर एक नाराज़ और सख्त आवाज़ सुनायी देती है, 'मेरा बिस्तर क्या इसलिए है कि वह सार्वजनिक सम्पत्ति बने! [illegible]'

[illegible]

और [illegible]

तरफ़ रवाना होना हूँ।

सीमेण्ट की ठण्डी वेच के किनारे पर घुटनो मे मुँह ढाँपे हुए उस बालक की आकृति मुझे दूर ही से दिखायी देती है। क्या वह सर्दी मे ठिठुरकर मर तो नही गया।

लेकिन पास पहुँचकर भी मैं उसे हिलाता-डुलाता नही, उसे जगाने की कोशिश नही करता, न उसके चारो ओर, चुपचाप, अलवान डालने की कोशिश करता। सोचता हूँ, करना चाहिए, लेकिन नही करता।

आश्चर्य है कि मैं भीतर से इतना जड क्यो हो गया हूँ, कौन-सी वह भीतरी पकड है जो मुझे वैसा करने से रोकती है!

मैं टिकट खरीदने गये टेरीलीनवाले लडके की राह देखता हूँ। वह अब तक क्यों नही आया?

कि एकाएक यह ख़याल पूरे ज़ोर के साथ कौंध उठता है—अगर मैं ठण्ड मे सिकुडते इस लडके को विस्तर दूँ तो मेरी (दूसरो की दी हुई ही क्यो न सही) यह

कीमती अलवान और यह नरम कम्बल, और यह दूधिया चादर खराब हो जायेगी। मैली हो जायेगी। क्योकि जैसा कि साफ दिखायी देता है, यह लडका अच्छे-खासे साफ-सुथरे बढिया कपडे पहने हुए थोडे है। मुद्दा यह है। हाँ, मुद्दा यह है कि वह दूसरे और निचले किस्म के, निचले तबके के लोगो की पैदावार है।

मैं अपने भीतर ही नगा हो जाता हूँ। और अपने नगेपन को ढाँपने की कोशिश भी नही करता।

उस वक्त घडी ठीक बारह बजा रही थी और गाडी आने मे अभी आधे घण्टे की देर थी।

[सम्भावित रचनाकाल 1963-64]

विपात्र

[1]

लम्बे-लम्बे पत्तोवाली घनी-घनी बडी इलायची की झाडी के पास जब हम खडे हो गये तो पीछे से हँसी का ठहाका सुनायी दिया। हमने परवाह नही की, यद्यपि उस हँसी मे एक हलका उपहास भी था। हम बडी इलायची के सफेद पीले, कुछ लम्बे पखुरियोवाले फूलो को मुग्ध होकर देखते रहे। मैंने एक पखुरी तोडी और मुँह मे डाल ली। उसमे बडी इलायची का स्वाद था। मैं खुश हो गया। बडी इलायची की झाडी की पाँत मे हीग की घनी हरी-भरी झाडी भी थी और उसके आगे, उसी पाँत मे पारिजात खिल रहा था। मेरा साथी बडी ही गम्भीरता से प्रत्येक पेड के बॉटेनिकल नाम समझाता जा रहा था। लेकिन मेरा दिमाग़ अपनी मस्ती मे कही और भटक रहा था।

सभी तरफ हरियाला अँधेरा और हरियाला उजाला छाया हुआ था और बीच-बीच मे सुनहली चादरें बिछी हुई थी। अजीब लहरें मेरे मन मे दौड रही थी।

मैं अपने साथी को पीछे छोडते हुए, एक क्यारी पार कर, कटहल के बडे पेड की छाया के नीचे आ गया और मुग्ध भाव से उसके उभरे रेशेवाले पत्तो पर हाथ फेरने लगा।

उधर, कुछ लोग, सीधे-सीधे ऊँचे-उठे बूढे छरहरे बादाम के पेड के नीचे गिरे हुए कच्चे बादामो को हाथ से उठा-उठाकर टटोलते जा रहे थे। मैंने उनकी ओर देखा और मुँह फेर लिया। जेब मे से दियासलाई निकालकर बीडी सुलगायी और उनके बारे म सोचने ही वाला था कि इतने मे दूर से एक मोटे सज्जन आते दिखायी दिये। उनके हाथ मे फूलो के कई गुच्छे थे। वे विलायती फूल थे, अलग डिजाइनो के, अलग रूप-रग के, जो गुजराती स्त्रियो की सादा किन्तु साफ-सफेद साडियो की

किनारियों की याद दिलाते थे।

जाने क्यों मुझे लगा कि वे फूल उनके हाथों में शोभा नहीं देते, क्योंकि वे हाथ उन फूलों के योग्य नहीं हैं। मैंने अपनी परीक्षा करनी चाही। आखिर मैं उनके बारे में ऐसा क्यों सोचता हूँ? एक खयाल तैर आया कि वे सज्जन किसी दूसरे की, किसी दूसरे, अपने 'बड़े' की हूबहू नकल कर रहे हैं; उन्होंने अपने जाने-अनजाने किसी बड़े आदमी के रास्ते पर चलना मंजूर किया है। उनके हाथ में फूल इसलिए नहीं कि उन्हें वे प्यारे हैं, बल्कि इसलिए कि उनका 'आराध्य व्यक्ति' बाग़बानी का शौकीन है और दूर अहाते के पास कहीं वह खुद भी फूलों को डण्ठलों-सहित चुन रहा है।

वे सज्जन मेरे पास आ जाते हैं। मुझे फूलों का एक गुच्छा देते हैं, कहते हैं, "कितना खूबसूरत है!"

मैं उनके चेहरे की तरफ देखता रह जाता हूँ। तानपूरे पर गानेवाले किसी शास्त्रीय नौजवान संगीतकार की मुझे याद आ जाती है। हाँ, वैसा ही उसका रियाज़ है। लेकिन, काहे का? 'आराध्य' की उपासना का!

अपने खयाल पर मैं मुसकरा उठता हूँ, और उनके कन्धे पर हाथ रखकर कहता हूँ, "यार, इन फूलों में मज़ा नहीं आता। एक कप चाय पिलाओ।"

चाय की बात सुनकर वे ठठाकर हँस पड़ते हैं। बहुत सरगरमी से, और प्यार भरकर, अपने सफ़ेद झक कुरते में से एक रुपये का नोट निकालकर मुझे दे देते हैं, "जाइए, सिंग साहब के साथ पी आइए!"

मैं खुशी से उछल पड़ता हूँ। वे आगे बढ़ जाते हैं। मैं पीछे से चिल्लाकर कहता हूँ, "राव साहब की जय हो!"

मैं सोचता था, मेरी आवाज़ बग़ीचे में दूर-दूर तक जायेगी। लेकिन लोग अपने में डूबे हुए थे। सिर्फ़ सिंग साहब हींग की झाड़ी से एक पत्ता मुझे लाकर दे रहा था।

मैंने कहा, "सिंग साहब, तुम्हारा हेमिंग्वे मर गया।"

जगत सिंह स्तब्ध हो गया। वह कुछ नहीं कह सका। उसने सिर्फ़ इतना ही पूछा, "कहाँ पढ़ा? कब मरा?"

मैंने उसे हेमिंग्वे की मृत्यु की पूरी परिस्थिति समझायी। समझाते-समझाते मुझे भी दुःख होने लगा। मैंने कहा, "जान-बूझकर उसने किया ऐसा।"

जगत सिंह ने, जिसे हम सिंग साहब कहते थे, पूछा, "बन्दूक उसने खुद अपने-आप पर चला ली?"

मैंने कहा, "नहीं, वह चल गयी और फट पड़ी। मृत्यु आकस्मिक हुई।"

जगत सिंह ने कहा, "अजीब बात है!"

मैं आगे चलने लगा। मेरे मुँह से बात झरने लगी। "हेमिंग्वे कई दिनों से चुप और उदास था। सम्भव है अपनी 'आत्महत्या' के बारे में सोचता रहा हो, यद्यपि उसकी मृत्यु हुई आकस्मिक कारणों से ही।"

मेरे सामने एक लेखक-कलाकार की संवेदनाओं के, उसके जीवन के, स्वकल्पित चित्र तैरते जा रहे थे। इतने में मैंने देखा कि बग़ीचे के अहाते के पश्चिमी छोर

पर खडे हुए टूटे फव्वारे के पासवाली क्यारी के पास से राव साहब गुजर रहे हैं। उनकी श्वेत धोती शरद् के आतप मे झलमला रही है ''कि इतने मे वहाँ मे घबरायी हुई लेकिन सयमित आवाज आती है, "साँप, साँप !"

मैं और जगत सिंह ठिठक जाते हैं। मुझे लगता है कि जैसे अपशकुन हुआ हो। सब लोग एक उत्तेजना मे उधर निकल पडते हैं। आम मे पेडो के जमघट मे खडे एक बूढे युक्लिप्टस के पेड की ओट, हाथ-भर का मोटा साँप लहराता हुआ भागा जा रहा था।

मैं स्तब्ध-मुग्ध रह गया। क्या मस्त, लहराती हुई चाल थी ! बिलकुल काला, लेकिन साँवली-पीली डिजाइनोवाला ! नौजवान माली हाथ मे डण्डा लेकर खडा था। उस पर वार नही कर रहा था। सबने कहा, "मारो, मारो।" लेकिन वह अडा रहा।

"मैं नही मारूँगा साहब। यह यहाँ का देवता है। रखवाली करता है।"

इतने मे हमारे बीच खडे हुए एक नौजवान ने उसके हाथ से डण्डा छीन लिया। लेकिन तब तक साँप झाडियो म गायब हो चुका था।

एक विफलता और प्रतिक्रियाहीनता का भाव हम सबमे छा गया। साँप के किस्से चलने लगे। वह करैत था या कोब्रा ! वह पनियल था या अजगर ! हमारे यहाँ का जुओलॉजिस्ट ज्यादा नही जानता था। लेकिन हमारे डायरेक्टर साहब लगातार बताते जा रहे थे। आश्चर्य की बात है कि साँप सरदी के मौसम मे निकला, ज्यादातर वे बरसात और गरमी के मौसम मे निकलते हैं। मैं और जगत सिंह उस भीड से हट गये और क्यारियो के बीच बनी हुई पगडण्डियो पर चलने लगे। मैंने जगत सिंह से कहा, "लोग बातो मे लगे हैं। जल्दी निकल चलो। नही तो वे जाने नही देंगे।"

[illegible] रहे हैं।
[illegible] देंगे।"

अब वे हमारे बराबर-बराबर आये और कहने लगे, "साँप के बारे मे तो सब लोग बात कर रहे है। कोई मुझे नही पूछता कि आखिर मैंने उस कैसे देखा, वह कैसे निकला, कैसे भागा।" यह कहकर वे अपने पर ही हँसने लगे।

मैंने कहा, "शायद माली ने उसे पहले-पहल देखा था। क्या यह सच है कि नाग यहाँ की रखवाली करता है ?"

"कहते हैं कि इस बगीचे मे कही धन गडा हुआ है और आज के मालिक के परदादे की आत्मा नाग बनकर उस धन की रखवाली करने यहाँ घूमा करती है। इसलिए, माली ने उसे मारा नही।"

जगत ने कहा, "अजीब अन्धविश्वास है !"

इस बीच हम गुलाब की फूलो-लदी बेल से छाये हुए कुजद्वार से निकलकर लुकाट के पेड के पास आ गये। उधर, अमरक का घना पेड खडा हुआ था। बगीचा सचमुच महक रहा था। फूलो से लदा था। बहार मे आया था। एक आम के नीचे डायरेक्टर साहब के आस-पास बहुत-से लोग खडे हुए थे, जिनके सिर पर आम की डालियाँ छाया कर रही थी। सब ओर रोमैण्टिक वातावरण छाया हुआ था।

मैंने अपने-आपसे कहा, 'क्या फूल-पेड महक रहे हैं ! बगीचा लहक उठा है।'...

"कुत्ते मारकर डाले है पेडो की जडो मे।" यह राव साहब थे।

मैं विस्मित हो उठा। जगत स्तब्ध हो गया।

मेरे मुँह से सिर्फ इतना फूटा, "ऐसा!"

लेकिन जगत ने कहा, "नाग को छोड देते हो और कुत्तो को मार डालते हो!"

राव साहब ने हँसते हुए कहा, "कुत्ते जनता हैं। नाग तो देवता है, अधिकारी है!"

कहकर राव साहब ने मुझे देखा। लेकिन, मेरा मुँह पीला पड चुका था। असल मे उस आशय के वे मेरे शब्द थे, जिसका प्रयोग किसी दिन मैंने किया था। उसका सन्दर्भ जगत नही समझ सका।

मैं तेजी से कदम बढाकर फाटक की ओर जाने लगा। मैंने जगत से कहा, "एक बार मुझे बॉस पर गुस्सा आ गया था। शायद तुम भी तो थे उस वक्त! जब दरबार बरखास्त हुआ तब बॉस की आलोचना करते हुए मैंने कहा कि ये लोग जनता को कुत्ता समझते हैं! राव साहब मेरे उसी वाक्य की ओर इशारा कर रहे थे।"

जगत मेरे दु ख को समझ नही सका। लेकिन मेरे रुख को और बॉस के रुख को, बहुत-से मामलो मे जैसा कि दिखायी दिया करता था, खूब समझता था। उसने सिर्फ यही कहा, 'राव साहब से बचकर रहना, कही तुम्हें गड्ढे मे न गिरा दें।"

[2]

जगत के मन मे राव साहब के सम्बन्ध मे जो गुत्थी थी उसे मैं खूब समझता था। दोनो आदमी दुनिया के दो सिरो पर खडे होकर एक-दूसरे को टोकते नजर आ रहे थे। दोनो एक-दूसरे को अगर बुरा नही तो सिरफिरा जरूर समझते थे। अगर मन-ही मन दी जानेवाली गालियो की छानबीन की जाये तो पता चलेगा कि राव साहब जगत को आधा पागल या दिमागी फितूर रखनेवाला खब्ती जरूर समझते थे। इसके एवज मे जगत राव साहब को कुंजी रट-रटकर एम. ए पास करनेवाला कोई गँवार मिडिलची मानता था। राव साहब जगत के हेमिंग्वे, फ़ॉकनर और फर्राटेदार अगरेजी को अच्छी नजरो से नही देखते थे और उधर जगत राव साहब की गम्भीरता, अनुशासनप्रियता, श्रम करने की अपूर्व शक्ति और धैर्य के सामने पराजित हो गया था। राव साहब जब देखते कि विभिन्न नगरो से हर माह आनेवाले पुस्तको के बण्डल उठाते वक्त जगत का चेहरा बाग़-बाग़ हो रहा है, तो वे खुद अपने ऑफिस की टेबिल से उठकर दो गिलौरियाँ मुँह मे डालते हुए इस तरह मुसकरा उठते मानो उन्होंने किसी बेवकूफ को कृपापूर्वक क्षमा कर दिया है। तब वे व्यग्य स्मित द्वारा अपने हृदय का समाधान कर लिया करते। और जब 'टाइम' या 'न्यूजवीक' के अक जगत के नाम से आते तो वे केवल इस अप्रिय तथ्य को अपने लिए मूल्यहीन समझ, उन्हे अपने टेबिल की दूसरी ओर फेंक देते। यह नहीं कि उन्हें अमरीका से किसी भी प्रकार की कोई दुश्मनी थी, वरन् यह कि वे इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं थे कि नेस्फील्ड ग्रामर और मेयर ऑफ कैस्टर ब्रिज से आगे भी कोई और चीज हो सकती है।

ज्ञान उनके लेखे अगर मोक्ष का साधन नहीं है मुक्ति का सोपान नहीं है तो निस्सन्देह वह किसी भौतिक लक्ष्य की पूर्ति का ही एक साधन होना चाहिए—उसी प्रकार जैसे लकडी से कुत्ते को मार भगाया जा सकता है या सँडसी से जलती सिगडी पर से तवा नीचे उतारा जा सकता है या कन्सेशन का रेलटिकिट खरीद कर कश्मीर जाया जा सकता है। संक्षेप में जो व्यक्ति ज्ञान की उपलब्धि का सौभाग्य प्राप्त करके भी यदि अपने जीवन में असफल रहा आया अर्थात कीर्ति प्रतिष्ठा और ऊंचा पद न प्राप्त कर सका तो उस व्यक्ति को सिरफिरा या दिमागी फितूरवाला नहीं तो और क्या कहा जायेगा। अधिक से-अधिक वह तिरस्करणीय और कम से-कम वह दयनीय है—उपेक्षणीय भले ही न हो।

राव साहब इस वक्त जिस सीढी पर है उसकी अगली सीढी का नक्शा बराबर ध्यान में रखते थे। उस अगली सीढी पर चढने की तरकीबें भी जानते थे और अपना मुह हमेशा उसी तरफ रखते। वे सिर्फ मौजूदा जरूरत के लायक पढ लिया करते। सामाजिक वार्तालाप में पिछड जाने के भय पर विजय प्राप्त करने के लिए वे दो चार अखबार भी रोज देख लिया करते। प्रायः चुप रहते और खूब मेहनत करते। *महाकाव्य के धीरोदात्त नायक की भाँति ही धर्म बुद्धि कर्तव्यपरायणता* और दयाशीलता की सुशिल्पित मूर्ति थे। लेकिन काम पडने पर अवसर के अनुसार पवित्र नियमो से इधर उधर हटकर भी अपना मतलब साध ही लेते।

इसीलिए उनके लेखे जगत मूर्ख था। वह खब पढता। अकेले अँधेरे में पडा रहता। बाहर कम निकलता। बाहर की दुनिया में वह अजनबी महसूस करता। मानसिक रूप से वह कैलिफोर्निया या हार्वर्ड युनिवर्सिटियो के इलाको में घूमता। अमरीकी *साहित्य में वह सचमुच रम चुका था उसी तरह जैसे शक्कर में गुलाब की पखु*रियाँ जिनसे गुलकन्द बनता है। यह कोई गलत बात नहीं थी। कार्ल सैंडबर्ग इत्यादि प्रसिद्ध लेखको के साहित्य ने उस जीवन स्वप्न प्रदान किये थे। वह एक भावुक स्वप्नशील व्यक्ति की भाति उन बातो के अनुसार आचरण और जीवन बनाता जाता था। किन्तु वह यह भूल जाता था कि उन बातो ने जो साहित्य में प्रकट हुइ उनके कर्ताओ को कुछ नहीं दिया। जिसने दिया वह थी उनकी रचना न कि उस रचना का सत्य रचना का *यथार्थ*। जगत विद्वान् था लेकिन *लेखक नहीं था। सिर्फ सचाई आदमी को कुछ नहीं दे पाती सचाई को सामने लाने* के लिए भी जोर और ताकत की जरूरत होती है। ऐसी सचाई जो आदमी में जोर पैदा नहीं कर पाती वह सिर्फ जानकारी बनकर रह जाती है। जगत को सचाई सिर्फ सपना दे जाती थी और लेखक न होने के कारण तथा कार्यकर्ता न होने के कारण या क्रियाशक्ति न होने के कारण वह उन सपनो में डूबकर निस्संग अन्तर्मुख जीवन व्यतीत करता था। कम-से-कम आज तो जगत की यही हालत थी। *यह हो सकता है कि चन्द रोज बाद वह सुधर जाय जिसकी सम्भावना पर किसी के लिए भी सन्देह की गुजाइश नहीं।*

उसके इस एकान्तप्रिय जीवन से हमारे यहाँ कोई खुश नहीं था। लोग समझते कि वह बन रहा है कि अपने को दूसरों से बडा समझने की उसकी आदत है कि हम सब देहाती हैं और वह खास हार्वर्ड या आक्सफोर्ड से डाक्टरेट लेकर यहा चला आया है। पहले-पहल लोग उसकी स्वच्छ अस्खलित अँगरेजी भाषा प्रवाह से दबते

और घबराते। कुछ लोग, जैसे राव साहब, अब भी आतंकित रहते। किन्तु बाकी के लोग, जो खुद बडी डिग्रीवाले थे, उसकी अँगरेज़ी के कारण उस या तो ताववाज, या देश-काल स्थिति को ध्यान मे न रखकर बात करनेवाला बेवकूफ, समझते। अगर वह सचमुच अमरीका से ऊँची डिग्री लेकर लौट आता तो, सम्भव है, लोग उसके रोब मे रहते, लेकिन वह तो जा ही नही पा रहा था। उसके सामने अमरीका जाने की थाली भी परसी गयी थी, लकिन अपने माता-पिता (जो धनी तो थे किन्तु [illegible] दुर्भाग्यपूर्ण विवाह-सस्कार' भी नही जा मका था। वह गरीब [illegible] जा सकता था। वह वहाँ जाने और 'बस जाने' की इच्छा करता था, किन्तु उस इच्छा की पूर्ति के पूर्व घर क झमेलो से निपटने की कला उसके पास नही थी, असल मे वह बच्चा था। ज़िन्दगी का उसके पास तजुर्बा नही था। दुर्भाग्य की बात यह थी कि रूढिवादी घराने म विवाहित होने के झमेलो की एक लम्बी दास्तान न उसकी ज़िन्दगी का रस निचोड लिया था। इस प्रकार अपनी नौजवानी मे ही उसके चेहरे पर असफलता की राख और विरक्ति की धूल का लेप लग गया था। किन्तु इसके विपरीत वह मानसिक-लीला म डूबा रहता। वह सैन्फ्रासिसको के किसी कॉलेज म वाल्ट ह्विटमैन पर भाषण कर रहा है। सारे हॉल मे श्रोताओ के झुण्ड-ही-झुण्ड दिखायी देते हैं। उनमे एक सवेदनशील लडकी भी जो किसी दूसरी या तीसरी बेंच पर बैठी है। वह उसकी ओर खिच रही है। भाषण समाप्त। परिचय। वैचारिक आदान-प्रदान, फिर 'ब्यू मून रेस्तोरॉं'। दोनो एक-दूसरे की सूरत देखना चाहते हैं, आँखे चुराकर वहाँ वह भारत के सम्बन्ध मे पूछती है। वह झेंपते हुए, और बाद मे खुलकर, अपना ज्ञान पहले प्रदर्शित और फिर समर्पित करता है। दोनो का प्रेम हो जाता है, वे विवाहित होते हैं। दोनो अध्यापक हैं · अथवा इनम से एक कोई पत्रकार है! वे सरल स्वच्छन्द उत्साहपूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं फिर वह अपनी 'उस स्त्री' को भारत लाता है—उसका नाम रख लीजिए इरीना! इरीना और वह, ताज़ी-ताज़ी हवा खाते हुए दिल्ली जाते हैं। वहाँ से ट्रेन पकडकर अपने घर-नगर। · अहाता, दरवाज़ा, घर, कमरा—साँवला सूनापन! दो आकृतियाँ—माता-पिता! दोनो आगन्तुक आँसू बरसाते हुए उनके पैर छूते हैं · स्वप्न टूट जाता है और जगत के मन मे अचानक सवाल पैदा होता है—क्या इरीना भी उसके माता-पिता के पैर छुएगी?

राव साहब इन सब बातो को नही जानते हैं। अगर जगत अपनी विशाल ज्ञान-राशि के द्वारा कोई ठोस बडी चीज हासिल करता है, जिससे चारो ओर सम्मान और ऊँची स्थिति तथा धन प्राप्त होता, तो वे नि सन्देह उसकी सफलता पर श्रद्धाजलि चढाते और पीठ-पीछे बुराई करते। लेकिन ज़िन्दगी म ऊँची सीढी प्राप्त न करने के कारण, और उससे जुडे हुए दूसरे कारणो से, मनुष्य को जो एक दुर्दशाग्रस्त स्थिति प्राप्त होनी है वह उसकी कमज़ोर नस है। सभ्यता और शील के कारण [illegible] स्थिति से [illegible] नीचा [illegible] ने पर भी नही छिपा सकते, उसके प्रति जिसके माथ पर असफलता की धूल लगी हुई है।

सही हैं—जहाँ वे तेज होते रहने चाहिए; और एक वे जो गलत हैं—जहाँ वे होने ही नही चाहिए। जैसे राजनीति मे वैसे ही मानव-सम्बन्धो के क्षेत्र मे भी, हमे सही विरोधो को, उनके सही-सही अनुपात मे, सही-सही जगह, और सही-सही ढंग से, जरूर बनाये रखना चाहिए—यहाँ तक कि तेज करना चाहिए। वहाँ झुकने की जरूरत नही है। लेकिन, कुछ ऐसे परस्पर-विरोध होते हैं जो हमारी नासमझी, कम समझी अथवा क्षुद्र अहमूलक स्वार्थ मे उत्पन्न होते है। मानव-सम्बन्ध उलझ इसीलिए जाते हैं कि हम गलत जगह झगडा कर लेते हैं और गलत जगह झुक जाते हैं।

अगर कोई दूसरा शहर होता तो शायद जगत की और मेरी, यदि परिचय होता तो भी, *पट नही सकती थी; जम नही सकती थी।* लेकिन, परिस्थिति दोनो को एक साथ ले आयी। मैं लोगो मे उठता-बैठता। उनसे फिजूल टकराने की कोशिश न करता और सारे समाज में रहकर भी एक अत्यन्त तीव्र निस्सगता और अजनबी महसूस करता। लगभग दो वर्षों के क्रमश बढते हुए प्रारम्भिक परिचय के अनन्तर मैंने जगत की आपेक्षिक निकटता प्राप्त की। और ज्यो ही हमने एक-दूसरे से सामीप्य अनुभव किया और हम साथ रहने लगे, लोगो की नजरो मे भी आ गये और अखरने लगे, इस तरह कि मानो हममे से कोई-न-कोई व्यक्ति आपत्तिजनक हो और दूसरे को अपनी सोहबत से बिगाड रहा हो।

एक बात साफ है कि हमे उस महफिल मे मजा नही आता था, जिसमे विविध प्रकार के भोजनीय पदार्थों से लेकर कैन्सर और ल्यूकीमिया तक, तथा भूतो से लेकर कम्यूनिस्टो तक की चर्चाएँ होतीं। ये महफिलें, जो शाम के पाँच बजे से लेकर रात के बारह-एक तक चलती रहती, उस अभाव का परिणाम थी जिसे अकेलापन कहते हैं। हम जो यहाँ बीस थे, वे, चाहे परिवार मे ही क्यो न रहे, अपने को अकेला, किसी शाखा से कटा हुआ और अधूरा महसूस करते थे और अपने अकेलेपन की वेदना से भागने के लिए, वक्त काटने की एक तरकीब के तौर पर, सामूहिक भोजन, सामूहिक पार्टी, गपबाजी, महफिलबाजी का आसरा लिया करते। लोग भले ही उसका मजा लिया करें, मैं ऐसी बेढगी, बे-जोड और बे-मेल सोसाइटी मे फँसकर बडी घुटन महसूस करता। वही हाल जगत का भी था। फर्क यही था कि मुझे इस तरह अकेलेपन से भागने और वक्त काटने की इच्छा नही रहती थी, न जगत को ही रहती थी। इसलिए, हम लोग 'अनसोशल' कहलाते। क्लब की जिन्दगी अगर सामाजिकता का लक्षण है तो मैं ऐसी सामाजिकता से बाज आया।

लोगो को ताज्जुब होता कि आखिर हम अपना वक्त कैसे काटते हैं। और, जब उन्होंने यह देखा कि ब्रिज, साँपो और भूतो की चर्चा, एक-दूसरे की टाँग खीचने की होड और राजनीतिक गप की बजाय हम घूमने के लिए निकल जाते हैं, और कभी हेमिंग्वे या डिकेन्स अथवा एड्ना विसेन्ट मिले की चर्चा करते हैं, तो उन्होंने अपनी नाराजगी जाहिर की। एक बार जब हम तरह-तरह की चर्चाओं मे विलीन रात को आठ बजे घर लौटने की बजाय साढे नौ बजे के करीब लौटे तो एक ने कहा, "क्यो भई ! जानते नही, भले आदमी रात मे नही घूमा करते।"

और, हम ताज्जुब करने लगे कि आखिर ये ऊँची डिग्रियोवाले लोग जिन्होंने बडी उपाधियाँ प्राप्त की हैं, इतने जड और मूर्ख क्यो है।

दुवले ऊँचे इकहरे बादाम के पेड के नीचे अपने साथियो को झुका हुआ देखकर मैं समझ गया कि उनकी आँखें हरे-कच्चे बादामो को खोज रही हैं, जो या तो आस-पास की क्यारियो की काली मिट्टी मे जम गये, या क्यारियो के बीचोबीच जाने-वाली खुशनुमा पगडण्डी पर गिर पडे है। बादाम के पेड के आगे पूरब-दक्षिण की तरफ़ ऊँची भूरी-भूरी दीवारे दिखायी दे रही हैं। उसकी इस तरफ और बादाम के पेड की उस तरफ मटर और टमाटर की हरियाली फैली हुई है और मैंने देखा कि कुछ लोग वहाँ भी पहुँच गय हैं। उधर बगीचे के दक्षिण की तरफ जो मुँडेर है उसक नीचे लाल कन्हेर की झाडियो के आगे दूर तक तालाब लहरा रहा है, जिसकी मटमैली नीली लहरे, सूरज की किरनो को वापस फेंक रही हैं, और इस तरह चाँदी और काँच के चमचमाते टुकडों की धारदार चमक पैदा कर रही हैं। तालाब के उस पार आम के दरख्तो के नीचे कोई साइक्लि पर तेज चला जा रहा है। एक मन हुआ कि आखिर हम अपन साथियो के पास बादाम के पेड के नीचे क्यो न पहुँच जायें और कुछ मटर जेब मे भर लें। लकिन फिर सोचा कि फिर वे लोग हमारा पिण्ड नही छोडेंगे। यह खयाल मेरे और जगतसिंह के मन मे एक साथ आया। मैंने उससे कहा, "चलो, जल्दी चलो, नही तो अटक जायेंगे।"

यह बात हमारे मुँह स निकली ही थी कि पीछे से एक चोर-आवाज आयी, ऐसी भी क्या बात है, हम भी तो चल रहे हैं!"

तबीयत तो हुई, पीछे घूमकर न देखें, लकिन हम जानते थे कि मोटे तल्लो के बूट हमारा पीछा नही छोडेंगे। बोगनविला के फूलो से लदी हुई मेहराबवाले बगीचे के फाटक तक पहुँचते ही उसने हम पकड लिया और जगत की पीठ पर धाप पड गयी। एक गोरा सुनहरा चेहरा हमे चिढाता हुआ बोल उठा, "बॉस तुम्हे बुला रहे हैं!"

शायद नवागन्तुक ने मेरी आँखो मे क्रोध और घृणा की चिनगारी देखी होगी। तभी उसन एक साँस म कह डाला, "मैं कुछ नही कह रहा हूँ। मैं तो तुम्हे चाय पिलाना चाहता हूँ।"

हम लोग चुपचाप बाहर निकल गये। और पता नही क्यो हममे एक चुप्पी, एक फासला और साथ ही-साथ अपने-अपने अकेलेपन का घेराव बढता गया। मशीन के पहियो की भाँति हमारे पैर दाहिनी ओर मुड गये जहाँ से रास्ता तालाब के किनारे-किनारे आम के दरख्तो के नीचे से चला जा रहा था।

ज्यो ही हम बीस गज आगे बढ़े होंगे, हमारे सुनहले चेहरेवाले साथी ने कहा, "यार, नीचे उतर के चलें।"

अचानक टोके जाने स झुँझलाकर मैं स्तब्ध-सा रुका। मैंने जगत की ओर देखा। वह कटी डाल-सा निजत्वहीन और शिथिल दिख रहा था। मैंने सुनहरे चेहरेवाले साथी से पूछा, "क्यो ?" फिर कहा, 'चलो!" हम नीचे रास्ते को उतरे। उसने कहा, "यह नया रास्ता है!"

जिस रास्ते पर अब तक हम चल रहे थे वह तालाब के बाँध पर बना हुआ था। बाँध के बहुत नीचे एक छोटा-सा नाला बह रहा था, और इधर-उधर घने-घने पेड तितर-बितर दिखायी दे रहे थे। हम अपने को सँभालते हुए नीचे उतर गये और नाला फाँदकर उस ओर जा पहुँचे, जहाँ से एक पगडण्डी शहर की ओर जा रही

थी। फाँद करके मैं नाले की ओर क्षण-भर देखता रहा। वहाँ छोटी-छोटी मछलियाँ आनन्दपूर्वक क्रीडा कर रही थी। ऐसा लगता था कि उनकी क्रीडा को घण्टो तक देखा जा सकता है।

पगडण्डी पर दो ही कदम आगे बढा हूँगा कि सामने लाखो और करोडो लाल-लाल दियोवाला गुलमोहर का महान् वृक्ष मेरे सामने हो लिया। उसके तल मे अध-सूखे, मुरझाये और सँवलाये फूल बिखरे हुए थे। और दो-चार फटी चड्डियो-वाले मैले-कुचैले लडके वहाँ न मालूम क्या-क्या बीन-बटोर रहे थे।

मैंने शहर का यह हिस्सा देखा ही नही था। बायी ओर अस्पताल की पीली दीवार चली गयी थी, जिसके खतम होते ही छोटे-छोटे मकान, छोटे-छोटे घर—मिट्टी के घर—चले गये थे। निस्सन्देह, अस्पताल के पिछवाडे की यह गली थी। दाहिनी ओर खुला मैदान था जिसमे इमली और नीम के पेडो के अलावा छोटे-

[illegible]

हो। सबकुछ चित्रात्मक था। वे छोटे-छोटे खेत। वे इमली के दरख्त जिनके नीचे गायें चर रही थी। और वे नीम के पेड जिनके तले की एक चट्टान पर कोई बेघर, बे-मकान आवारा अपनी मैली-कुचैली गठडी खोल रहा था। उसने हमारी तरफ देखा, हमने उसकी तरफ। उसका चेहरा साँवला, अण्डाकार था। उस पर भोलेपन से भरी हुई एक अजीब मुर्दनी छायी हुई थी। उसने मेरी कल्पना को उकसा दिया। वह कौन था? किसी गरीब का लडका जो घर से भाग गया था और जो शहर मे काम न मिलने से थका-हारा यहाँ बैठा था? अब खेत खतम हो गये। एक नयी सडक की पुलिया दूर से दिखायी देने लगी। बायी तरफ के घर गाँव के गरीबो के थे। बाहर खाटो पर पेडो की छाया मे माँएँ लेटी हुई थी। कुछ लडके ऊधम मचा रहे थे। लेकिन मेरी आँखें एक जगह जाकर ठिठक गयी। एक मैली-कुचैली खाट पर एक बूढे की जिन्दा ठठरी पडी हुई थी और उस ठठरी के दुबले चेहरे की आँखो मे एक ज्योति थी। ऐसी ज्योति जो ममतापूर्वक एक और ठठरी को देख रही थी। वह दो साल के शिशु की ठठरी थी, जिसके सारे बदन पर सलवटें पडी हुई थी और उसके सलवट-भरे बाल-मुख पर वेदना की चीख निःशब्द होकर जड हो उठी थी। वह बूढी ठठरी अपने हड्यिल हाथो से शिशु-ठठरी को खिला रही थी। प्यार करती-सी दिखायी दे रही थी। और वह शिशु इस अनजानी दुनिया को अपनी त्रस्त आँखो से देख रहा था। इस शिशु का चेहरा बिलकुल मैला था, यद्यपि मूलत उसकी त्वचा गोरी रही होगी।

मेरे अवचेतन मे से, अपने अनजाने मे ही, एक जबरदस्त हाय निकली—ऐसी कि सुनहरे चेहरेवाला साथी मुझे थोडे विस्मय से देखने लगा। उसने कहा, "क्या हुआ?"

मैंने कहा, "कुछ नहीं।"

फिर मैं अपने खयालो मे डूब गया। इतने मे गली को पार करती हुई एक गटर दिखायी दी जो ठीक बीच मे आकर फैलकर फूल गयी थी। उसमे का काला-पन भयानक था। उसके काले कीचड मे एक मुर्गी फँस गयी थी और पख फडफडा-कर निकलने की कोशिश कर रही थी।

सुनहरे चेहरेवाले ने मुझसे कहा, "अगर बॉस ने देखा कि हम इस गली मे से जा रहे हैं तो समझ जाइए कि मौत आ गयी ।"
मैंने कहा, "क्यो ?"
उसने कहा, "इस गली मे कमीन लोग रहते हैं और सभ्य लोगों को यहाँ से नहीं गुजरना चाहिए ।"
मैंने कहा, "क्यो ?"
लेकिन यह कहते कहते मेरी भँवें तन गयी, शरीर मे एक उत्तेजना सामने लगी, शायद मेरी आँखो मे भी तेज़ी आ गयी होगी ।
सुनहरे चेहरे ने फिर कहा, "बॉस के अनुसार न सिर्फ यहाँ कमीन लोग रहते हैं, वरन् ऐसे घर भी हैं जहाँ ··"
मैं समझ गया । उसका मतलब था कि यहाँ व्यभिचार होता है ।
मैंने कहा, ' खुलकर कहो ! क्या तुम यह कहना चाहते हो कि यह वेश्याओ का मुहल्ला है ?"
मेरे इस कथन से सुनहरे चेहरेवाले को एक धक्का लगा ! उसने कहा, "कौन कहता है !"
मैंने उलटकर पूछा, "तो फिर क्या ?"
उसने जवाब दिया, "यहाँ 'खुला व्यभिचार' होता है ।"
"होगा ! हमसे क्या ?"
"हमसे क्यो नही ! हम इस विशाल सास्कृतिक केन्द्र के सदस्य है और अगर हम इस गन्दी और कुप्रसिद्ध गली मे पाये गये तो हमारा और हमारे केन्द्र का नाम बदनाम होगा ।"
"तुम्हारी और तुम्हारे बॉस की एसी-तैसी !" यह कहकर मैं चुप हो गया ।
मैं आगे कहता गया, "तुम्हारे बॉस का चाल-चलन भी तो बहुत प्रसिद्ध है ।"
सुनहरे चेहरेवाला नवयुवक बडी षड्यन्त्र-भरी मुसकान प्रकट करने लगा । जगतने उसकी पीठ पर धाप जड दी और वह बोल उठा, "क्यो मार रहे हो, भाई !"
बात असल मे यह थी कि हमारे बॉस, जो इस सास्कृतिक केन्द्र के सर्वेसर्वा हैं, बडी फिक्र के साथ हम लोगो की देखभाल करते हैं । हमे खूब सहायता देते हैं । इस केन्द्र के वे प्रमुख हैं । एवज मे उससे एक पैसा नही लेते । न केवल इस केन्द्र को, वरन् उसके कर्मचारियो को भी, यथाशक्ति सहायता देते रहते हैं । वे हम सबसे प्रेम रखते हैं । चाहते हैं कि हम अच्छे ढग से रहें और यहाँ के सर्वोच्च वर्ग मे गिने जायें । इसलिए वे हमारी चाल-ढाल, कपडे-लत्ते, यहाँ तक कि हमारी गतिविधि पर भी नजर रखते है । शहर मे उनके बारे मे यह कहा जाता है कि वे अपने पुराने पापो को धो रहे हैं ।
वे पाप क्या हैं ? हम लोग नही जानते । किस्सा मुख्तसर यह है कि वे यहाँ की सूती मिल के असिस्टेण्ट मैनेजर थे । यह सूती मिल एक प्रसिद्ध अँगरेज कम्पनी की थी । इन अँगरेजों मे से बहुतेरो के अपने परिवार न थे । वे अँगरेज अफसर नीची जाति की स्थानीय औरतों से प्रेम करते । नौकरानियो के रूप मे वे उनके घर मे रहती । मजा यह है कि (जैसा कि मुझे कई लोगो ने कहा) वे नौकरानियाँ जो उनके यहाँ पहुँच जाती इस बात का अभिमान रखती थी कि वे 'बडो' के 'घर' में हैं । स्वाधीनता के बाद यह मिल जब हिन्दुस्तानियो को बेच दी गयी तो कई

अँगरेजों ने अपनी प्यारी नौकरानियों के लिए बड़े-बड़े घर-मकान बना दिये और उनकी एक जायदाद खड़ी कर दी।

यह किस्सा है। मनुष्य का चरित्र उसकी सगत से पहचाना जाता है। सम्भव है हमारे बॉस की भी इसी तरह की प्रेमिकाएँ रही हों। कौन नही जानता कि इस प्रदेश के एक डिप्टी मिनिस्टर जिनका नाम मैं यहाँ लेना नही चाहता—की एक रखैल यहाँ आलीशान मकान म रहती है जिस शहर के बाहर के एक मुहल्ले मे बनाया गया है। शहर मे किसी से भी पूछ लीजिए, उसके मकान का अता-पता आपको मिल जायगा।

बॉस के विरुद्ध तिरस्कार के कई कारण थे जिनम एक यह भी था कि वे स्थानीय नरेश के एटर्नी रहे। वहाँ खूब आना-जाना रहा। और उसी की (वह अब मर गया है) सहायता स उन्होंने परिश्रम करके यह विद्या-केन्द्र खोला। वे एक बड़ी-सी जमीन के मालिक हैं और कई छोटे-मोटे धन्धों मे उनका पैसा लगा हुआ है। लेकिन, चूँकि वे एक प्रसिद्ध विलायती मिल के असिस्टेण्ट मैनेजर रह आये, इसलिए उन्होंने यहाँ के बहुत-स सेठ-साहूकारो पर उपकार किया। वे उपकार करने की शक्ति रखत थ। लोगो पर अहसान करके उन्ह अपनी कठपुतली बनाने मे बड़ा मज़ा आता था। या यह कहिए कि लोगो को उनकी कठपुतली बनन मे मज़ा आता था। बात दोनो ओर स थी। महत्त्व की बात यह है कि वे कायदे के पाबन्द थे। और कानून के अनुसार काम करन म हिचकिचाते नही थे। यूनियनों म सगठित मजदूर-वर्ग उनसे कभी खुश नही रह सकता था, क्योंकि वह अँगरेज़ो के वफ़ादार नौकर थे। और इसीलिए उनकी चलती भी थी। स्वाधीनता के बाद भी कुछ दिनों तक वे मिल के असिस्टेण्ट मैनेजर रह। लेकिन नये मारवाड़ी मालिक स उनकी नही पटी। उन्होंने नौकरी छोड़ दी। उधर भूतपूर्व मुख्यमन्त्री (जो अब मर गये हैं) से उनकी खूब पटती थी। इसलिए अधिकारी-वर्ग पर भी उनका अच्छा खासा असर था। सक्षेप म, वे इस शहर के बहुत प्रभावशाली और शक्तिशाली लोगो म स थे और पूरे सामाजिक सन्दर्भ को दखते हुए, उनके सम्बन्ध में बहुत-से लोगों की धारणाएँ बुरी होना स्वाभाविक ही था।

यह एक तथ्य है। फिर भी दूसरा तथ्य है कि 'विद्या-केन्द्र' खोलने के साथ-ही-साथ उनका स्वभाव बदलने लगा।

पहले वे बहुत तेज़ मिज़ाज के, ज़िद्दी लेकिन न्यायप्रिय, (प्रचलित न्याय' के सीमित अर्थ में) हालाँकि अपनी करके छोड़नेवाले लोगों मे से थे। उनकी स्त्री बहुत जल्दी मर गयी थी। इसलिए दो बच्चो के पिता होते हुए भी वे अकेले थे। अब जबसे उन्होंने यह विद्या-केन्द्र खोला, उनमे एक अजीब नरमी आ गयी। उनकी सवेदनशीलता इतनी बढ़ी थी कि वे जो पहल आदमी को सूँघकर उसकी पहचान बता देते थे—अब केवल उसकी मुखमुद्रा को देखकर और उसक चेहरे की शिकन देखकर उसके दिल को ताड़ जाते, स्वभाव जान जाते। वे बहुत ज्यादा अकेले थे और उनके सामने यह समस्या बनी रहती थी कि वक्त कैसे काटें। इसलिए वे विद्या-केन्द्र के कर्मचारियो मे बैठकर अपना समय व्यतीत करते थे।

बस, इसी बिन्दु पर छुपे हुए सघर्ष की वह पृष्ठभूमि थी जिसके बिना यह किस्सा समझ म नहीं आ सकता। यह उनकी सवेदनशील मनुष्यता थी जिससे प्रेरित होकर वे अपने साथियो की सहायता के लिए दौड़ पड़ते और अपने नुक़सान

की परवाह नहीं करते थे। वे राजा आदमी थे। वे प्रेम करते थे। और प्रेम की तानाशाही भी उनमें थी, जो शासक-वर्ग की तानाशाही मनोवृत्ति से घुल-मिलकर इतनी एकप्राण हो गयी थी कि यह कहना कठिन था कि वह शासक-वर्ग की तानाशाही है या प्रेम का अधिनायकत्व ! उनके हाथ से जितनी अधिक सेवा और सहायता होती जाती, उनकी मनोवैज्ञानिक रचना में परिवर्तन होता जाता, प्रेम-भाव बढ़ता जाता, और प्रेम की तानाशाही बढ़ती जाती। उनका भोलापन भी बढ़ता जाता। उनकी खुशामद कर, उन्हें विश्वास में लेकर धोखा देना बड़ा ही सरल था, यद्यपि ऐसी कोई वारदात अभी तक हुई नहीं। लेकिन सबको यह बात साफ़ नज़र आ रही थी। लिहाजा, कुछ लोग इसी में जुटे रहते। इतना अच्छा था कि वे इस रहस्य को खूब अच्छी तरह समझते थे, क्योंकि अपने जीवनकाल में उन्हें ऐसों का खूब तजुर्बा मिल चुका था।

और, जैसा कि होता है, वे प्रेम के अधिकार का प्रयोग करते, बहुत निःस्वार्थ भाव से। लेकिन यहीं गड़बड़ भी थी, क्योंकि अब उन्हें अपने प्रेम के अधिकार से दूसरों का जीवन-निर्माण करने में मज़ा आने लगा था। और लोग इस बात के लिए तैयार नहीं थे कि उनके ढाँचे में अपनी ज़िन्दगी फ़िट करें। उनका खयाल था कि खूब अच्छी ज़िन्दगी बनायी जाये, पैसा हो, ठाठ हो, समाज पर असर हो, और हो सके तो अपने हाथों कोई अच्छा काम भी हो जाये। उनके इस खयाल से हमारे यहाँ लगभग सभी एकमत थे। लेकिन जीवन के विभिन्न विषयों पर लोगों के अलग-अलग आचार-विचार थे। एक तरह से देखा जाय तो वे अपनी खुद की ज़िन्दगी से रिटायर हो चुके थे। ज़िन्दगी में ठाठ का मतलब क्या? घर, ज़मीन, जायदाद, ऐश और महफ़िल या दरबार में मसालेदार गपबाज़ी ! सब लोग तो वैसा करने से रहे, क्योंकि उन्हें उतनी तनख्वाह ही नहीं मिलती थी। सिर्फ़ महफ़िल में बैठकर मसालेदार गपबाज़ी ही बच रही थी। सो, लोग करते ही थे। और घर, ज़मीन, जायदाद का मोह, उन्नति का मोह सबको था, बशर्ते कि वह पूरा हो। और, फिर भी आदमी की पसन्दगी-नापसन्दगी, रहन सहन आदि के तरीके अलग-अलग होते हैं। किसी दूसरे आदमी के ढाँचे में वे फ़िट नहीं किये जा सकते। अपनी-अपनी उन्नति की कल्पना भी अलग-अलग होती है।

जो हो, एक ओर उनके अहसान और दूसरी ओर उनके प्रेम से दबकर हम लोग उन्हें अपना 'साथ' प्रदान करते, जिससे कि वे अपना वक्त काट सकें। अपना साथ उन्हें प्रदान करना एक तरह से अनिवार्य कर्तव्य हो गया था। दूसरे, वे भी आज चाय के बहाने, कल पार्टी के बहाने, परसों आउटिंग के बहाने, उसके अगले दिन सिनेमा-फ़िल्म के प्रदर्शन के बहाने, सब लोगों को बुलाकर अपना दरबार लगा ही लिया करते। धीरे-धीरे लोगों को उनके दरबार में जाने की आदत पड़ गयी। जो कर्मचारी उनके दरबार में न बैठता वह अपने को असुरक्षित अनुभव करता, जिन कर्मचारियों को कार्यवश वहाँ जाने को नहीं मिलता, उनके मन में एक गुत्थी पैदा हो जाती कि कहीं ऐसा न हो कि उसकी अनुपस्थिति में कुछ-का-कुछ हो जाये।

इस तरह लोगों में एक अजीब दो-रुखी पैदा हो गयी थी। एक ओर वे दरबार को छोड़कर जाने में हिचकिचाते, तो दूसरी ओर वे चाहते थे कि दरबार न हो तो उन्हें घूमने फिरने की स्वतन्त्रता रहे। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकती थीं। इस प्रकार कभी-कभी वे अपने ही पर झुंझला उठते, कभी नपुंसक क्रोध से

भर जाते। लेकिन वे प्रकट रूप से यह न कहते कि हमें दरबार अच्छा नही लगता। उधर, लगभग रोज लच, डिनर, पार्टी, फिल्म-शो आदि-आदि हुआ करते, और चूँकि सभी लोग निमन्त्रित होते, ऐसा निमन्त्रण अस्वीकार करना भी मुश्किल होता। ये लच या डिनर कभी एक व्यक्ति देता तो कभी दूसरा व्यक्ति, कभी (अधिकाशत वे ही) बॉस। हफ्ते मे, कम-से-कम चार-पाँच बार इसी तरह खाना-पीना होता। यदि कोई हाजिर न हो तो निमन्त्रण देनेवाला खुद बुरा मानता। मतलब यह कि कुल मिलाकर यह हालत थी कि कोई भी जान-बूझकर दरबार में जाना टाल नही सकता, भले ही वह इस लम्बे वक्त से तग आकर बाद मे पीठ-पीछे चिडचिडाये या कुछ करे।

मजा यह कि हर आदमी किसी-न-किसी तरह से बॉस मे अपने समान कोई-न-कोई गुण देख लेता, और भले ही वह उसे कहे या न कहे, इस बात पर खुद फिदा हो जाता था। और हर एक को लगता कि बॉस उस पर व्यक्तिगत रूप से प्रसन्न हैं। शायद इस धारणा को बॉस खुद अपने कर्मचारियो मे बढाते थे। वे अहसान, प्रेम और सग द्वारा दूसरो की गतिविधियो पर शासन कर अपना प्रभुत्व-लोभ पूरा करते थे—ऐसी मेरी अपनी कल्पना है।

दूसरी तरफ उस दरबार का एक सदस्य दूसरे सदस्य से सिर्फ ऊपरी तौर पर मिलता था, क्योकि हम सब लोग बेढगे, बेजोड और बेमेल आदमी थे। जिन्दगी कैसी जी जाये, सब लोगो के अलग-अलग खयाल थ। सब एक-दूसरे स अलग थे और हरएक मे ऐसा गहरा अकेलापन था जिसे काटने के लिए मसालेदार गपबाजी के अलावा कोई दूसरा रास्ता नही दिखायी दे रहा था। महफिलबाजी के बावजूद उनके अकेलेपन की गहराइयाँ बडी ही अँधेरी और निजी थी। इस माहौल मे लोग [illegible] टन के लिए दौडते। एक-दूसर की कैद थी जिसमे प्रत्येक व्यक्ति

और फिर भी किसी मे यह साहस नही था कि इस उलझी हुई गुत्थी को तोडे। क्योकि यह सम्भव था कि यदि काई उसे तोडने की कोशिश करे तो दूसरा आदमी उसके विरुद्ध और अपने हित मे नाजायज फायदा उठा लेता और लोग अपना-अपना हित उसी प्रकार देखते जैसे चीटी गुड को।

इस 'विद्या-केन्द्र' मे किसी को भी विद्यानुराग नही था। यहाँ तक कि पढाने का जो काम है उससे सम्बन्धित बातो को छोडकर, जो व्यक्ति इधर-उधर किताबें टटोलता या अपने विषय मे ही 'रस' लेने लगता, उस विषय मे प्राय. रसमग्न होकर बातचीत करता, सो लोग बुरा मान जाते। समझते कि वह पढाकू हो रहा है। हमारे यहाँ से जो लोग पी-एच डी या डी एस-सी होने गय वे अपने आँकडे समझाकर गये थे। वे सिर्फ पी-एच डी चाहते थे जिससे कि वे अगली सीढी पर चढ सकें। यही क्यो, हमारे यहाँ का जो मव-डिविजनल ऑफिसर था वह खुद डी एस-सी. था जब कि वह पढा-पढाया सब-कुछ भूल चुका था। इस प्रकार 'चाहे जैसे व्यक्तिगत उन्नति प्राप्त करना' एक प्राकृतिक नियम का उच्च और अनिवार्य पद प्राप्त कर चुका था। इन तथ्यो को मैं जरा भी बढा-चढाकर नही कह रहा हूँ। विज्ञानवालो को यह मालूम नही था कि हाल ही मे कौन-कौन महत्त्वपूर्ण आविष्कार हो रह ह, और हिन्दीवालो को यह ज्ञात नही था कि आज-

कल इस क्षेत्र मे क्या चल रहा है ! और जो मालूम भी था वह केवल सुना-सुनाया था, अस्पष्ट था, धुंधला और उलझा हुआ था। और इस बीच हमारे यहाँ के एक 'विद्वान' ने अपने विषय के अपने विश्वविद्यालय के और दूसरे विश्वविद्यालय के तरह-तरह के 'गॅस-पेपर्स' निकालकर एक प्रकाशक स आठ एक सौ रुपया कमा भी लिये थे।

वैसे हम सब नौजवान थे, कई उपाधियो से विभूषित थे अपने विषय के आचार्य माने जाते। एक तरह से हम भोले थे, सरल हृदय भी। हम किसी के दुख से पिघल भी सकते थे, सहायता भी करते थे। लेकिन हममे सामाजिक चेतना नही थी, क्योकि असल मे हम सब लोग हरामखोर थे। और मजा यह कि वैसे [illegible] थे, अच्छे आदमी कहलाते थे। अच्छा

[illegible] ह जाती है—चाहे आप ही आप, चाहे

[4]

हमने उस गली के बीच मे से गटर पार की ही थी कि एक सांवली औरत दिखायी दी जिसका नाक नक्श सगमूसा की चट्टान मे से काटा गया दिखायी देता था। वह इतनी मजबूत थी, उसका स्नायु-सस्थान इतना दृढ था कि लगता उसका चेहरा भी, जिसकी रेखाकृति सरल और निर्दोष थी, उसी शक्ति और दृढता का परिचायक है। कोई भी कह देता कि उसके श्यामल मुखमण्डल पर एक गौरवपूर्ण अभिमान, एक मजबूत गुस्सा और एक थमी हुई रफ्तार है ! मुझ पर उसके सौन्दर्य का (यदि वह सौन्दर्य कहा जाये तो) एक हलका-सा आघात हुआ। और मुझे गोर्की की कहानियो के पात्र याद आन लगे। गुलमोहर के पेड के नीचे जाने क्या बीनते हुए फटे हाल लडके, पेड के नीचे पत्थर पर बैठा हुआ आवारा चेहरा, और अब यह स्त्री-मूर्ति जो मानो सगमूसा की चट्टान काट करके बनायी गयी हो।

सुनहरे चेहरेवाले ने कहा, "यह धोबिन है, मेहनत स उसका शरीर बना हुआ है।"

मेरे मुँह से निकल गया, "चण्डीदास की प्रेमिका।"

जगत ने मुझे सुधारा, "शि , चण्डीदास की प्रेमिका के चेहरे पर इतन कठोर भाव नही हो सकते।"

मै तुरन्त ही अपने आपको सुधारकर कहा, "चण्डीदास की प्रेमिका की बहन तो ह ही सकती है। नही नही। वह तो गोर्की की कोई पात्रा है।"

सुनहरे चेहरेवाला समाजशास्त्री और राजनीतिशास्त्री था। उसने कहा, 'यह मिक्स्ड ब्लड (वर्ण-सकर) है, मेस्टिजो (दक्षिण अमरीका के वर्ण-सकर के समान) है।" और मुझे देखकर वह हँस पडा।

मैं उसका भाव समझ गया। इस शहर की समाजशास्त्रीय लोकप्रक्रिया की ओर उसका इशारा था। यहाँ के, इस क्षेत्र के, इस प्रदेश के मूल देशवासियो ने शायद ही कभी राज्य किया हो। साधारण जनता मूलत किसान थी। वह निचली जातियो से बनी थी। राजस्थान के और पश्चिम उत्तर प्रदेश के, आन्ध्र के और महाराष्ट्र के, लोगो ने आकर यहाँ जमीन-जायदाद बनायी। यहाँ का मध्यवर्ग इन्ही लोगों से बना। और पुराने जमाने से इन लोगो ने जमीन-जयादाद बढ़ाते हुए, यहाँ

थी निम्नवर्गीय स्त्रियों को अपने घर में रखा। और उनसे जो वर्ण-संकर सन्तानें पैदा हुईं वे भी अन्ततः उसी निचली जनता में मिल गयीं। निस्सन्देह इस जनता में भीतर-ही भीतर उच्चवर्गीय हिन्दुओं के प्रति असन्तोष और विरोध का भाव पैदा होता गया और राजनीति के अभाव में उसने पुराने ज़माने में ही सामुदायिक रूप ग्रहण कर लिया। नतीजा यह हुआ कि निचली जातियों में, सुदूर अतीत में ही, सतनामियों और कबीरपन्थियों का ज़ोर और प्रभाव बढ़ा, और आधुनिक काल में ईसाई मिशनरियों का। और अब तो बहुतेरे नव-बौद्ध भी हो गये। फिर भी उस निचली जनता में जो सनातनधर्मी बचे रहे उन्होंने अपना संस्कृतीकरण करते हुए जनेऊ पहनना शुरू कर दिया और अपने बच्चों को आधुनिक प्रकार की शिक्षा-दीक्षा दिलाने का प्रयत्न करने लगे।

उनकी दुनिया ही अलग थी। वह एक अलग ही राष्ट्र था। वह श्यामल जन-समुदाय अपने ढंग से सोचता था। और उनके मुहल्लों-मुहल्लों में, और गाँव-गाँव में, उनके अपने-अपने लीडर हो रहे थे, जो सामने दिखायी नहीं देते थे। राजनीति में उनको दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन राजनीतिक पार्टियाँ वोटों के लिए उन्हीं मुखियों के पास जाती थीं और जीतने के बाद फिर उस श्यामल जन-समुदाय को बड़े ठाठ से भूल जाया करती थीं।

सुनहरे चेहरेवाला हमारा साथी बड़ा मजेदार आदमी था। वह था मारवाड़ी का बच्चा, जिसके कई मकान बीकानेर में थे, लेकिन उसका घर इसी शहर से बहत्तर मील दूर एक गाँव में था। वह बड़ा ही फक्कड़ था। उसे एक जगह चैन नहीं पड़ता था। वह अपने आचार-विचार में, समाज के छोटे और समाज के बड़ों में भेद नहीं करता था। उसकी निरीक्षण-शक्ति अद्भुत थी। वह इस प्रदेश की जनता से घुला-मिला था और यहाँ की लोक-भाषा में ही उनसे बातचीत करता। यह उसके लिए कठिन भी नहीं था क्योंकि बाहर से आया हुआ यहाँ का सारा मध्यवर्ग निचली जाति से व्यवहार करते समय उसी लोक-भाषा का प्रयोग करता।

आता।

अब मुझे समझ में आया कि वह मुझे कहाँ ले जा रहा है। वह हमें इसी प्रकार के एक होटल में ले जा रहा था।

सुनहरे चेहरेवाले ने मुझसे कहा "अब आप हेमिंग्वे भूल जाइए। मैं आपको इस गन्दी जगह में बहुत ही अच्छी चाय पिलाने ले जा रहा हूँ।"

अब सड़क आ गयी थी। होटल सड़क पर ही था। पानवालों की भी तीन दूकानें वहाँ थीं।

हम ज्यों ही होटल में घुसे, जगत ने अपनी फर्राटेदार अँगरेज़ी में कहा, "अगर बॉस ने देख लिया तो वह तुरन्त ही हमें इन्स्टीट्यूशन से निकाल बाहर करेगा। मैं तो मिस्टर भनावत को आगे कर दूँगा। कहूँगा कि यह मुझे वहाँ ले गया था, मैं तो भोला-भाला आदमी हूँ, मैं क्या जानूँ कि वह मुझे किसी डिसरेप्यूटेबिल जगह पर ले जा रहा है।" यह कहकर जगत ज़ोर से हँस पड़ा।

सुनहरे चेहरेवाले ने उसकी ओर आँखें गड़ाते हुए और गन्दी गाली देते हुए

कहा, "जवान बन्द करो। 'डिसरेप्यूटेबिल' तुम हो। साले, तुम्हारा ये 'डिसरेप्यूटेबिल' है, और···और तुम्हारा बॉस···'डिसरेप्यूटेबिल' है और तुम्हारी जेब 'डिसरेप्यूटेबिल' है।"

जगत ने इन गालियों को प्यार के फूलों की बरसात के रूप में ग्रहण करके सुनहरे चेहरेवाले की पीठ थपथपाते हुए कहा, "मेरे उपन्यास का नया अध्याय तुम्हारे चरित्र से और इस होटल से शुरू होगा, मिस्टर भनावत !"

[5]

मिस्टर भनावत एक अजीब शख्सियत रखता था। बॉस ने सबसे ज्यादा अहसान उसी पर किये थे और आज इस 'गन्दे होटल' की 'अच्छी चाय' पीते हुए वह बॉस की कठोर निन्दा कर रहा था। मुझे कुछ खास अच्छा नहीं लगा। मजेदार बात है कि मैं खुद उनकी आलोचना कर जाता था। तब मुझे बुरा नहीं लगता था। लेकिन उसके मुँह से उनकी बुराई सुन मुझे आश्चर्य और दुःख हुआ। मैंने गम्भीर होकर चाय की चुस्की लेते हुए उससे पूछा, "क्यों यार, तुम्हारा क़ानून क्या कहता है ? जो व्यक्ति तुम्हारी सहायता करता है उसकी आलोचना की जाये या नहीं ?"

मिस्टर भनावत को मेरे वाक्य की नोक गड़ गयी। उन्होंने भजिये का कौर मुँह में डालते हुए कहा, "देखो भाई ! अपना बाप भी अच्छाइयों के साथ बहुत-सी बुराइयों का मालिक है। हम बाप की बुराइयों की, यानी बाप की, आलोचना अवश्य करेंगे। आखिर क्यों न करें ? लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम बाप से प्यार नहीं करते। उसके लिए दौड़ जायेंगे। लेकिन उसकी बहुत-सी बातों को देखकर आग-बबूला भी हो जायेंगे, भले ही शाइस्तगी के नाते हम कुछ कहें नहीं।"

मैं मुसकरा उठा। मिस्टर भनावत के पिता, जो एक दूकान पर मुनीम थे, लड़के के हाथ में तराजू पकड़वाना चाहते थे। उन्होंने अपने बेटे को तिजारत के सब 'गुर' बता दिये थे। लेकिन लड़के ने बग़ावत कर दी। अपने पैरों पर खड़े होकर राजनीतिशास्त्र में एम. ए. किया और लोअर-डिवीज़न क्लर्क हो गया। और इस समय वह यहाँ हमारा साथी अध्यापक है।

उसकी बात समझ में आने लायक थी। लेकिन उत्सुकतावश मैंने उससे पूछा, "मान लीजिए कि बॉस को पता चल जाये कि तुम उस गली में बैठे-बैठे उन्हें गाली दे रहे थे ?"

उसने मुझसे कहा, "कोई मेरा दुश्मन ही वैसा करेगा।"

मैंने कहा, "लेकिन, तुम उस व्यक्ति की आलोचना करना बुरा नहीं समझते जिसने तुम पर बहुत-सारे उपकार किये हों ?"

उसने साफ़-साफ़ कहा, "बिलकुल नहीं। आखिर, तुम्हीं बतलाओ, मिस्टर जगत ! किसी दूसरे में जो बुराइयाँ हमें महसूस होती रहती हैं, और काँटे-सी खटकती हैं, उनकी आलोचना क्यों न की जाये ?"

जवाब मैंने दिया, "मनुष्यता यह कहती है कि उपकार का बदला अपकार से न दिया जाये।"

भनावत ने ज़िद करके कहा, "लेकिन आलोचना यदि ग़लत हो तो अपकार

है। उसे उपचार का ही एक रूप क्यों न समझा जाये ?"

मैंने बात और आगे बढ़ायी, "लेकिन बॉस तो वैसा नहीं समझता, दुनिया तो वैसा नहीं समझती, लोग तो वैसा नहीं समझते !"

भनावत ने अब ज़िद पकड़ ली। उसने कहा, "देखो भाई, यह साफ़-साफ़ बात है। *यह हमारे-तुम्हारे बीच की बात है। जानते हो न कि हमारे बॉस साहब कौन हैं ?* इस शहर के नामी गिरामी शैतान हैं। उनके ज़माने में मज़दूरों पर कितनी बार लाठी-चार्ज नहीं हुआ या गोलियाँ नहीं चलायी गयीं ! रियासत के ज़माने में अँगरेज़ पोलिटिकल एजण्ट के कहने से कितने ही कांग्रेसी जेल में सड़ा दिये गये और मार डाले गये। यह सब पुराना क़िस्सा है। लेकिन इस क़िस्से का एक प्रमुख पात्र कौन है—किसके ज़रिये यह सब किया जाता रहा है ? हमारे बॉस के ज़रिये !

' 'आज भी देखो न बग़ीचे में से आँवले तोड़कर ले जानेवाले लड़कों को उस शख़्स ने, जिसे दो कदम चलने में भी तकलीफ़ होती है, कितना नहीं पीटा ! और हमारे दरबार के लोग ताकते रह गये। रिश्वत देना, रिश्वत लेना तो बुराई है न ! उसका प्रयोग करते हुए कितने काम नहीं किये-कराये जाते ! लेकिन चोरी, और वह भी खाने-पीने की चीज़ों की, ज़मीन-जायदाद की, उसके लेखे जघन्य अपराध हैं। सामने के तालाब में फटेहाल लड़के मछली चुराने आते हैं। उन्हें किस तरह ठोका-पीटा जाता है ! क्यों ? इसलिए कि वे फटेहाल हैं, एकदम ग़रीब हैं और उसके लेखे जो फटेहाल हैं, उनके लड़के चोर और आवारा हो ही जाते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक ग्रन्थि है, उसे उसके दिमाग़ का ऑपरेशन करके भी नहीं निकाल सकते।

"यही देखो न ! मैं चाय पीने यहाँ कभी-कभी आता हूँ। मैं यहाँ इसलिए आता हूँ कि मुझे 'यहाँ की चाय' बहुत पसन्द है। लेकिन यहाँ इस गन्दे होटल में जो सब लोग आ-आ रहे हैं, ये उसके लेखे सब कमीन हैं। और कमीन लोग गुण्डे होते ही हैं—यह सब उसकी मान्यताएँ हैं। इसलिए उसने अवन्तीलाल का मेरे साथ यहाँ आना बन्द करवा दिया। और अब वह तुम्हारे भी पीछे पड़ा है। उसके विद्याकेन्द्र का व्यक्ति यहाँ आकर चाय पिये ! राम-राम ! यह तो उस विद्याकेन्द्र की बदनामी है। लेकिन, जानते हो, मैंने इस होटल का क्या नाम रखा है ? 'काफ़े-द-मज़दूर'। क्या बुरा नाम है यह ? मैं मारवाड़ी का बच्चा हूँ और इन्हीं लोगों से ब्याजबट्टा करके, उनकी ज़मीन कुर्क कराके, हमने अपने घर भरे हैं—मैं साफ़-साफ़ कहता हूँ कि इस बुरे काम में हमारा भी हाथ है। हम शैतान के बच्चे हैं। और अब इस समय मैं शैतान का नौकर हूँ। शैतान इसीलिए दूसरे पर मेहरबानी करता है कि वह भी शैतानी ढाँचे में फ़िट हो। मैं इस ढाँचे में फ़िट होने से इनकार कर देता हूँ।"

मैंने उसके लम्बे व्याख्यान पर एक गहरी उसाँस लेते हुए कहा, "लेकिन जब तुम बॉस के सामने हो जाते हो तब तो अपने को तुच्छ समझते हुए उसे महान् मानकर काम करते हो।"

भनावत ने निर्लज्ज होकर जवाब दिया, ' बिला शक ! मुझे वैसा करना ही चाहिए।"

मैं अवाक् हो उठा, "भई, कैसे, क्यों, किस तरह ?"

वह क्षण-भर चुप रहा। फिर उसने कहा, "कहा जाता है कि हममें 'व्यक्ति-

वातन्त्र्य' है। लेकिन यह मान्यता झूठ है। हमे खरीदने और वेचने की, खरीदे जाने की और वेचे जाने की आज़ादी है। हमने अपना व्यक्ति-स्वातन्त्र्य वेच दिया , एक हद तक तो इसलिए···"

जगत झल्ला गया। उसने कहा, "मैं इस बात से इनकार करता हूँ कि हमने अपनी स्वतन्त्रता वेच दी है।"

भनावत अजीव-सा हँसा। मुझे किसी अघोरपन्थी साधु की याद आ गयी। उसने कहा, "तुम क्या समझते हो और क्या नही समझते—इसका सवाल नही है। सवाल यह है कि क्या उस मजलिस मे अपने दिमाग मे उठनेवाले या पहले से उठे हुए खयालो को ज्यो-का-त्यो जाहिर करने की आज़ादी है?"

यह कहकर भनावत जगत की तरफ आँख गडाकर देखने लगा। तो मैंने इस बात का जवाव दिया, "आखिर किसी ने आपको अपने मन की वात कहने से रोका तो नही है!"

भनावत ने चाय पीने की समाप्ति का कार्यक्रम पान खाने से शुरू किया। पान खाते-खाते वह कहने लगा, "तो तुम क्या यह सोचते हो कि अपने मन की बातें साफ़ साफ कहने से आपकी नौकरी टिक पायेगी? अजी, दो दिन मे लात मारकर निकाल दिये जायेंगे। जनाव, यह मेरी चौदहवी नौकरी है। ज्यादा खतरा अव मैं नही उठा सकता। सच कहता हूँ, इसलिए वदमाश कहा जाता हूँ। मैं अव तक व्यक्ति, स्थिति और परिस्थिति को न देखकर वातें करता था। मैं वदमाश था। अव मैं सोच-समझकर, अपने को भीतर छिपाकर, 'मौका' देख करके वात करता हूँ, इसलिए लोग मुझे 'अच्छा' समझते है। सवाल लिखित कानून का नही है। लिखित नियम तो यह है कि व्यक्ति स्वतन्त्र है। किन्तु वास्तविकता यह है कि व्यक्ति को खरीदने और वेचने की खरीदे जाने और वेचे जाने की, दूसरो की स्वतन्त्रता को खरीदने की या अपनी स्वतन्त्रता को वेचने की, आजादी की मजबूरी है। लिखित नियम और वात है, वास्तविकता दूसरी वात। खाने के दाँत दूसरे होते हैं दिखाने के दाँत दूसरे। पूरे यथार्थ को मिलाकर देखिए। मैं तो मारवाडी का वच्चा हूँ। आप कवि लोग हैं। सच्ची आज़ादी उन्हे है, जिनके पास पैसा है। वे पैसो के वल पर दूसरो की स्वतन्त्रता खरीद सकते हैं मैं खुद खरीदता था।"

मिस्टर भनावत के वक्तव्य से हमारा समाधान नही हुआ। अगर मैं वही बात कहता तो दूसरे ढग से कहता। ढग वहुत ही महत्त्वपूर्ण होता है। सच है कि हम श्रम वेचकर पैसा कमाते हैं। लेकिन श्रम के साथ ही साथ हम न केवल श्रम के घण्टो मे, वरन् उसके वाहर भी, अपना-अपना सघर्ष स्वातन्त्र्य, विचार-स्वातन्त्र्य और लिखित अभिव्यक्ति स्वातन्त्र्य भी वेच देते हैं। और यदि हम अपने इस स्वातन्त्र्य का प्रयोग करने लगते हैं तो पेट पर लात मार दी जाती है। यह यथार्थ है। इस यथार्थ के नियमो को ध्यान मे रखकर ही पेट पाला जा सकता है, अपना और वाल-बच्चो का।

तो क्या, भनावत सचमुच ठीक कहता है? क्या मेरी अपनी उन्नति के लिए, समाज मे मेरी वढती के लिए, मुझे भी उसी तरह अपनी पूँछ हिलानी पडेगी? वास्तविकता यह है कि अलग-अलग लोग, अलग-अलग ढग से पूँछ हिलाते हैं। मेरा भी पूँछ हिलाने का अपना तरीक़ा है। मैं पहले अपने पजे मालिक की गोद मे रख दूँगा, और फिर दाँत निकालकर मालिक के मुँह की तरफ देखते हुए पूँछ

हिलाऊँगा। दूसरे कुत्ते, दरवाजे मे खडे होकर पूँछ हिलाते हैं। कुछ कुत्ते पास आने की लगन बताते हुए बीच-बीच म भौकते है, गुर्राते है, और पूँछ हिलाते रहते है। मतलब यह कि स्थिति-भेद और स्वभाव भेद के अनुसार पूँछ हिलाने की अलग-अलग शैलियाँ ह। तो मैं यह नही कह सकता कि मै पूँछ नही हिलाता। लेकिन, यह जरूर है कि मैं अपने मालिक के प्रति समर्पित नही हो पाता, जिस प्रकार राव साहब है, न अपन को उनके सामन तुच्छ दखता हूँ। होना तो यह चाहिए कि साफ-साफ कहूँ। लकिन, सवाल यह है कि झगडा कौन माल ले, हम क्या मतलब, हमसे क्या काम है।

लेकिन भनावत ? भनावत बदमाश है। वह यह धोखा खडा करना चाहता है कि वह उनका है। लेकिन मैं ऐसा नही कर सकता।

और फिर भी भनावत ने जो बाते कही उनम बहुत कुछ सार दिखायी दिया।

हम ज्यो ही पान खाकर रास्ते पर चलने लगे, मैंने भनावत से कहा, ' मिस्टर हम जरा घूमत हुए आयेंगे तुम इधर से निकल जाओ।"

उसने जवाब दिया, क्यो इण्टरनेशनल बातें करनी है ! खैर, जाओ। लेकिन वो लाग मुझे क्या कहेंगे ! खैर, जाओ, मैं कह दूंगा कि व इण्टरनेशनल बातें करने निकल गय हैं।"

[illegible] क़दम इधर-उधर [illegible] कोई जवाब नही [illegible] होना चाहता है, जिसस कि वह फिजूल की बातचीत का विषय न बने।

[6]

भनावत जब आगे के चौराह पर पहुँच गया होगा तब हम बिजली के चार-खम्भे के पीछे धीरे धीरे पैर बढा रहे थे। मैं बहुत उदास हो गया था, दिल भारी हो उठा था, लगता था कि पैर आगे नही उठ रहे हैं, अगर वही कही कोई बैठने की जगह [illegible]

मुझे गालिब के शेर याद आये—

'कोई उम्मीद बर नही आती,
कोई सूरत नज़र नही आती।
मौत का एक दिन मुअय्यन है
नीद क्यो रात भर नही आती।'

अपने बचपन और नौजवानी मे ऐसे ही किन्ही क्षणो म, मुझे मृत्यु के अँधेरे म चिरकाल के लिए समा जाने की इच्छा होती थी। लेकिन अब मैं इस प्रकार के कल्पना-विलास की सुविधा नही उठा पाता। मुझे इन जलते रेगिस्तानो पर पैर रखते हुए ही चलना है।

लेकिन मुझे अब आगे चलना दूभर हो गया। सामने अँधेरे म एक सिन्धी की चाय की दूकान पडती थी। उसके भीतर के कमरे म एकान्त था। उस एकान्त

के लिए मैं तडप उठा। एकान्त मेरा रक्षक है। वह मुझे त्राण देता है और बहते हुए खून को अपने फावे से पोछ देता है। जगत मेरी इच्छा समझ गया। अँधेरे भरे एकान्त कमरे मे जिसके ऊपर एक रोशनदान से धुँधला प्रकाश आ रहा था, हम दोनो जाकर धप्-से बैठ गये। और लगभग दस मिनट तक चुपचाप बैठे रहे। पानी पिया और उसके बाद एक-एक कप चाय।

मैंने जगत से कहा, "हम कितने अकेले है। जीवन मे कही कोई 'मीनिंग,' कोई अर्थ चाहते हैं, और वह भी मिल नही पाता।"

जगत ने अँगरेज़ी मे कहा, "यह इसलिए है कि हममे सकल्पशक्ति नही है। अगर हम इन्हें दुतकार दें तो ये हमारा क्या कर लेंगे ?"

मैं पल-भर चुप रहा। फिर कहा, "दुतकारना आसान है। मेरी भी यह पन्द्रहवी नौकरी है। लेकिन पेट पालना बहुत मुश्किल है। मेरे घर मे सारे दुर्भाग्य मौजूद हैं—लम्बे-लम्बे रोग, भारी कर्ज, कलह और मानसिक अशान्ति बीसियों साल से घर किये बैठे है। उन्होने मुझे भी चुना है। बाल-बच्चो को सडक पर फेंक-कर भले ही मैं कुछ कर जाऊँ, लेकिन मैं इतना कठोर नही हो पाता, शायद कोई भी नही हो सकता।" मैंने जगत से कहा, "हमें अपने वर्ग मे रहने का मोह है, निचले वर्ग मे जाने से डर लगता है। लेकिन क्रमशः हमारी स्थिति गिरते-गिरते उन-जैसी ही होती जाती है।···तो वहाँ सहर्ष ही क्यो न पहुँच जाये। लेकिन वहाँ भी मुक्ति नही है, क्योकि उस स्थान पर उत्पीडन घोरतर है।···

"और फासले ? कितने फासले है, हमारे और तुम्हारे बीच मे, तुम्हारे और बनावट के बीच मे, बनावट के और किसी के बीच मे। ये दिल मिलने नहीं देते।"

और ठीक इसी क्षण मे जगत न मालूम किस स्फूर्ति से चल-विचल हो गया। वह बीच मे कूद पडा। उसने मेरे आत्म-निवेदन मे हस्तक्षेप किया और कहने लगा, "अमरीकी लेखको ने भी इसी तरह की परिस्थितियो का सामना किया है। यह कोई नयी परिस्थिति नही है।"

मैं सिर्फ हँस दिया, यद्यपि जगत की बात मे सत्य था।

और फिर हम मशीन की भाँति वहाँ से उठ खडे हुए। कोई निश्चय—अस्पष्ट और अधूरा—मेरे दिमाग मे चल-विचल होने लगा।

मैंने मुँह लटकाकर रास्ते मे जगत से कहा, "आदमी-आदमी के बीच के फासले दूर कैसे होंगे ?"

जगत ने एक गहरी साँस ली। उसने कहा, "उनको बातचीत से दूर नही किया जा सकता, क्योकि वहाँ तरह-तरह के भेदो के दलदल हैं।"

तब मैंने मानो ज़ोर से चीखकर कहा, "हाँ, हमें इस दलदल को सुखाना होगा। लेकिन उसके लिए तो किसी ज्वालामुखी की ही आग चाहिए।"

बातचीत और भी थकाये डाल रही थी। एक अबूझ और बेपहचान दर्द भर रहा था। लगता था, हम किसी अँधेरी सुरंग मे भटकते-भटकते अब यहाँ पहुँचकर एक दीवार का सामना कर रहे हैं, जिसके आगे रास्ता नही है।

[7]

ज्यो ही हम बग़ीचे मे वापस पहुँचे, दूर से दिखलायी दिया, दरबार लगा हुआ है।

भाँति मोटी गरदनवाले अर्थशास्त्री से प्रश्न पूछा गया, (पूछनेवाले स्वय बॉस थे) "बताओ तुम कितने रसगुल्ले खा सकते हो ?"

मिस्टर रामभोज ने कहा, "यही, लगभग दो सेर।"

बॉस ने कहा, "तीन सेर खाओगे?"

रामभोज ने कहा, "नही, इतना नही खा सकते।"

"अच्छा, तुम्हे पाँच रुपये दूँगा, अगर तुम इतना खा जाओ तो।"

"नही सा'ब, इतनी कम कीमत मे इतनी तकलीफ नही उठायी जा सकती।"

"अच्छा, दस रुपये दूँगा।"

मोटी गरदनवाले महोदय एकदम उठ खडे हुए और कहने लगे, "एकदम तैयार हूँ, इतनी मिठाई तो बचपन मे खा जाता था।" और ठहाका मारकर हँसने लगे।

मिस्टर रामभोज के लिए तीन सेर, हम सब लोगो के लिए दो सेर, मिठाई का ऑर्डर दिया गया।

यद्यपि लोग उकताये हुए थे (क्योकि इसी तरह की बातें ज़रा उलट-फेर के साथ रोज़ चलती थी), मिठाई की प्रतीक्षा म बैठे रहे और उठ पडने के ज़बरदस्त मोह को दबा गये।

कि इतने मे ··

दूर से, एक चमकदार आदमी और उसके साथ दो-तीन आदमी और आते दिखायी दिये। वे अभी बोगनविला मे लदे फाटक के पास ही थे। चमकदार आदमी, काला महीन ऊनी पैण्ट और सफ़ेद बुश-कोट पहने हुए ऊँचा गोरा-चिट्टा व्यक्ति था। उसका चेहरा लम्बा था, जिस पर कुलीन आभिजात्य की आभा फैली हुई थी, जो उसकी आत्म-विश्वासपूर्ण चाल-ढाल, मज़ाक-भरी मुसकराहट और उँगलियो मे फँसी सिगरेट की राख झिडकने की तरकीबो से प्रकट हो रही थी। काले फ्रेम के चश्मे के ऊपर, दो-चार रेखाओवाले माथे के नीचे घनी-घनी भौहे थी और कान के ऊपर दो-चार लम्बे बाल ऊँच उठे थे। वह इस तरह चल रहा था जैसे यहाँ का सारा इलाका उसी का है। वह लम्बी आसान डगें बढाता हुआ चला आ रहा था।

उसके पीछे एक छोटे कद का गोरे रग का पचास-साला आदमी चल रहा था, जिसके आगे के दाँत टूटे हुए थे। उसका छोटा लम्बा चेहरा पान की पीक से भरा था। वह खद्दर की पोशाक मे लैस यहाँ का कांग्रेसी एम एल. ए. था। उसकी चाल-ढाल ऐसी थी कि लोगो को यह भय था कि कही फिर से यहाँ का चुनाव न हो।

उसके पीछे एक लम्बा काला पहाडी कद का आदमी चल रहा था जिसका हर अग सुडौल, मज़बूत और भरा-पूरा था। उसके चेहरे पर चिकने पत्थर की कठोर स्निग्धता थी। साथ ही उसका मुख-मण्डल चमचमा रहा था। यद्यपि वह मुँह पर तेल नही लगाता था, लेकिन चेहरा तेलिया दिखता था। वह पैण्ट और बुश-कोट पहने हुए था। उसकी पोशाक गन्दी थी। वह ईसाई मोटर-ड्राइवर था। नये आगन्तुको को देखकर हममे से कुछ लोग बेचैन होने लगे, कुछ अपनी सीट छोडकर बेचैन होना चाहने लगे। नीले रूमालवाली मोटी गरदन ने इधर-उधर ताकना शुरू किया। मैं सबसे पहले उठकर मीटिंग भग करने की पहलकदमी करते हुए एक

पेड की छाया मे चहलकदमी करने लगा। धीरे-धीरे इधर-उधर देखकर किसी-न-किसी गुन्ताडे या बहाने से लोगो ने उठना शुरू किया।

मेरे पास जगत, भनावत और राव साहब आकर खडे हो गये। राव साहब की चाँदी की डिबिया खुल गयी। पान की लूट मची। हर आदमी ने दो-दो गिलौरियां मुँह मे जमायी—यहाँ तक कि जगत ने भी। डिब्बा खाली होते देख हम सब प्रसन्न होकर हँसने लगे।

मुझे राव साहब का लाड आ गया। मैंने उन्हे एकाएक छाती से चिपका लिया और उनके सामने उनका दिया एक रुपया वापस करते हुए कहा, "भनावत ने चाय पिला दी थी। मेरे पास भी चिल्लर थी। यह लीजिए, आपका एक रुपया वापस।"

"रखो न भई, रखो न भई। अभी तो बहुत जरूरत पडेगी।"

मिस्टर भनावत ने उद्दण्डतापूर्वक उसे छीनना चाहा और कहा, "समझते नही होंगे! अभी तो भोजन भी नही हुआ है। इस समय साढे-बारह बजे हैं। महफिल चलेगी रात के कम-से-कम दस बजे तक। रुपया तो अपने को लगेगा ही—घूमने घामने के लिए।"

राव साहब पान चबाते हुए प्रेम-पूर्वक भनावत के चित्तविल्लेपन को देख रहे थे। उसकी नोक उन्हें कई बार गड चुकी थी। लेकिन वे अब उसका आनन्द भी लेते थे।

असल चीज यह है कि मिस्टर भनावत लोगो के ऐब देखने मे बहुत होशियार थे। अगर ये सिर्फ ऐबो को देखते रहते तब भी कोई बात नही थी, वे उन कमजोरियो को अपने क्रीडा-व्यवहार का विषय बनाते। यह बडी खतरनाक बात थी। ऐसे लोग दुश्मन पैदा कर लेते हैं। और अगर यहाँ उनके कोई शत्रु नही हुए तो इसका कारण यही था कि यहाँ के लोग अत्यन्त सदाशय थे और किसी की चार बातें सह लेना जानते थे।

भनावत ने बताया, "यह जो बॉस के पास बैठे हुए सुनहरे और ऊँचे-पूरे व्यक्ति हैं, जो बुश-कोट पहने हुए हैं और बडी अदा-ओ-अन्दाज के साथ सिगरेट पी रहे हैं, वे यहाँ के एक रईस है। अपने शहर के पास की जमीदार (विधवा स्त्री है वह) के दीवान के वे लडके हैं। उनकी अपनी कोई कमाई नहीं, उनकी अपनी कोई मेहनत नही है। उन्होंने सिर्फ विधवा जमीदारिन के साथ मेहनत की है (हम सब लोग हँसते हैं) उसी का शुभ परिणाम वे भोग रहे हैं। शहर मे पूछ लीजिए, उनके अपने घरवालो से पूछ लीजिए, वे सब वही कहानी बतायेंगे, क्यों राव साहब?"

राव साहब को काटो तो खून नही। वे स्तब्ध हो उठे। और कुछ नही बोले। भनावत आगे कहता गया, "यहाँ के कई रईसो को बिगाडने और धूल मे मिला देने का कार्यक्रम उन्होंने सफल करके दिखाया। कई रईस उनकी सोहबत मे प्रसिद्ध शराबी और रण्डीबाज होकर चोपट हो गये। अब वो अपने बॉस के साथ बिजिनस करना चाह रहे हैं। हर तीसरे साल कार बदलते हैं और [illegible]।"

राव साहब ने खखा [illegible]

का एक विस्फोट किया [illegible]

भनावत ने कहा, "

राव साहब बोले, "वो बॉस के सामने टिक नही सकते। ''बिज़िनेस बिज़िनेस है!"

मुझे इस बातचीत से वितृष्णा हो उठी। मुझे बिज़िनेस नही दीखता था, वरन् मानव-समुदाय दीखते थे जो विशेष-विशेष स्वार्थों और हितो की दिशा मे कार्य-शील थे। मुझे मानव-समुदायो मे के खास व्यक्ति और उनके व्यक्तित्व, उनके परस्पर-सम्बन्ध और उनकी जीवन-प्रणाली दीखती थी। मन मे उत्पन्न वितृष्णा-जनक जीवन-चित्रो से मुक्ति पाने के लिए मैं वहाँ से हट गया और दूर फव्वारे की तरफ देखने लगा, जिसके कुण्ड मे सिर्फ गली मिट्टी और सडा हुआ पानी था, जिसकी भीतर गयी सीढियो पर हाँफते हुए मेढक अपनी भद्दी, खुली-खुली, चमकीली बटन-नुमा आँखो से दुनिया को देख रहे थे। मैंने कई बार कहा था कि इस फव्वारे को चालू कर दिया जाये और उसकी टोंटी सुधार दी जाये और कुण्ड साफ किया जाये। लेकिन किसी ने मेरी बात नही सुनी।

फव्वारे के कुण्ड से हटकर बॉस की खुशनुमा मेहराब पर चढी गुलाब की बेल के नीचे गुज़रता हुआ मैं बूढे युक्लिप्ट्स के उस पेड की ओर जाने लगा जिसका तना, सिर्फ तना, आम के दरख्तो से ऊपर निकल आया था, और जिसकी शाखाएँ आकाशोन्मुख होती हुई फैल गयी थी। वही हरी चम्पा (मदनमस्त) के छोटे पेड थे, जिनकी घनी टहनियाँ प्रसन्न और शान्त दिखायी दे रही थी। इस आशा से कि मैं उसका एकाध फूल तोड सकूँगा, वहाँ पहुँचा ही था कि उस पेड के पीछे से टेरिलिन की पैण्ट पहने हुए गठियल, ठिगने, कजी आँखवाले दर्शनशास्त्री का चमकीला चेहरा सामने आया, जिस पर उदासी और उकताहट की मटमैली आभा फैली हुई थी। मुझे देखकर अपने शरीर को ढील दे वे एक पैर पर ज़ोर देकर खडे हो गये और चिन्ताशील आँखो से मुझे देखने लगे।

मैंने उनसे हाथ मिलाया और उस हाथ मिलाने मे ही मुझे मालूम हो गया कि, पल-भर के लिए ही क्यो न सही, दिल मिल गया है। मैं क्षण-भर के लिए उन उदास शिथिल कजी आँखो के कत्थई सितारे देखने लगा कि इतने मे उसने अँगरेज़ी मे कहा, "मान लीजिए कि यहाँ एक हत्या हो गयी है"

चौंकते हुए मैंने जवाब दिया, "कितना बुरा विचार है!"

उसने कह डाला, "लेकिन कितना मौज़ूँ है। हम तो सा'ब खयालो की मौज़ूनियत देखते हैं।"

मैं मुसकरा उठा। किसी की हत्या हो या न हो, हमारी तो हो ही रही थी। यह साफ था। और मुझे देवकीनन्दन खत्री के उस तिलिस्म की याद आयी जिसमे से बाहर निकलना असम्भव था, लेकिन जिसके भीतर के प्रागणों मे बग़ीचे भी थे, तहखाने भी थे और जिसमे कई नवयुवतियाँ और किशोरियाँ गिरफ्तार रहती थी। वे घूम-फिर सकती थी, तिलिस्मी पेडो के फल खा सकती थी, लेकिन अपनी हद के बाहर नही निकल सकती थी। ये हदें वे दीवारें थी जो पहले से ही बनी हुई थी और जिनको तोड पाना लगभग असम्भव था, अथवा जिन्हे तोडने के लिए अपरि-सीम साहस, कष्ट सहन करने की अपार शक्ति, और धैर्य तथा वीरता के अतिरिक्त विशेष कार्य-कौशल और गहरे चातुर्य की जरूरत थी। मेरी आँखो मे उस गहरे अँधेरे तिलिस्म के तहखानो और कोठरियो के बाहर के मैदानो मे घूमती हुई लाल-पीली और नीली साडियाँ अब भी दीख रही हैं, उनके मुरझाये गोरे कपोल और

ढीली बँधी वेणियों की लहराती लटें भी दीख रही हैं, और मन-ही-मन मैं कल्पना कर रहा हूँ कि क्या यहाँ फैले हुए बहुत-से लोगों की आत्माएँ इसी प्रकार की तो नहीं हो गयी हैं। ''लेकिन प्रश्न तो यह है कि यह तिलिस्म कैसे तोड़ा जाये!

मुझे अपने में खोया जान दर्शनशास्त्री ने पूछा, "कहाँ गुम हो गये हो? लो, यह फूल लो!"

मदनमस्त का फूल सचमुच खूब महक रहा था। उसकी मीठी मीठी महक दिल की राख पर फैल तो गयी लेकिन ज़हरीली हो गयी और उस ज़हर को मैं धीरे-धीरे सूँघता रहा।

दर्शनशास्त्री मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया और मेरा हाथ पकड़ बग़ीचे की उस मुँडेर की ओर जाने लगा जहाँ हमारे मकानों के पिछवाड़े में लगे हुए केले के लम्बे-लम्बे चमकदार पत्तोंवाले झाड़ झूम रहे थे। उसने मुझे अपने विश्वास में लेते हुए कहा, "सुनो, मैं जल्दी ही यहाँ से चला जाऊँगा!"

"सचमुच?"

"हाँ।"

मैं एकदम चुप रह गया। अपने अकेलेपन का दुःख मुझे गड़ उठा। मुझे अभी से उस स्थिति की याद आने लगी, जब वह चला जायेगा और मैं निस्संग रह जाऊँगा। (यद्यपि मैं उसके साथ के बावजूद अकेला था!)

मैंने दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रा से कहा, "तुम जवान हो, तुम्हें तो ज़िन्दगी में ज़रूर साहस करना चाहिए और नयी तलाश में जाना चाहिए। लेकिन ''मैं? मैं कहाँ जाऊँगा! मेरे सात बच्चे हैं और माता-पिता की भी ज़िम्मेदारियाँ हैं। रोग, क़र्ज़ और तरह-तरह की उलझनें मुझ पर हैं!" और मैं उसाँस लेकर चुप हो गया।

दर्शनशास्त्री कुछ नहीं बोला। वह मेरे घर की हालत जानता था। और मेरे सामने अब यह सवाल था कि मैं कहीं अगले संघर्षों में ही टूट तो नहीं जाऊँगा! क्योंकि अब मेरा शरीर भी साथ नहीं देता। तो क्या मैं अब यहीं बैठा रहूँ?

और मेरे सामने, आज के यथार्थ के काले भयानक अँधेरे चित्र आने लगे, मुझे वह आदमी याद आने लगा, जो परदेश में सालों से बीमार रहा, लेकिन अपने स्नेहियों से सिर्फ़ अपनी लाश उठवाने के लिए, अन्तिम क्षण में उनके स्पर्श के लिए, तरसता हुआ देश आ गया। और फिर उसी कुट्टर में रहने लगा, जहाँ वह पहले रहता था, और अपने कुट्टर-वास के दो दिन बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। मैं आज से दस साल पहले अपने दफ़्तर जाते वक़्त उस रास्ते से गुज़रता जिस पर उस मिट्टी के अँधेरे कुट्टर का दरवाज़ा खुलता था, और मेरी आँखें उस व्यक्ति की ओर आकर्षित हो चुकी थीं, क्योंकि वह एकदम पीला पड़ गया था और पाँव पसारे हुए हाथ के बल चलता था। कहीं ऐसी दशा मेरी भी न हो! हाय!

''कि इतने में किसी पेड़ से टूटा एक पत्ता मेरे शरीर पर आ गिरा। मैंने अनजाने ही उसे उठा लिया और उसके घने-हरे रंग में टहलती हुई नसों को देखने लगा। उसमें जवानी थी। नया रक्त था। मुझे उस पत्ते को चूमने की और अपने गालों पर उसे लगा लेने की तबीयत हुई गोकि मैंने संकोचवश वैसा किया नहीं।

इतने में जगत पीछे से दौड़ता हुआ आया और उसने हाँफते हुए समाचार दिया, "रूस ने एक और आदमी आसमान में छोड़ दिया! टिटोव! वह अब तक

अठारह बार प्रदक्षिणा कर चुका है !"

दर्शनशास्त्री मिस्टर मिश्रा और जगत की होड लगा करती थी। मिश्रा ने पूछा, "तो तुम्हे तो बहुत बुरा लगा होगा, जगत। साला रूस क्यो आसमान में पहुँच रहा है ! उसे तो नष्ट होना चाहिए था !"

मिश्रा ने जगत पर भद्दा अटैक किया था। मैं क्या कर सकता था ? जगत चुप रहा। मिश्रा कहता गया, "लुमुम्बा की कविता जगत ने नही पढी, पढ नही सका, उसके दोस्तो के विरुद्ध जाती थी। लोग कम्युनिस्टो को गालियाँ देते हैं कि वे रूस-चीन की ओर देखते हैं। लेकिन ये साले न सिर्फ ब्रिटेन-अमरीका की तरफ़ देखते है, उनके बैंको मे अपने रुपये रखते है। क्यो बे साले, तू ऑक्सफोर्ड या हॉर्वर्ड जा रहा था न ? तेरे पास इतना फॉरेन एक्सचेंज कहाँ से आया ? तेरा अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद (एक भद्दी गाली) साला, यहाँ से लेकर तो अमरीका तक एक जंजीर मे बाँधे हुए हैं, पैसो की जंजीर मे।"

बेचारा जगत ! भूला-भटका जगत ! ओफ् ! गुस्से से लाल हो उठा। उसे महसूस हुआ कि उस पर झूठा आरोप लगाया जा रहा है। वह तो अमरीकी 'साहित्य' का प्रेमी है।

अकस्मात् जगत ने मिश्रा पर बुरी तरह अटैक कर दिया था। पीछे से उसकी मोटी कमर पकडकर उसके सन्तुलन को बिगाडते हुए उसे नीचे गिरा दिया, कि इतने मे मिश्रा ने उसे अपने आलिंगन मे जकड लिया, इतनी जोर से उसे कसा, और इतनी जोर से हँस पडा कि जगत हक्का-बक्का रह गया !

मिश्रा ने कहा, "हमारे-तुम्हारे बीच कोई झगडा नही है, जगत ! तुम्हारा-हमारा प्राकृतिक सह-अस्तित्व है क्योकि हम दोनो एबी लॉर्ड्स है !"

एबी लॉर्ड ! मेरे दिमाग मे एक बिजली कौंध उठी ! एक अर्थ मुझ पर वज्र-सा गिर पडा !

*एबी लॉर्ड ! शिखण्डी सन्त जिसने अपनी जननेन्द्रिय को चाकू से काट दिया था ! सन्त बने रहने के लिए !**

और मैंने एकाएक अपनी दिल की धडकन सुनी कि निर्बल होकर सन्त और ···बनने के बजाय सबल होकर सृजन-शक्ति को तेज, और तेज करूँगा, भले ही लोग मुझे बदनाम करें, · मगर मुझे इसे तेज रखना ही पडेगा।

[आगे का अंश यद्यपि 'विपात्र' के उपन्यास रूप में सम्मिलित था, पर ऐसा जान पड़ता है कि यह इस लम्बी कथा का एक अलग प्रारूप है। इसके अन्त में चरित्रों के नाम में भी कुछ परिवर्तन मिलता है और उनकी मानसिकता मे भी। इसलिए इसे मिलाकर 'विपात्र' को एक लघु उपन्यास मानने की बजाय उसी कथा का एक अन्य रूप मानना अधिक समीचीन लगता है।—स]

दिमाग़ चलता है, दिल म हलचल होती रहती है, लेकिन उसके मुताबिक 'हलचल'

* यहाँ तक का अंश 'विपात्र' कहानी के रूप में ज्ञानोदय 1965 में और फिर 'काठ का सपना' संग्रह में प्रकाशित हुआ था। उपन्यास के रूप में प्रकाशित होने पर इस अंश के प्रभावी समापन के लिए अगली तीन पंक्तियाँ और जोड़ी गयीं।—स.।

नही कर पाता, काम नही कर पाता ! वे जो गतियाँ अन्दर-अन्दर होती हैं, बाहर प्रतिफलित नही हो पाती। घरड-खरड, खरड-घरड मशीन चलती है, चलती रहती है, उसमे स्याही लगी है लेकिन कागज़ नही है; इसलिए कुछ नही छपता। पुस्तक नहीं, पर्चा नही, अखबार नही। पर, पूरी मशीन रफ्तार के साथ घरड-घरड खरड-घरड चलती रहती है, सूने, अँधेरे-अकेले मे। ओ फोरमैन,···यदि चाय पीने नही गये हो तो स्विच ऑफ़ करो जिससे कि मशीन बन्द हो जाये। मशीन बन्द करो, मशीन बन्द करो, ओ फोरमैन! बिजली का इंधन बरबाद हो रहा है। ज़िन्दगी की बिजली फिज़ूल खर्च हो रही है। एक अजीब भयानक काला-काला साँड पल-क्षण की हरी-हरी घास चरता जा रहा है। खयाली धुन्ध मे जीते रहने की आदत बन गयी है। बेकार छिछला भीतरीपन···और थोथा बाहरीपन। और लोग सोचते हैं कि मैं गम्भीर हूँ।

मे टुकडे रह जाते है। दो टुकडो
होता है। सूनापन अजीब होता
पर उसमे खयालो के रेशे उडते
रहते हैं। उडते-तिरते जुड जाते है। एक चीज़ बन जाती है। मनोहर, जरीदार, सुन्दर वस्त्र। सूनापन ज़रूरी है, लेकिन कभी-कभी, हाँ कभी-कभी। तो मैं ऐसी सुन्दर बुनावट कर सकूँ, ऐसी सुन्दर···! बशर्ते कि सूनापन दुनिया को ताज़ीम दे तो दुनिया भी मेरे सूनेपन को सुरक्षा दे, प्यार और सम्मान दे। बशर्ते कि···बशर्ते ···कि···लेकिन शर्त पूरी नही होती।

मुझे बहुत काम करने है। मुझे बहुत-बहुत चिट्ठियाँ लिखनी हैं, दूर-दूर के पतो-ठिकानो पर—कलकत्ता और बम्बई, दिल्ली और इलाहाबाद, उज्जैन और गौहाटी। अपने दोस्तों से बहुत-सी बातें पूछनी हैं।

ओ इलाहाबाद के दोस्त, तुमने रात को बहुत अच्छा इरादा किया था और भले-भले सपने देखे थे! लेकिन, सुबह होते ही क्या हुआ? बिस्तर पर से उठते ही तुम इतने बदल क्यो गये? सबको मालूम है कि बहुत ईमानदार, सज्जन और प्रतिभाशाली हो। तो फिर इतने निष्क्रिय क्यो हो और जो प्रतिभा-हीन नज़र आते हैं, वे इतने सक्रिय क्यो? तुम काम क्यो नही कर पाते? जवाब साफ है। तुम खयाली धुन्ध मे खोये रहते हो।

ओ दिल्लीवासी मित्र, तुम इतने उखडे-उखडे क्यो नज़र आते हो? तुम्हारे भीतरी चेहरे पर शनिश्चरी छाया क्यो? तुम गाँव से आये, शहर मे बसे। वहाँ बसकर, खासा क़ीमती सूट पहनने लगे
हुए। तुम जितना ऊपर चढते
अगली सीढी की ऊँचाई पर ख
लगते हो?

ओ गौहाटीवाले मित्र, तुम कितना अच्छा सोचते हो! तुम्हारी ज़बान कितनी अच्छी है! लेकिन तुम खुदरो या सदाबहार के पौदे की भाँति उगने और बढ़ने क्यों नहीं? फूलदार और फलदार क्यों नही हो पाते? उधर, तुमसे मैकडों मील दूर मैं अपनी खिडकी मे से उन रास्तो को देखता रहता हूँ जो तुम तक निकल गये

हैं। दरमियानी दूरियाँ बहुत-सी हैं, लेकिन उनको मापने और लाँघने के रास्ते भी कई कितने हैं। साफ बात यह है कि जिस तरह एक लालटेन उजाला फैलाती है उसी तरह आज का सचेतन व्यक्ति—सजग तुम और सजग मैं—दरमियानी फासले तैयार करते हैं। क्या यह सच नही है? सिर्फ चिट्ठियाँ लिखने से क्या होगा? सिर्फ टेलीफोन पर बात करने से जिन्दगी की दूरियाँ नही मिटती। क्या इसका तजुर्बा तुम्हे नही है? क्या ये फासले तुम्हे नहीं अखरते? बराबर ' वे अखरते होंगे! बेशक·· वे खटकते होंगे! लेकिन ऐसी न मालूम कितनी खटकनें और अखरनें दिमाग़ी तल-घर के अटाले म डालकर रखते हैं।

सवाल जिन्दगी मे होनेवाली ग़लतियो का नही है' 'सवाल उन फासलो का है—जिन्हें बीचोबीच रखकर गलती नही सुधारी जा सकती। ऐसा क्यो? इसलिए कि हर एक को घमण्ड है कि उसके अपने पास कुछ है जो मूल्यवान् है। और अगर किसी ने उसे छू लिया तो शायद है कि वह छिन जाये या घट जाये या बिगड जाये।

और, इसमे सन्देह नही कि हर एक के पास कुछ-न-कुछ महत्त्वपूर्ण और मूल्यवान् अवश्य है। अवश्य है अर्थात् वह उसके वश म नही है, उसके वश के बाहर है, उसके वश के बावजूद है। हर एक मिट्टी मे सोने के कण चमक रहे हैं। यहाँ तक कि दुर्लभ धातुएँ भी! किसी पत्थर मे लोहा और मैंगनीज़, फॉस्फ़ॉर और बॉक्साइट, एक-से-एक बहुमूल्य और उपयोगी द्रव्य। प्रतिभा से कोई खाली नही। क्या इसीलिए सब एक-दूसरे से दूर-दूर हैं? ये दूरियाँ अक्षाश और देशान्तर दोनो बनाती हैं। हम अपनी ऊँचाई पर खडे होकर नीचेवालो मे फासला रखते हैं, और समतल मैदान पर खडे होकर अपने-जैसे दूसरे लोगो से। तो, इसलिए हम एक-दूसरे से परिचित होकर भी अपरिचित रह जाते हैं। परिचय ऊपरी है, सतही और छिछला है। अपरिचय म घनत्व है, वह गहरा है, साथ-ही-साथ कठोर और कडा भी।

[illegible]

वह निर्मल और प्रदीप्त है। परिणाम यह होता है कि कोई किसी के भीतर पहुँच नही पाता, उसके अन्दर के फॉस्फ़ॉर और बॉक्साइट को शुद्ध करने का साहस फिर कौन करे? कौन फिज़ूल लडाई-झगडा मोल ले? यह एक मानी हुई बात है कि कोई भी व्यक्ति चाहे जितना भी आत्मालोचन कर सकने का सामर्थ्य रखता हो, वह अपने 'स्व' द्वारा 'निज' का परिष्कार और विकास नही कर सकता। मुक्ति अकेले मे अकेले की नही हो सकती। मुक्ति अकेले मे अकेले को नही मिलती।

क्रम सम्पर्कहीनता के कारण जब हृदय के वैभव का मानवीय उपयोग नही हो पाता तो मूल्यवान् स्वप्न तितर बितर हो जाते हैं। वेदना कराहकर माथा ठोक लेती है। महत्त्वपूर्ण भाव और मार्मिक विचार टूट-टाट जाते हैं। सृजनशील सकल्प-

शक्ति जाती रहती है। किसी प्राचीन ज्वलन्त-गृह के प्रस्तर-खण्डों की भांति व्यक्ति अपने शून्य पथ पर चलता रहता है। दरमियानी फासले उसे उन तमाम गरम चीज़ों से बचा देते हैं, जो छाती में किरनों का फैलाव पैदा करती हैं और दिल में एक गहरी हलचल उभारती हैं। परिणाम यह होता है कि मनुष्य की सृजनशील संकल्प शक्ति के चिथड़े चिथड़े हो जाते हैं। आदमी तकलीफों से नहीं डरता, वरन् वह बासीपन से, अपने बंजरपन से, हारकर खुद को थका-हारा महसूस करता है। कॉफी-हाउस में चार घण्टे गप लगाने के बाद कभी-कभी मनुष्य को जो भयानक विरक्ति होती है, उसको ध्यान में रखने से मेरी बात समझ में आयेगी।

दरमियानी फासले ग़लत हैं—चाहे वे अक्षांशवाले हों, चाहे देशान्तरवाले। लेकिन, अक्षांशवाले फासले सबसे खतरनाक हैं, क्योंकि इस प्रकार की दूरी ऊँच-नीच की भावना से बनती है। ऊँची निसैनी की सर्वोच्च सीढ़ी पर चढ़ा हुआ व्यक्ति जब उसी निसैनी की निचली सीढ़ी पर खड़े हुए व्यक्ति को अपने से नीचा और हीन समझने लगता है, तब निसैनी पर ही हाथा-पाई होने की नौबत आ जाती है। यदि ऐसी हाथा-पाई हुई तो दोनों को चोट लगती है। इससे तो यह अच्छा है कि ऊँच-नीच पैदा करनेवाली खतरनाक निसैनी टूट जाये।

वैसे मैं *यह मानने के लिए तैयार हूँ कि आज का प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति प्रेम का* भूखा है। प्रेम की यह भूख बढ़ती जा रही है। ज्यों ज्यों मनुष्य की परिस्थिति बिगड़ती जायगी, वह सहानुभूति के एक-एक कण के लिए तरसेगा। किन्तु साथ ही प्रेम प्रदान करने की उसकी शक्ति भी कम होती जायेगी। एक ओर मात्र अस्तित्व-रक्षा के संघर्ष के कारण हारे-थके लोग अपने आपमें बँधते चले जायेंगे तो दूसरी ओर धन-सम्पन्न व्यक्ति अपनी सम्पन्नता की दीवारों से घिरकर अधिकाधिक अहं-बद्ध होते जायेंगे।

वासना और वेदना दोनों में एक विचित्रता है। वेदना की अधिकता, कष्टों तथा संकटों की बारम्बारता, मनुष्य को आत्म-बद्ध बना देती है। इस प्रकार आत्म-बद्ध कि सारी दुनिया उसे परायी मालूम होती है, अपरम्पार दूरियाँ फैल जाती हैं। एक ओर अपनी निस्सहायता की भावना से आत्म विश्वास का लोप होता है, तो दूसरी ओर अन्य जन पर विश्वास करने की क्षमता भी कम होती जाती है। वेदना बुरी होती है। वह व्यक्ति को व्यक्ति-बद्ध कर देती है। कहा जाता है वेदना सबको एक कर देती है। लेकिन, यह ग़लत है। वेदना से प्रताडित और दमनग्रस्त आतंकित व्यक्ति की गतियाँ शिथिल हो जाया करती हैं। इसलिए विद्रोहियों का दमन किया जाता है। यही कारण है कि हजारों सालों से गरीब जनता गरीब हो रही है। वेदना स्वयं कर्म का उत्साह उत्पन्न नहीं कर सकती। मुझे अस्पताल का अनुभव है। हर बीमार अपनी कराहों से घिरा रहता है। एक बीमार की दूसरे बीमार से कोई सहानुभूति लक्षित नहीं होती, और यदि होती भी है तो यह कहा जायेगा कि उसकी वेदना ने उसकी आत्मा को नहीं कुचला है। बाहरी दुनिया आदमी को तक़लीफ देती है। तकलीफ और कष्ट से वेदना उत्पन्न होती है। वेदना आत्मा को कुचल देती है। मनुष्य अपने को हीन और अक्षम अनुभव करने लगता है। किन्तु

जिनकी वेदना आत्मा [को] पुचल नहीं पाती, उनमे तेजस्विता रहती है। वे लोग भी दुनिया मे कुछ कर सकते हैं। वेदना आदमी को ढीला करती है। तेजस्विता उन्हें कस देती है।

वासना का विचित्र हाल है। लोग अपनी-अपनी वासनाओ की डींग मारते भी देखे [illegible]

और आत्म-ग्रस्त हो जाता है। अपनी उस अहबद्धता का वह आदर्शीकरण भी करता है। मेरा ऐसा खयाल है कि बहुत-से कवियों की अपनी निस्सगता उनके वासना-सकुल अह का परिणाम है। वेदना की, कष्टो और सकटो की बारम्बारता निचली श्रेणियो में पायी जाती है, क्योकि वे अधिक अरक्षित हैं। वासना की सकुलता उपरली श्रेणियो म भी पायी जाती है, क्योकि उन्हे मनोमय लीला करने की फुरसत अधिक होती है।

व्यक्ति-बद्ध वेदना और व्यक्ति-बद्ध वासना—साहित्य के अनेक उद्गम स्रोतो मे से स्वय दो हैं। मजेदार बात यह है कि इन दो स्रोतो ने साहित्य म जो उपमाएँ और प्रतीक प्रदान किये हैं, उनम भावो का औदार्य न सही तो भावो की तीव्रता बहुत अधिक होती है। काव्य-कला द्वारा ऐसे कलाकार अपनी व्यक्तिबद्ध वेदना या व्यक्तिबद्ध वासना का उदात्तीकरण और आदर्शीकरण भले ही कर लें, उनके व्यक्ति-चरित्र की मूल-ग्रन्थि तो वैसी ही रहती है। दूसरे शब्दो मे, कला तथा साहित्य मे प्रकट जो सौन्दर्य है वह इस बात का विश्वसनीय प्रमाण नहीं हो सकता कि उस सौन्दर्य के सृजनकर्ता का वास्तविक निज चरित्र उदार, उदात्त और उच्च है। असल मे हमारे वाक् सिद्ध-साहित्यिक अपने-आपको बहुत 'प्रकट' करते हैं, इस तरह अपने-आपको खूब छिपाते हैं। हमारा आत्मप्रकटीकरण बहुत कुछ अशो म वस्त्र-परिधान है, वास्तविक आत्मोद्घाटन नहीं। हमारी उच्चानुभूति के तथाकथित क्षण सुन्दर क्षौम वस्त्रो द्वारा आत्म-प्रच्छादन हैं। यही कारण है कि आये हुए आदमी से हाथ मिलाने के लिए अपने सफ़ेद बिस्तर पर से ज़रा उठकर हाथ बढाने की कभी-कभी तबीयत तो होती है, लेकिन ताकत और हिम्मत हमेशा साथ नही देती। लेटी हुई देह हाथ मिलाने के लिए कभी-कभी अपना धड कुछ ही ऊपर उठाती है कि इतने मे धड-से नीचे गिर पडती है। बढा हुआ हाथ ढीला होकर ढुलक जाता है।

कि इतने मे एक छाया मुसकराती हुई मेरे सामने आ जाती है। स्याह-नीला पैण्ट और सफेद बुश-कोट। अब मैं इसका क्या करूँ? दरमियानी दूरी के उस किनारे वह खडी है। और मुसकरा रही है। मुसकराते-मुसकराते अँगरेज़ी मे वह कहती है, "मुझे दुख है कि मैंने दखल दिया। आप तो लिख रहे थे।" मैं शून्यता की परतो को फाडकर, दूरियो को चीरने का प्रयत्न करते हुए, उसके सामने हो जाता हूँ। उसका अभिवादन करता हूँ। शायद मेरे पीले उतरे चेहरे को देखकर वह छाया सकुचित होती है, शायद जाना चाहती है। उसके हाथ मे एक किताब है जिसके

चमकीले कवर पर लिखा है—से नो टु डेथ (मौत से इनकार करो)। मुझे यह नाम अच्छा लगता है, बहुत अच्छा।

मैं उसकी सूरत-शक्ल को देखता हूँ। वह मुझे आँखें गडाकर देखती है। और मैं उसके देखने को देखता हूँ। मुझे उस बच्चे की याद आ जाती है, जिसका माथा बड़ा और कन्धा आगे आया हुआ है और जो एक सूने बँगले के पोर्च में खड़ा हुआ देखता है कि उसके सामने बन्द कमरों की बन्द खिड़कियों के फूटे तावदान में से गुजरकर उसकी नोकदार गिल्ली कहीं भीतर चली गयी है, और चूँकि वह अन्दर के किसी अँधेरे कोने में चली गयी है इसलिए वह अब मिलने की नहीं। वह क्षति और शून्यता का अनुभव करता है। उसे भय प्रतीत होता है। उसके हाथ में डण्डा है—बिना गिल्ली का, प्रतिक्रियाहीन! वह भाग खड़ा होता है, लेकिन उसके पैर तेजी से उठ नहीं पाते। उस बँगले में से कोई अदृश्य शक्ति निकलकर उसे पीछे की ओर खींचती है। इस कारण वह और भी घबरा जाता है। मुझे देखकर मेरे सामने शायद जगत को भी ऐसा ही कुछ मालूम हुआ होगा।

जगत के आकार को देखते ही मैंने मकड़ी के जाले हटाकर फेंकना चाहे। अपने चारों ओर बने हुए वल्मीक में से मैं ऊपर उभर उठा। अपने को मैंने इस प्रकार चैतन्य-मय बनाने का प्रयत्न किया जैसे कोई अपने कपड़ों पर से धूल झटककर स्वच्छ होने का प्रयत्न करे। उसने मुझे खुद के पंजों से छुटकारा दिलाने का प्रयत्न किया। मैं हँस पड़ा। घर में आवाज लगाकर चाय बनाने की आज्ञा दी। सचमुच मैं दूसरे ही स्तर पर दूसरे ही देश-काल में चला आया। और जगत को देखकर मुसकराने लगा।

जगत जैसी संस्कृत बोलता है उससे और ज्यादा धाराप्रवाह अँगरेज़ी। वह 'सर्वज्ञ' है। उसकी जनरल नॉलेज बड़ी व्यापक है, और वह अमरीका, फ्रान्स और इटली में चलनेवाली अत्याधुनिक धाराओं का विशेषज्ञ है। वह एकान्तप्रिय है। घण्टों कमरे में बैठा रहता है। कई दिनों तक निकलता नहीं। भारत की विभिन्न देशी-विदेशी लायब्रेरियों से उसके पास उत्तमोत्तम ग्रन्थ आते हैं। वह भारत की सर्वोच्च 'इंगलिश टीचर्स एसोसिएशन' का सदस्य भी है। हाल ही मसूरी में हुए अमरीकियों के सेमिनार में वह गया भी था। अगर वह ऑक्सफोर्ड या हार्वर्ड नहीं गया है, तो इसके पीछे कोई व्यक्तिगत बात है। मुझे उससे यह फायदा होता है कि मैं उन भाव-धाराओं के सम्पर्क में आता हूँ, जो इस समय भारत की सर्वोच्च शिक्षित श्रेणी में चल रही हैं। साथ ही मुझे मान्य विचारकों और पण्डितों की पुस्तकें भी मिल जाती हैं।

पता नहीं क्यों, वह मुझ-जैसे छोटे आदमी से सम्पर्क बनाये रखता है। उसमें और मुझमें ज़मीन-आसमान का फर्क है। मैं एक पिटा हुआ शख्स हूँ, वह ऊँचे घोड़े

जहाज से करता है। उसकी सारी शिक्षा-दीक्षा कॉन्वेण्ट स्कूल-जैसे विद्यालयों में

हुई है। मैं म्युनिसिपल प्रायमरी स्कूल जैसी राष्ट्रीय सस्थाओ से आगे बढा हूँ। उसका राजनीतिक दृष्टिकोण अलग है मेरा अलग। इस क्षत्र म हम एक दूसरे के विरोधी है। हम खुलकर टकराते है। सम्भवत इसीलिए हम एक दूसरे की दृष्टि को अधिक विशद बना देते हैं। यह सच है कि हम एक-दूसरे को चाहते हैं साफगोई बरतते है और उन झूठ तर्कों और युक्तियो से सावधान रहते हैं जो ठण्डी लडाई ने ईजाद की है। यह कहना मुश्किल है कि मैं उसे कहा तक समझ सका हूँ या वह मुझे कहा तक जान सका है।

फिर भी हम दोनो की जोडी अन्यो की ईर्ष्या का विषय हो गयी है। हम सबकी नज़र मे आ गय हैं। लोग यह कहते पाये गये है कि मैं जगत के कॅरियर को नष्ट कर रहा हूँ। उनके इस खयाल की क्या बुनियाद है यह मैं धीरे धीरे ही समझ सका। लेकिन मैं विश्वास दिलाता हूँ कि जगत बेवकूफ नही है और वह अपना कॅरियर पूरा करके रहेगा। बल्कि यह तो मैं खुद भी चाहूँगा। मतलब यह कि हमने किसी न किसी अश मे एक दूसरे पर विजय प्राप्त की है—दरमियानी फासलो के बावजूद!

ऐसा क्यो हो सका?

इसका एक कारण वे मूल मे सवेदनाएँ हैं जिनसे जीवन मूल्य बनते हैं। उसने ये अपने जीवन-मूल्य उस अमरीकी साहित्य द्वारा प्राप्त किये है जिसम जन साधारण के चेहरे उभरे हैं। फाकनर-जैसे अत्यन्त दुरूह और दुगम उपन्यासकार की मूल पीडा और उसकी परिस्थिति ने उस क्या-क्या नही दिया! जैक लण्डन और मार्क टवेन स्टीफन क्रन और हेमिंग्वे की व्याख्या करनेवाला यह द्रविड पण्डित जगत नवयुवक होते हुए भी कच्चा नही है। उसकी सहानुभूतिया व्यापक और विस्तृत हैं। उन साहित्यकारो ने जिन मानवीय जनत त्रात्मक जीवन मूल्यो को प्रधानता दी उनमे भीग उठनेवाला व्यक्ति यदि सहज प्रवृत्ति स मेरे साथ रहने का प्रयत्न करे तो इसमे मुझ आश्चय नही होता। जिन्दगी अजीब है। विभिन्न वायु मण्डलो और दिक कालो मे से आये हुए लोग भी एक ठण्ड घने पीपल की छाया के नीचे विश्राम करते हुए गले मिलें तो इसमे मुझ प्रकृति का विशेप उद्दृश्य ही दिखायी देता है।

मेरे मकान के तीनो ओर पानी है तीन बड-बड तालाबो का। मैं एक तथाकथित [illegible] मिट्टार के बायें-दायें और ऊपर बड बड

आराम-कुरसी पर बठा हुआ है और म उसक सामने अपने [illegible] टिन की कुरसी पर जमा हुआ हूँ। मेरे पास एकमात्र बेंत की कुरसी है वह मेरे कमरे का आभूषण है यह मैं आपस छिपाना नही चाहता।

हवा के झकोरे मेरे कमरे म चौकडियाँ भर रहे है। जगत उसकी खिलवाड से कुछ

बेचैनी महसूस कर रहा है। तालाबों की लहरें कमरे की भीतों से छपाछप टकरा रही हैं। अपने आठ साल के बच्चे की फिक्र ही रही है, जिसे दमे के रोग ने पछाड़ रखा है। उसकी खाँसी की आवाज़ सुनकर मैं उसे स्वेटर पहनने का आदेश देता हूँ, और अब तक चुप बैठे हुए जगत की ओर ध्यान से देखता हूँ।

जगत खिड़की के बाहर देख रहा है। और मैं उसकी तरफ देख रहा हूँ। मैं उस छेड़ने के लिए कहता हूँ, "तो आज तुम्हें फुरसत मिल गयी?"

मेरे सवाल का जवाब देने की बजाय वह अँगरेज़ी में कहने लगा कि जहाँ जाइए, वहाँ एक न एक सवाल पैदा हो ही जाता है। उसके चेहरे से लगता था कि वह परेशान और उकताया हुआ है। उसका मुँह खट्टा था।

उसने कहा, "आगे से तो हम लोग घूमने जा ही नहीं सकते।"

मैंने जवाब दिया, "क्यों, क्या दरबार लगा हुआ है?"

उसने कहा, "मैं तो तंग आ गया। कल वो कह रहे थे कि तुम साढ़े-नौ बजे रात को कहाँ 'लोफिंग' कर रहे थे! मतलब यह कि कहीं हम घूमने न जायें। बस, उनके पास बैठे रहा करें। और बातचीत भी क्या! मछलियाँ कितनी तरह की होती हैं! अँगरेज़ों के लंच में कौन-सी चीज़ें होती हैं। मैंने ऐसे कई लोग देखे जो खाने के शौकीन हैं। लेकिन खाने की चीज़ों के ज़िक्र के शौकीन तो मैंने कहीं नहीं देखे।"

मैंने मुँह बनाकर कहा, 'लेकिन बैठना तो पड़ता ही है। बॉस है न! वह भी ऐसा कि जो खाना खाने के लिए बुलाये और घण्टों बैठाये। रोज़ पार्टी...!"

उसने कहा, "अजी, हद हो गयी! एक तो बहस की एक-न-एक चीज़ वो खुद छेड़ते हैं, और उनकी बात न मानने पर बिगड़ पड़ते हैं। खुद तो बच्चे हो जाते हैं और बुज़ुर्गी का अधिकार चाहते हैं।"

यह कहकर जगत ने बहुत उदास होकर अपना मुँह लटका लिया। मैं उसके चेहरे की तरफ देखता रहा। क्रमशः मेरी तरफ भी एक तेज़ाब-आग लपकने लगी थी। एक भाव है—जिसका नाम है नपुंसक क्रोध! इस भाव का अनुभव हर उस आदमी को होता है (यह लगभग अनिवार्य नियम है) जिसने अपने जीवन की रक्षा के लिए अपनी स्वतन्त्रता बेच खायी है। जिस समाज में जननेन्द्रिय भी बेची जाती है, वहाँ व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी बिकती है। आदमी तैयार रहते हैं कि आओ, हमें खरीदो। आत्मा की स्वतन्त्रता बेचनेवालों की संख्या असीम है। उतनी ही बड़ी संख्या है आत्मा को रेहन रखनेवालों की। एक बार हमारे बॉस ने हममें से हरेक को खाने के लिए तीन-तीन आम दिये। मैंने अपने पड़ोस के एक दरबारी से कहा कि एक आम का एक घण्टा। बैठा बेटा! अब तीन-तीन घण्टे इस बूढ़े के साथ! मज़ा यह है कि हम सब लोग बराबर उतनी ही देर क्या, बल्कि उससे ज़्यादा बैठे। शाम को छह बजे से जो गोष्ठी शुरू हुई तो रात के ग्यारह बज गये!

हमारे बॉस के अनुसार यह हाई क्लास सोसायटी है। और हम उस सोसायटी के अंग हैं। वे कहते हैं कि हमें सोशल होना चाहिए।

बाज़ आये हम ऐसी सोसायटी से, और किसी भी सोसायटी से। मुझे मालूम है कि बहुत-से गप्पी, बहुत-से सभा-जीत, बहुत-से बैठक-बाज़ और महफिल-बाज़ लोग फालतू की बातचीत को सौन्दर्य-कला का रूप देते हुए घण्टों बैठ सकते हैं, और फिर भी अपने साथ बैठने-उठनेवालों के प्रति उनके हृदय में कोई विशेष या

साधारण प्रेम-सम्बन्ध भी नही होता। वे अपनी 'सम्मिलन-वासना' को सामाजिकता समझते हैं। मैं ऐसे मिलन-प्रेमियो का उतना ही विरोधी हूँ जितना स्तालिन-ट्रॉट्स्की का।

फिर भी मै बॉस के प्रति बेईमानी नही करना चाहता। वे एक उच्चाशय व्यक्ति हैं। उन्होने हमे बहुत मदद दी है। वे हमे अपना समझते है। हम भी उन्हें अपना समझते हैं। आत्मीयता दोनो ओर से है, इसलिए जब आग लगती है तो दोनो ओर लगती है, दोनों ओर से लगती है।

उनका हमारे प्रति नि स्वार्थ प्रेम-भाव है, कृपा-भाव है। किन्तु प्रेम के भीतर एक जो अधिकार-प्रियता रहती है, वह भी उनमे है। जीवन-भर वे शासक और अनुशासक रहे हैं। उनकी स्वाभाविक अधिकारप्रियता मे यह स्नेहाधिकार भी आकर मिल जाता है, और हमे दोनो बरदाश्त करने पडते हैं। हमारे वे श्रद्धेय, जीवन मे एकाकी हैं, निस्सग हैं। वे अपने अकेलेपन से घबराते हैं, ऊबते हैं, हर पल साथ चाहते हैं, सग चाहते हैं। वे वृद्धापकाल के समीप हैं, और अपने कर्मचारियो और अधिकारियो के सामीप्य द्वारा अपनी शून्यता और एकाकीपन को दूर करते हैं। तसवीर का यह एक पहलू है। दूसरा पहलू यह है कि अधीन कर्मचारी और सहायक-गण नवयुवक है और वे एक बुजुर्ग के साथ घण्टो तक नही बैठ सकते। वे घूमना चाहते हैं, फिरना चाहते हैं, स्वतन्त्रतापूर्वक, खासकर शाम को, रात को। बुजुर्ग के पास आखिर आजादी बरती भी तो नही जा सकती, न उनकी बात मे मजा आता है।

दोनो मे दो जमानो का फर्क है, फिर दोनो के बीच बडे फासले हैं। फिर भी दरबार लगता है, [illegible]
से लेकर केन्द्रीय [illegible]
सत्यनारायण की [illegible]
होता है और झगडे भी होत [illegible]
हो चुके हैं कि खास कहने-[illegible]
भी दरबार लगता ही है। [illegible]
जाता है। नजर से गिर जाता है। और अब तो यह हालत हो गयी कि सिर्फ डिनर, लच और टी-पार्टी के भरोसे ही यह दरबार जैसे तैसे चल रहा है।

आजकल एक मजाक चल पडा है। दरबारी लोग कहते हैं कि हमारे बॉस हमारे 'खाविन्द' हैं और हम सब उनकी नौजवान रखैलें हैं। हाँ, इसम सीनियर-जूनियर रखैलें भी हैं। और इन रखैलो म स्वभावत ईर्ष्या-द्वेष भी। लेकिन उनमें से किसी मे यह ताव नही है कि पूरी हालत मालिक को समझा दें। फिर भी भीतर-भीतर आग सुलग रही है। इस सघर्ष ने कई सवाल पैदा कर दिये हैं। उन सवालो मे से कई और सवाल शाखाओ की भाँति फूट निकले हैं। आजकल दरबारियो मे एक-दूसरे का छिद्रान्वेषण खूब चल रहा है।

जगत ने एक अजीब बात कही, "एक ओर तो हम सब अकेले हैं और चाहते है कि एक-दूसरे का गहरा साथ हो। लेकिन यह हो नही पाता, यह नही हो सकता।"

मैंने गोली दागकर कहा, "नही होना भी चाहिए।"

जगत ने कोई आश्चर्य व्यक्त नहीं किया। वह सिर्फ अपनी उँगलियाँ तोडता

रहा। फिर मैंने ही बात आगे बढायी, "वैसे हर आदमी भला है ! बुरा कौन है ! —कोई नही ! और जो बुरे है वे इसलिए हैं कि उन्हे मालूम है कि खोटा सिक्का अच्छा चलता है। वे बुरे नही। चतुर हैं वे, सिर्फ चतुर ! य सब पढे लिखे हैं। कोई एम ए तो कोई डॉक्टर ! लेकिन य किस मर्ज की दवा हैं !

"वे आते हैं, खूब अच्छी बातें करते हैं, अच्छा आतिथ्य-सत्कार करते हैं। उनकी सबसे बडी इच्छा क्या है ? वे सबकी दृष्टि मे ऊँचे और अच्छे बने रहे और उनके प्रभाव का विस्तार हो। इसीलिए ये सब लोग बडे आदमियो के चक्कर मे हैं, दूर-दूर के लोगों से पत्र-व्यवहार करते हैं, उनके काम आते हैं। अगर ये देश का अध्ययन भी करते हैं, तो इसीलिए कि इस बहाने ही कुछ पैसा और प्रभाव हाथ आ जाये। ये लम्बी-चौडी बातें करते हैं, लेकिन अपनी बात निभा नही सकते। हम-सरीखे छोटे आदमी के प्रति—जनसाधारण के प्रति, उनकी दृष्टि ओछी और छिछली है। ये विचारो म रहते हैं। लेकिन वे हवा के रुख को देखकर ही विचार और भाव रखेंगे। हवा के रुख को देखकर ही ये बात बनायेंगे, बात बदल देंगे "

मैं कहता गया, "बाकी के जो ये पढे-लिखे लोग हैं वे इस फ़िक्र मे है कि शार्क स्किन की पैण्ट और खद्दर की धोती कही खराब तो नही हो गयी है। शिक्षित-सस्कृत लोग इस विशेष जीवन-प्रणाली के उपासक हैं। वह विशेष जीवन-प्रणाली ही उनके लिए सब कुछ है। वे अपनी उस उन्नततर जीवन-प्रणाली की रक्षा के लिए ही सघर्ष करते हैं। वही उनका आदर्श है। इसीलिए एक डी एस सी (डॉक्टर ऑफ़ सायन्स) हमारे यहाँ एस डी ओ (सब-डिवीज़नल ऑफिसर) है। कई फर्स्ट क्लास एम ए आजकल कलेक्टर हैं, आई ए एस हैं। यह नही कि उन्हे विज्ञान के प्रति एकनिष्ठ अभिरुचि थी, इसीलिए वे डी एस-सी, फर्स्ट क्लास एम ए हुए हैं, या उन्हे देश के कार्य-सचालन के प्रति विशेष अनुराग है, इसीलिए वे आई ए एस हुए हैं। न, न, न। इसीलिए बिलकुल नहीं ! वे डी एस-सी या आई ए एस. इसलिए हुए हैं कि उन्हे पैसा और प्रभाव मिले, पद और प्रतिष्ठा प्राप्त हो, खूबसूरत ज़िन्दगी जीने को मिले ! मैं यह नही कहता कि उनमे ऐसे लोग नही जिनमे भलमनसाहत है। उनमे बहुत-सी अशान्त आत्माएँ भी हैं ! लेकिन कुल मिलाकर क्या है ? कुछ नही ! उनसे हमारे जो दरमियानी फासले बने हुए हैं, वे बने रहेंगे। हम उनके बीच अकेले हैं अकेले रहेगे !

"हाँ, यह सही है कि ऐसे पढे-लिखे लोग भी हैं जिन्हे देश की दशा को देखकर अपना कही ठिकाना लगता-सा मालूम नहीं होता। वे निराश इसलिए हैं कि वे किंकर्तव्यमूढ हैं। वे क्लर्क हैं, वे छोटे अफसर, छोटे दूकानदार हैं। वे कॉलिज के लेक्चरर हैं। वे अपनी जीवन-प्रणाली की रक्षा के लिए चाहे जो करते हैं, कोई रिश्वत खाता है तो कोई कुजियाँ लिखता है, तो कोई पैसे लेकर फ़ेल को पास करता है ! उनके लेखे, बेवकूफ वह है जिसकी कुछ नही चलती, जो अपने पेट को काटकर, बाल-बच्चो को तरसा-तरसाकर जीवन-यापन करता है। ऐसे ये लोग हैं ! ये शिक्षित हैं, सस्कृत हैं ! अपनी बर्बरता को ढाँकने के लिए रवीन्द्र की जयन्तियाँ मनाते हैं, अपने पशुत्व को छिपाने के लिए सुन्दर भावो से जगली आत्मा को ढँकते हैं, पैसा और नाम दोनो कमाते हैं। हवा के रुख को देखकर बात करते हैं, सभा को देखकर टोपी बदलते हैं। और अमरीका जाते हैं, लेकिन अपने ही शहर की गन्दी बस्तियों के घरों मे झाँककर नही देखते।

"उनमे से बहुतेरे बुद्धिमान् हैं, बहुतेरे ज्ञान-सम्पन्न भी हैं, कलाकार हैं और पण्डित भी। लेकिन बड़ी-बड़ी किताबें लिखते हुए बजर हैं, इसलिए कि उनकी आत्मा ऐसी जननेन्द्रिय के समान है जिसकी तिजारत होती है। आजकल का सेठ साफ साफ कहता है कि पैसों से मैं इन्हें खरीद लूंगा। वह जानता है कि इनसे चाहे जो करवाया जा सकता है। उधर ये खुद खरीदे जाने का इन्तज़ार कर रहे हैं। कोई आये और उनकी बोली लगाये। इनसे हमारे दरमियानी फासले बने रहेंगे, और बने रहने चाहिए, उन्हें बनाये रखना चाहिए। दुनिया के किसी अँधेरे अकेले कोने मे मर जाना बुरा नहीं है।"

जगत स्तब्ध था। शायद वह अपनी खुद की कोई परेशानी लेकर आया था। शायद वह यह सोचता था कि वह अपनी कुछ जी की बातें कहकर दिल को हलका करेगा। लेकिन उसे मौका नहीं मिला। मेरे दिल मे उसाँस अभी बाकी थी, भाप अभी बाकी थी। वह निकलना चाहती थी। मैंने उससे कहा, "ज्यादा-से-ज्यादा ये लोग कौन-सी अच्छाई करते हैं? भलाई का कौन-सा रूप उन्हें मुआफिक होता है? वह है अपनों की, या जिन पर उनकी कृपादृष्टि है उनकी, हर तरह से परवरिश करना, उनके लिए दया और करुणा से भीग उठना। मैं खुद उनकी दया

लिया है। वे छोटे आदमी यह नहीं कहते कि तुम अपनी आत्मा मुझे बेच दो। "

" ये लोग तो एक ओर व्यक्ति-स्वतन्त्रता का नारा लगाते है, लेकिन स्वतन्त्रता को खरीदने और बेचने की व्यवस्था को बरकरार रखते हैं। अजी, सरकार ही नहीं, आजकल का सेठ भी स्त्रीनिंग करता है! देखा नहीं तुमने उस कलकतिये सेठ को? जिस समाज मे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता खरीदी और बेची जा सकती है, उस समाज मे खरीदने और बेचने की स्वतन्त्रता है, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता नहीं। इसलिए पश्चिमी देश उन देशों को भी स्वतन्त्र (फ्री) कहते हैं जहाँ पूरी सैनिक तानाशाही है। वे ऐसा क्यों कहते है? वे इसलिए ऐसा कहते हैं कि उन देशों मे खरीदने और खरीदे जाने, बेचने और बेचे जाने की, यानी कि मुनाफा कमाने की, व्यापार की निजी पूँजी से आदमी को गुलाम बनाने की, स्वतन्त्रता है। वही बुनियादी उसूल हमारे यहाँ भी एक अनिवार्य प्राकृतिक नियम की भाँति चला हुआ है।"

जगत मेरी तरफ देखता रहा। वह परेशान था कि मुझे क्या हो गया है! जी हाँ, मैंने कुछ नहीं कमाया, सिर्फ अकेलापन कमाया। मैं क्या करता! कौन मेरी बात सुने!

मैं क्या करता हूँ? ज्यादा-से-ज्यादा ढीमरों (कहारों), महारों और कुनबियों के मुहल्ले मे चाय पीता हूँ। जी हाँ, मैंने वहाँ के दृश्य देखे हैं लेकिन साफ बात है कि मैं खुद महार, कुनबी, ढीमर, मुसलमान या ईसाई नहीं हो सकता जी हाँ, मेरे हमदर्दों ने मुझे हजार बार कहा कि यह छोटा शहर है, तुम यहाँ के बड़े आदमी हो, वहाँ जाकर चाय वगैरह न पिया करो। लेकिन मुझे वहाँ आराम मिलता है।

कॉफ़ी-हाउसो मे यूँ ही मेरे दिमाग़ मे तनाव पैदा हो जाता है, बेहद तनाव पैदा है, और मुझे टी. एस. ईलियट की कुछ पक्तियाँ याद आती है—

We are the hollow men
We are the stuffed men
[हम पोले-पोचे आदमी है, हम भुसभरे लोग हैं]
We measure our life with coffee spoons
[हम कॉफी के चम्मचो से अपनी ज़िन्दगी मापते है]

और भी तरह्-तरह् के बुरे-बुरे खयालात मेरे दिमाग मे आते हैं। उनसे छुट-[illegible] मे जाकर ही। यह बात सही है

[illegible] ती है, जिससे कि मैं उन आँखो
[illegible] ग सूट निकालकर फेंक देता हूँ

[illegible] शायद आपको पसन्द नही
[illegible] कि वहाँ जाकर आबोहवा
[illegible]

उस आदमी से जरा पूछ-ताछ कीजिए और आपको सही हालात मालूम हो जायेंगे।

लेकिन, यह भी सही है कि हर एक को हर जगह प्रिय नहीं होती। पीले उतरे हुए चेहरोवाले उत्तेजना-प्रिय सौन्दर्यवादियो केस्थान मुझे अच्छे नही लगते। अपनी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया के कारण मुझे ऐसे कई स्थान भ्रष्ट मालूम होते थे। वहाँ लम्बी जीभवाले राजनीतिक कार्यकर्तागण, उच्छृखल कीमती सूटवाला विद्यार्थी समुदाय, तरह्-तरह् के उद्देश्योवाले सर्वज्ञ पत्रकार, वकील और फैशनेबल स्त्रियाँ और उनके पुरुष साथी आते हैं। तब उनके साथ सफेदपोश गुप्तचर और कुछ एरिस्टोक्रैटिक जुआडी और व्यापारी भी आते हैं। ये सब बला हैं। इन सबके जमघट से मेरी नही बन सकती। मैं तो अपने विचारो मे खोया हुआ चला चलता हूँ, और ऐसे ही निम्नवर्गीय चायघरो मे जाकर बैठ जाता हूँ। और मुझे गहरा छुटकारा हासिल होता है।

ईंट, पत्थर, राख, धुआँ और गोबर, इन सबके अलग-अलग और तरह्-तरह के रगो को मिलाकर ही इन निम्नवर्गीय चायघरो का चित्र प्रस्तुत किया जा सकता है। मैं इन सबका आदर्शीकरण नही करना चाहता। फिर भी मैं यह कहूँगा कि वहाँ मुझे काफी दोस्ती हासिल हुई। दिल खुले और मुझे लगा कि मैं जो यहाँ विद्या का पति हूँ (एम ए) और पढाता हूँ, उनके लिए आदरणीय हूँ। इन छोटे-छोटो से—चाहे वे निम्न-मध्यवर्ग के ही क्यो न हों—मुझे बहुत बार सहायता भी प्राप्त हुई।

लेकिन साथ ही मैं यह भी कहूँगा कि इन स्थानो मे से कुछ अवश्य दुराचार के अड्डे हैं। और यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि उच्चवर्गीय शिक्षित जनों में से कई लोग जीने पर से नीचे उतरते हुए पैण्ट के बटन लगाते हुए यहाँ भी नजर आये हैं।

इतना अच्छा है कि इन चाय-घरों में से सब ऐसे नहीं हैं, और जो हैं, वे वे-बोले सबको मालूम हैं (शुरू में मुझे मालूम नहीं था)। और यह जो दुराचार है उसकी जिम्मेदारी एक ओर ग़रीबी की वेदना और [दूसरी ओर] धन की अह-ग्रस्त वासना के युग्मीकरण की स्थिति पर है।

जगत को ग़ौर से देखने की फुरसत मुझे अब मिली। मैंने देखा कि उसका चेहरा भावहीन, वर्णहीन दिखायी दे रहा है। वह एकदम कुरसी पर से उठकर कमरे के बीचोबीच खड़ा हो गया। ज़रा ऊपर देखने लगा और फिर मेरी ओर आँखें फिरायीं। मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि उसने मेरी ओर कदम बढ़ाये। ऐसा लगा कि जैसे मुझे वह मारने आ रहा है, लेकिन वह मेरे बिलकुल क़रीब आकर पासवाली कुरसी पर धप्-से बैठ गया। तब मुझे खयाल आया कि वह मेरी बातों से परेशान हो गया है। मैंने चिन्तित होकर पूछा, "ओह, तुम मेरी बातों से ऊब गये हो!"

उसने अँगरेज़ी में कहा, "नहीं, नहीं!"

इतने में अचानक ही कुरसी पर बैठे-बैठे पैर हिलाना शुरू किया। और कुछ क्षण के बाद वह गति भी बन्द कर दी। और पत्थर की बुत-जैसी आकृति बना ली।

चुप्पी का छोटा-सा हायफन एक लम्बी लकीर बनता गया। कमरे के सन्नाटे में अपने-अपने छुपे खयालों की आवाज़ें गूँजने लगीं।

मैंने सन्नाटा तोड़ने के लिए कहा, "तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं होता होगा।"

उसने अँगरेज़ी में कहा, "नहीं, नहीं!" और तब मुझे मालूम हुआ कि उसके बोलने में फ़र्क़ आ गया है। वह इस तरह आवाज़ निकाल रहा है जैसे उसके गले में कुछ अटक गया हो।

और तब अकस्मात् एक अनजाना तूफ़ान ऊँचा उठता, नीचे गिरता हुआ, ज़मीन-आसमान मिलाते हुए बहने लगा।

जगत ने धाराप्रवाह अँगरेज़ी में कहना शुरू किया, "तुम समझते हो कि यह समस्या तुम्हीं ने देखी है, तुम्हीं ने अनुभव की है। लेकिन यह ग़लत है। हिन्दुस्तान ही नहीं, पश्चिम के सच्चे और ईमानदार लोगों ने भी इसका अनुभव किया। न मालूम कितने साहित्यकारों और कलाकारों ने। लेकिन उन्होंने इस समस्या का चित्रण भी किया। यह कहना ग़लत है कि हर पढ़ा-लिखा आदमी, और सभी पढ़े-लिखे आदमी वैसे ही होते हैं, जैसा तुम कहते हो। यह एकदम ग़लत है। मुझे आश्चर्य है कि तुम ऐसा आखिर कह ही कैसे सकते हो। हरेक पढ़े-लिखे आदमी के बारे में तुम वैसा नहीं कह सकते। तुम्हारी यह राय केवल तीव्र भावना से पैदा हुई है। मैं हज़ारों ऐसे आदमी बता सकता हूँ जो सचाई न सिर्फ़ पसन्द करते हैं, प्रत्युत उसकी लौ में रहते हैं। मैं चेतना की तीव्रता और चेतना के स्तर में अन्तर करता हूँ। उनकी चेतना का स्तर भले ही विकसित न हो, किन्तु जहाँ तक बुराई से खुद के बचाव का सवाल है, वे तुमसे ज़्यादा अच्छे मिलेंगे। जी हाँ, एक तरह से वे भी अकेले हैं। हर आदमी अपने आन्तरिक जीवन में, एक क्षण में सग-रहित है—चाहे वह क्षण लम्बा ही क्यों न हो—और दूसरे क्षण सग-सहित है। प्रश्न यह है कि वह सग-हीनता कहाँ तक फलीभूत होती है और सग-सहित तत्त्व कहाँ तक

फलीभूत होता है ? यह प्रश्न जितना आन्तरिक है, उतना ही बाह्य ! तुम उस आदमी की बात कर रहे हो जो कर्मशक्ति से शून्य है, साथ ही जो अत्यधिक भावुक है। कर्म मनुष्य को उसकी परिस्थिति से तथा अन्य मनुष्यो से सिर्फ जोडता ही नही है, वह उन्हे मोडता भी है। सारे पढे-लिखे आदमी कर्मशून्य और निस्सग हैं, यह कहना गलत है। साथ ही यह भी कहना गलत है कि उनके जीवन-मूल्य ठीक-ठिकाने के नही हैं। यह मैं मानने के लिए कतई तैयार नही हूँ। दूसरे, यह कहना भी निस्सार है कि तुम्हे अपना वर्ग पसन्द नही, इसलिए तुम निचले तबक़े मे जाना चाहते हो—जैसा कि तुमने सकेत दिया (स्पष्ट शब्दो मे तुमने यह नही कहा—यह ठीक है)। क्योकि चाहिए तो यह कि तुम अपनी श्रेणी को नीचे की श्रेणी के साथ लाओ और उस स्थिति के लिए उसे तैयार कराओ. यह तुमसे नही होता, क्योकि तुम अपनी श्रेणी को ही नही समझते। न तुम निचली श्रेणी को ही समझते हो, न इस तरह उसे समझोगे। मैं दुहराना चाहता हूँ कि चाहिए तो यह कि तुम अपनी श्रेणी को सामान्य जनता के उद्धार-लक्ष्यो और उद्देश्यो के समीप लाओ। लेकिन वह तुमसे नही होता। जिस तरह तुम इस समस्या को हल करना चाहते हो, वह उसके हल करने का तरीका नही है। उससे सिर्फ तुम अपने लोगो से सामजस्य और भी बिगाड लोगे। तुम्हारा जीवन और विच्छृखल हो जायेगा, जब तक कि तुम अपने उद्देश्य तक पहुँचन का मार्ग न पा सको। वहाँ तक जाने के लिए अपने वर्ग का बायकाट करने की जरूरत नही है—कम से-कम अभी नही है। वह निम्न मध्यवर्ग है। उनमे से कुछ लोग थोडे ऊपर पहुँच गये हैं। तो भी वह गरीब वर्ग है, भले ही वह तुम्हारे अनुसार 'भद्रता' से 'ग्रस्त' हो। यह सही है कि तुम उसका बायकाट कर उपरली श्रेणी मे नही घुसना चाहते, वरन् निचली श्रेणी की ओर उन्मुख हो। लेकिन केवल इतना काफी नही है। और भी बहुत-सी चीजें जरूरी हैं। हजारो पीढियो से जो पुण्य एकत्र हुआ है, हमारे समाज मे (पाप भी इकट्ठा हुआ है), उसका कुछ-न कुछ प्रभाव पढे-लिखो पर भी मिलेगा। वे उस मानवीय सहानुभूति से इतने रिक्त नही हैं, जितना तुम समझते हो। हाँ, यह सम्भव है कि ऊपर-ऊपर से वैसा दिखता हो, मानो वे बिलकुल रिक्त हो। लेकिन जरा टटोलकर, भीतर घुसकर देखो तो तुम्हे पता चलेगा कि इस मझोली श्रेणी मे सामाजिक न्याय की भावना पहले ही से कम या अधिक मात्रा मे वर्तमान है। इसलिए जो मिलता है उस प्राप्त करो, जो नही मिलता उसको उगाने के बीज बोओ। हाँ, यह सही है कि वहाँ बजर जमीन भी मिलेगी। तो क्या हुआ ! उतने को छोड दो या तोड दो। दिन मे भी आसमान मे तारे होते हैं। उनके प्रकाश की किरनें हमे दिखती नही। लेकिन पृथ्वी पर गिरती जरूर हैं, भले ही दिन का उजाला हो। इसी तरह अनगिनत मनुष्यो की अनगिनत अच्छाइयाँ भले ही हमसे ओझल रहे, हमे न दिखें, लेकिन वे किसी-न-किसी रूप मे हम तक पहुँचती जरूर हैं, नही तो यह दुनिया न चलती। सृजन-प्रक्रिया स्वय मे एक शक्ति, सृजनशील शक्ति है—वह प्रसारशील भी है ''हाँ, यह सही है कि वह भौतिक स्थिति के आधार पर टिकी है—अकाल मे भूखी औरतें बच्चो को बेचती देखी गयी हैं, और पेट के लिए स्त्रियाँ शरीर को बेचती हैं, और आदमी अपनी अक्ल को और मेहनत को बेचता है। तो उसी शक्ति का यह तकाजा है कि मनुष्य सामाजिक न्याय के लिए आगे आये, मैदान मे आकर कर्मसूत्र सँभाले। सिर्फ दरमियानी फासलो को देखकर उनसे घबराये नही, वरन्

उन खाइयो को फांदने के रास्ते और पुल तैयार करे। यह कार्य केवल कर्मशील व्यक्ति ही कर सकता है। केवल भावुक स्वप्नालु व्यक्ति नही। तुम कर्मशून्य हो, इसलिए निस्सग हो। यह भूलो नही। हाँ यहाँ कर्म का अर्थ जीविका निर्वाह का कर्म नही है वरन वह कर्म है जहाँ [स्वार्थ] नही होता।'

जगत ने मेरी ओर देखा। उसकी आंखो मे एक चिन्तापूर्ण उद्विग्नता थी। यह स्वाभाविक था क्योकि उसने मुझ पर व्यक्तिगत आक्षेप कर दिया था। वह मुझ कहता था कि मैं अपनी श्रेणी से ही किनारा करता हूँ इसलिए मै उसे समझ नही पाता। लेकिन क्या उसका यह कहना एव आरोप के रूप म उचित था? मेरा अभी तक यह खयाल है कि निम्न मध्यवर्ग या उससे कुछ ऊपर के उच्च मध्यवर्ग को अपने से फुरसत नही। उसकी शिक्षा और सस्कृति केवल ऊँचे ढग की जीवन निर्वाह प्रणाली के उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त है। उदर से लेकर शिक्षण तक की पूर्तिवाला जो मात्र ऐन्द्रियिक जीवन है उस पर एक अच्छी-खासी बौद्धिक कलई है। बेपढे लिखे वर्ग के पास यह मुलम्मा नही है। पढे लिखे वर्ग ने उसे सस्कृति का लक्षण बना लिया है। उनकी आदर्शपूर्ण राजनीति कमाई का एक ज़रिया है व्यक्ति की अपनी आत्मा को सहलाने का एक तरीका है—सस्कृति और सस्कृति की बातचीत। मतलब यह कि जगत की युक्तिया मुझे निराधार लगी। मेरा जी भडभडा रहा था। मैंने उससे कहा आखिर तुम आदमी से चाहते क्या हो।"

जगत कहने लगा अलग-अलग लोग अलग-अलग अपेक्षाएँ रखेंगे।"

मैंने बात काटकर जवाब देना चाहा, पढे लिखे आदमियो से स्वय तुम्हारी क्या अपेक्षाएँ हैं?'

जगत न उत्तर दिया यही कि वे अपनी विद्या-बुद्धि द्वारा सस्कृति, समाज और मानवता के विकास मे अपनी-अपनी प्रतिभा के अनुसार किन्तु पूर्ण हृदय से योग देंगे।"

मैंने कहा तुम अपनी इस अपेक्षा सम्बन्धी मान्यता पर टिके रहोगे ना?"

जगत ने स्वीकृति की सूचना देते हुए सिर हिला दिया। मैंने कहा इसके लिए उन्हे एक ओर जन सामान्य के सुख दु ख और स्थिति-परिस्थिति की ओर देखना होगा और दूसरी ओर अपने व्यक्तिगत हित को सामान्य हित के अनुरूप बनाना होगा न? क्या वे ऐसा करते हैं? क्या उनम इतनी सहानुभूति क्षमता इतनी सामाजिक न्याय भावना इतनी जिज्ञासा और बुद्धि है? इतना विवेक है?'

जगत न कहा नही। और इसक कारण क्या है? तुम जानते हो? मौजूदा समाज मे प्रभुत्व है धन का व्यक्तिगत लोभ का अपने हित के लिए पैसा कमाने का—व्यक्तिगत लोभ प्राप्ति ही प्रधान उद्देश्य। इसलिए एक कर्मचारी ज्यादा से ज्यादा पैसा लेना चाहेगा कम से कम काम करेगा। उसी प्रकार उसका मालिक ज्यादा-से-ज्यादा काम लेना चाहेगा और कम-से-कम पैसा देगा। आजकल के पढे लिखे एम ए पास निम्न-मध्यवर्गियो का भरण पोषण भी मुश्किल से हो रहा है। इसलिए अपनी सारी सद्बुद्धि और प्रतिभा को दर किनार कर वह मेहनत करता है और पैसे के बारे म सोचता रहता है। इसम उसका क्या दोष है?"

मैंने जवाब दिया दोष का प्रश्न नही है। सवाल है कि वे अपने से उठकर और अपने स परे कुछ सोचने और कहने के लिए तैयार नही हैं। उन्होंने गुड

लिविंग, 'अच्छी ज़िन्दगी बसर करना' एक आदर्श बना लिया है। माना कि इसमें भी उनका दोष नहीं है। लेकिन इसका नतीजा यह होता है कि वे एक जड सत्ता के रूप मे सामने आते हैं। साथ ही सोचने-विचारने की ताकत का इस्तेमाल न करते रहने से वे उन खयालात का शिकार होते हैं, जो इस मझाले दर्जे के लोगों मे फैलाये जाते हैं। विचारों के प्रचार [के लिए] आर्थिक और सगठनात्मक साधन और शक्ति उनके पास नही है। इतनी उन्हे दिलचस्पी भी नही है। लिहाजा, एक ओर, 'खाओ, पिओ, मौज करो' का सिद्धान्त जाने-अनजाने 'मारा-खाओ, हाथ मत आओ' के सिद्धान्त मे बदल जाता है। परिणामत, मच पर खडे होकर भले ही ये लोग रवीन्द्र और गाँधी जयन्तियाँ मना लें या श्रोता के सामने सिर हिलाते रहें किन्तु ये लोग सिर्फ 'अच्छी ज़िन्दगी बसर करना' वाले सिद्धान्त को मानकर चलते हैं।'

जगत ने कहा, "मैं उनके सम्बन्ध म इतना निराश नहीं हूँ।" मैंने खेदपूर्वक केवल अपना सिर हिला दिया। और फिर कहा, 'खैर, ऐसे लोगो से मेरी नही पट सकती। समाज के सर्वोच्च स्तर पर ऐसी शक्तियाँ मौजूद हैं, जो मनुष्य को, एक ओर, पशु बनाना चाहती हैं, दूसरी ओर, उसकी विचारशक्ति को भ्रष्ट और फिर नष्ट करना चाहती हैं, और केवल उस ऐन्द्रियिक उत्तेजना प्रदान करना चाहती हैं।"

अब जगत न अपना आखिरी दाँव निकाला और फेंका, "लेकिन, तुम अगर यह सोचते हो कि गन्दे होटलो मे चाय पीकर बडा जन-सम्पर्क स्थापित कर रहे हो तो यह एकदम बेबुनियाद बात है। यह सिर्फ—तुम्हारा पलायन है, या ज्यादा-से-ज्यादा एक प्रकार का एनार्किक रोमैण्टिसिज़्म है। इससे ज्यादा कुछ नही।"

मैंने एक गहरी साँस खींची। जी धँस गया। और फिर उस दिल की बात बतायी, "मैं जब छोटा था, मेरी माँ मुझे गन्दे बच्चो मे खेलने पर डाँटती थी। जानते हो क्यों? इसलिए कि मैं एक बड़े अफसर का बेटा था। इसलिए कि मैं उन अति-सामान्यो से बहुत ऊँचे स्तर के परिवार का था। हाँ, यह सही है कि मैंने मूवमेण्ट मे काम किया और फिर हट गया। लेकिन जब काम किया, पूरी भावना से किया। वह भावना अब भी है। आखिर निचला आदमी हिकारत स क्यो देखा जाता है? काहे का सोशल-स्टेटस? क्या तुम्हारे कबीर ने यह पढाया था? या तुकाराम ने यह पढाया था? या चण्डीदास न? जो हाँ, मैं कोई काम करता हूँ, पूरे दिल से करता हूँ। नही तो नही करता। मेरी माँ खुद ग़रीब घर से आयी थी, और ग़रीब घर तथा उसकी पिछडी संस्कृति हमारे पिता के घर मे उपहास और निन्दा का विषय बनती थी। लेकिन वही जब अच्छे खाते-पीते परिवार की गृह-लक्ष्मी बनी, धीरे-धीरे अपनी ज़मीन को तिरस्कार स देखने लगी। क्यों? उसी तरह हमारे य बॉस और उनका क्या रुख है? माना कि वे तुम्हारे और हमारे प्रति दयालु हैं, हमारी वे फिक्र करते हैं। लेकिन क्या अच्छाई का सबूत यह है, क्या अच्छाई की कसौटी यह है, कि आदमी हममे अच्छा व्यवहार करे, हम सहायता करे, हमारे प्रति अनुराग रखे? हम कहते हैं फ़लाँ आदमी अच्छा है। सिर्फ़ इसलिए कि उसका हमारे प्रति अच्छा व्यवहार है। क्या उसकी अच्छाई का यह अन्तिम और निर्णायक प्रमाण माना जा सकता है? मेरे खयाल से जो व्यक्ति सत्यपरायण और न्याय-भावना से प्रेरित है, साथ ही जिसका व्यक्तिगत हित जन-सामान्य के हित के ऊपर नहीं, उसके नीचे रहता है, और जिसके हृदय म हमारी ग़रीब जनता के लिए एक नदी लहराती है, वही मेरे खयाल से अच्छा आदमी है, उसी मे सच्चा सौजन्य

है। 'जनता' शब्द से घबराओ मत। आजकल यह शब्द 'असांस्कृतिक' हो रहा है क्योंकि आजकल साहित्य के क्षेत्र में जनता का अर्थ 'भीड़' लिया जा रहा है। जी हाँ, पहले जन-सामान्य को गरीब रखो, शिक्षा और संस्कृति की उपलब्धि के लिए आर्थिक साधनों से उसे वंचित रखो, फिर उसे भीड़ कहो, उससे घृणा करो और खुद इलाहाबादी प्रोफेसर बनकर साल्वादोर द मादारिआगा की पंगत में बैठ जाओ। संक्षेप में, उत्पीड़ित जनता से घृणा करो। और जो इस प्रवृत्ति का विरोध करे उसे कम्युनिस्ट कहो, पेट पर लात मार दो, साले को भूखों मारकर मरवा डालो! तुम्हारा-हमारा यह बॉस क्या करता है? इस शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र में तुम और हम हैं। हम उससे उपकृत हैं। हम उसके अहसानों के बोझ से दबे हुए हैं। हम उसे अच्छा आदमी कहते हैं। और वह एक अर्थ में अच्छा है भी। लेकिन इस केन्द्र की भूमि में पैर रखनेवाले—सदर बाजार से निकलकर इस केन्द्र में से गुजरनेवाले—गरीब आदमियों के प्रति उसके दुर्व्यवहार को भी तुम देखो! उसके लेखे, जो आदमी फटे-चिथड़े पहने है, वह या तो चोर और गुण्डा है या चोर और गुण्डे का सगा भाई है। मानो कि जैसे अच्छे-अच्छे नामी-गिरामी लोग इन-कमटैक्स की चोरी नहीं करते, रिश्वतखोरी नहीं करते, व्यभिचार नहीं करते, षड्यन्त्र नहीं करते—ये लोग जो धनी [हैं] और शिक्षा-संस्कृति की लीपा-पोती से सफेद हो गये हैं! अगर ऐसे नामीगिरामी उसके अहाते में आयें, तो वह दोनों हाथ बाँधे खड़ा रहेगा, जाहिर करेगा कि उनसे मिलकर उसे खुशी हुई है। लेकिन जब फटी चड्डीवाले इधर से गुजरेंगे तो वह ऐसे गहरे सन्देह से, शक की नजर से देखेगा! कइयों को उसने पीटा है! क्यों? इसलिए कि कुछ फटीचर बच्चों ने उसके बगीचे के चार आम खा लिये! और जब कॉलेज की लड़कियाँ फूल तोड़ लेती हैं और फल खा लेती हैं, तब? तब वह उनके पीछे-पीछे घूमता है!

"और वह है कौन? यहाँ की कई कम्पनियों का साझेदार है, उसके पास अपनी जमीन है। और माना कि वह इस केन्द्र का अवैतनिक अधिकारी और संचालक है! यह भी माना कि अपने वृद्धावस्था में वह सचमुच उदार हृदय, उदार-चरित्र, उदारमना होने का प्रयत्न कर रहा है। बहुत बड़ी चीज है यह। इसलिए वह हमारा वन्दनीय भी है। उसके-जैसे ही, सब ऐसा नहीं करते। वह व्यक्तिगत रूप से निस्पृह है। और अब भी उसके व्यक्तित्व में कहीं-न-कहीं अन्तरात्मा निवास करती है। इसलिए जीवन के कुछ क्षणों में वह महान् हो उठता है। लेकिन वह महान् किसके लिए है? हमारे लिए है, जिनके प्रति वह कृपाशील है, जिनके प्रति उसके हृदय में संवेदना है। लेकिन, निचली, फटीचर जनता के प्रति—चाहे वह शहर की हो या गाँव की हो उसके हृदय में क्या भाव हैं? इसे तुम खुद जानते हो! उसके लेखे उनका स्थान सबसे नीचे है, सबसे नीचे रहना चाहिए, और अगर वे उभरे तो उन्हें कुचल देना चाहिए। वह कार्य-कुशल है, नियमानुशासी प्रशासक है, नियमों के अनुसार काम करता है, लेकिन अपनों के लिए उन्हीं को भंग कर देता है। मेरे लिए उसने नियम भंग किये। मैं भी उसी के अपराधों और दोषों का साझेदार हूँ। और सबसे बड़ी बात यह है कि जनतन्त्रात्मकता का बहाना भी नहीं करता। और इसलिए साफ उभरकर दमन-नीति को अंगीकार करता है। इसलिए हम उससे डरते हैं। क्या यह ठीक नहीं है?

"और वह मुझसे कहता है कि इस सांस्कृतिक केन्द्र की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए

हम और तुम उन गन्दे होटलो मे न जायें, जहाँ ढीमर और महार, बुनवी और चमार, मजदूर चाय पीने आते हैं। वह क्यो ऐसा कहता है कि उसके लेखे चमकदार सोसायटी में उठना-बैठना सभ्यता, शिक्षा और संस्कृति या, समाज के सर्वोच्च शिखर का प्रधान लक्षण है ? मिस्टर जगत, इसीलिए मैं जान-बूझकर होटलो मे जाता हूँ और तुम भी मेरे साथ वहीं जाते हो और तुम्हे भी मालूम है कि मैं वहाँ क्यों जाता हूँ।

"इस मध्यवर्ग मे जीवित रहते मेरे बाल सफेद होने जा रहे हैं और मैं उसकी जन घृणा को पहचानता हूँ, खूब अच्छी तरह से। जिन्दगी मे एक जगह नही, हजारों जगह मुझे ऐसे तजुर्बे मिले हैं—चाहे वह एम बी बी एस डॉक्टर हो, कॉलेज का प्रोफेसर हो या हेडमास्टर हो। चाहे व्यापारी हो। मैं इन्हें खूब पहचानता हूँ।

'और ये तर्क, ये युक्तियाँ, यह लॉजिक-फिलॉसॅफी—साफ दिखनेवाले तथ्यों को, जिन्दगी को, जान-बूझकर तोड-मरोडकर पेश करने के तरीके हैं। तुम किसे सिखाते हो, जगत ?"

मैं बात करते-करते थक गया था। मस्तिष्क मे एक उत्तेजना फैल गयी थी। धीरे-धीरे मैं शान्त हुआ, स्तब्ध हो गया। और फिर शर्मिन्दा हो गया। मैं जगत को क्यो डाँट रहा हूँ ? जगत मेरे क्रोध का विषय थोडे ही है।

जगत शान्त बैठा रहा—निर्विकार। जो मेरा अनुभव था, वह उसका भी था। लेकिन उसने कम धक्के खाये थे, वह बडे बाप का बेटा था, उसकी स्त्री एम ए पास नवयुवती थी।

इतने म मैं देखता हूँ कि मेरे एक चिरंजीव मेरे सामने आ गये हैं और कह रहे हैं कि उन्हे अपनी गोदी म बैठा लूँ। पता नहीं, उसका भविष्य क्या होगा। पता नही वह आज का लाडला और मैला बच्चा कल ईमानदार निकले या हरामखोर हो, बडे आदमियो के सामने दुम हिलाये और छोटो को डाँट पिलाये। पता नही··।

और उसी समय मशीन की भाँति मैं जगत से कहता हूँ, "इसीलिए मुझे निस्सगता मिली है। जो मेरे अपने हैं, जिनके लिए व्यक्तिश मेरे हृदय में स्थान है, वे मेरे विचारो के विरोधी, मेरे आन्तरिक जीवन से बहुत दूर हैं। और जो व्यक्तिश मेरे नही हैं, नही हो सकते, उनकी ओर—उनके इद-गिर्द मेरे विचार, मेरी आत्मा मँडराती है। वे मुझ स्नेहदान नही कर सकते—क्योंकि मैं उनके जीवन-जगत का [illegible] आदर से मैं हमेशा बचते रहने [illegible] स बरस का था, नौजवान था, [illegible] उनकी परवरिश करना भी मुश्किल है। अपने बुढ़ापे म यह नौकरी मिली है। अब यहाँ से कहाँ जाऊँ ? हर चीज़ मेरे लिए लायबिलिटी है—परिवार, परिस्थिति और विचार, सभी—कोई मेरी उन्नति मे योग नही देती। लेकिन मुझे इसकी चिन्ता है। अँधेरे मे रहकर अँधेरे मे मर जाना ठीक समझता हूँ, लेकिन फटीचरो से घृणा करना नही चाहता। चाहता हूँ कि मेरे हाथ मे कोई अच्छा-सा काम हो जाये तो भर पाऊँ। और ये दरमियानी फासल और निस्सगता तो रहेगी ही। लेकिन इसका भी दूसरा एक

पहलू है जिसे तुम जानते हो !"

अब एक लम्बी चुप्पी छा गयी। चुप्पी की एक दीवार हम दोनो के बीच मे आकर खडी हो गयी। हम दोनो एक-दूसरे के दिमाग़ पर बोझ थे। और एक लम्बी चुप्पी के बाद, लगभग दो फर्लांग दूरी तय करने पर, विषय बदलने के लिए जगत ने एक अमरीकी कवयित्री एड्ना विन्सण्ट मिले की चर्चा आरम्भ कर दी। असल म बात यह थी कि मेरे पास अमरीकी कविताओ का एक सकलन है, जिसकी भूमिका मे मिले की कडी आलोचना की गयी है, किन्तु पुस्तक मे उसको स्थान नही दिया गया। इस बीच मैंने डॉरॉथी रॉमसन नामक एक अमरीकी लेखिका की पुस्तक पढी, जिसम मिले पर एक बहुत ही सुन्दर लेख था। मुझे आश्चर्य हुआ कि आखिर मेरे पास की पुस्तक म मिले की कविताएँ क्यो नही हैं ! इस पर जगत ने मिले के सम्बन्ध म और भी कुछ पढा। और वह बहुत पुरानी छूटी हुई बातचीत को आगे बढाने का प्रयत्न करन लगा।

लेकिन मेरी आँखें बाहर फैली हुई थी। तालाबो और रास्तो, खुले हुए मैदानी फैलावो से बने हुए ये दृश्य और उनम तरह-तरह स अँगडाई लेते हुए या खडे हुए वृक्ष-व्यक्तित्व भारतीय प्रकृति के नम्र, अवनत, शालीन, और आत्मीय रूप का परिचय दे रहे थे। इनकी दरमियानी दूरियाँ, दूरियाँ न मालूम होती थीं बरन् लीलाभूमि या विचरण-क्षेत्र-सी लगती थी (क्या मनुष्य मनुष्य के बीच जो फासले हैं वे किसी लीला-भूमि के, अर्थात् किसी परस्पर-सम्बन्ध को क्रियावान् करते हुए पाटे नही जा सकते ? क्या मनुष्यता हमेशा ही भेद-ग्रस्त और विषमता-ग्रस्त रहेगी ?)

इतने मे हम देखते हैं कि बायी ओर के तालाब के पास एक घना-घना हाथ उठाये हुए पेड के छायादार तल म एक प्रेमी-युगल बैठा हुआ है। हमें दूर से सफेद साडी की एक लाल किनारी दीख रही है और मैले सफेद कुरते की पीठ दिखायी दे रही है। उनका मुँह तालाब की तरफ है, लेकिन वे ऐसा एक कोण साधकर बैठे हैं जिससे कि उनके करीब गुजरता हुआ रास्ता भी उन्हे दिखायी दे सके। अब

पर लहराते बालो का एक गुच्छा

केश-गुच्छ जान-बूझकर ढीला रखा

आभास हो। उधर, उसके पास,

ज़रा ज़मीन छोडकर बैठ हुए नवयुवक का पाठ मजबूत मालूम नही होती। लगता है कि वह दुबला है। अब हमारा रास्ता उन दोनो के पास से गुजरा और देखते ही हम उन्हे तुरन्त पहचान गये। लेकिन उनके आनन्द-लोक मे विघ्न उपस्थित न करने के उद्देश्य से दूसरी दिशा की ओर मुँह किये आग बढने लगे।

उस समय शाम घिर चुकी थी। साँवला नीलापन सब ओर फैल रहा था। फिर भी अभी प्रकाश काफी था। हम दोनों आगे बढते ही जा रहे थे कि हमे देखकर वह प्रेमी-युगल उठ खडा हुआ।

अब वे दोनो हमारे सामने आ गये। युवक के कपडे साधारण हैं। लडकी उसके पीछे जरा दूरी पर खडी हुई है।

युवक ने मुझे नमस्कार किया। वह कही किसी हाईस्कूल म टीचर है। चेहरे पर ग़रीबी की हीनता पूरी विराजमान है। अस्वास्थ्य और दारिद्र्य की मलिनता की पार्श्व-भूमि मे उसकी मुसकराहट चमक उठती थी। उस मुसकराहट मे एक

ताजगी थी, जीवन का उत्साह था। उसकी आंखो मे हमारे प्रति श्रद्धा और स्नेह के भाव थे। उसने हमे बहुत बडा आदमी समझ रखा था, और सम्भवत वह यह

[illegible]

। मुझे लगा कि

जा रहे हैं। मुझे महसूस हुआ कि मैं बडा आदमी बन रहा हूँ। मेरा सिर आसमान से टकराने लगा। मेरी बातचीत का तौर, मेरा तर्ज़े अमल, सबकुछ बदलने लगा। ऐसा मुझे महसूस हुआ।

उधर जगत के चेहरे पर कठोर भाव-हीनता और अलगाव दिखायी देने लगा। किन्तु उसकी मुख मुद्रा मुझे भली मालूम नही हुई। स्वय के महत्त्व की अनुभूति स्निग्धता ला सकती है, किन्तु, अन्यो के महत्त्व की भावना बहुत-से दर्शको को अनुकूल प्रतीत नही होती।

किन्तु वह युवक तो दोनो को सम्मान दे रहा था, अपने से बहुत ऊँचे स्थान पर वह हमे बैठा चुका था, इसलिए मैं विशेष प्रसन्न था। अब दोनो के बीचोबीच एक हरी चिक का परदा पड गया—ऐसा परदा जो अफसरो के दरवाजो पर पडा होता है। किन्तु जब मैंने यह देखा कि वह जगत की ओर विशेष उन्मुख है तो मेरा चेहरा पीका जरूर पड गया था। उस समय मेरी बुझती हुई मन स्थिति की रक्षा उस लडकी ने की। वह आगे आयी। उसने मुझे नमस्कार किया और पूछा कि मेरी किताब छप गयी है या नही। यह तो सही है कि उसम नवयौवनोचित आकर्षण था। किन्तु वह सुन्दर नही थी। उसके चहरे पर गम्भीर रमणीयता थी। किन्तु मेरी किताब के सम्बन्ध मे उसकी जिज्ञासा मुझे अच्छी नही लगी। प्रतीत हुआ कि वह अनधिकार चेष्टा है। स्त्री द्वारा इस प्रकार की अनधिकार चेष्टा मुझे अच्छी नही लगती। ज्यो ही उसने किताब की बात छेडी तो मैं इधर-उधर देखने लगा। इसलिए कि मैं उसे अयोग्य और अपात्र समझता था। मेरा अपना खयाल है कि स्त्रियाँ आम तौर से निर्बुद्धि होती है, किन्तु बुद्धिहीन नही। सिर्फ यह भेद है कि उनकी बुद्धि किसी दूसरे स्तर पर दूसरे ढग स चलती है। विशुद्ध जिज्ञासा और किसी अमूर्त और अरूप के लिए जूझ पडने का साहस उनमे नही होता। यह मेरी धारणा है।

केवल नारी-सम्मान की भावना से प्रेरित होकर मैंने कहा कि मेरी पुस्तक सम्भवत छह महीने मे निकल जायेगी। मेरा उत्तर पाते ही उसने मुझे सूचित किया कि प्रसादजी का उसने विशेष अध्ययन किया है।

उधर जगत सूक्ष्म भाव के गहरे तैश म थे। वे जोर-जोर से उस युवक को समझाते जा रहे थे। मुझे लगा कि उनकी बात मे रग आ रहा है। और यह देखकर कि उन्हे समय और लगेगा, लडकी अपनी उकताहट हटाने के लिए मुझसे बात करते हुए अपना समय काट रही है।

इस शका के उदय होते ही मैं हतबुद्धि हो गया। मैं उसके मनोरंजन का विषय क्यो बनूँ! ज्यो ही उन दोनो की बातचीत खतम हुई, जगत मेरे पास चले आये। मेरी और उस स्त्री की बातचीत थोडी देर और आगे बढी, टूटती-जुडती रही। नमस्कार आदि को बीच मे लाकर हम एक-दूसरे से विदा हुए।

लेकिन मैं ढीला पड गया। एक मनोहर अस्तित्व का लोप हो गया। उस लडकी ने मेरे मन मे कुछ ऐसी तसवीरें तैरा दी थी, जो मेरे मन के लोक मे न मालूम कहाँ छिपी थी। किसी गली के ठण्डे अँधियारे पर चाँदनी बिखर रही है। वही कही एक घर और उसका अहाता मुझे दिख रहा है। अहाते क अन्दर बेलें हैं। बेलो के उलझाव मे कही एक दरवाज़ा झाँक रहा है। एक लडका दरवाज़े के बाहर खडा है और एक लडकी चौखट के ऊपर खडी है। लडका एक किताब आगे बढा रहा है। लडकी उस किताब को छुए हुए लडके से (शायद उस लेखक के बारे म) कुछ पूछती है। लडका बीच बीच मे कुछ जोडता जाता है।

चाहता हूँ कि बात क्या है।

यह दृश्य मेरे अन्त करण म सस्कारशील गरीबी की सारी वेदना, कष्ट, ममता, भावावेश, आलिंगन-चुम्बन, निस्सहायता और कठोर निर्मम आत्म-नियन्त्रण के मानव-चित्रो के साथ जुडा हुआ है। दिल फाड देनेवाले रोमास, पल-पल पर कदम कदम पर नैतिक प्रश्नो के सीग उठानेवाली जीवन-परिस्थितियाँ, मानअस्तित्व की रक्षा के लिए सब कुछ न्यौछावर कर डालनेवाले सघर्ष—और बेतहाशा आँसू, भट्टे लगनेवाले आँसू और उन्हे थामकर रखनवाली ज़बरदस्त डाँट। दिल के भीतर बैठा हुआ एक चाबुकबाज़ हेडमास्टर जो उच्छृखल प्रवृत्तियो को मुर्गा बनाकर खडा कर देता है तरह-तरह की और एक-दूसरे को काटने लपेटनेवाली उलझनें—इन सबसे मिलकर उस निम्न-मध्यवर्ग का जीवन बना है, जिसमे अतीत की भावना और आगामी की चिन्ता और दुश्चिन्ता, चेतना और सस्कार—दोनों सम्मिलित हैं। अन्तर के केन्द्र मे सिमटा हुआ जितना वैविध्य मुझे इस श्रेणी मे दिखायी देता है, उतना और कही नही। मैं प्रत्यक्षत इसी वर्ग का पुत्र हूँ, यद्यपि अब उससे अलग हो गया-सा दिखायी दे रहा हूँ। (जगत सम्पन्न कुल का होते हुए भी, माँ की तरफ से उस पर गरीबी का सस्कार है।)

किन्तु इसके बावजूद जब वे दोनो सामने खडे थे, हमारे और उनके बीच एक गहरा परदा पडा हुआ था, वही परदा जो एक अफसर के दरवाज़े पर पडा रहता है। मैं इस तथ्य को जानता था, और जगत उसे महसूस करता था।

पता नही क्यो, जगत ने फर्राटेदार अँगरेज़ी म एड्ना विन्सेण्ट मिले पर बात करना शुरू की। उस कवयित्री का प्रारम्भिक जीवन-सघर्ष, सामान्य मानव और जन-साधारण के प्रति उसकी प्रेम-भावना, एक लिरिकल पोएट के रूप मे मिलनेवाली आकस्मिक ख्याति, राजनीतिक-सामाजिक प्रश्नो मे गहरी अभिरुचि, जन-साधारण के समर्थन का आवेश, दो इतालवी पत्रकारो के जनतन्त्रवादी मतो के समर्थन मे स्वय की जेल-यात्रा फासिज्म के विरोध मे साहित्य निर्माण, (यह कहते हुए कि कोई बात नही यदि मै पहले जैसा कोई सुन्दर साहित्य निर्माण नही कर सकी, लेकिन जिस ध्येय के प्रति मैं निष्ठावान् हूँ उसका प्रचार तो कर सकी, सच तो कह सकी। जगत कहता है कि रद्दी साहित्य लिखन की हिम्मत भी एक हिम्मत होती है—क्योकि उसके पीछे भी एक महान् प्रेरणा होती है), अपने सरक्षक पति की मृत्यु के उपरान्त, मिले द्वारा सारे दु ख को समेटते हुए पुन साहित्य-निर्माण

और तदनन्तर मृत्यु ! जगत कहता है कि उसके साहित्य के सर्वोच्च उत्कर्ष के दो शिखर थे। एक तो प्रारम्भिक—जबकि वह महान् लिरिक कलाकार के रूप मे लोकप्रिय हो गयी और एक मृत्यु के पूर्व की दीप्ति ! जिसमे उसने यदि अपना सर्वश्रेष्ठ नहीं तो अत्यन्त श्रेष्ठ साहित्य प्रदान किया।

जगत ने उसके जीवन तथा कृतित्व की कहानी इतने अच्छे ढग से कही कि मुझे अँधेरे घर दिखायी दिये, जिनमे दिये टिमटिमा रहे हैं, कोई छोटा बच्चा रो रहा है, और बडे बच्चे आँगन में धूम मचा रहे हैं। निस्सन्देह मिले मूलत: एक प्रेम कवयित्री थी। स्त्रीजनोचित, स्त्री-सुलभ उसका काव्य था, और उसमें प्राप्त प्रतिमाएँ सामान्य जन जीवन से आकर अत्यन्त हृदयस्पर्शी हो उठी थी। उसने जीवन-भर मृत्यु से सघर्ष किया। वह निराशावादी नही थी।

उसी झोक मे जगत कोनरेड आइकेन पर बात करता गया। उसकी 'द नेमलेस वन्स' नामक कविता उसे कण्ठस्थ थी। उसका अन्तिम चरण तो मानो हम सभी को लपेट रहा था। जी हाँ, यह वही जीवन है जो आज चेतना-सम्पन्न सस्कारशील जन साधारण जी रहे हैं।

जगत के लिए काव्य-सौन्दर्य केवल एस्थेटिक महत्त्व ही नही रखता था, वरन् जीवन-निष्कर्ष-पूर्ण महत्त्व भी रखता था, जिसके अनुसार वृत्तियाँ बनायी जा सकें और आचैरण किया जा सके। उसके सामने अमरीकी कार्यो की केवल कृतियाँ ही नही थी, वरन् उनका जीवन भी था।

लेकिन इसके बावजूद, कुछ ही मिनिट पहले जब वे युवक-युवती मिले तो हमारे-उनके बीच का भेद—दरमियानी फासला उभरकर फैल गया। इस तरह के फासले (जो मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई पैदा कर देते हैं और उसे बढा देते हैं) हमे अच्छे नही लगे। भारतीय अभिजात वर्ग का एक सदस्य होते हुए भी जगत का भाग्य अच्छा नही है, भले ही वह अपने बल-बूते, ऑक्सफोर्ड या हार्वर्ड हो आये और डॉक्टरेट ले ले। क्योंकि वह जमीन का भूखा है, जहाँ किसी जाति या देश के सर्वोत्तम फल-फूल खिलते हैं, उसे सबसे पहले वह जमीन चाहिए। एड्ना मिले और कोनरेड आइकेन-जैसे अनगिनत कवियो के अनुभवी हृदयों को जीवन-मूल्यो का सौन्दर्य है, उन्ही को लेकर वह आगे बढना चाहता है। (कहना न होगा कि उनके काव्य म जन-जीवन की अनगिनत अनुभव-दग्ध प्रतिमाएँ हैं।)

कहा कि 'तू रोज दो सफे अँगरेजी म लिखकर लाया कर।' ' जगत कहता गया, "मैं तो खुद एक प्रायमरी स्कूल खोलनेवाला हूँ, जिसमे नाक बहते बच्चे और फटीचर बच्चे आया करेंगे।"

लेकिन मैं किसी दूसरी ही धुन मे था। उनके अन्तिम वाक्य को न सुनते हुए मैंने कहा, "हाँ, आजकल तालीम की भूख बहुत बढ गयी है। बीस हजार आबादीवाले कस्बो मे आर्ट्स एण्ड सायन्स कॉलेज खुल रहे हैं और आगे भी खुलते जायेंगे। गरीब-से-गरीब भी अपने बच्चे को ऊँची तालीम दिलाना चाहता है। एक बहुत बडा वर्ग आगे चलकर शिक्षित होकर जब सामने आयेगा तब उसका [illegible] प्रभाव होगा।"

जगत मेरी तरफ देखने लगा, मुसकरा उठा। वह मेरी भावना समझ गया। शायद आज की स्थिति से घनघोर प्रतिक्रिया करके कोई महान् साहित्यिक जन्म ले ! भारत में हर दसवें साल ज़माना बदलता है ! तब कितना बदल जायेगा !

लेकिन जब मैं घर पहुँचा तब बात उलटी हो उठी। दरमियानी फ़ासले फिर फैल गये। मनुष्यों के बीच रहते हुए भी मैं अकेला हो उठा। दरमियानी फ़ासलों में जो तसवीरें तैर रही थीं, उनसे मन का सन्तोष कब तक करूँ ! हाँ, यह सही है कि बाहर से जब तक संवेदनाएँ या प्रेरणाएँ प्राप्त नहीं होतीं तब तक ज़िन्दगी में जान नहीं आती। सम्पूर्णतः आत्म-निर्भर व्यक्ति सम्पूर्ण शून्य होता है। आध्यात्मिक साधना का ध्येय भले ही सम्पूर्ण शून्य की प्राप्ति हो, कला का ध्येय तो यह नहीं है, न उसका यह स्वभाव ही। अन्तर और बाह्य की परस्पर क्रिया से जनित जो भी जीवन है, वह कला का इष्ट है। इसके बिना वह शून्य है। मैं शून्यता की साधना से इनकार करता हूँ।

शायद इसी शून्य से भागने के लिए मेरे बॉस ने अपना दरबार लगा रखा है, जिनकी आलोचना मैंने की। लेकिन वे शून्य से भागने की तरकीब नहीं जानते। आई वाण्ट टु बी इन दि थिक ऑफ थिंग्स, ऐज़ मिले ट्राइड टु बी, यस, टु बी इन दि थिक ऑफ थिंग्स।

[सम्भावित रचनाकाल 1963-64]

अपूर्ण कहानियाँ

अधूरी कहानी : एक

लगातार बीस वर्षो से वह घर को नया, सुन्दर, आकर्षक बनाने का उद्योग करती रहती। यह नही कि वह उसे कीमती चीजो से ढँककर रखती थी। यह उसकी सस्कार-सज्ञा के विपरीत था। परन्तु वह घर की व्यवस्था को नित्य बदला करती। आज टेबिल इधर है, तो महीने-भर बाद वह विरुद्ध दिशा मे पहुँच जायेगा। लोहे की कॉट यो रखी है, तो महीने-भर बाद वह स्थान परिवर्तन कर देगी। प्रत्येक नवीन व्यवस्था मे उसे कोई परिचय-हीन, मूक, नवीन और निकटतम अर्थ मिलता। कुछ क्षणो के लिए वह बच्चे-सी खश, जो धूल को इकट्ठा कर किले के नये-नये परकोटे और नयी-नयी दीवारें बनाता रहता है, हो जाती है। हाँ, बच्चा भी कुछ-कुछ इसी तरह का सूनापन अनुभव करता है। परन्तु इसमे कटुता अधिक है, पसीना नही है, जो खूब रेत के किले और धूल के परकोटे बनाकर आता है। तो स्पष्ट है कि सबसे बडी समस्या सिस्टर रुक्मिणी के साथ उसके सूनेपन की थी।

इसीलिए वह पास-पडोस की नर्सों के साथ आत्मीयता का व्यवहार करती। वे लोग घर मे आते, हँसते-खेलते, सिनेमा की बात करते, डॉक्टरो, कम्पाउण्डरो और अन्य घरेलू बातो पर जीभ को नचाते। परन्तु जो आत्मीयता की भिक्षा माँगता है, चाहे वह कितनीही सूक्ष्म रीति से क्यो न हो, चाहे कितने ही गहन तौर पर क्यो न हो, उसके पल्ले कटुता ही पडती है। सिस्टर रुक्मिणी ने देखा कि ये लोग अच्छे हैं, पर नासमझ हैं।

उसने अपने म एक दृष्टि प्राप्त कर ली। वह अन्धी दृष्टि है। जब अन्दर का पानी जम जाता है तो पत्थर हो जाता है। पर एक पारदर्शी पत्थर। उस पत्थर को पार करके आनेवाली दुनिया की किरणें उस हृदय के खब अन्दर चली जाती हैं। उस पारदर्शी पत्थर का चश्मा पहने हुए हृदय को हरेक (वस्तु) दीखती है, जो कहने के लिए नही, सिर्फ देखने के लिए है, छोड देने के लिए है। परन्तु इससे छूटता कुछ नही, इकट्ठा जरूर होता चलता है।

वह हँसती, खेलती, चिढती, गुस्सा होती, दु ख अनुभव करती, सुख अनुभव करती, स्नो, पौडर, चाय, भाई, बहन, रिश्ते, जन्म और मरण—सब जैसे बाहरी हैं। वे प्राकृतिक, आर्थिक इत्यादि नियमो से बँधे हैं। परन्तु इन सबको देख रहा है एक आन्तरिक केन्द्र, जो मौन है, पर अपना है, वह गौण है पर अत्यन्त सक्रिय है। परन्तु वह एक आँख है जिस पर बर्फ-जैसे सफेद पत्थर का पारदर्शी चश्मा चढा रहा है। व्यक्तित्व के अन्धकारपूर्ण कमरे मे वही एक शान्त, स्वच्छ, तीव्र

और बर्फीला सफेद आकार गोल-गोल चमकता हुआ दीख पडता है।

आज से पच्चीस साल पहिले उसके वृद्ध पिता ने आठ रुपये उसके हाथ पर रखकर उसे अपने शहर से बिदा किया था। उसके बाद अपनी मर्यादित बुद्धि, परिश्रम और सौहार्द्र से वह एक अत्यन्त साधारण नर्स से उन्नति कर धीरे-धीरे आज सिस्टर हो गयी थी। इस दर्मियान मे अनेको बादल, घनघोर और विकराल, आये और गये, जिन्होंने शक्ति नही छोडी केवल एक सुनसान छोड दिया। कई मैदान मिले और पीछे छूट गये, परन्तु जिन्होंने एक घोर थकावट ही भर दी। कई मस्त हवाएँ वही और रुकी, जो एक बात गुनगुनाते हुए खतम हो गयी कि तुम अकेली हो, अपने आप मे एक, केवल एक।

परन्तु इन सबने मिलकर एक बात और दी। वह था अनुभव, एक विशेष मार्ग-रेखा का अनुभव था—जिसने उसको किताबी बुद्धि नही दी, एक असल् ऊपरी निर्मलता, स्वच्छता और परिष्कार नही दिया, परन्तु उसे एक राज्य दे दिया जिसकी अपनी दृष्टि थी। ठोकर लगने से दिल में बुद्धि पैदा होती है, बुद्धि मे बोध नही जगता। बुद्धि मे बोध पैदा होना, यह एक सामाजिक शिक्षा है, एक सुन्दर परिष्कार है, जिसका रक्तमय अनुभवो से कोई ताल्लुक नही।

इन रक्तमय अनुभवो की गठरियाँ बाँधते-बाँधते वह न जाने कब हृदय से तरुण की वृद्ध हो गयी। वह तारुण्य के अनुसार ही जूडा बाँधती, पोशाक पहनती। फिर भी, वह चलते-चलते, ताश खेलते-खेलते, सिनेमा देखते-देखते गम्भीर हो जाती। अन्य नर्सों से अलग अनुभव करती। कोई भी फूहड बात सुनते ही उसे अजीब-सा मालूम होता।

फिर भी वह अनेको विरोधी बातें कर जाती। उसके बाह्य स्वभाव मे कई गलतियाँ थी, कई भूलें थी, कई मूर्खताएँ थीं, कह सकते है कई क्रूरताएँ थी—जो मनुष्यता का अतृप्तिकर, असहिष्णु तकाजा है।

लोग उससे नाखश थे, खुश थे। वह महत्त्वहीन थी, पर कोई मनुष्य महत्त्व-हीन नही है। वह शैतान है जो मनुष्य को महत्त्वहीन कहता है। उसमे आँखें नही हैं, और चमत्कार-पूर्ण अन्ध-बुद्धि नही है। हरेक आदमी को दुनिया मे कुछ-न-कुछ कहने को है। जो इससे इनकार करता है वह शैतान है। और शैतान को भी कुछ कहने को होता है, इसलिए वह मनुष्य है।

वह एक ऊँची स्त्री थी, कम-से-कम मालूम ऐसा ही होता है। वह गम्भीर थी। कोई उससे ची-चपड नही कर सकता था। चाहे कितना ही विरोधी क्यो न हो। कारण है कि वह सजीदा थी। दूसरे, उसने अपने घराने से अहवाद पाया था। अह-वादी को दुनिया मे बहुत सतर्क और सावधान रहना पडता है। उसके लिए अपनी ग़लतियाँ, यदि घ्यान मे आ गयी, और परिस्थिति की एकता के कारण बदली नही जा सकी, तो घाव बन जाती हैं। अहवादी, कम-से-कम निम्न-मध्यवर्ग का, अधिक रक्ताल होता है, क्योकि वह दुनिया की चक्की मे पिसता है, पर झुकना नही चाहता है।

रिक्तता प्रकृति की नाराज़ अभिव्यक्ति है। और व्यक्ति पर अपना सम्पूर्ण बदला निकालर [illegible]
का रोग था। [illegible]
लिए जीते हैं, [illegible]

जिन्दा रहना चाहता है। जिन्दा रहना उसके लिए साहस है या दु साहस है। इसलिए वह व्यक्ति हमेशा एक माँग है, जलती हुई माँग है, जिसकी चिंगारियाँ उसे पहले भस्म करती हैं। दूसरो को भस्म करने की शक्ति उसम नही होती। परन्तु उसकी इस वैध माँग की पूर्ति पूँजीवादी समाज नही कर सकता। उसके लिए साम्यवाद चाहिए।

ढाई बज रहे थे। कमरे की दीवार पर लगी जापानी ऑफिस क्लाक टक-टक कर रही थी, मानो युग-युगो से वह ऐसी ही चल रही हो। सारे चित्र अपनी निस्तब्ध मौन दृष्टि से उसे देख रहे थे।

रुक्मिणी के मन मे अब भी चिढन थी। दो सेर आलू उसके बिना पूछे ले जायें तो हो चुका! पासवाली तरुण नर्स मालती को फिजूल मुँह लगाया। आज से नही, जब से मालती आयी है वह यो ही करती देखी गयी। कभी कघा, तो कभी तेल, तो कभी बालटी। यह स्वतन्त्र व्यवहार! जबकि रुक्मिणी ने कभी इतनी स्वतन्त्रता न दी हो, और न दूसरे के घरों में कभी इतनी ली हो! इतना अधिक मुक्त परिचय! जबकि असलियत मे ऊपरी-ऊपरी परिचय ही हो। क्यो कोई आदमी आय, और उसके एकान्त को अपनी मूर्ख चपलता से भग कर दे! भला अपनी जिन्दगी मे इस हद तक बढ आने की इजाजत रुक्मिणी ने कभी किसी को न दी हो, जो हद मालती का व्यवहार, उसकी अबाध हास्य, चपलता बतला रही हो!

मालती के लिए सिस्टर के मन मे सिर्फ नफरत उमड आयी। एक ठण्डी नफरत क्योकि मालती न उसे अपने घाव से परिचित करा दिया था। इसीलिए वह असने एकान्त की स्वामिनी होना चाहती है।

दूसरे दिन मालती बहुत हँसती हुई, प्रफुल्लवदन, वेणी मे मोगरे का हार पहने नजर आयी, तो सिस्टर ने मुँह फेर लिया, और जल्दी-जल्दी ऑपरेशन थियेटर मे घुस गयी। मालती बराबर एक महीने से देखती आयी है कि रुक्मिणी अकारण उससे नाराज है। मालती चाहती थी कि वह स्वय जाकर अपन अपराधो की क्षमा माँग ले/। परन्तु 'क्षमा', ये दो अक्षर मन मे कहते हुए ही उसका मन रुँध जाता था।

फिर गरमी के दिन आ गये। कुछ ऐसा ही रहा कि इन दो नर्सों की ड्यूटियो की व्यवस्था कुछ इस प्रकार की हो गयी कि एक का फुर्सत का समय दूसरे के काम का समय था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, त्यो त्यो उन दोनो के मिलने के समय की भावनात्मक परिस्थिति, मालती की कल्पना म, एक भयकारी वस्तु हो गयी। मालती भी चाहती थी कि मिल लो, परन्तु वह अपने भावना-प्रवाह से डरने लगी। उस असहनीय आत्म-चेतनता से मुठभेड अप्रिय मालूम हुई। इसलिए उसने मिलने के समय को आगे बढा दिया। और इस दर्मियान मे मन की कुण्ठा अधिकाधिक बढती गयी। रुक्मिणी ने एक बार राह मे चलते-चलते केवल अमूर्त सफेद दृष्टि से उसकी ओर देखा, मालती समझ गयी कि रुक्मिणी उससे लड पडी।

गरमी के दिन थे। घनी-घनी घटाएँ एकदम आसमान मे गरजती हुई उमड आती, और गुलमौर के ऊँचे पेड लाल-लाल फूलो से लदे बडे सुहावने मालूम होते। उस घोर मदमाती घटा की पृष्ठभूमि पर वे लाल-लाल राशि-राशि पुष्प, मालती

के हरे जालीदार क्वार्टर्स मे से ऐसे मालूम होते जैसे उस घनघोर घटा मे आग लग गयी हो।

विधवा मालती की अर्धवृद्ध पतिहीना माँ बडे ध्यान की कडी बारीकी से अपनी पुत्री को देखती रहती और चीन्हती रहती। एक दिन जब कुछ वारिश हो रही थी, तब अपने कस्टम्स मे नौकर, बीस बरस के गठीले नौजवान पुत्र को अपने पास बुलाकर उसके कान मे धीरे-धीरे कहने लगी, जिससे उस पुत्र का चेहरा खाक सा पीला हो गया।

वह नौजवान, जिसका नाम मोहन था, कस्टम्स के पीले-पीले कागजो को अपने खन और अपनी नौजवानी के डोज़ेज दे रहा था। भूख, दयनीयता, उपेक्षा से मारा हुआ वह, अपने वर्ग से गिरा हुआ होने के कारण, उस प्रतिष्ठाहीन और चेहरे पर से अत्यन्त गरीब, मासूम और गुस्सैवर को केवल निर्वैक्तिक रास्ता ही एकमात्र आश्रय रहा। और आज से करीबन दो महीने पहले से उसे रोज़गार (जो सासारिक प्रतिष्ठा का एकमात्र मापदण्ड है) मिल गया था, और वह अनुभव कर ही रहा था कि ज़िन्दगी कुछ फिसल रही है, कि इतने मे उसने यह सुना। वेमुरव्वत रास्ता, जो छुटपन से लगाकर तो अभी तक उसका सगी रहा, उसने उसे दूसरे साथी भी दिये जो इसी मध्यवर्गीय सफेदपोश जाति के थे। चरित्र उनका प्रधान [illegible] न था। सिनेमा और घूमना, सिगरेट और मज़ाक—ये उनके

अच्छा भी था,

। दीर्घ वृक्ष नदी

क पाना म वह रहा हा। व माहन का वहन क वार म उस भया-नयी बातें सुनाया करते। और इस मौके पर वे अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण और दयामय मालूम होते। इन बातों को सुनकर मोहन सिर्फ जलता। परन्तु वह रास्ते का एक पथचारी था।

जब वह दस साल का था तब माँ ने उसे अपने दूर के रिश्तेदार के पास बडी मिन्नतो और खुशामदो के बाद रख दिया था, जहाँ पर मन न लगने के कारण (कुत्ते की दुम हिलानेवाली खुशामदी बुद्धि उसने न पायी थी, वह अपने सब रिश्तेदारो स घृणा करता था) वह भाग निकला। माता की कुटुम्ब-रक्षिणी और सासारिक आँखो से गिर गया।

उसे सबसे अधिक बुरा इसी बात का लगता कि वह माँ की आँखो मे गिर गया है। परन्तु उसने नौकरी की सफेदपोश खोज नही की, उसकी प्रकृति मे नौकरी की दर दर तलाश और बडो की निर्वैयक्तिक आँखों को सहने से भूखो मरना अधिक स्वास्थ्यकर था। परन्तु वह नौकरी के लिए हमेशा तैयार था। माँ कहती कि तू गुण्डा हो गया है, मोहन कहता कि मैं तेरा पुत्र हूँ बदचलन नही हूँ। माँ कहती कि मेरे दो बेटे और हैं, वे खायेंगे क्या ? मैं चार घर रोटी पकाती हूँ, तब तीन पेट पलते हैं। पुत्र कहता कि मुझे रास्ता बतलाओ।

इसके उत्तर के अभाव मे मोहन हमेशा मित्रो सडको, गलियो और जगलो म दिखायी देता। उसके सारे सगे-सनेही उसको कोसते, परन्तु बहादुरी के साथ मन के अन्दर ही अपने दोष स्वीकार करता चलता और निर्मम रास्तो पर चल पडता।

इसके विरुद्ध उसकी माँ अपने पुत्र के लिए दस जगह जाती, और बडी युक्ति

और सावधानी के साथ नौकरी की बात आगे रखती। बडी ही मार्मिक कुशलता से लोगो के मनोभावो को अपनी ओर खीचकर—उसका स्नेहाल व्यक्तित्व सचमुच इसी योग्य था—वह विजय प्राप्त कर लेती। परन्तु समाज की सीढी मे जितना आदमी नीचे होगा, उतनी ही उसकी सफलता या असफलता होगी। आखिरकार माँ को सफलता मिल ही गयी।

वह एक जगह काम पर जाती थी। वह एक बूढा रिटायर्ड मिनिस्टर था। अकेला था। अपार सम्पत्ति थी। दत्तक पुत्र था। उसको आँखो से सूझता नही था। दत्तक पुत्र उसके घर म अन्न भी परदेशी था। जैसे जर्मनी-पुत्र जार्ज पहला इग्लिस्तान म। फलत वृद्ध मिनिस्टर की फिक्र लेनेवाला कोई न था। एक बूढी स्त्री की प्रार्थना सुनकर वह पहले खामोश रहा फिर इनकार कर दिया। माँ निडर होकर प्रार्थना मे आगे बढती ही गयी। उसने चिल्लाकर इनकार कर दिया।

और फिर चुपचाप स्वीकार कर लिया। सातवें दिन मोहन की जेब मे हुक्म था।

तब मोहन एक हरा ब्लेजर पहन हुए गोरे खूबसूरत नौजवान आधुनिक आवारे के साथ चाय पी रहा था। रात थी और बाजार बिजली के प्रकाश से लहरा रहा था। [illegible]

[illegible] ल पर वालो के नीचे
पर्स [illegible] रही थी, मानो कि
उसे पूरी साँस न मिल रही हो।

दूसरे दिन सब लोगो ने देखा कि वह काम से लौट रहा है उसी तरह चलता हुआ जिस प्रकार कि निर्दय कुम्हार से पिटा हुआ गधा डोलता हुआ चला आ रहा है।

मालती और मोहन की माँ का किस्सा अजीब है। उसकी जीवन धारा ही अलग है। वह एक गरीब घराने की षोडश-वर्षीया लडकी थी, जबकि उसका विवाह हुआ था। उसका पति पैंतालीस वर्ष का एक क्रोधी, कोमल, डण्डेबाज, भोला, ईश्वर-भक्त क्लर्क था। उसकी स्त्री अत्यन्त नम्र होकर ही रहती थी। फिर भी पिटती रहती थी। वह एक भय-कातर, अज्ञान, गुलाम थी, और वह यह नही जानती थी कि उसे काला घोर अज्ञान ही डरा रहा है। पति नही, समाज नहीं। वह पति पर आश्वस्त थी, क्योंकि डरावने बाह्य का वह एक ज्ञानवान प्रतीक था।

एक घोर काली सुनसान रात मे जबकि काली सिन्ध (नदी) की डरावनी गूँज आकाश का दिल फाड रही थी तब एक छोटे-से कस्बे म जो उस नदी की कगार के ऊपर के मैदान पर आकाश और पृथ्वी की विराटता म अपने नगण्य जीवन बिता रहा था, एक पुराने बाडे के अँधेरे कमरे मे मालती की माँ के पति की देह ठण्डी पड गयी। तब बैठे हुए वैद्य और रोती हुई स्त्री की छायाएँ मिट्टी की मटमैली भीत पर घनी काली होकर छा रही थी।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1936-40]

एक लम्बी कहानी

वसन्त देव ने मुदस्सिर के यहाँ खाना खाने का इकरार कर लिया। कह दिया कि वह केवल भात और दाल खायेगा।

गगापुर मे जब से देव आया है, उसे सुख नही मिला है। आदतों से लाचार, अननुभव स दुखी, और सहृदयता का भूखा देव मुदस्सिर से जा मिला। अपने शहर से गगापुर दूर नही है—केवल चालीस मील है—परन्तु देव को लगता है मानो वह अपनो स बहुत दूर पड़ा है। वह हमेशा अपने घर जाने को तड़पता है।

फिर गगापुर मे घर का आराम नही है। वह एक अँधेरे निर्जन बाड़े की कुठरिया मे रहता है। पानी कापड से आता है, महँगा है। भाजी मिलती नही है। पर सबसे बड़ी बात, उसे खाना पकाना आता नही है। और वह झक्की है, आलसी है। महीने मे बीस बार पूरी खाता है दूकान पर, दस बार भूखा रहता है।

स्टाफ के अन्य सदस्यो से देव को आते ही घृणा उत्पन्न हो गयी। वे मूर्ख और कुत्सित, अश्लील और गँवार—निर्बुद्धि और अक्खड़ मास्टरो का भयानक मजाक और बातें करने का घृणापूर्ण ढब—वाह रे वाह !

गगापुर के इस भयानक मरुस्थल मे मुदस्सिर ही एकमात्र उद्यान नजर आया।

स्कूल छूटते ही देव मुदस्सिर के यहाँ चला आया। मुदस्सिर प्रायमरी स्कूल का मास्टर होने के कारण बहुत जल्दी छूट जाता था। तब वह चूल्हा फूँक रहा था और उसके आसपास नईम, सईद, अब्दुल और 'चचा' काम कर रहे थे।

"कितनी तकलीफ उठाते हो, यार, मेरे लिए !"

"काहे की तकलीफ, मास्साब," मुदस्सिर ने नाराज-सा होते हुए कहा।

वह एक मोटे शरीर का हँसोड़ मास्टर है। चार छोटे-छोटे बच्चोवाला युवक है, जिसकी महीने की कुल सरकारी आमदनी पँधरा रुपया है। मैले पाजामे पर मैली शर्ट, जिस पर चश्मा पहना हुआ, बेहद मजाकिया, सुडौल, भव्य भालवाला, हँसता हुआ चेहरा खिलखिला पड़ता है।

देव बैठक मे चला। यह सोचते हुए कोट उतारने लगा कि मैं भी कुछ मदद करूँ।

कमरे के एक कोने मे चूल्हा था। वही एक सीका टँगा हुआ था, उस पर सूखी हुई रोटियो के टुकड़े रखे थे।

'चचा' नामक ऊँट-जैसा ऊँचा, आठवी का लड़का चूल्हा फूँक रहा था। नईम भाजी काट रहा था। मुदस्सिर स्टोव सिलगा रहा था। उस छोटे-से कमरे मे धूम-धाम मची हुई थी।

देव ज्यो ही अन्दर पहुँचा तो हर्ष का कोलाहल छा गया। मुदस्सिर ने हाथ पकड़कर एक कपड़े पर उसे बिठला दिया। और वह स्वय स्टोव सिलगाने लगा।

"यार, क्यो आखिर इतना कष्ट !" देव से बोले बगैर रहा नही गया।

"इसको तुम नही जान सकते," स्टोव सिलगाते हुए खिलखिलाते चेहरे ने चट जवाब दिया। इस वाक्य का मतलब देव नही समझ सका, क्योकि अखबार लिये हुए गफूर अन्दर आया।

ग़फ़ूर के मुँह मे बीडी है। और पाजामा बेहद मैला है। शर्ट भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की है। बाल फिक्र के साथ काढे हुए हैं। मँझले कद का गठीला नौजवान। जब देव ने इसे पहले-पहल देखा था तो उसके विषय मे अच्छा भाव नही बना सका। कारण भी है, इतने मैले पाजामे और कमीज मे सिवा गुण्डे निरक्षर के कौन रह सकता है। परन्तु जब से मुदस्सिर ने उसके विषय मे कहना शुरू किया तो देव गद्‌गद हो उठा। मिस्टर वसन्त देव बी. ए. देव नही है, देव है ग़फ़ूर जो मुहल्ले [illegible]

और वहाँ देखते हैं कि बिल्ली के बच्चे! अब वह उनको सँभालने लगा। ऐसी जगह उन्हें रख दिया कि कुत्ते कभी आ नही सकते थे। इस प्रकार ग़फ़ूर की सारी सक्रियता केवल एक मटके के आसपास फिरती रही। यह नही कि ग़फ़ूर अविवाहित है, एक अच्छी हसीन बेगम का खुशदिल नवाब है वह।

ग़फ़ूर की बातो को मुदस्सिर अपने सारे स्नेह की सूक्ष्मता से कहता है, और देव का नित्य अन्यमनस्क रहनेवाला मन अन्दर से इतना भीग उठता है कि कुछ पूछो मत।

मुदस्सिर एक बेहद कहानीबाज़ आदमी है। छोटी-सी भी बात क्यो न हो, इस ढग से पेश करता है कि उसकी खुसूसियत कहानीनुमा हो जाती है। वह बात जीवन हो जाती है। बेतहाशा हँसी के कारण भाल पर की रेखाएँ इकट्ठा हो जाती है। कान के बाल खडे हो जाते हैं और होठ हँसी को रोकने की कोशिश करने लगते हैं। तब मुदस्सिर का रक्त चेहरा और भी आरक्त हो जाता है।

ऐसे समय मुदस्सिर के चेले-चपाटी—नईम, सईद, अब्दुल्ला—बोहरो-मुसलमानो के कई ऊँचे-टेढे लडके, जरूर हाज़िर रहते हैं। दिन मे सुबह-शाम उनकी भीड लगी रहती है। यही कारण है कि मुदस्सिर मुसलमानी जाति म, विशेषकर बोहरो मे, अद्‌भुत रौब रखता है।

गगापुर के आस-पास कई जागीरें हैं, और लोग जागीरदारी शरीर से काफी परिचित हैं। मुदस्सिर की देह और बात करने का सलीक़ा लोगो को भ्रम मे डाल देता है कि यह सचमुच का जागीरदार है।

ग़फ़ूर के अन्दर आते ही मुदस्सिर ने पूछा, "हॉलैण्ड के क्या हाल हैं?" ग़फ़ूर की आवाज मीठी कुछ बारीक है, चेहरा सुदृढ और कोमल है। नाक बारीक, होठ पतले और आँखें लापरवाह स्नेह से भरी हुई हैं।

उसने मुँह मे की बीडी निकालते हुए कहा, "डेनमार्क बिना लडे हुए गया।"

स्टोव पर चाय रक्खी जा चुकी थी। लोग बहुत व्यस्त थे। कमरा भरा हुआ मालूम होता था।

ग़फ़ूर ने बातें करना शुरू की धीरे-धीरे। देव सुनता ही रहा। ऊबलनेवाला देव यहाँ कभी ऊबता ही नही था। चाय बन चुकी थी।

खाना खाने के बाद धीरे-धीरे कमरा शान्त हो गया। रात के नौ बज चुके थे। श्मशान की भाँति मूक शान्ति मुहल्ले मे फैली हुई थी। जिस कमरे मे मुदस्सिर का खाना बनता है, उसके पीछे गच्ची है, जो आधी टूटकर नीचे के किसी कमरे मे टूट गयी है।

—परन्तु उसमे देव, गफूर और मुदस्सिर की आवाजें हवा मे मँडरा रही हैं। विषय समाजवाद का निकल गया है, और देव सहानुभूति की आँच से बाते कहता चलता है।

बात यह है कि अन्यमनस्क घर भागनेवाले देव के मन मे अनजाने रीति से मुसलमानी गरीबी, उनकी गन्दगी, उनकी आर्थिक बेबसी, उनके मुहल्लो की भयानक दशा पैठ गयी है। वह आश्चर्य करता है किस प्रकार लोग यहाँ रह पाते हैं। ऐसे रहनेवाले लोगो का रौबीला सरदार मानो मुदस्सिर हो।

देव की आवाज ऊँची हो रही है वह कभी नीचे आ जाती है फिर ऊँची चढ जाती है, फिर और भी चढ जाती है फिर धीरे धीरे उतरती है, स्पष्ट होती है, अलग-अलग होती है।

गफूर और मुदस्सिर चुपचाप बैठे है। मुदस्सिर का रौबीलापन और गफूर की व्यावहारिक बुद्धि अन्दर पानी पानी होकर बही जा रही है। वे चुप सुन रहे है, किस प्रकार उच्चवर्ग निम्नवर्ग को लूटता है, और मध्यवर्ग की हालत दयनीय है। [illegible] धीरे धीरे उतर रहा है।

बात को सुनता

रात और भी घनी हो चुकी है। देव की बात वैसी ही जारी है। वह कह रहा है 'इसलिए मैं चाहता हूँ, मुदस्सिर, कि तुम इण्टर तो पास कर लो, लॉजिक मैं पढाऊँगा, अग्रेजी म मदद मै करूँगा। पर तुम कब तक इस प्रकार यहाँ सडोगे? मैं रोज देखता हूँ कि तुम हँसने मे और मजाक म सिद्धहस्तता प्राप्त कर अपने को धोखा दे रहे हो। यह ठीक है कि तुम्हारी धाक है, पर इससे क्या?"

इस प्रश्न का उत्तर मुदस्सिर के पास कुछ नही है। उसकी आँखें कृतज्ञता से चमककर रह गयी है। उसका बडा पेट आराम स टिककर रह गया है। और पैर सट पडे हुए है।

गफूर ने अपनी मीठी धीमी आवाज से कहा कि दूकान पर चलो।

मुदस्सिर देव की तरफ देखने लगा। देव "हा" कहकर उठ बैठा।

वहाँ से चाय पीकर देव जब घर जाने लगा तो उसका हृदय प्रफुल्लित था। वह रास्ते पर सपाटे से चला जा रहा था। गली सुनसान थी। कुत्ते बीच-बीच म गोल होकर सोये पडे थे।

इतने मे पुलिस की आवाज आयी, 'कौन ?" देव आगे चलता ही गया। रुका नही।

'ठहरो !"

'कहाँ से आ रहे हो ?"

"मुदस्सिर के यहाँ से।" सुनकर पुलिस का जवान आगे बढ़ गया।

देव के जाने के बाद मुदस्सिर गफूर की दूकान पर पान खाता हुआ थोडी देर और बैठा रहा। उसका मन भ्रमित हो रहा था। वह उठा और जाने लगा। पैर आज चलना नही चाहते थे। उसका ढीला कोट उसकी अजीब चाल से हिल रहा था। वह अपनी गली के अँधियारे मे घुसा और आगे बढता ही चला गया। उसको अपने घर का दरवाजा लगा। वहाँ बनिये की गाय बँधती थी—इतनी गन्दी बास आ रही थी वहाँ से। मुदस्सिर ने दूसरा दरवाजा खोला। और सीढी घिस गये

ज़ीने से दोनों ओर टकराता हुआ ऊपर गया। फिर वहाँ दरवाज़ा खोला और बैठक में धप्-से लेट गया, मानो गिर गया हो, और फिर पड़ा ही रहा।

उसका मन अस्त-व्यस्त हो गया। बड़ी देर तक नींद नहीं आयी। विचार आते-जाते रहे। अनेक भ्रमणशील भाव तंग करते रहे। परन्तु वह पड़ा ही रहा।

अँधियारे सूनेपन की हवा को चीरते हुए बारहा के ठोंके मुदस्सिर के कानों में गिरे। वह अचानक उठ बैठा। आँखों को साफ करता रहा।

फिर वह ज़ीने से उतर गया। और सपाटे से ग़फ़ूर की ओर चला। कुत्ते पर पैर न पड़ जाये, यह सतर्कता उसके मन में जाग्रत थी। ग़फ़ूर की दूकान आ गयी।

पुकारा, "ग़फ़ूर-ग़फ़ूर, ग़फ़ूर-ग़फ़ूर, ग़फ़ूर-ग़फ़ूर!"

और फिर ग़फ़ूर दूसरे मंज़िल की खिड़की में दिखायी दिया।

"कौन? मुदस्सिर! आता हूँ।" कहकर ग़फ़ूर नीचे आ गया।

"घर चलो," मुदस्सिर ने कहा।

वे दोनों घर की ओर जाने लगे। मानो दोनों का बहुत पहले से ही ठहर गया था। दोनों ओर अँधेरा फैला था जिसमें म्युनिसिपैलिटी के कन्दील की रोशनी, भाड़ की दूकान, चमड़े की दूकान को अधिक भयानक कर रही थी। दोनों के पैरों की आवाज़ गली में घूम रही थी। वे दोनों चले जा रहे थे, मानो किसी गुप्त धागे से वे सम्बद्ध हों और एक की प्राणधारा दूसरे में चुपचाप अनजाने चली जा रही हो।

ऊपर पहुँचकर ग़फ़ूर ने पूछा, "तुमने लालटेन नहीं लगायी?"

"कहाँ, आज मेरा सिर दुख रहा था, वैसा ही लेट रहा।"

"वाह रे, वाह!"

लालटेन लगाते हुए मुदस्सिर बोला किसी गुप्त आवेग से, "आज कुछ नींद नहीं आ रही थी।"

"हाँ जी, आज मुझे भी कुछ देर से नींद लगी। देव की बातें क्या थीं!"

देव की बात की शुरुआत देखकर मुदस्सिर खुश हो गया। पर कुछ न बोला, केवल एक बार ग़फ़ूर की ओर निगाह उठा ली, मानो अपने को ही उसके मुँह पर खोज रहा हो।

"यार ग़फ़ूर, चाय की जाय और रात-भर जगा जाये। बोलो, क्या इरादा है?" मुदस्सिर असाधारण मृदु आवेग में बोल उठा, और उसके चश्मे के अन्दर पैठी आँखें खूब हँस पड़ीं, जिसमें मानो वह चश्मा चमक उठा।

ग़फ़ूर ने मीठी बारीक आवाज़ में कहा, "क्या ज़रूरत है इसकी? अपन क्या वैसे बातचीत नहीं कर सकते? कल मेरी मुश्किल हो जायेगी, कितना काम करना है मुझे।"

"अरे, हटाओ भी।"

और एक दस मिनिट में स्टोव की नीली रोशनी की छोटी लपटें नाचने लगीं जिसका दीर्घ गुंजन घर-भर में छा गया। मुदस्सिर सारा सामान पास ले आया, पानी उबलने के लिए रख दिया, और दोनों युवक मित्र स्टोव के आस-पास आमने-सामने बैठ गये।

कुछ समय तक ऐसी ही बातें चलती रहीं जो दोनों कहना-सुनना नहीं चाहते थे—किसी की मन की बातें नहीं थीं वे—फिर भी चल रही थीं।

कुछ बाद, मुदस्सिर बोला, "आजकल मुझे [कुछ] बहुत ही अधिक अच्छा लगता है, पर कुछ अच्छा नही लगता ।"

कुछ क्षणो तक शान्ति रही। फिर गफ़ूर गम्भीरता से बोला, "देव की करतूत है। जब से वह आया है, तब स तुम स्कूल म कितन जल्दी भाग आते हो ।"

मुदस्सिर चाय छानन लगा। उसकी उठती हुई भाप और सुगन्ध दोनो को अच्छी लग रही थी । लालटेन की प्रकाश-परिधि के बाहर खूब गहरा अँधियारा वैसा ही छाया हुआ था ।

चाय के कप-बशी की आवाजें धीरे-धीरे हो रही थी, और वे इतनी लघु मालूम हो रही थी, उस एकदम निर्वैयक्तिक मौन मे, मानो सारी पृथ्वी पर वे ही दो-चार मृदु ऊष्ण उद्धत आवाजें हो ।

ऐसे सुदीर्घ मौन एकान्त म जलते स्टोव के पास (स्टाव को बुझाया नही गया था) मुदस्सिर और गफ़ूर कितने पास-पास सट आय ।

गफ़ूर, मज़दूर प्रकृति का व्यापारी मतिवाला छोटा-सा दूकानदार, अनुभव कर रहा था कि उसके अन्दर कुछ तो भी वह है जो सीधा बडे वेग से मुदस्सिर को छू रहा है । वह मुदस्सिर को अपन सारे प्रवाह म भिगो लना चाहता है, खुद उसके तल पर गिरकर।

उसने मुदस्सिर की ओर देखा । *वह चहरा सारी प्रफुल्लता का आकार लिय* कही तो भी उसी के अन्दर इतना उदास हो गया है कि उसकी गम्भीरता विद्रूप भव्यता की भाँति दिखलायी द रही है ।

गफ़ूर ने कहा, "तुम अब जल्दी इण्टर की तैयारी म लग जाओ, देव का फायदा उठा लो ।"

"हाँ, मुझे अब उतनी मदद भी तो नही मिल सकती कही ।"

गफ़ूर पा रहा है कि जो वह कहना चाहता है, कह नही सकता ।

मुदस्सिर देख रहा है कि जो वह कहना चाहता है उसे कहना नही चाहिए । हाँ, शायद ऐसा ही ।

नही, पर आज ऐसा हो नही सकता ।

मुदस्सिर तुम्हारी बेगम के क्या हाल हैं ?'

"हागा, जी, मेरा तो मन ही नही लग रहा है । क्या करूँ, इस देव ने सब उथल-पुथल कर दिया है। मजे म आराम से यहाँ जिन्दगी बीतती थी । पर न मालूम कहाँ से एक नय झगडे का सामान इकट्ठा हो गया। वह कहता है कि इण्टर करो, ठीक, मैं कहता हूँ करो। पर, बाबा रे जेब तो गरम रहे। यहाँ तो *बमुश्किल तमाम घर रुपये भेज पाता हूँ । बेगम उधर बीमार और नाराज* तो साहब, यह कि बसर करने का नाम जिन्दगी है । देव यह ठीक कहता है कि मैं निजी कोशिशो से बआराम बी ए हो जाता और तीस रुपय से किसी कदर भी कम मेरी कीमत नही होती। पर आखिर आदमी आदमी तो है। वह करे क्या ? आराम भी न ल ? तो फिर दुनिया उसके लिए एकदम वीरान है पर बात हमेशा खटकती है । *मुझसे ज़्यादा बेवकूफ लोग चैन की बसी बजाते है । शान और इज्ज़त उनके* पैरो पर गिरती है। यह ठीक है कि मैं ऐसे आदमियो को और भी बेवकूफ समझता हूँ पर उससे क्या ऐसी शान और इज्जत तुम जानते हो, ग़फ़ूर, मुझे कभी नही भायी । "

ग़फ़ूर कहने लगा, "पर उसका कहना यह नहीं कि तुम आराम छोड दो।"

"नही, वह यही कहता है, एक मानी में···भाई, मेरा आराम कैसा है? तुम जानते हो, एक अफीम। तुम मेरी हँसी मे नही देखते? एक बहुत बडी समझदारी की बेवकूफी है उसमे। हाँ, समझदारी।···मेरे अब्बा ने हम छहो भाइयो की शादी एक साथ कर दी। वह भी उन्होंने दरअसल बडी समझदारी की बात की थी। जानते हो, उसमे समझदारी का क्या राज था? उन्हे एक भाई की शादी मे अगर दो हजार लगते तो छह भाइयो की शादी मे सिर्फ साढे चार हज़ार। इस तरह साढे *सात हज़ार का नफा उन्हे था छह भाइयो की एकदम कर डालने मे।* दरअसल, उन्होंने अपने कमतरीन जहन से एक निहायत बुनियादी फायदा सोच निकाला। फिर हम कुछ कह सकते थे भला! लल्लन, कल्लन, मुच्छन सब अपनी निगाहें नीची कर, बखिदमत अब्बाजान, हर जगह हर सूरत—जी हाँ, हर सूरत—हर वक्त हाज़िर है। यह तहजीब है, जनाब, हमारी आपकी!"

और मुदस्सिर एक कटु हँसी मे बुरी तरह से हँस पडा। उसके चश्मे ने अपनी जगह छोड दी।

"और फिर क्या? मैंने पाजामे पर पान के दागवाली कमीज़ चढाये वो जा रहे हैं, मुदस्सिर साहब, यहाँ पान खाते, वहाँ चाय पीते, इसको बनाते, उससे बात करते। और रात को घर आकर बेगम पूछती है कि नौकरी तलाश की, तो उसके दर्दमन्द दिल की चिनगारी मे घुलकर रात को नीद तक नही आती। और फिर सुबह? वही मैला मुँह! मैला मुँह नही तो मैला दिल—जी हाँ, उतना ही मैला जितनी कि सडक होती है।···फिर क्यो न ज़बान चले जब दिमाग बन्द हो जाता है! [illegible]। तो लीजिए, रोज सैफी [illegible] .ोवारोवाले ज़ीने पर चढ [illegible] जैसे मैं खिचता-सा एक [illegible] अपना सारा काम-धन्धा [illegible] ··यार, बस यही तो है, तुम हँसते हो। बस यही तो ऐब है तुममे!···और फिर वहाँ क्या, दो-चार चश्मा *लगाये हुए इत्र-सेंट से तर मुसलमान बनिये-वोहरे। सुनहली टुपिया लगाये* **जनम-भूमि, बॉम्बे समाचार** लिये।···और घर? जाने दीजिए!···यह घर मेरा नही··· मेरी बीवी का घर है। इस कूडे-करकट मे वही तो रह सकती है···इस हसीन *बुतखाने की हसीन बुत है, इस शानदार सल्तनत की वह मलिका है···जी हाँ,* यह घर मेरा कैसे हो सकता है? इस गन्दगी से मेरा सचमुच कोई वास्ता नही है। वह सचमुच इस घर की जिन्न है—उसकी रूह है।···और मैं? मेरी बात जाने दीजिए। मैं वह अक्खड बैल हूँ जो बूढा हो गया है, इसलिए जिसकी आँखो से मैला पानी बहता है। और, जनाब, इस तरह दिन कट रहे हैं। रातें कट रही हैं। जिन्दगी भागी जा रही है। पर मुदस्सिर मियाँ, हँसोड चश्मुद्दीन—पीले मुँह की गरीब बिब्बो, और दो ललचाते दुबले बच्चो से घिरे हुए बैठे हैं और पान खा रहे हैं। इस मासूम वीरानियत के वे शहशाह हैं। और अब इण्टर!"

ग़फ़ूर चुप ही बैठा था। मुदस्सिर की बातें उसने खूब सुनी थी। पर उसका यह मतलब उसने नही लगाया था। वह उसे खुशमिज़ाज मास्टर समझता था। बस, एक अच्छा आदमी। पर आदमी के दिलोदिमाग़ मे किन-किन हलचलो के

राज़ है, इसका पता बेचारे व्यावहारिक ग़फ़ूर को हो ही नही सकता।

स्टोव वैसा ही चलता रहा। रात के ढाई बज चुके थे। ग़फ़ूर शान्त स्मित धारण किये बैठा था। परन्तु मुदस्सिर की बाते उसके हृदय को छू गयी थी। केवल छू ही नही गयी थी, वह चाहता था कि वह इस भयानक असन्तोष के हटाने मे काम आये, प्रत्येक प्रकार मे। मुदस्सिर और ग़फ़ूर की बातें, इस तरह बातें, बहुत ही कम होती थीं। ये दोनो सहजता से समझ सकते थे एक-दूसरे को—बस, यही उनके समझौते का आधार था। इसीलिए गगापुर मे मुदस्सिर का सबसे बड़ा दोस्त ग़फ़ूर ही था।

प्रस्ताव हुआ कि चाय और बनायी जाय। फिर से पानी रखा गया। मुदस्सिर की मलूल भावना हट गयी। ग़फ़ूर चाहता था कि वह मुदस्सिर के मन की बातें ही कहता जाय।

परन्तु शान्ति रही। और इस शान्ति से मुदस्सिर के हृदय मे आनन्द बह पड़ा। ग़फ़ूर मुस्कराता हुआ बोला, "देव की तबीयत कैसी है ?"

"उसके मुँह मे छाले बहुत हो रहे हैं।"

"तो उसे वो गोलियाँ क्यो नही दी ?"

"दी थीं।"

"आराम है ?"

"हाँ ! खुदा मेरा शरीर उसे दे दे, और उसका दिमाग मुझे।"

"पर तुम्हारा जिस्म तो मोटा है !"

"तो उस तुम्हारा जिस्म मिल जाय।"

"पर मुझे काफी दिमाग़ है, उसके भेजे की मुझे जरूरत नही।"

मुदस्सिर हँसने लगा। ग़फ़ूर भी। ग़फ़ूर ने पूछा, "देव कल जानेवाला है ?"

"कहाँ ?"

"घर।"

"मुझे मालूम नही···वह कैसे जा सकता है! छुट्टियाँ कहाँ हैं !" मुदस्सिर को इस सवाद से धक्का लग गया।

ग़फ़ूर चुप हो गया। उसे मालूम नही था कि चाय का मजा मुदस्सिर के लिए अब कम हो गया।

इसलिए वह अपनी ही बातें कहता रहा, जिसमे मुदस्सिर को कोई मज़ा नही आ रहा था। और मुदस्सिर चुपचाप पुतली-सा बैठकर सुन रहा था। कभी कहता, "हाँ", कभी कहता, "अच्छा"।

सुबह उठकर देव ने पाया कि मुँह के छाले कुछ अधिक बढ गये हैं। इतना अच्छा है कि वह बोल सकता है। खाना-पीना मुश्किल है ही। उसने स्वय उठकर चाय नही बनायी। बहुत थका-सा अनुभव करता था वह। जिस घर मे वह रहता था उसकी छत बहुत नीची थी। बैठक अच्छी पुती हुई थी और वहाँ बैठकर पढना अच्छा लगता था। परन्तु जहाँ स्टोव और बर्तन रक्खे हुए थे, वह कमरा निहायत खराब, अँधेरे से भरा हुआ था। ऐसे कमरो को देख देव के मन मे बचपन के कई भाव दौड आते थे। विशेषकर, उनमें रहनेवाली, हमेशा मिहनत करनेवाली गरीब विधवाएँ और उनके अर्धक्षुधित लडके, उसकी आँखो के सामने तैर जाते थे।

[illegible], और
हॉकी

[illegible] गयी।
और मुदस्सिर की ओर चल पड़ा। पान की दूकान पर मन्दे जलते दीये में से सिगरेट लगायी और आगे बढ़ा।

सामने एक होटल मिल गया। चाय के लिए वहाँ ठहर गया। सड़क से बहुत ऊँचा ओटला है, और उसके उधर वह होटल है। सबसे अधिक स्वच्छ यही है। नीचे रेत बिछी हुई है, और दीवारों पर कोई चित्र नहीं है। इसीलिए देव को यह पसन्द है।

उसने जेब में से एक पत्र निकाला। उसके पते को पढ़ा—वह बहुत ही सुन्दर अक्षरों में लिखा हुआ था। उसके ऊपर लिखा था 'प्राइवेट'। यह उसे बहुत ही अच्छा लगा। फिर धीरे-धीरे उसने उसके अन्दर का पत्र निकाला। और उसे पढ़ता रहा—एक बार नहीं, दो बार नहीं, पाँच बार।

चाय टेबिल पर वैसी ही रखी हुई थी। और ठण्डी हो चली थी।

फिर उसने पत्र अन्दर रख दिया। 'प्राइवेट' को एक बार और देखा। और धीरे-धीरे चाय पीने लगा।

मुदस्सिर ने जब देव को जीने में देखा था, वह मुस्करा उठा था। देव भी आनन्द अनुभव कर रहा था।

कमरे में विद्यार्थी वर्ग ज़ोर-ज़ोर से पढ़ रहे थे। लोढ के पास मुदस्सिर चश्मे में से अपनी दयामय दृष्टि सारे तालिबइल्मान पर एकबारगी डाल लेता और मुस्कराता—मानो सपने में मुस्करा रहा हो। और इसी प्रकार लोढ से टिक जाता।

वह देव से मिलने की इच्छा कर ही रहा था कि वह आ गया देखकर, मुदस्सिर के हृदय का झरना फूटना चाहने लगा, कि मुदस्सिर ने हँसोड हँसी और मज़ाक़िया दृष्टि दोनों के समन्वय से देव का स्वागत किया, और उसे अत्यन्त आत्मीयता से पास बिठा लिया।

तब नौ बज रहे थे। सुबह की धूप अब काफी गरम हो चली थी।

इतने में नईम चाय ले आया।

"[illegible]।"

"[illegible]

"[illegible]

"छाले कैसे हैं?"

"कुछ ज्यादा हैं।"

"वे गोलियाँ ली थीं?"

"अरे, ओफ, भूल गया!"

मुदस्सिर के शब्द इतने मृदु थे कि वे देव के हृदय में समा गये।

मुदस्सिर कहने लगा, "तुम लोग बुद्धिमान, ग्रेजुएट, समझदार हो, फिर, तुम क्यों नहीं ठीक तरह से अपनी फ़िक्र लेते हो…।"

उत्तर में गम्भीर देव केवल चाय पी रहा था। ग़फ़ूर पेपर लेकर आ गया।

दोनों को मालूम हुआ कि यह उनके एकान्त को तोडने आया है।

परन्तु वह न मालूम क्यो चला गया। शायद वह कोई चीज़ भूल आया था।

विद्यार्थियों के रटने का कोलाहल-सगीत वैसा ही चल रहा था।

देव धीरे-धीरे बोला। पर उसके बोलने मे कोई कम्पन न था। उसके स्थान पर एक आत्मसन्तोष और गर्वहीन अधिकार के भाव की झलक थी। एक ममता का आनन्द फूट पडता था, पर उसकी उदारता उसमें न थी। वह पहचान न सका कि मुदस्सिर को आज कुछ हो गया है।

वह कहने लगा, "तुम लोगो ने, यार, मुझे बहुत अच्छी तरह रक्खा। गगापुर तो अब मैं भूल नही सकता। सारे जीवन मे इतना आदर और प्रेम तो मैंने कभी नही पाया था। वैसे, यह मैं हमेशा सोचता आ रहा हूँ, मुदस्सिर, कि मुझमे ऐसा कुछ भी नही है जो विशेष आदर का पात्र हो। तुम लोग जब मुझे इज्ज़त देते हो, तो एकबारगी मैं सकुचा जाता हूँ। अन्दर-ही-अन्दर गल जाता हूँ। मैं अभी तक इतना बडा हो नहीं सका हूँ—होना नही चाहता हूँ। ऐसे कपडे पहनकर मैं हज़ारो आदमियों में आसानी से समा जाता हूँ। पर बडा होना! उफ्!···वह *अलगाव!* ··परन्तु, मुदस्सिर *अच्छा, यह देखो* ··*पत्र!*"

मुदस्सिर पत्र देखने लगा। नीले लिफाफे पर सुथरे ढग से लिखा हुआ (अंग्रेजी में) पत्र। मुदस्सिर पढता गया।

देव उसको देख रहा था। उसे मालूम हुआ कि मुदस्सिर का चेहरा किसी रोध से कठिन हो रहा है, और उस पर कुछ-कुछ लाली छा गयी है।

मुदस्सिर ने दूसरी ओर देखते हुए पूछा, "तो अभी जाओगे?"

"शाम की गाडी से," देव ने हर्षित होते हुए कहा। मुदस्सिर ने मुस्कराने का सफल प्रयत्न करते हुए पूछा, "कहाँ तक पढी है?"

"पूना की मैट्रिक है।"

"ओफ, वा, यार···खूब!" मुदस्सिर ने खूब खिलखिलाकर हँसने की चेष्टा की।

इतने मे ग़फूर वापिस आ गया।

ग़फूर कोट पहने हुआ था और वह कही बाहर जाने की तैयारी में मालूम होता था। उसके हाथ मे बडे-बडे पपीते थे।

"कहाँ ले जा रहे हो?" देव ने उससे पूछा।

"हेडमास्टर साहब के यहाँ। मुदस्सिर, तुम्हारी चिट्ठी आयी है, खलील को किसी ने लाकर दी। तुम्हे मिली?"

मुदस्सिर एकदम आश्चर्यचकित हो गया। कुछ सोचता रहा।

"ओफ!" मुदस्सिर स्तब्ध बैठ गया।

"*समझ गया*," कहकर ग़फूर गर्दन नीचे डाले उदास-सा होकर ज़ीने के नीचे उतर गया।

मुदस्सिर का चेहरा कुछ पीला पडता चला। फिर धीरे-धीरे देव बोला, "*क्या बात है?*"

मुदस्सिर के चेहरे पर सिखुटियाँ पडती चली। वह ठहरा। फिर कहा, "कुछ नही, जी, कुछ रुपये देना है ··उसकी कई चिट्ठियाँ· ·।" और उसने एक साँस ले ली।

देव को वहाँ बैठे-बैठे बडा अजीब मालूम हो रहा था। वह उससे सहानुभूति प्रकट करना चाहता था। विषाद मे चुप बैठे इस मास्टर मुदस्सिर से वह अब क्या कहे? वह चाहता है कि मुदस्सिर की सारी मलिनता वह खुद ले ले और अपनी खुशी उसे दे दे। परन्तु आदमी यह तब सोचता है जब ऐसा हो नही सकता।

आखिर देव ने उठते हुए कहा, "मैं चलूँ।"

"कहाँ जाइयेगा?"

"अभी आऊँगा।"

मुदस्सिर ने कुछ नही कहा। देव जीने से नीचे उतर गया और रास्ते मे आते ही कि एक ऐसा मैला फटे कपडेवाला लडका आया। कहा, "मुदस्सिर अली साहब ऊपर हैं? उनका खत है।"

"ओह," कहकर देव ने वह खत उससे छीन लिया और उलटे पैरों ऊपर गया।

मुदस्सिर ने देखा, पूछा, "वापिस लौट आये?"

हाथ आगे बढाकर देव ने कहा, "तुम्हारा खत।"

मुदस्सिर ने देखा, मैला, गोद से चिपकाकर बनाया हुआ वह सफेद लिफाफा है, जिस पर गलत रद्दी, उर्दू अक्षरो से पता लिखा गया है। मुदस्सिर का खून मानो चेहरे पर चढ रहा था। हृदय धक-धक कर रहा था।

उसने झट उसे खोला, और खडा-खडा वही पढने लगा।

उसके चेहरे पर मुस्कराहट छा गयी थी, जैसे साँझ के समय कोई श्याम मेघ पश्चिम दिशा मे एकाएक रँग जाता है। परन्तु फिर वह धीरे-धीरे गायब हो गयी, जैसे वही रक्त-श्याम मेघ गोधूलि वेला मे मलिन धूसर होकर नि शेष हो जाता है।

देव अपनी तीव्र आँखो से यह सब देख रहा था। अनुमान से पूछा, "भाभी का खत है?"

गम्भीर चेहरे पर मुसकान लाता हुआ मुदस्सिर बोला, "डेलिवरी हो गयी, लडका।"

देव जान नही सका कि वह खुश होकर हँसे या उदास-सा होकर दुख प्रकट करे।

मुदस्सिर का चेहरा और अधिक गम्भीर हो गया, उस पर मुसकान और अधिक चौडी हो गयी।

कहा, "मुझे बुलाया है।"

जहाँ उज्जैन जानेवाली मोटर लॉरी खडी रहती है, वह एक अच्छा चौक है, जिसके एक ओर लाल पुते पुलिस स्टेशन का लम्बा अहाता, सिनेमा थियेटर, और बिजली-घर एक साथ चले गये हैं। मुसाफिरो की एक टोली वही टहल रही है, गाडी के जाने का समय अभी आया नही है। मोटर लॉरी के आस-पास दो-एक भिखारी अपनी करुण दीर्घ आवाजो से याचना कर रहे हैं।

इतने मे वर्दी पहने हुए पुलिस का सिपाही आता है। और खाकी ढीला कोट पहने हुए ड्राइवर के पास जाकर बीडी माँगता है। मोटर के मडगार्ड पर पैर रखते हुए ड्राइवर और वह दोनों गुफ्तगू करते हैं। अन्त मे सिपाही पूछता है, "कितना

टैम और है ?"

"बीस।"

दूर से देव अपना ट्रक लिये हुए भागता आता है। वजन के मारे उसका हाथ टूटा जा रहा है।

"प्लीज, प्लीज, एक टिकिट उज्जैन।" देव ने ज्यों ही पीछे देखा तो मुदस्सिर।

"ओफ, मैं समझा तुम आओगे नहीं," देव ने कहा।

मुदस्सिर का वही ढीला कोट और वही पाजामा है। वही जागीरदारी रौब और चाल है। उसके विशाल सिर पर वही बालदार ऊँची टोपी है, और चश्मा भी वैसा-का वैसा ही फिट है। पर गालों पर कुछ पीलापन आ गया है। आँखों का तेज कम-सा दीखता है, शरीर में भी कुछ ढिलाई-सी आ गयी है। उसके गोल बडे चेहरे पर म्लान खेलती हुई मुसकान है।

मुदस्सिर ने देखा, नईम आ रहा है। उससे कहा, "मास्टर साहब का ट्रक रक्खो ऊपर।"

ड्राइवर भोंपू-पर-भोंपू बजा रहा था जिससे खडे हुए लोग अन्दर आ जायें। वसन्त देव अन्दर बैठ गया और खिड़की से बाहर देखने लगा। मुदस्सिर और नईम पास चले आये। नईम ने बालसुलभ कुतूहल से पूछा, "कब आयेंगे, भाईसाहब, आप ?"

मुदस्सिर ने कहा, "महीने-भर की छुट्टी ली है।"

[illegible]

मिलाता ही रहा। एक-दूसरे की तरफ़ देखा, मुसकरा दिये। "पत्र भेजोगे, न ?" देव ने मुदस्सिर से पूछा। मुदस्सिर ने खूब जोर से गरदन हिला दी।

मोटर चल पडी। देव ने सिर अन्दर खींच लिया। वह खचाखच भरी थी, और बडे वेग से, आवाज़ करती हुई, दौड रही थी। नये-नये दृश्य सामने आ रहे थे। नये-नये मोड सामने आ रहे थे। नये उतार और चढावों पर से होती हुई मोटर बेतहाशा भाग रही थी।

पर देव की आँखों के सामने एक ही दृश्य बारम्बार आ रहा था। एक पुराना घर है जिसका अहाता टूट चुका है, आँगन का पुराना फव्वारा कभी का बन्द हो गया है। उसके दुमंजिले दरवाजों और खिड़कियों पर मोटे टाट के पर्दे गिरे हुए हैं। और उस कमरे के अँधेरे में मुदस्सिर की बेगम खाट पर पडी हुई है। वह गोरी बिल्कुल पीली पड गयी है। बच्चा कपडों में खोया हुआ सो रहा है। वह चिन्तित होकर उठ पडती है, फिर लेट जाती है, वह सोचती है कि मुदस्सिर आयेगा। परन्तु अब मुदस्सिर के बदले उसका पत्र आ रहा होगा। उसका पीला चेहरा देव की आँखों के सामने हो लेता है।

फिर ढीला-ढाला कोट पहने हुए, उदास-मुख मुदस्सिर आगे आ जाता है।

देव चाहता था कि वह स्वयं मुदस्सिर को जाने के लिए पैसे दे सके। पर हर घर चूल्हे हैं, हरेक की अपनी आवश्यकताएँ हैं।

देव यकायक भयानक हो उठता है। कहता है, "क्रान्ति···क्रान्ति होनी

चाहिए !"

इतने मे एक बनिये का, लाल रेशमी नीली जरी की ऊँची टोपी पहने हुए, मोटा लडका मिचमिची आँखों मे उसकी ओर देखकर कहता है, "क्या !"

मोटर भागती जाती है।

पर देव के मन के सामने यही आता रहता है कि वह मुदस्सिर को पैसे दे सकता था, उसे उज्जैन ला सकता था। देव के पास भाडा देकर केवल चार रुपये बचे थे। सारे महीने के खर्च के लिए वे थे। फिर भी अपना जेबखर्च मुदस्सिर को दिया जा सकता था और उसकी दुबली पीली बीबी मुदस्सिर को पाकर उतनी खुश हो सकती थी जितनी देव अपनी प्रेमिका को पाकर भी खुश नहीं हो सकता।

पर हर आदमी की आवश्यकताएँ एक यन्त्र हैं। वे मनुष्य को चलाती हैं। मनुष्य उनको नहीं चलाता।

मुदस्सिर को अकेले छोडकर देव भागा जा रहा है।

खिडकियों के नीले परदे हिल रहे हैं हवा से। देव उन्ही को देखता हुआ चुपचाप बैठा है।

बीच मे टेबिल पर गरम आलू और कादे के भजिये सफेद चीनी की तश्तरी मे रखे हुए हैं। दूसरी तश्तरी मे मक्खन लगे हुए डबल रोटी के टुकडे पडे हुए हैं। रेडियो म से खबरें आ रही हैं। पर कमरे मे इतने आदमी होने पर भी उस ओर ध्यान किसी का नहीं है।

स्पष्ट है कि देव वहाँ बैठे हुए प्रमुख सदस्यों मे से नहीं है। वह सबकी बातें सुन रहा है। उसके पास एक प्रसिद्ध स्थानीय महाराष्ट्रीय, बडे पेटवाले, गोल मुँह-वाले, लम्बे काली टोपी और लम्बे काले कोट के नीचे धोती पहने हुए, एक वकील बैठे हुए हैं। वे प्रसिद्ध इसलिए हैं कि यहाँ के एक प्रधान व्यक्ति क वे साले होते हैं। वैसे वे भोज [illegible] म हो सकनेवालो मे [illegible]

[illegible] र पर थे, समाज मे

देव को इनकी बातें गुरुताहीन मालूम हो रही हैं। वैसे वे काफ़ी प्रतिष्ठित स्वर म बातें करते जा रहे हैं। उनकी बातो से मालूम होता है कि वे उनके मस्तिष्क से निकली हुई नहीं, बल्कि एक पक्ष की बातें हैं।

देव उन पर झुंझला उठता है, उनके चेहरे पर की प्रतिष्ठित मूर्खता पर, उनके कृत्रिम रौब पर। चाहता है कि वे एकदम चुप हो जायें।

उनके सामने एक नवयुवक बैठे हुए हैं। वे प्रकाशक हैं। उनका चेहरा साधा-रण, गिरस्तीवाले आदमी का है। व कम पढे लिखे हैं। पर व्यापारी साहस खूब है, इसलिए कम पूंजी म प्रकाशन का जिम्मा ले रहे हैं। लोग इनकी बात को ध्यान से सुन रहे हैं, क्योंकि वे सब लेखो का संग्रह प्रकाशित किया चाहते हैं।

देव इनसे विमुख नहीं है, उन्मुख भी नहीं है। उसके सामने तो केवल मनुष्यता का एक ढाँचा (टाइप) बैठा हुआ है।

पास ही एक नवयुवक और है, जो कि कभी यहाँ की मिल मे काम करता था। उसका सिर ऊँचा, नाक बीच ही में दबकर ऊपर निकल आयी है। वाक्य पूरा नहीं बोल सकता। हाव-भावों से समझाने की कोशिश अधिक करता है। उसकी

आँखें छोटी, मछली-जैसी, स्थिर नही रहती, चपल, चमक्दार। सारे चेहरे से मालूम होता है कि यह मनुष्य साधारण जन-कोटि से कुछ भ्रमित हो गया है। यह नवयुवक सोशलिस्ट था, आज हुजूर सेक्रेटरी के आफिस मे हैड क्लर्क हैं। बात मे पता चला था कि प्रेम मे गिर चुके थे, परन्तु उन्ही के अनुसार प्रेम यानी दैहिक अनुराग। यह बी.ए, एल-एल. बी हैं।

देव को वकील साहब के प्रति झुंझलाहट है, तो इस नवयुवक के प्रति गुप्त क्रोध, अनजाना गुस्सा, जो कभी-कभी घृणा का [रूप] भी धारण कर ले। परन्तु फिर भी इस नवयुवक को अपनी बराबरी का अनुभव करता है। इसीलिए उसके दोषो को नजरअन्दाज करने के लिए तैयार नही है।

सब लोग भजिए खा रहे हैं, चाय पी रहे हैं, देव वैसे ही बैठा है।

इतने मे प्रोफेसर साहब कहते है, "चाय पीजिए ना, आप बहुत चुपचाप बैठे हैं आज· बात क्या है?"

और सब लोग हंस पडते हैं। देव बिलकुल अविचलित रहता है। प्रत्येक अपनी सूझ के अनुसार देव के चुप रहने का कारण खोज निकालता है। और सहसा देव मुख्य हो जाता है। वह बिलकुल शान्त होकर चाय पीता जाता है, और कभी-कभी मुस्करा देता है।

प्रोफेसर साहब, जिनके घर मे सब लोग बैठे हुए हैं, एक बुद्धिजीवी, अहिंसावादी, अन्तर्मुख, उच्चवर्गीय, शिष्ट हैं। साहित्य में उनका काफी अच्छा दखल है। अभिरुचि मे छिछोरपन से दूर, बुद्धि मे तर्कवाद से दूर, ससार की उलझनो मे कठिनाइयो से दूर, सुखी गृहस्थ है। फिर भी आश्चर्यजनक रीति से उन्होने सहानुभूति को केवल बौद्धिक नही रक्खा। लेकिन वह हमेशा अकर्मण्य ही रही।

वे एक सस्मित गोरे चेहरेवाले, ठिगने कद के सफेद झक खादी की बदन से चिपक रहनेवाली पोशाक किये हुए, निरभिमान सुसस्कृत व्यक्ति है। बडे-बडे लोगो से उनका सम्बन्ध है।

देव को उनके प्रति श्रद्धा नही हो पाती, प्रेम भी नही हो पाता, यदि वे स्वय चलकर उसके पास न आते। परन्तु उच्चवर्गीय सकोच को छोड वे उससे ऐसे आ मिले, जैसे एक झरना नदी से मिलता है। फिर भी देव शकायुक्त रहा।

देव के बारे मे भी कुछ कहना होगा। वह एक चुपचाप रहनेवाला, गम्भीर, आलोचनाशील दृष्टि के सिवा कुछ न ग्रहण करनेवाला, आदर का भूखा, सामाजिक प्रकाश का प्यासा, परन्तु उसके छिछलेपन के कारण प्रतिक्रियाशील होकर घोर होनेवाला, दुबला प्राणी है। जब प्रोफेसर अपनी उच्चवर्गीय केंचुली त्याग उससे आ मिले, तो उसे सुख हुआ, आदर-प्राप्ति का भान हुआ, अपनी शक्ति पर अखण्ड विश्वास हुआ।

देव ने चाय का दूसरा कप भी पी लिया। बातें चलती जाती थी। देव अनुभव करता था कि मानो वह इन सब लोगो को जाँच चुका है—इनकी थाह पा चुका है। ऐसा उनमें कुछ भी नही है जिसको वह न जानता हो।

आखिर देव नही बोला तो नही ही बोला। सब लोग उठकर चलने लगे। पर देव बैठा ही रहा, अपनी हथेली पर गालो को टिकाये।

सब लोग चले गये और देव और प्रोफेसर आमने-सामने हो गये।

"आप कुछ बोले ही नही," मृदु वाणी मे सूक्ष्म व्यग्य भरकर प्रोफेसर ने कहा।

वे आगे बोले, "डोण्ट बी अनसोशल, मैन !"

"नहीं, आज मेरी तबियत नहीं लग रही थी, मैंने आपसे पहले ही कह दिया था।"

"पर जब इनमें आ गये थे तो ··"

"मैं घोर व्यक्तिवादी हूँ, प्रोफ़ेसर साहब ··। क्षमा कीजिए, इनमें से एक आदमी मेरे अपन अनुसार नहीं है।"

" ·इसके तो कोई मानी नहीं ·"

"मैं इनकी कम्पनी को घण्टे-भर स अधिक टॉलरेट कर ही नहीं सकता···आई डोण्ट लाइक देअर टॉक्स। अनइण्टेलिजेंट इण्टलेक्चुअल्स, स्नॉब्स।"

प्रोफ़ेसर चेहरे को दृढ करके अपनी बात को दबा गये। केवल देव के चुप रहने से इतने निमन्त्रित लोगों के मन में कलुप रह गया। प्रोफ़ेसर साहब का सारा मज़ा किरकिरा हो गया था—देव इसको पहचानना ही नहीं चाहता था। प्रोफ़ेसर साहब को इसीलिए चिढ आ गयी।

परन्तु प्रोफ़ेसर सुसंस्कृत मौन म डूब गये।

"अच्छा, तो मैं चलूं।" और देव रुका नहीं। वह चला गया, जैसे वह घृणा और क्रोध में भर उठा हो।

कोट की दोनों जेबों में हाथ डाले हुए, देव सपाटे स चला जा रहा था, अपने घर की ओर। दूर से उसकी स्त्री ने उसे देख लिया, और दूसरी मंजिल से नीचे उतर आयी। उसका चेहरा पीला था, आँखों के आस-पास काले चक्कर पडे हुए थे। और उसका हृदय धक-धक कर रहा था।

ज्योंही देव पास आया, उसकी स्त्री ने पूछा, "बरनी ले आये ?" देव ने चिढ-कर जवाब दिया, "नहीं।" तब उसके चेहरे को देख सचमुच वह डर गयी। देव जीने पर धड-धड करता हुआ ऊपर चल दिया, और नीचे खडी हुई स्त्री का जी धक-धक कर रहा था कि अब क्या होगा। उसके हाथ में कांच की बरनी फूट गयी थी, और वह सास के बिना जाने वहीं दूसरी रख देना चाहती थी।

ऊपर जाकर देव के मन में दूसरी ही चिन्ता सवार हो गयी। गैलरी में पिता बीडी पीते हुए बैठे थे। खाना खाने के बाद फ़िक्र करना बुरा होता है, उससे अन्न पचता नहीं है। उनका चेहरा अत्यन्त दुबला दिखायी देता था। उनको देखते ही देव का मन अत्यन्त विपण्ण हो गया। वहाँ से उठकर वह चौके में पहुँचा। रात का समय था। चूल्हे में आग जल रही थी जिसका प्रकाश आले में रखी चिमनी से अधिक फैल रहा था। उसकी माँ रोटी करती हुई बैठी थी। उसने माँ का चेहरा दूर से ही देखा, और भाँप गया कि कुछ तो भी गडबड है।

वह चूल्हे के पास बैठ गया। उधर से उसकी स्त्री आयी और चटनी बाँटने का सामान इकट्ठा करने लगी। माँ ने बातें कहना शुरू कर दिया, धीरे-धीरे।

देव वहाँ से उठा तो कालिमा मानो उसके दिमाग़ पर पूरी तौर पर छा गयी थी। चिन्ता की अवसन्न भीषणता ने चुपचाप उसे आकर दबा दिया। पिता उसके रिटायर हो गये, और वह स्वयं अभी बेकार है। एक पैसे की भी घर में मदद नहीं कर रहा है। पिता उदार-हृदय हैं। पर कब तक उनके जी पर खाया जायेगा। हर साल एक डलिवरी हो रही है। और स्त्री ऐसी है, जैसे क्षयग्रस्त।

वसन्त के रात की चाँदनी मे गच्चा पर बिस्तरे बिछे हुए हैं पर देव को चैन नही है। उसकी स्त्री अन्दर सो रही है पर देव को मालूम है कि वह जग ही सकती है सो नही सकती। वृद्ध गम्भीर पिता पलग पर इधर स उधर करवटें वदल रहे है और माँ नीचे बिस्तर पर कपाल पर हाथ धरे पडी हुई है। गच्ची पर सुबह देव जगकर देखता है तो प्रोफसर साहब हाथ म छडी लिय हुए चले आ रहे हैं। उनका मुख प्रातर्वायु से फुल्ल दिखायी दे रहा है।

वे मकान के पास आ गय पुकारा देव ! देव नीचे चला गया।

प्रोफसर साहब ने कहा ओफ अभी सोकर उठ !

देव ने हँसकर जवाब दिया आजकल इनसामनिया हो गया है मुझ।

चलो घर चलें वही बातें करेंगे कहकर प्रोफसर देव की पीठ को थप थपाने लगे। देव को यह अच्छा नही लगा। उसन कहा नही अभी ता मैं उठा हूँ। हाथ-मुह धोऊँगा।

वही धोओ।

नही।

प्रोफसर साहब पास आ गय बोले बात यह है कि मैं जा रहा हूँ कलकत्त। पतीस रुपये का टिकिट खरीद लिया है। सब दूर घूम आऊगा। इच्छा है कि तुम भी साथ चलो। पैंतीस रुपय का तो सवाल है कहीं से तो भी इन्तजाम कर ही लो। अब तक टयूशन ब्यूशन करत आये हो। खान-पीन का खर्चा मेरे ज़िम्मे। बडा मजा आयेगा। दूसरे लोगो से मिलग काफी जानने को मिलेगा।

उसने प्रोफसर को ऊपर बुलाया। चाय पी। साहित्य पर चर्चा होती रही। पर देव अन्दर से कड वाहट अनुभव कर रहा था। कारण कि प्रोफसर आत्मीय होते हुए भी आत्मीय नही हैं। देव स उनकी बातचीत सोशल रिलेशस के साधन हैं। एक दूसरे का मनोरजन करना चाय पीना चमकदार बातचीत करने म स्पर्धा करना यही सामाजिक सम्बन्ध है ! सारी आत्मीयता ताजगी यही फूट पड रही है।

दूसरे दिन जब प्रोफसर अपनी श्रीमती के साथ कलकत्ता चल दिये तो देव को एकदम सूनापन मालूम हुआ जसे सारा शहर सूना हो गया हो। वह अन्दर कमरे मे गया ता उसकी स्त्री कराह रही थी। उसे बुखार चढा हुआ था। उसे प्राफसर याद आये प्रोफसर की अच्छाई याद आयी प्रोफसर का फर्नीचर याद आया उनका घर याद आया उनकी श्रीमती याद आयी जब अपनी स्त्री की हालत सामने थी।

दूसरे दिन उसी गच्ची पर उसकी स्त्री और देव खड थ। स्त्री माता पिता भाई सबकी ओर देख देख उसको अपने मे अविश्वास उत्पन्न होता जा रहा था। स्त्री ने पूछा प्रोफसर साहब से क्यो नही कहते वे एकाध दस-एक की टयूशन

तुम उन पर बहुत श्रद्धा रखती हो !

वे बहुत अच्छे आदमी हैं जरूर लगा दगे।

देव ने चिढ़कर कहा तुम मूख हो ! वह उसका मुह देखने लगी।

देव ने उसकी पीठ थपथपा दी। कहा नही वे सचमुच अच्छे आदमी हैं तुम ठीक कहती हो । और सडक की ओर देखने लगा कि इतन मे उसे मुदस्सिर अली की याद आ गयी जिसे साल भर पहले इसी प्रकार छोड चुका था।

अपने सुख की इच्छा के वशीभूत होकर उसने मुदस्सिर का दुख नहीं पहचाना।

देव सोचने लगा, इस समय मुदस्सिर क्या करता होगा!

मुदस्सिर के चित्र उसके सामने आने लगे। उस जीवनानुभूत आपदापूर्णता के कारण देव का कमजोर दिल धक्-धक् करने लगा।

और वह उदास हो उठा। बड़ी गहरी करुणा और प्यार की उदासी उसके दिल को थपथपाने लगी। इसी भावना की प्रतीक-सी उसे अपनी स्त्री दिखायी दी। वह उसकी ओर आँखें गड़ाकर देखने लगा।

"क्यों, इस तरह मेरी ओर क्यों देख रहे हो?" स्त्री ने पूछा।

'कुछ नहीं, तुम सुन्दर दीखती हो!" यह कहकर जब उसने फिर स्त्री की ओर देखा तो पाया कि वह एक बड़ी गम्भीर उदास मुसकान मुसकरा रही थी।

फिर उसके सामने मुदस्सिर का चित्र तैर गया और वह किसी तैश में अपने से ही बुदबुदाया, 'कुछ तो भी करना ही पड़ेगा, कुछ करना होगा!'

[अपूर्ण। सम्भवत बीच का एक अंश भी लुप्त। सम्भावित रचनाकाल 1941-43]

अधूरी कहानी : दो

वे कुल बीस थे, जो कीचड़ से भरी हुई सड़क पर चप्पल चटखाते हुए चले जा रहे थे। कीचड़ के छींटे लगातार उनकी कमर तक आ रहे थे। दिन-रात बरसात हो चुकने के बाद भी आसमान पर घन बादल यकसाँ छाये हुए थे। पास टॉवर की घड़ी की सुई दुपहर के बारह बतला रही थी, तो भी मालूम होता कि सुबह अभी निकली हो।

वे बीस इकट्ठा होकर नहीं चल रहे थे। दो-दो, तीन-तीन के झुण्ड में अपने थकान से भरे हुए पैरों को, जो कीचड़ में और भी उलझ जाते थे, उठाते हुए, और अपने पाजामे और धोतियों को जाँघ तक ऊँचा करते हुए, वे बीस लगातार लम्बे सीधे रास्ते पर चलते जाते थे। यदि कीचड़-सने रास्ते पर वेग से दौड़ती हुई मोटर दिखायी देती, तो वे जल्दी-जल्दी अलग हट जाते, और मोटर के पास आते ही, उनके उदास चेहरे उत्सुक होकर मोटर के अन्दर दृष्टि फैला देते। यदि उसमें कोई बड़ा साहब, या महत्त्वपूर्ण मराठा ऑफीसर, उन्हें दिखायी देता तो उन्हें बहुत खराब लगता, परन्तु यदि उसमें कोई रम्य नाजुक चेहरा हो, तो उनकी आँखें आनन्द से भर उठतीं, और तब वे अपना कीचड़ से भरी सड़क में खड़ा होना कुछ काल के लिए भूल जाते।

इस झुण्ड को देखकर लोगों की उत्सुकता वैसे ही बढ़ गयी थी। बरसाती समय होने के कारण कोई भी सड़क पर चलना गवारा नहीं करता था। ऐसी हालत में इस झुण्ड को लगातार जाते हुए देखकर लोगों की उत्सुकता बढ़ जाती। रास्ते पर जाते हुए कुछ पूरबी लोग इन्हें देखकर यों ही ठहर गये थे।

आगे-आगे सिर्फ दो चल रहे थे, जिनमे कोई घोर वाद-विवाद जारी था, उनमे से एक जवान था, जिसने पैण्ट और कोट की सारी विदेशिता नष्ट कर उसे अत्यन्त हिन्दुस्तानी कर दिया था। वह सैण्डल्स पहने हुए था। और उसके हाथ मे कोई लम्बा-सा कागज था, जिस पर शायद वाद विवाद चल रहा था। वह एक लम्बे, पीले मुँह का नवयुवक था जिसकी आँखो मे अपने तर्क और अपनी जाज्वल्य भावना का आत्मविश्वास इस समय और भी चमक रहा था। टोपी उसे शोभा नही देती थी, फिर भी वह ऐसी जगह जा रहा था जिसके लिए जरूरी थी। उसके सारे रग-ढग से मालूम होता था कि उसकी आत्मविश्वस्त और जाज्वल्य बातचीत के पीछे उसका हृदय किसी जबरदस्त भार से दब रहा हो। यही कारण है कि उसका लम्बा पीला मुँह सूखा हुआ था, और उसकी आँखे लाल हो रही थी। वह इन बीस का लीडर था।

उसके साथ ज़ोर से बहस करनेवाला एक बूढा था, जिसकी धोती मटमैले रग की थी, और जिस पर वह एक मैला खाकी कुर्ता पहने हुए था। जब उसका साथी जोर से सप्रवाह बात करता, तो वह चिढकर आँखें छोटी करके नीचे तब तक देखता रहता, जब तक उसके साथी का बोलना खतम न हो, मानो जो कुछ भी वह कह रहा है वह सब उसे मालूम है, लेकिन किसी ऊँचे दृष्टिकोण से वह गलत है। एकदम ग़लत है। उसके सारे चेहरे पर झुर्रियाँ पडी थी। परन्तु आँखें तरल नीली-सी चमक से चमक उठती थी। जब भी वह नीचे देखने लगता, उसके कपाल पर चिन्ता की सीधी डोरियाँ इकट्ठा होने लगती। मालूम होता कि वह बहुत गरम मिज़ाज का, पैर्शनेट और नर्वस आदमी है, क्योकि युवक के सप्रवाह बोलने को सहन नही कर सकता था। और जब भी वह युवक को रोकने की कोशिश करता, उसकी ज़बान लडखडाकर, काँपकर रह जाती, चिन्ता की रेखाएँ और ज़्यादा घनी हो जाती, होठ काँपने लगते, और झुर्रियोवाला गोरा चेहरा गाजर-सा लाल हो जाता।

युवक उसकी कठिनाई जानता था। अपन सूख होठो को गीला करने के लिए ज़बान फेरते हुए वह थम गया।

"हम 'हम 'कुछ नही जानते करो जो कुछ करना हो, हम दस्कत नही करेंगे ··" बूढे ने कहा। युवक भी बोलते-बोलते थक गया था। दूसरे की ली हुई टोपी उसे फिट न होने के कारण, उसका हाथ बार-बार सिर पर जाता, और उसकी बेचैनी प्रकट करता।

"अगर आप दस्कत नही करेंगे, तो हम वापस जाते हैं हमे क्या जरूरत है प्रमोशन की। पाँच रुपये ही तो देंगे, हमे दस की ट्यूशन काफी है। मैं क्या अपने लिए माँग रहा हूँ ?"

युवक की लाल आँखें और भी बडी हो गयी। और उसका पीला लम्बा चेहरा और भी लम्बा हो गया।

उनके पीछे-पीछे ड्राइग मास्टर चल रहा था। मैली-सी सफेद निकर, जो उसे छोटी पड रही थी, पर उसकी नीली कमीज़ सिकुड रही थी। उसकी जाँघो और टाँगो के स्नायुओ का आकार बतला रहा था कि एक ज़माने मे उसने व्यायाम भी किया है। उसके चेहरे पर सामाजिक शिष्टता का रोग़न नही था, और न कोई संस्कृति का आभास प्रकट हो रहा था। किसी को भी, बातचीत करते हुए, उसके

चेहरे पर एक मासूम भोलापन लक्षित हो सकता है, जिसका दूसरा नाम, सामाजिक क्षेत्र मे सक्रिय रहते हुए, मूर्खता है। उसकी आँखें एक अजीब शिकायत लिये रहती, और लम्बे, कुछ आगे आये-से, होठ बडबडाते रहते, और उसकी ऊँची लम्बी नाक—मानो उसकी शिकायतो पर पहरा कर रही हो। उस सारे झुण्ड मे भी कई वर्ग थे। जो सबसे ऊँचे थे, वे ज्यादा आत्मसन्तुष्ट फुर्तीले थे, और जो सबसे निचले वर्ग के थे, वे कुछ नही बोल रहे थे। वे सिर्फ पीछे चलते जाते थे, और कीचड मे उलझते जाते थे, और पुटपुटाते जाते थे। निचले वर्ग के सिर्फ दो थे। एक [illegible]

. .

. . . .

जाता। सबस बडा परिवार उसी का था। सबसे अधिक पीडित भी वही था। सबसे ज्यादा अक्षम भी वही था। सबसे बडी कमी उसमे यह थी कि सामाजिक ऐडेप्टेशन के लिए जो एक विशेष दम्भ की बौद्धिकता जरूरी होती है, उस जाति की बौद्धिकता उसमे थी ही नही। वह एक अनादृत प्राणी था, जो ऊँची नाक किये, अपने कुछ आगे-आये होठो से बुदबुदाता हुआ, अपने ही मानसिक विनोदो से हँसता हुआ (जिसको कोई बाहरी सम्बन्ध की जरूरत नही थी), या आँखो मे शिकायत, दिल मे आग और अनादृत आत्मा लिये हुए घूमता हुआ दिखायी देता था। इस समय भी वह प्रसगत शिकायतें करता जा रहा था, और मुँह से धुआँ छोडता जा रहा था।

उसके साथी कन्हईसिंग को बजरग पर ज्यादा भरोसा था। भगवा खादी की शर्ट और भगवा टोपी पहने हुए मुसकराता चलता, और सबको देखता चलता। कीचड से उसे ज्यादा तकलीफ नही हो रही थी। लोग उदास और गरम थे, और उनकी उदासी और गर्मी मालूम हो रही थी। कन्हईसिंग तमाशा देख रहा था। उसके गोल, स्वस्थ चेहरे पर छोटी-छोटी मूँछें हँसती चलती। अपनी मस्ती से किस तरह जीवन बिताना, इसका टेकनीक उसे मालूम था।

आगे चलनेवाला लीडर, जिसका नाम गुप्ता था, और उसके साथ बहस करनेवाला बूढा, जिसका नाम काले था, यकायक ठहर गये।

उनको ठहरते देखकर सारा झुण्ड ठहर गया, और उस समूह मे एक आशका और बेचैनी की लहर फैल गयी।

जोर से समझाते हुए गुप्ता और जिद पकडनेवाले वृद्ध काले के आस-पास ज्यादा लोग नही आये। अलबत्ता कन्हईसिंग और ड्राइग-मास्टर वहाँ जाकर खडे हो गये।

उनके पीछे कुछ दूर एक गुट और हो गया। उसमे एक लम्बा, लम्बे मुँहवाला प्राइवेट ग्रेजुएट भी था, जो अपने एक पाँव पर खडा होकर अपना मत प्रकट कर रहा था। वह एक जला-भुना व्यक्ति था, जिसको सब ऊँचे शिक्षको से कुछ-न-कुछ शिकायत रहती थी। उसकी उन्नति पूरी तौर से नही हो सकी थी, इसलिए उसका महत्व उतना नही रहता था। कौटुम्बिक जिम्मेदारियों के नीचे वह इतना कुचला गया कि उसका मन दब गया था। आज उसका वह बौना मन अपने अगुआओ पर अगार उँडेल रहा था।

"मैंने कहा न कि गुप्ता रैश (जल्दबाज) है। आखिर उस वाक्य को हटा देने

मे जाना ही क्या है ?"

एक दूसरे चश्मेवाले नवयुवक न उत्तर दिया 'उस वाक्य क होन स ही यह एप्लिकशन (अर्जी) एक प्रोटेस्ट (विरोध प्रदर्शन) हो जाती है।"

उस प्राइवेट ग्रेजुएट ने गर्दन को उचकाते हुए अपना जवाब दिया मानो उसे सब दूर निराशा ही निराशा दिखायी दे रही है जिन्दगी यो ही चलती रहेगी उसम कोई तबदीली हो नही सकती। उसन इस भाव विन्यास से चिढकर उसके सामनेवाला युवक झल्ला गया। बोला, 'आप लडने के लिए जा रह हैं? या दुम हिलाने के लिए ?'

अपनी कमजोर कमर पर दोनो हाथ रखे हुए उसको क्रोध से झुकाते हुए गम्भीर आवाज म उसन कहा आपके पास लडने क लिए है क्या ?" तब उसकी आँखो के लाल डोरो मे चुनौती भरी हुई थी।

चश्मेवाला युवक एक नया आदमी था। इस हाई स्कूल के बारे म उसे ज्यादा जानकारी न थी। परन्तु वह खुलकर खेला हुआ प्राणी था। वह भी लडने का आमादा हो गया। एक हाथ पर दूसरे हाथ की उँगलियो को फटकारता हुआ बोला तब आपन उस अर्जी पर दस्तखत क्यूँ कर दिये? किस बूते पर ?'

इतने म एक झुण्ड के ये अलग दो गुट इक्टठे हो गय। मि गुप्ता और श्रीमान् काने अपनी निम्न मध्यवर्गीय उन्मुक्त और क्षणिक हँसी को गुजित करते हुए कहन लगे, भई, हमारे डिफरन्सज (मतभेद) खतम हो गय।'

वृद्ध महाशय उत्साह के हिस्टीरिया म कहन लगे उस वाक्य को निकालने को गुप्ता ने मजूर किया और उसी अर्थ का नया वाक्य जोड देने को हमने खि खि खि खि यह आयडिया पहले आया ही नही आता तो बहस न करते ' और वे इतने हँस कि चेहरे की झुर्रियो और भौंहो के बालो के अन्दर स उनकी नीली तरल आँखें झाँकती सी दिखायी दी।

गुप्ता ने गम्भीरता स सिफ इतना कहा, अच्छा हुआ, मुझ यही डर था कि आप तुनक न जायें बिना आपके हम जाते नही लकिन' सबका रामजी मालिक है।"

ड्राइग मास्टर खुश हो गया। उसन भी कहा रामजी मालिक है। हम मालिक हैं! हम जो कहे वह न हो! अरे हमने पाप क्या किया है जिसका दण्ड हमे मिले! सारी दुनिया को वार एलाउन्स मिल रहा है। हम एक भी रुपया नही मिला। आज छह साल स प्रमोशन नही। प्राविडण्ट फ्रण्ड नही। और लो हम इस हाई-स्कूल के फाउण्डर मेम्बस है—और फिर विरोध भी न करें!'

इसके जवाब म हँसते हुए क्न्हईसिंग ने उसके कन्ध पर हाथ रख दिया, और ड्राइग-मास्टर न बीडी का एक कश जोर स खीच लिया।

इतने मे पचड पचड करते हुए एक ताँगा गुजरन लगा। उसम एक लॉजिक के प्रोफसर और प्रसिद्ध हिन्दी लेखक बैठ हुए थे। दूसरे दो, कालेज के अन्तर्गत हाई स्कूल के फर्स्ट क्लास फस्ट अध्यापक बैठ हुए थे। उनके चेहरे पर शिष्टता और सस्कार का प्रकाश मुँह चिढा रहा था।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल *1944 45*]

भूमिका

सदानन्द के जीवन का साराश एक छोटे-से सूत्र मे आ जाता है। जो कुछ होने की उसकी इच्छा थी उसके विपरीत वह हुआ। उदाहरणत, वह सेना मे भरती होना चाहता था। पुष्ट चमकदार घोड़े पर किसी सवार को देखकर उसे सेना मे भरती हो जाने की उत्कट अभिलाषा हो उठती। उसके पिता एक बहुत काबिल जज थे। शहर के बाहर के बँगले के पास मे ही जो काली-काली चमकदार रोड गुजरती है, उसमे सवारो के दल अक्सर निकला करते, और निक्कर-कोट की ड्रेस मे फिट-फाट लडका सदानन्द, जमादार की उँगली पकडे, उन्हे जिज्ञासा और प्रशसा की आकुल नजरों से स्थिर देखा करता।

परन्तु—वह अब तीस वर्ष का है—हुआ क्या ? प्रोफेसर, स्थानीय कॉलेज मे इकॉनॉमिक्स का शिक्षक। क्या आश्चर्य है! अलबत्ता यह जरूर है कि क्रिकेट मैच मे सफेद [पैड] परस्पर बाँधे, हाथ मे भूरा बल्ला लिये, वह अपनी उच्च देह की स्फूर्ति और सिपाहियाना ठाठ का कुछ कुछ हलका नशा जरूर अनुभव कर लेता है। परन्तु यह वैसा है कि दूध की प्यास छाछ पर पूरी कर लेना! अपने जीवन के कुछ विवेक से अरक्षित क्षणो मे उसने मुझे कहा था कि वह क्या का क्या हो गया! बचपन के उसके सपने थे कि वह घर मे भाग जाय। और फिर बम्बई। बम्बई से किसी रईस का नौकर होकर अमेरिका। वहाँ खूब घूमे। दुनिया का एक चक्कर। और फिर खो जाय। बिलकुल खो जाय! और हुआ उलटा!

वह अपने बाप का इकलौता लडका। पिता का स्नेह, और वह तब कि जब उसकी सौतेली माँ उससे नित्य लडती हो!

हाँ, सदानन्द का बचपन अपनी इच्छाओ और परिस्थितियो के अनबूझे द्वन्द्व से भरा था। सौतेली माँ एक डॉक्टर थी। परन्तु दिमाग म कुछ फितूर-सा था। बेहद चिडचिडी और अमानवीय रीति से सशयालु। जब तक वह जिन्दा रही (और सदानन्द की जिन्दगी के उसने सत्ताईस साल ले लिये थे) घर मे नरक था। पिता के मन मे उसके प्रति न जाने किस कारण से, हजार दोषो के बाद भी, एक करुण कोना था। सदानन्द खुली आँखो उन दोनो के झगडो को देखता, देखा करता। एक अजीब फाडे डालनेवाली अगाध करुणा से उसकी छाती रुँध जाती। और इसी भयानक रोध को लेकर रात मे बिस्तरे पर पडा रहता। छोटी-छोटी बातो पर उन दोनो के झगडे होते, अत्यन्त भद्दी सीमा तक वे दोनो आ जाते। सदानन्द लडका था। पर ऐसी बातें सवेदनशील मन को बहुत जल्दी समझ मे आ जाती है। सदानन्द के खिलाडी बचपन की सबस बडी और हमेशा जारी रहने-वाली घटना-मालिका यह विग्रह-सूत्र है।

परिणामत, सदानन्द अनैसर्गिक रीति से उम्र मे जल्दी उदार हो गया, जबकि स्वार्थी रहना ही स्वाभाविक होता है। गम्भीरता, अनुभव-वृद्धता-जैसी कोई बात उसके अस्तित्व की मूल गुत्थी हो गयी। एक नि स्वता व्याप्त हो गयी। यह तब *हुआ जबकि स्वात्मक होना ही स्वास्थ्य* होता है।

परन्तु वह एक तेज खिलाडी था। क्रिकेट का उसे बेहद शौक था और फ्लूट भी अच्छी बजा लेता था। उच्चवशीय लडके उसके मित्र थे। और उसकी बाहरी

ज़िन्दगी बडी ही आराम से गुज़रती थी।

उसके पिता हल्के मस्तिष्क के दुबले प्राणी थे। अत्यन्त बुद्धिमान और अत्यन्त क्षीण—बस यही उनकी विशेषता कही जा सकती है। उनकी इस तीसरी स्त्री से उन्हे बहुत ही दु ख हुआ। सदानन्द की सारी करुणा उनकी ओर अनजाने ही चली जाती। उन्हे किसी भी प्रकार से कष्ट न हो, यही सन्निहित भावना सदानन्द का ध्येय हो गयी।

परिणाम स्पष्ट है। पिता ने कहा, ' मिलिटरी मे मत जाओ।"

सदानन्द ने सिर हिलाते हुए कहा, "आप जैसा कहे।"

पिता ने कहा, "हमारे पास रहो, बँगला बनायेंगे। कहाँ कलकत्ते-बम्बई जाते हो? एम ए एल एल बी हो जाना। ठाठदार वकालत चलेगी। समझे?"

सदानन्द न कहा, ' आपकी मर्ज़ी के विरुद्ध मैं नही जाऊँगा।"

उसी प्रकार वह अपनी सौतेली माँ को भी अपने व्यवहार से कभी दु ख नही पहुँचाता। पिता के प्रति उसकी करुणा थी, तो माँ के प्रति गहरी सहानुभूति। वह हमेशा उसे भी प्रसन्न रखने की कोशिश करता। इस प्रकार कुछ चालाकी से वह दोनो को खुश करता। परन्तु उस अपना तनिक भी खयाल न रहा। उसकी किश्ती केवल इन्ही दो के थपेडो से डगमगाती हुई बढ चलती। कभी केवल इधर-उधर घूमती, चक्कर खाती, पर आगे न बढती।

आखिरकार पिता की मर्ज़ी के मुआफ़िक मिलिटरी म जानेवाले सदानन्द प्रोफ़ेसर हो गये। और अमेरिका भागनेवाले रूमानी तरुण एक अत्यन्त भद्र-शिष्ट हो गये, यानी इकॉनामिक्स के प्रोफ़ेसर हो गय।

इतने म एक घटना और हो गयी।

एक रात उनके पिता सदानन्द के कमरे की [ओर] जाते हुए दिखायी दिये। सदानन्द इलैक्ट्रिक लैम्प सिरहाने रखकर कुछ पढ रहा था। पिता को आते देखकर उसे कोई आश्चर्य नही हुआ, क्योंकि विवाह की बात चल रही थी घर मे।

पिता न बडे ही जज के रौबदार एक्सेण्ट से विवाह के फ़ायदे और लडकी की तारीफ़ करना शुरू की। सदानन्द सदा की रीति से अडोल बैठा रहा।

फिर आखिर मे कह दिया कि वह शादी करेगा।

दुबले पिता हर्ष से गिरते-पडते अपने कमरे मे जाने लगे। अभी सुबह ही फिर दोनो, पिता और माँ की लडाई हुई थी और विवाह के दौरान म न मालूम कितनी बार होगी। पर इस समय दोनो को वह लडकी पसन्द थी। इसलिए घर म आनन्द का एक अस्वाभाविक वातावरण लहराता था।

और उसे स्त्री भी अच्छी मिली। थी तो इण्टर फ़ेल, परन्तु मुझे मालूम है उसकी जनरल नॉलेज काफी अच्छी थी। उसको अपनी क्रॉकरी और चूडियों पर बहुत नाज़ था और प्रतिष्ठित लोगो की मेहमानदारी करने का काफी सुसस्कृत शौक था। अपने वर्ग म पति से अधिक लोकप्रिय, और प्रत्येक टैनिस मैच म ताली पीटने मे अत्यन्त सक्रिय, ऐसी उसकी सामाजिक भूमिका थी। वह नवीन अलकारो की कलाकार थी, और इसम सन्देह नही कि उसकी वेशभूषा जितनी निर्दोष और स्वाभाविक होती थी, उतनी उसके वर्ग की स्त्रियो की कम देखने म आती है।

के पास बैठा हुआ था। मैंने सहज

•

"

सदानन्द विनोदित होकर जोर से हँस पडा। उसकी हँसी हमेशा गूँजती है। वैसे वह अत्यन्त गम्भीर, कम हँसी हँसनेवाला है। परन्तु मेरे सामने खूब हँसता है। और कहा, "मेहमानदारी करती होगी, अपनी क्रॉकरी और कुशल वेश का डिस्प्ले।"

मुझे हँसी नही आयी। उसकी हँसी मे व्यग्य की छिपी हुई तीक्ष्णता की अपेक्षा कर रहा था। या गुप्त क्रोध की बारीक लकीर देखना चाह रहा था परन्तु उसका तो एक स्टेटमेण्ट ऑफ फैक्ट था जिस पर बालिश, विनोदपूर्ण गूँजती हुई हँसी।

मुझे एक तत्त्व मालूम हुआ। गुप्त विराग का तत्त्व जिसे इनडिफरेन्स भी कह सकते हैं। कि वह कितना विरागी' था। स्त्री की ओर से उसे कोई असुविधा नही थी। वह अपनी वेशभूषा और मेहमानदारी मे चौबीसों घण्टे डूबी रहे। उसे चल जायगा।

एक दिन उसने मुझे बोलते-बोलते कहा, 'आई एम ऐवर प्रिपेयर्ड फॉर दि बिटरेस्ट काइण्ड ऑफ ट्रू थ्स—एवर—एवर" और फिर वही बालिश, विनोदपूर्ण घोर हँसी।

कभी-कभी एकान्त मे जब मैं उस पर विचार करने बैठता हूँ तो एक अजीब आर्द्रता मेरे मन पर छा जाती है। आप भले ही न मानें, मैं उसे एक जीनियस मानता हूँ, परन्तु विकेन्द्रित जीनियस। मैं नही जानता उसकी स्थिति को दोषी ठहराऊँ या उसे। उसकी माता अभी मरी है, अपने पिचपनवें साल। आधे साल से ही घर के झगडे बन्द हैं। पिता वरांडे मे या बागीचे मे आरामकुर्सी पर पढते हुए या रेडियो सुनते हुए दिखाई देंगे। हुक्के की पुरानी नली जरूर उनके हाथ मे दिखायी देगी। कभी-कभी उनके बूढे गालो पर पुरानी बातें याद कर आँसू भी आ जाया करते हैं। उनके झगडालू जीवन के बाद आज का रोना कुछ अजीब मालूम होता है।

खैर, इन दोनों की लडाइयो न और सदानन्द के विचित्र स्वभाव ने उसके भविष्य को खत्म कर दिया। तब मैं समझने लगता हूँ कि आज के समाज मे ईमानदारी की स्थिति भी इनकसिस्टेन्सी पर आश्रित है।

फिर भी, सदानन्द मुझे बहुत अच्छा लगता है, जो भी मैं ईमानदारी को अधिक पसन्द नही करता। अपने अकेले मे मैं खूब हँस उठता हूँ, उसके जीवन के खाके को देखकर।

परिस्थिति के अनुसार उसे कष्ट हुए, भयानक कष्ट। और इसी की पीडा भयानक रीति से उठ बैठती है परन्तु अब उसके उस तेजस्वी क्षण को रास्ता नही मालूम। हाँ 'शायद'।

आजकल उसका सम्पर्क पडोस के एक अन्य प्रोफेसर से कुछ बढ गया है। उनकी एक लडकी है '। एक बात और, सदानन्द थीसिस लिख रहा है। उसके विशाल चेहरे की गम्भीरता देखते ही बनती है।.। वैसे ही वह अत्यन्त गम्भीर और बर्फाच्छादित है।

वह फौजी आदमी होना चाहता था, और बना उच्च मध्यवर्गीय प्रोफेसर। और वहाँ भी समाज मे लोकप्रिय नही हुआ। एक प्रकार की सन्निहित प्रतिक्रिया उसको अपने मे ही बन्द करती रही। वह होना चाहता था बेघरबार विश्वप्रवासी,

हो गया गृहस्थ। और वहाँ ही। ऊपरी समझौते के अन्दर एक बेकली ने उसे कभी सफल गृहस्थ नही होने दिया। वह बनना चाहता था कुछ नया स्वत्व लिये और हुआ कुछ और ही। वह अपना ही एक भव्य खँडहर हो गया जिसमे कि वृहत मीनाकारी की प्रशसा की जा सकती है, पर रहा नही जा सकता।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1945-47। **रचनावली** के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

अधूरी कहानी : तीन

'प्रपीडित मौन का अदृश्य प्रस्तर-रूप विराजमान था। बाहर की बहुस्वरा वर्षा का एकान्त गीत सुनता हुआ, वह पुराना पीला सूना कमरा स्तब्ध खडा था।

किसी बिगडे रईस का बिका हुआ पुराना बँगला था वह। ऊँची-ऊँची दीवालें जिनम बल-खाती दरारें साफ नजर आती थी, और छत के कजलाये शहतीरो पर मकडी के जाले शोभायमान हो रहे थे। बँगले मे इसी तरह के कई कमरे थे। उन सब कमरो मे ऊँघता हुआ बासी अँधेरा था, क्योकि वे कभी खुलते न थे, क्योकि उसमें वर्तमान मकान-मालिक का सटर-पटर सामान भरा हुआ था। इस कमरे से लगा हुआ, पीछे की ओर एक कमरा था, जहाँ दिन में एक छोटी-सी खिडकी मे से आनेवाली रोशनी रहती। रात मे तो, आजकल, वहाँ कोई भी न जाता।

सन उन्नीस सौ छियालीस के जनवरी महीने मे वहाँ एक परिवार रहने आया जो उन कमरो मे अब तक रह रहा है।

सहसा शान्ति भग हुई। दूर से मानो कोई किसी को पुकार रहा हो। कमरे के अन्दर निस्तब्ध बैठा हुआ व्यक्ति उठा और खिडकी के पास जाकर खड़ा हो गया। ग़ौर से सुनने लगा। उसका नाम लेकर कोई पुकार रहा है? शायद! शायद? नही! नि सन्देह नही।

खिडकी के दरवाज़ो मे पडी हुई दरारो की खुली जगह मे से सर्द हवा अन्दर न घुसे, इसके लिए उन बडे-बड़े छेदो मे कपडे ठूँस दिये गये थे। और उन दरवाज़ो पर जनाना धोती की तहो के परदे लटका दिये गये थे।

वह व्यक्ति उस खिडकी के पास खडा ही रहा, इस उम्मीद मे कि कोई जरूर उसका नाम लेकर पुकारेगा। मुसीबत मे पडा हुआ व्यक्ति अन्धविश्वासी होता है। धरती या आसमान के किसी छोर से कोई-न-कोई जरूर उससे मिलने आयेगा, चाहे जितना पानी बरसे, चाहे जो हो जाय।

पागल आशा नि सहाय अवस्था की द्योतक है। वे मनुष्य भाग्यवान हैं जिन्होने यह दशा नही देखी।

किन्तु कोई ध्वनि, कोई परिचित स्वर अथवा सकेत बाहर से नही मिला। वर्षा की अनवरत गूँज अपनी विक्षिप्त एक-स्वरता का अनुभव कराती हुई उसी

प्रकार जारी थी, जैसे अपने पहियों के अन्दर फँसे हुए मनुष्य की जान की कोई परवाह न करते हुए, काली-स्याह लोहे की दानवी मशीन घरघराती हुई, दिशाओं के कान फाड़ती हुई, चली ही चलती है।

गर्दन नीची किये वह व्यक्ति एक पल-भर और खड़ा रहा। फिर अपनी ही मूर्खता पर खीझता हुआ अपने स्थान पर जाने लगा। तब उसे बच्चे का रोना सुनायी दिया।

उस रोने की आवाज़ इतनी कमज़ोर थी कि सुननेवाले का हृदय सहसा धँस जा सकता था। उन शिकायत-भरे शिशु-स्वरों की कमज़ोर काँपती हुई गूँज किसी भावी संकट का संकेत बन गयी थी। उसके किसी भी श्रोता को इसका अनुमान हो सकता था। फिर उसका तो कहना ही क्या, जिसके जीवन से उस बच्चे का सम्बन्ध हो।

वह व्यक्ति अपनी स्त्री की खाट के पास खड़ा होकर बहुत ध्यानपूर्वक उसका चेहरा देखने लगा।

उसे सन्तोष-सा हुआ। गहरी नींद लगी हुई थी।

बीमार स्त्री का ढीला श्यामायमान स्तन खुला हुआ था। और बच्चे का मुँह उसे पकड़ न पाता था, वह इधर-उधर (वहीं के वहीं) गर्दन हिलाता और अत्यन्त क्षीण रुदन-स्वरों में अपना विरोध प्रकट करता।

झुककर, बहुत सावधानी से, बड़े एहतियात से, उसने बच्चे को उठाया, उसकी पुरानी फटी धोती की तहों का 'लिहाफ़' एक हाथ से उढ़ाता हुआ वह खाट के पास ही नीचे बैठ गया।

बच्चे की त्वचा उसकी कमज़ोर हड्डियों से चिपक गयी थी। लाखों बारीक-बारीक झुर्रियाँ चेहरे से लगाकर तो पैरों तक जाले सी छा गयी थीं।

कई बार उसके पिता ने सोचा कि बच्चे की मृत्यु नज़दीक है। चन्द दिनों का मेहमान है। और फिर अपनी ही इस घोरतम कल्पना पर वह चिढ़ उठता और, जैसा कि अक्सर होता है, वह अपने को हीन समझने लगता। किन्तु, इस समय, इस रात को उसे ऐसा ही लगा, मानो वह बच्चे को देकर स्त्री को ले लेना चाहता हो।

धीरे-धीरे एक चम्मच दूध बच्चे के पेट में चला जा रहा था।

इस बहुत बड़े सूने पीले पुते कमरे के एक कोने में स्टूल खड़ा था जिस पर एक मद्धिम बादामी प्रकाश की लालटेन चुपचाप इस दृश्य को देख रही थी। उस पिता के शरीर की छाया दरार-भरी दीवार पर गिर रही थी।

बच्चे का रोना थम गया था। खाट के नीचे रखी अध-गरम सिगड़ी ठण्डी हुई जा रही थी। स्त्री सोयी हुई थी।

ज़माना सोया हुआ था।

पर एक व्यक्ति का मन जाग रहा था। सारी चेतना एक गति पर केन्द्रित हो गयी थी। उस गति को अनिच्छित अवांछनीय पथ पर—या विपथ पर—भ्रमित न होने देना था। उस पर अपनी पूरी मानवी शक्ति का नियन्त्रण रखना था।

उस व्यक्ति को फिर खटका हुआ। कोई ज़रूर उसे बाहर से पुकार रहा है।

दरवाजा बन्द रहने के कारण शायद उसे सुनायी नही दे रहा है।

(ऐसा कैसे हो सकता है, जब उसने वचन दिया है तो वह जरूर आयेगा।)

और वह अपनी जगह से उठ खडा हुआ,और एक मूरख बच्चे की भाँति जल्दी-जल्दी दरवाजे तक गया और कान लगाकर सुनने लगा।

दरवाजा ठण्डा था। बाहर वर्षा का तुमुल रण-नाद हो रहा था। जिस पुकार की उसे अपेक्षा थी, वह कही भी नही थी।

अपने पागलपन, अपनी आतुरता और गम्भीरता के अपने अभाव पर खीझता हुआ वह फिर लौट आया। मानो अपनी जिन्दगी के अनेक प्रश्नो के नकारात्मक उत्तरो मे से उसका अपने लिए भी यह नकारात्मक उत्तर हो।

उसकी सम्पूर्ण चेतना की सुदृढता मे दरारो के पडने की मन्थर क्रिया का अनवरत अनुभव हो रहा था। जिन्दगी जैसे कच्चे धागे पर लटक रही थी।

जब वह बच्चा था तब वह अपने बूढे नाना के साथ जगल-जगल घूमा करता। जिस कस्बे मे वह उन दिनो रहता था, वहाँ गदर के जमाने मे फिरगी फौज की छावनी थी। उस मुहल्ले को आज भी वहाँ के लोग कम्पनी-बाग कहकर पुकारते थे। वहाँ नदी का एक बाँध था, ऊँचा बाँध। दोनो ओर गहरा नीला पानी। बाँध के सँकरे रास्ते पर चलते-चलते, दोनों ओर के गहरे पानी की ओर देख, उसे गश आने का भान होता।

अपनी स्थिति की दोनो ओर की गहरी खाई को देख वह आतकित हो जाता। अगर खाई मे गिरने से बचना हो तो सँकरे लम्बे रास्ते पर बैलेंस सँभालते हुए चलना है, *सम्पूर्ण सकल्प-शक्ति के साथ।*

वह फिर बीमार स्त्री की खाट के पास चला आया। ध्यानपूर्वक देखा। शान्ति थी। घडी की ओर देखा, सिर्फ ग्यारह बजे थे। बारह बजे टेम्परेचर लेना था, दवा देनी थी। दोनो को—माता-पुत्र को।

वह खाट के पास एक चादर पर ही बैठ गया,और एक जरूरी चिट्ठी लिखने लगा। अपने काँपते हुए हाथो को जोर देकर थामते हुए, वह आगे बढ चला। उसके दिमाग मे असयत विचार और कल्पनाएँ चली आ रही थी। विद्रूप स्वप्न-दृश्यो की शृखलाएँ विचारो के प्रवाह मे घुलमिलकर अक्षरो की टेढी-मेढी पक्तियाँ बन रही थी। काली स्याही की उलझती हुई लकीरो मे वह दबे हुए अश्रु और उठते हुए भाव-विचारो की गुत्थियाँ जमा रहा था।

सहसा दरवाजे पर पैरो की आहट सुनायी दी। कुछ सहमी-सी हलकी ध्वनियाँ और एक मानव-स्वर।

"बाबूराव ! बाबूराव !"

किसी अबूझ उद्वेग से उसने तुरन्त अपने पत्र को कागजो मे छिपा दिया। और जिस व्यक्ति से मिलने का उसे इन्तजार था, उससे शाइस्ता बातचीत की मानसिक तैयारी करते हुए, वह जल्दी-जल्दी आगे बढा और दरवाजा खोल दिया।

आश्चर्य का एक धक्का और हर्ष की एक चीख !

"अजीब आदमी हो, चिट्ठी तो डाल देते !" उसने आनन्दोत्फुल्ल होकर कहा। "और क्या भाभी भी है ? और बच्चे भी ?…" (किन्तु बाबूराव के हृदय

में हर्ष के साथ-साथ चिन्ता के कीटाणु भी घुस गये, और एक सुदूरवर्ती आशा भी बँधी।)

नवागन्तुक, भाभी, बच्चे, होल्डॉल, गठरी, पुटलियाँ लिये हुए अन्दर दाखिल होने लगे।

बाबूराव ने जल्दी दरवाजा बन्द कर दिया। अतिथियों के कारण जितनी जमीन गीली हो गयी थी, उससे सचिन्त होता हुआ, ज्यों ही उसने मित्र के चेहरे की ओर देखा, तो उसके मन के कष्टप्रद भाव काफूर होने लगे। वस्तुत, उसे आत्मीयता और सहचरत्व के आनन्द की आवश्यकता थी।

उसका मित्र जूते उतार रहा था। बच्चे जमीन म बैठकर अपने कैनवासी जूते निकाल रहे थे और स्त्री गठरियों को एक किनारे रख रही थी।

बाबूराव को यह आत्मीय पारिवारिक दृश्य अच्छा लगा। उसकी सन्तप्त आत्मा मुसकरा उठी, यद्यपि वह आगे की खाई से भी सचेत थी (यानी कि कल सुबह क्या होगा? मित्र से ही पूछना पडेगा—तुम्हारी जेब मे कुछ है?)

नवागन्तुक परिस्थिति से सचेत हो गये थे। [बीमारी] के आसपास रहनेवाले सघन-मलिन वातावरण की दुर्गन्ध उनकी व्यक्तिगत नासिकाओं म प्रवेश कर ही चुकी थी, जिसके कारण स्वागत और आराम की उनकी सारी अपेक्षाएँ भग हो गयी थीं।

उस मकान के खाली बन्द रहनेवाले हिस्से में का एक कमरा झाड-बुहारकर साफ कर चुकने, और बिस्तर बिछाकर बच्चों को सोने का आग्रह हो चुकने के बाद भी, उस परिवार मे प्रत्येक व्यक्ति ने सोने से इनकार कर दिया। बच्चों को विचित्र वातावरण म नीद नही आ रही थी। भाभी सकोच और शील के कारण बगैर बाबूराव की स्त्री से दो बात किये सोना नही चाहती थी। और नवागन्तुक महाशय पक्के झक्की थे। वे अपने दोस्त को झकझोरकर गलबहियाँ डालना चाहते थे। केवल अपनी स्त्री के सामने ऐसी वाहियात कार्रवाई से इनकार का सकल्प किये बैठे थे। और फिर बाबूराव का दिल तो··

[अपूर्ण। रचनाकाल अनिश्चित। सम्भवत 1948 के आसपास।]

एक वि-खण्डित, अप्रकाशित उपन्यास

[रचनावली का तीसरा खण्ड पूरा छप जाने के बाद सयोगवश मुक्तिबोध के एक उपन्यास का अधूरा अश जो श्री दुष्यन्तसिंह द्वारा सम्पादित पत्रिका 'पक्षधर' म प्रकाशित हुआ था, सम्पादक के सौजन्य से हमे प्राप्त हो गया। वह तब इस खण्ड के अन्त में रक्खा गया था। पर अब दूसरे

सस्करण में इसे काल-क्रम से यथास्थान नहीं रखा जा रहा है। इसकी रचना सम्भवत 1948 में हुई थी और मुक्तिबोध के पत्रो में इसका एकाधिक बार उल्लेख भी हुआ है।—स०]

[स्वर्गीय श्री गजानन माधव मुक्तिबोध का यह वि-खण्डित, अप्रकाशित उपन्यास हमे श्री शमशेर बहादुर सिंह और श्री राधेलाल चोपडा की कृपा से प्राप्त हुआ। मुक्तिबोध सन् 48-49 मे इलाहाबाद मे श्री नेमिचन्द्र जैन के साथ एलेनगज मुहल्ले मे कुछ समय तक रहते थे। तभी यह उपन्यास उन्होंने लिखना शुरू किया था। उन दिनो वे आर्थिक रूप से काफी परेशान थे और यही के एक प्रेस के मालिक को उन्होने 100) पेशगी लेकर *उपन्यास की पाण्डुलिपि के कुछ अश दिये थे।* प्रेस के मालिक ने उपन्यास छापना शुरू कर दिया था। तभी उनके साहबजादे ने, जिन्हे जासूसी उपन्यास पढने का शौक था, मुक्तिबोध के उपन्यास के छपे हुए फर्मे पढकर उपन्यास को नीरस कहकर, अपने पिताश्री को उपन्यास छापने से मना कर दिया। इस बीच (शायद) मुक्तिबोध इलाहाबाद छोड चुके थे। फिर इसके बारे मे न तो मुक्तिबोध ने, न प्रेस के मालिक ने कोई जिक्र किया। सन् 64 मे मुक्तिबोध की मृत्यु के बाद शमशेर बहादुर सिंह ने इसकी खोज-बीन पुन. जारी की। वे राधेलाल चोपडा के साथ उस प्रेस भी गये लेकिन उसके मालिक का इन्तकाल हो चुका था और उनके सुपुत्र इस सम्बन्ध मे कोई भी मदद नही कर सके।

उपन्यास का एक फर्मा (17-32) छपा हुआ मिला है। पृष्ठ 1-16 तक की *पाण्डुलिपि या छपा हुआ फर्मा नही मिला। आगे 33 से 72 पृष्ठ तक फिर न तो* पाण्डुलिपि उपलब्ध है न ही छपे हुए फर्मे मिल सके है। उसके आगे 73 से 133 पृष्ठ तक मुक्तिबोध की हस्तलिपि मे उपन्यास की पाण्डुलिपि मिली है। इसके ऊपर लिखा है 'तीसरा अध्याय : 73 से 133 तक।' इसका अर्थ यह है कि 72 पृष्ठ तक उपन्यास के दो अध्याय पूरे हो चुके थे। लेकिन इस हस्तलिखित पाण्डुलिपि मे भी छ पृष्ठ (97, 100, 108, 110, 111, और 113) गायब हैं। इसके शेष पृष्ठ शमशेर बहादुर सिंह ने बडे इहतियात और सलीके से चिपकाकर रखे हैं। इसी पाण्डुलिपि के भीतर उपन्यास के दूसरे फर्मे की छपी हुई प्रतिलिपि भी रखी हुई मिली।

तक) मिल सके है। शायद तीसरा अध्याय लिखते-लिखते प्रकाशक ने छापने मे अपनी असमर्थता जाहिर की और उपन्यास फिर आगे नही लिखा जा सका और यह तीसरा अध्याय मुक्तिबोध-जैसे व्यक्ति की उत्कट उदासीनता मे शमशेरजी के पास पडा रह गया।

उपन्यास के छपे हुए फर्मे पर भी कोई फोलियो (पृष्ठ-सख्या के अलावा) नही है जिससे पता चले कि उपन्यास का नाम मुक्तिबोध न क्या दिया था। उनकी हस्तलिखित पाण्डुलिपि (तीसरा अध्याय) पर भी कही भी उपन्यास का नाम नही पडा है।

उपन्यास जिस रूप में तहस-नहस, वि-खण्डित है, हम यहाँ उसे उसी 'अनाम' रूप में दे रहे हैं। सम्पादक।]

[**पाण्डुलिपि का पृष्ठ 1 से 16 तक गायब**]· रहता, किताब पढता हुआ। बीच-बीच में उसे आनेवाली शिकायतों को निपटाना पड़ता। अपने मुहल्ले के नौजवानों का वह नेता और सगठनकर्त्ता था।

आनन्द की कल्पना मे गोविन्द का प्रत्येक कार्य, प्रत्येक वचन रम-सा गया था। वह उसे अति-मानव-सा लगता। गोविन्द की केवल एक बात उसे पसन्द नहीं थी। वह भंग बहुत पीता है और आनन्द को उससे नफरत थी। साहस, वीरता और शक्ति का पुतला गोविन्द एक विचित्र वातावरण में रहता। हमेशा अपने पास एक छुरी रखता। पचीस कदम आगे चलने पर वह एक बार मुड़कर पीछे ज़रूर देख लेता। उसने आनन्द को भी यह सिखलाने की कोशिश की थी। आनन्द और गोविन्द के स्वभाव मे भिन्नता होते हुए भी उनका स्नेह प्रगाढ रहा। क्यों? यह आज तक दोनों में से कोई भी समझ नहीं सका।

गोविन्द का मन पढने-लिखने में कभी न लगा। पर वह अपने घर पर पुस्तकें बहुत पढ़ा करता था। डी वेलरा, मेज़िनी, गैरीबाल्डी, महात्मा गाधी, सुभाष बोस के जीवन चरित्र उसने पढे थे। साहस के स्वप्न उसे हमेशा दीखा करते, लेनिन और स्तालिन का भी नाम उसने सुना था। उनके बारे में कुछ पढा भी था।

गोविन्द, आनन्द को साहस की कहानियाँ सुनाया करता। वे देशभक्ति से भी सम्बन्ध रखती। डाकुओं के चरित्र उसे याद थे। डोंगर बटरी, बलवीर सिंह, उम्मीद सिंह उस प्रदेश के प्रसिद्ध डाकू हो गये हैं। गोविन्द बतलाया करता कि वे लोग साहसी होने के साथ-साथ बहुत ईमानदार थे। सिर्फ धनियों को कष्ट देते। ग़रीबों की सहायता करते। जिसको माँ मान लिया, जिसको बहन मान लिया उसकी, जहाँ कहीं भी हों, वे रक्षा तथा मदद करने का प्रयत्न करते। आनन्द का हृदय सुनते-सुनते कभी उत्फुल्ल तो कभी अश्रु-पूर्ण हो जाता, और कभी भक्ति से गद्‌गद हो जाता। उसकी कल्पना का आकाश फैलता ही चलता, फैलाता ही चलता।

गोविन्द हमेशा तिलिस्म की बात करता। तिलिस्म उसके लिए वास्तविक चीज थी। ऐयारों के बटुए, तहखानों में से गुजरनेवाले लोग, तिलिस्म में कैद स्त्रियाँ और पुरुष, सब एक महान् वास्तविकता बन गये थे। गोविन्द आनन्द को खँडहरों में ले जाता। ज़मीन में धँसे-दबे कोठों में उन दोनों को तिलिस्मी उपन्यास का सत्य प्रत्यक्ष दिखायी देता। दूर-दूर लम्बे-लम्बे खेतों-मैदानों को पार करते हुए वे उन उद्‌ध्वस्त भग्नावशेषों के पास पहुँचते। और अँधेरा होने तक वहीं रहते। गोविन्द भुतही ज्वाला के बारे में भी कहा करता। उसका कहना था कि रात को राहगीरों को वह दीखती है। उनके पास आती-सी मालूम होती है। किन्तु आती नहीं। यदि स्वयं वे उसकी ओर जाने की कोशिश करते हैं, तो वह पीछे-पीछे खिसकती चलती है। आगे क्या होता है मालूम नहीं, किन्तु राहगीर भय से पागल हो जाता है। गोविन्द ने आनन्द को 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता सन्तति', 'भूतनाथ' आदि उपन्यास पढ़ने को दिये। उसे डण्ड लगाने, कसरत करने और अन्य कामों के लिए मजबूर किया। कसरत से आनन्द बहुत घबराता, किन्तु मजबूरन उसे करनी

पड़ती थी।

गोविन्द आठवी से नवी मे कभी नही गया। वह कुछ धन्धा करने लगा। पर मुहल्ले मे उसका रोब वैसा ही था जैसा पहले। उसकी व्यायामशाला बहुत बढ गयी थी। पुस्तकालय मे किताबें डेढ सौ से अधिक हो गयी थी। वॉलीबाल फील्ड खूब चलता।

गोविन्द विवाहित था। उस पर बडी जिम्मेदारियाँ थी। वह अपने पिता की जमीन की देखभाल करने लगा।

किन्तु वे दिन बडे विचित्र थे। आनन्द जब नवी मे था तब उसने सुना कि पुलिस कोतवाली पर किसी ने तिरगा झण्डा गाड दिया है। खूब हो-हल्ला मचा। कोई हाथ न आया। कुछ दिनो बाद उसके हाई स्कूल के कई लडके गिरफ्तार हुए। उनमे से कई उसके और गोविन्द के मित्र थे। इस दरमियान गोविन्द अक्सर आनन्द से मिलता रहता और काग्रेस के बारे मे बातचीत करता। आनन्द से गोविन्द ने कई काम निकलवाने चाहे। जैसे, चिट्ठी लाने-ले जाने के काम।

किन्तु एक दिन सुबह के दस बजे पूरे स्कूल मे लाल इश्तहार बेंचो पर, टेबिलो पर, इधर-उधर, अन्दर-बाहर सब जगह पाये गये। लडको ने, टीचरो ने, सबने उन्हे पढा, किन्तु तुरन्त ही हेडमास्टर की आज्ञा से सब इकट्ठा करवाये गये और कही रख दिये गये। तब आनन्द ने पहली बार एक शब्द समुदाय सुना, जो उसके ध्यान से फिर कभी न उतरा—'सशस्त्र क्रान्तिकारी यशपाल"।

सारे शहर मे खबर फैल गयी थी कि 'यशपाल' नाम का क्रान्तिकारी यही किन्ही गलियो मे छिपा हुआ है। गलियो के नुक्कडो पर खाकी वर्दी के ऊपर लाल साफे दिखायी देने लगे। पुलिस के थानदारो के व्यस्त चेहरो की ओर देखते हुए तमाशबीन पानवालो की दूकानो के पास खडे होकर अपना कौतूहल शान्त करते। आनन्द भी तमाशा देखने के लिए निकलता। पर कुछ न पाता। रिक्त सवेदना। सूनी सनसनी।

एक दिन सुबह के दस बजे, भोजन की ऊष्मा और स्फूर्ति को शिक्षक का भाषण सुनने मे व्यय करते हुए आनन्द को सहसा एक चीज़ दिखायी दी। जेब मे से रूमाल निकालकर जब श्री भावे अपने खुरदुरे मुँह का पसीना पोछने लगे, तब जेब मे से कोई लाल काग़ज़ ऊपर निकलकर झाँकने लगा।

आनन्द को आशका से रोमाच हो आया। शिक्षक को बचाने की चाह उभर आयी।

पिछली बेंच पर वह बैठता था। उठ खडा हुआ।

"सर, क्या मैं बाहर जा सकता हूँ?"

"हाँ," कहकर श्री भावे अपनी वक्तृता के ओज मे हाथ-पैर नचाने लगे।

क्लास के बाहर जाकर आनन्द धक धक करते दिल को सयमित करता हुआ शिक्षक की मेज़ के पासवाले दरवाज़े पर कुछ क्षणो तक खडा रहा। उन्हे देखता रहा। फिर ज़ोर से जूता बजाया।

शिक्षक का ध्यान आकर्षित होते ही उनकी निगाह लज्जा-भय से आरक्त आनन्द के किशोर मुँह पर पडी। उसका अतिरिक्त आवेश-भरा इशारा पाया।

भौंहे चढाकर, धमकाते हुए-से श्री भावे बाहर आये।

"महाशय!"

"क्या चाहते हो ?"

फिर एक क्षण का गहरा मौन।

"आपकी जेब में वह कागज़...।"

खुरदुरे मुँह के श्री भावे का चेहरा एकदम उतर गया। किन्तु आनन्द इतना भला और डरपोक लडका था कि उन पर रोब गालिब न कर सका। क्लास को 'एक मिनिट ठहरो' कहकर वे दोनों जरा दूर गये। नीम के पेड के नीचे खडे होकर उन्होंने जेब में से झाँकनेवाले लाल कागज को अन्दर दबाया।

आनन्द से कुछ न कहा। दो मिनिट तक वे स्थिर-स्तब्ध खडे थे। यकायक उन्होंने आनन्द का हाथ पकड लिया। दूसरा हाथ जेब में डाल, उस लाल काग़ज़ को तोडा मरोडा और मसल डाला। फिर आनन्द के हाथ में रखकर उसकी मुट्ठी बाँध दी।

"जाओ, उसे जला दो या डुबो दो। जल्दी आओ और इत्तला दो।"

शिक्षक ने ये शब्द इस प्रकार से कहे मानो वे क्रान्तिकारियों के कमाण्डर हों, जैसे शिक्षक और शिक्षार्थी के सम्बन्ध टूट गये हों और एक नया सम्बन्ध कायम हो गया हो। एक क्षण के लिए ही सही, आनन्द सैनिक हो गया। उसके हृदय में नये उत्तरदायित्व का नशा-सा छाने लगा। और फिर शिक्षक की आँखों में अपने नये मूल्य का साक्षात्कार उसे प्रसन्न कर गया।

आनन्द गर्दन नीचे डाल सोचता-सा फाटक की ओर चला। शिक्षक उसकी चाल को बहुत ध्यान से देख रहे थे। आनन्द को लगा जैसे वे उसे फिर बुला रहे हैं। उसने मुडकर देखा—वे वैसे ही वृक्ष के नीचे खडे हैं और उसे इशारा कर रहे हैं।

उसके पास पहुँचते ही शिक्षक ने फुसफुसाया।

"जानते हो, गोविन्द गिरफ्तार हो गया ?"

आनन्द का जी धक् करके रह गया। अब तक वह गिरफ्तारियों की सनसनी में जी रहा था। अब उसे लगा जैसे उसे फालिज मार गया हो। क्रान्तिकारियों को किन अमानुषिक अत्याचारों को जेल में सहना पडता था, इसके किस्से दन्तकथाओं के समान लोगों की जबान पर थे। वे उसने भी सुने थे। किन्तु गोविन्द की गिरफ्तारी का हाल सुन उसे यह आशा न रही कि वह जिन्दा निकल आयेगा।

आनन्द की उमर ही क्या थी। उसका भोलापन बेवकूफी की हद छूता था। परन्तु कुछ बुनियादी बातों में वह होशियार था। और जब वह किसी दृढ निश्चय के आवेश में अन्धा होकर किसी काम को हाथ में लेता, तो उसे पूरा कर डालता। बुद्धिमानी उसमें न थी किन्तु साहस की जागरूकता थी। वैसे, वह अँधेरे से डरता था। भय का निष्करुण शीत रोमांच उसे सताया करता और उसकी कल्पना अनेक भयानक दैत्यरूपों का आविष्कार करती। तिलिस्मी उपन्यासों ने उसकी कल्पना को अद्भुत-भयानक रंग दे दिया था।

आनन्द को राजनीति छू तक न गयी थी। क्रान्तिकारी दल से उसका दूर का भी सम्बन्ध न था। फिर भी उसे लगा, गोविन्द के लिए उसे क्रान्तिकारी भी बनना होगा। कम-से-कम, यह भाव उसे अत्यन्त प्रिय लगा। मनोवेगों का उस पर ज़बर-दस्त प्रभाव हो रहा था। आवेश की जल्दी से उसने मन-ही मन यह प्रतिज्ञा की कि वह क्रान्तिकारी बनेगा, नहीं तो आत्महत्या कर लेगा।

साढे पाँच बजे की नरम ताज़ी हवा के झोकों में केशरिया रंग की चादर में से झाँकते हुए खेत अपनी शान्त-प्रसन्न मुसकान बिखरा रहे थे। किन्तु इमली की छोटी-छोटी पत्तियों से ढँकी ज़मीन पर लेटे आनन्द को शान्ति ने छुआ तक न था। गोविन्द के और अपने परस्पर सम्बन्धों पर वह अब तक विचार करता रहा। उसका हृदय उस पुराने गोविन्द के लिए उमड़ रहा था। वे जीवन के स्वर्ण-दिन थे।

विस्मय, कुतूहल और उत्साह के प्रथम मोहक आकर्षण का आदर्शवाद भी कितना ऊँचा और भव्य होता है! किन्तु आज उस क्रान्तिकारी दल की राजनीति-हीन राजनीति आत्म-विसर्जनशील, किन्तु पिछड़े हुए तरुणों की बलिदान-शक्ति का सतत अभ्यास मात्र थी। इससे अधिक कुछ नहीं। गोविन्द जेल से छूट आया चार साल बाद। परन्तु कारावास ने उसे राजनीति प्रदान न की। जैसा कि औरों के साथ हुआ। उसने पसारी की दूकान लगा ली। वह नहीं चली तो स्थानीय कपड़े की मिल में क्लर्क हो गया। ज़माना बहुत आगे बढ़ गया। काल-प्रवाह ने गोविन्द को बहुत पीछे छोड़ दिया। अब वह एक मात्र मिल का साधारण क्लर्क है। बमुश्किल तमाम गिरस्ती की किश्ती महीने के किनारे लगाता रहता है।

आनन्द ने मन-ही-मन स्वीकार किया कि वह स्वयं भी अब बदल चुका है। खुद उसमें इतना घोर परिवर्तन हुआ है कि बलिष्ठ गोविन्द अपनी सारी डाँट के बावजूद, उसकी मानसिक उच्चतरता स्वीकार करता हुआ अपने को उससे दूर, बहुत दूर, बहुत भिन्न, अत्यन्त भिन्न पाता है। फिर भी अपने सन्त-सुलभ स्वभाव के कारण, वह मुहल्ले के दोस्तों और मिलनेवालों में आनन्द की तारीफ के पुल बाँधता हुआ ऐसे व्यक्ति की मित्रता का गौरव प्रदर्शित करता है।

किन्तु आनन्द चाहता है मित्र, सहयोगी। गोविन्द ज़िन्दगी में पीछे छूट चुका है। बहुत पीछे।

यह सोचते ही कि गोविन्द बहुत पीछे छूट चुका है, आनन्द के मन में आज वह मात्र चरित्र होकर आता है। क्रान्तिकारी आन्दोलन की अवश्यम्भावी कुण्ठा और ह्रास के साथ-ही-साथ गोविन्द ज़िन्दगी के किस किनारे पहुँच गया! किन भूरे, अर्थहीन प्रदेशों के ऊसर विस्तार में पूर्ति-रहित श्रम का स्वेद, उसके चौरस चेहरे और मज़बूत गले पर बहता जा रहा है। आनन्द की कल्पना में गोविन्द का पूरा जीवन आकार साक्षात् होकर करुण हो उठा।

दूसरी ओर श्री चक्रवर्ती। साँवले, गोल चेहरे पर ठण्डी मधुर आँखों का वह स्वामी। सरल और उदार। जीवन में कितना बड़ा आर्थिक और भौतिक अभ्युत्थान। उस जीवन-वातावरण की विशेष शिक्षाएँ, नियम और सीमाएँ।

और तीसरी ओर, आनन्द स्वयं। हृदय और मस्तिष्क से भूखा। सारा ज्ञान और सारा सौन्दर्य मानो अपने अन्तर में स्वाहा करना चाहता हो। किन्तु अपने संस्कारों, आदतों और भावों में बन्द। और व्यावहारिक जीवन से ऊब उठनेवाला उसका मन। अपनी परस्पर-विरोधी इच्छाओं के चंगुल में उसकी कमर; और बाहरी, सामाजिक विरोध-शक्तियों के पंजों में, लड़ते हुए, उलझ जानेवाले हाथ।

आनन्द ने गोविन्द की ओर निःसहाय दृष्टि से देखा।

गोविन्द तत्परता से अपनी साइकिल ठीक कर रहा था। हाथ में एक छोटा-सा गोल पत्थर लेकर खटाखट-खटाखट करता हुआ ब्रेक सुधार रहा था। कभी पैडल को घुमाकर पहिये को ज़ोर से चलाता। आनन्द की आँखें चक्-चक्-चक्

करते, गोल मोल, घूमते हुए पहिये मे अटक रही।

देवास से आती हुई हरी लारी आवाज़ करती हुई निकल गयी। छै बज चुके थे। दूर कचहरी की बहुत विशाल इमारत के पीछे, जो बडे अफसरो के क्वार्टर्स बने हुए थे, वहाँ से लोग घूमने के लिए निकल चुके थे। झलमल करती सफेद, नीली, अथवा लाल साडियो मे सिमटी, शिक्षिता लडकियाँ साइकिल हाथ मे थामे, उसी ओर आ रही थी। सफेद पैण्ट पहने कुछ निठल्ले नवयुवक उन लडकियो को समय-समय पर देखते झाँकते, राजनीति-सम्बन्धी बातचीत करते चले जा रहे थे।

हवा मे अकस्मात् एक सगीत-सा गूँजा। मीठा सगीत—गुलाबी सन्तोष और महकती तृप्ति का शान्त, विकच, *आकर्षणमय उल्लास।* इमली के विशाल वृक्षो के अन्तराल स गरम मिट्टी और छोटी छोटी पत्तियो की गन्ध—कुछ ठण्डी, कुछ गरम —उभरकर सडक पर आ रही थी। गोविन्द ने साइकिल ठीक कर ली। ईख का बण्डल कैरियर पर ठीक तौर से बाँध लिया और कहा, "बस, चलो चलें।" उसके स्वर मे उकताहट और खीज थी।

आनन्द के शरीर की मानो सन्धियाँ टूट गयी थी। अपने अस्त-व्यस्त अगो को सँभालता, शाम के रगीन वातावरण से उल्लास की भिक्षा माँगता हुआ वह उठ खडा हुआ।

शहर के पास पूरव के क्षितिज पर मिल के भोंपू से हलके धुएँ के धब्बे निकल रहे थे। दूर से ही मुहल्ले की सडको की हवा मे धूल का कुहरा छाया हुआ था, जिनमे अब राह के किनारो पर खडे खोमचो के दिये जल उठे थे। साइकिल के आगे के डण्डे पर बैठा हुआ आनन्द बेचैन हो रहा था। सडक का धूसर कोलाहल उसकी साँस को कुण्ठित कर रहा था।

आनन्द सोच रहा था, गोविन्द न मिलता तो अच्छा होता। व्यर्थ गया समय। 'समस्या' किसको अच्छी लगती है। गोविन्द उसे ऐसा ही लगा। शीघ्र-से-शीघ्र वह उससे छुटकारा पाना चाहता था।

साइकिल को ताकत लगाकर चलाते हुए गोविन्द की आँखो मे घर के सपने तैर रहे थे।

सोच रहा था—व्यर्थ समय गया। अभी आटे की चक्की पर जाना है। घर मे दाल तो होगी शायद, नही तो अभी-अभी दूकानों पर घूमना होगा। बच्ची रो रही होगी। बैठकबाज पतियो से किसी स्त्री को सुख नही। गोविन्द को लगा जैसे उसकी नसो मे लाल आनन्दमय रक्त के स्थान पर एक विचित्र प्रकार का तारकोली काला, गाढा रसायन बह रहा है। एक-दूसरे से लड पडने, झगडा कर लेने की इच्छा दोनो मे खीझ का रूप धारण कर विकसित हो रही थी। दोनो सयमी और समझदार थे। नही तो अवश्य कठिनाई उत्पन्न होती।

शहर के पुराने हिस्से का सौन्दर्य—यदि उसे सौन्दर्य कहा जाये तो—बहुत विलक्षण होता है। ठण्डी, साँवली, उदास छायाओ मे रहनेवाले मनुष्यो की जीवनी-शक्ति पर भरासा रखते हुए भी, यह अर्धध्वस की श्याम, भव्य, निर्मानव निबिडता देख, मन अपने से हटता-सा, किन्हीं असाधारण भावुक भूरेपन की कल्पनाओ मे जकड जाता है। इन ऊँचे, अध-गिरे, सूने मकानो, कोटो के ऊपर उगनेवाली हरियाली

की सरसराती आवाज़ाओ, ऊँची-ऊँची भीतों के दूहों और'' और उन विशाल ढेरों में कुत्तों द्वारा बनाये गये, नरम, अण्डाकार खड्डों तथा खँडहरों में खड़े हुए अजस्र बरगदों और पीपलों को देख, लगता है, जैसे अमूर्त होकर भी समय का हाथ बहुत लम्बा और बहुत ज़बरदस्त होता है।

उखड़ी-सिकुड़ी सड़क बड़े बरगदों की छाया में पड़ी हुई है। बिगड़ा हुआ प्रतिबिम्ब दिखानेवाले ऊँचे आईने से सजी पान की दूकान से यह राह निकलती है। रास्ते के एक ओर बीच में, सबसे अधिक ध्यान खींचनेवाली एक अद्भुत चीज़ थी। एक पुराने मकान के निचले हिस्से में, सड़क के किनारे, धूल-भरे खम्भों का एक बड़ा दालान-सा था। उसके बायें तरफ का हिस्सा एक टाट के पर्दे से शेष भाग से अलग कर दिया गया था। वह एक छोटा घर बन गया था, जिसमें एक बहुत गरीब मुस्लिम परिवार रहता था। दालान के शेष भाग में मोतिया छिलके के सूखे प्याज फैलाये गये थे। अक्सर वहाँ एक अधेड़ और बौनी औरत बैठती। शायद फैली हुई प्याज की रखवाली करने के लिए। उस स्त्री का कद मुश्किल से तीन फुट चार इंच होगा। आठ साल के लड़के-जैसी उसकी छोटाई उसे इतना विद्रूप बना देती कि उस हिलते-डुलते बदसूरत दृश्य पर ग्लानि हो आती। उसे फिर भी किसी ने उदास और दुखी न पाया था।

आज भी आनन्द उसी रास्ते से जा रहा था। उसके हाथ में किताबों का पुलिन्दा इतना भारी था कि उससे उसे तकलीफ हो रही थी। सुबह पाँच बजे उठकर डेढ़ मील दूरी पार करने की प्रतिज्ञा करके वह घर से चला था।

उसने उस बौनी मुसलमान स्त्री को सड़क के किनारे के काले खम्भोंवाले उसी दालान में प्याज की ऊँची सतह बनाते फैलाते हुए देखा। उसके बदसूरत चेहरे को देख-देख वह उसकी खुशदिली पर तरस-सा खाता हुआ, अपने ऊपर तरस खाता रहा, कि आखिर क्यों वह उस पर तरस खाता है।

मुसलमान स्त्री बहुत गरीब मालूम होती थी। और उसके व्यक्तित्व के वातावरण से लगता था कि वह दासी अथवा नौकरानी होनी चाहिए। कठिन, अतिकठिन ज़िन्दगी से वह अत्यन्त परिचित लगती। परन्तु उसके बदसूरत चेहरे पर दुर्भाग्य की काली छायाएँ रहते हुए भी, कष्टों की कठोरता न थी। एक विशेष प्रकार का आनन्द था।

आनन्द को हमेशा उसे देखकर जिज्ञासा उत्पन्न होती रही। वह कौन है? क्या है? वह किस प्रकार अपनी उपजीविका चलाती है? विधवा वह न मालूम होती थी, विवाहिता होने की सम्भावना न थी। क्या वह किसी के यहाँ आश्रित है? क्या वह सचमुच अपने जीवन से सन्तुष्ट है? उसके दुःख क्या हैं? कैसे हुए? वह उसे जानना, पहचानना और समझना चाहता था। शायद उस पर तरस खाने के लिए, नफरत करने के लिए ज़िन्दगी के उस नमूने को वह समझना चाहता था। उसमें घृणा की सम्भावना के बावजूद आनन्द को उससे सहानुभूति अवश्य थी। उस स्त्री के पड़ोसियों से आनन्द की जान-पहचान न थी। रास्ते पर साथ चलते मित्रों से कई बार उसने बातचीत की थी उसके बारे में। वह स्त्री कई बार जिज्ञासु चर्चा का विषय भी बन गयी थी।

आज भी वह उसी दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। वही पुरानी, किसी को जान लेने की इच्छा। वह उसे देखता रहा, देखता रहा।

किन्तु ज्यो ही वह बौनी स्त्री मुडी और उसको देखकर मुसकरा दी, त्यो ही ठण्डा रोमाच आनन्द के शरीर पर बिजली की गति से रेंग गया।

'मान लीजिए वह मुझसे प्रेम करने लगे !—क्या होगा ?'

आनन्द तुरन्त आगे चल पडा।

'वह रास्ते पर, मान लीजिए, मेरा पीछा करे, तो '

फिर वही ठण्डा रोमाच। आगे के दम और कदम और खतरा खतम। और पागल सा आनन्द अपने पर ही हँसना चाह रहा था। पर अपने डरपोकपन पर वह भयानक रूप से क्रुद्ध हो उठा। एक मिनिट पहले वह जिज्ञासु दृष्टि से उसकी ओर देख रहा था। पर उसकी एक मुसकान न उसके पैरो के नीचे से धरती खिसका दी।

अपनी कल्पना म ही वह चिल्ला उठा, 'डरपोक !'

और कल्पना मे ही वह अपने वध की तैयारी करने लगा।

मन विचित्र रूप से अपनी परिपूर्ति कर लेता है। वध की कल्पना के तुरन्त बाद एक विलक्षण कल्पना उसके मस्तिष्क म छा गयी। रास्ते पर आनन्द बराबर आगे बढा जा रहा था। वह रास्ता अब और भी तग हो रहा था।

दालान म प्याज फैलाती हुई बदसूरत, बौनी स्त्री के पास, उडे हुए नीले रग का चूडीदार पाजामा और उसके ऊपर उडे हलके जामुनी रग का कुर्ता पहन, कोई सोलह बरस की लडकी बैठी हो। उसके मुँह का रग तपे हुए सोने-जैसा गोरा हो। चेहरे पर गरीबी, अभाव और कष्ट की हलकी म्लानता की छाया फैली हुई हो। और बाल रूखे, सुबह की किरनो के बीच म आ जाने के कारण बादामी लगत हो। 'मान लीजिए।

आनन्द को इस चित्र से एक दूसरी कहानी सूझी।

उसने अपन से कहा, 'क्या यह अच्छी कहानी नही होगी ? एक व्यक्ति के प्रति एक कुब्जा मुसकरा देती है, लेकिन उसके पास बैठी सोलह बरस की सुन्दर लडकी भी उसकी ओर मोह जिज्ञासा स देखने लगती है। व्यक्ति के हृदय मे वैराग्य रहता है। उन दोनो मे स कोई भी उसके मन को आकर्षित नही कर सकती। वह दोनो को करुणा की दृष्टि से दखता है। और चल दता है, दोनो से क्षमा माँगता हुआ।'

आनन्द के हाथ की किताबें नीचे गिर पडी, जैसे हाथ की इच्छा ही न हो कि वह भार सँभाले। प्रवृत्तिवशात् उसने पीछे फिरकर देखा। किसे देखने के लिए ? उस बौनी विद्रूप स्त्री अथवा अपनी कल्पना-बालिका को ? मान लीजिए, मान लीजिए उसकी कल्पना की मुस्लिम बालिका यहाँ दिख जाय तो ? पर पीछे देखते ही, आनन्द भय स एक क्षण भर के लिए स्तब्ध हो गया। यह तो वही है ओफ्फोह • किन्तु ! शायद

वह बौनी स्त्री आनन्द स बीस गज का फासला रखते हुए पीछे चली आ रही थी। आनन्द ने उसे देखा। स्त्री की आँखें हँसती-सी मालूम हुईं। ओठो पर तो निस्सन्देह मुसकान थी।

आनन्द का दिल डूबने लगा, धँसने लगा। पर बौद्धिक साहस ने उसे बल दिया। उसने किताबें उठायी। घर के एक चबूतरे पर उन्हे ठीक तरह से सफेद कपडे मे बाँधा।

वह बौनी स्त्री पास के ही एक मकान मे घुस गयी । पर उसके चेहरे पर वही मुसकान थी।

क्या वह अर्थ भरी मुसकान थी ? अथवा मात्र एक कल्पना ? क्या ?

आनन्द मन-ही-मन बुरी तरह पराजित हो गया था। उसके चेहरे पर गहरी थकान और उदासी की छाया फैल चुकी थी।

अपनी कल्पनाओ और भावो म रत रहनवाला प्राणी आनन्द ढोगी नही था। उसकी अन्त शक्ति ऐसी नही थी कि व्यावहारिक बुद्धि के नियमो का पालन करते हुए वह किसी झूठे आत्मविश्वास के बल पर अपन को यथार्थ म मजबूत समझ ले। आनन्द एक लडका था। व्यावहारिक अर्थ म वह अनुभवी नही था यद्यपि व्यक्ति और व्यक्तित्व के निरीक्षण-आलोचना की शक्ति उसम अधिक थी।

मन की आँखो की किरणे अन्तर्गह्वर को चीरती हुई मन के सौ-सौ परदो के पार हो गयी। वह समझ गया कि उसका आत्मिक धरातल क्या है।

सहानुभूति और सौन्दर्य-वासना के इस मानसिक सघर्ष को आनन्द की मनो वृत्तियो के इतिहास ने तुरन्त एक गुत्थी म परिवर्तित कर दिया।

रास्ता उपेक्षित, दरिद्र भिखारी के चहरे की झुर्रिया सा दयनीय और कष्ट-कठोर श्याम म्लानता लिय हुए पडा था। आनन्द वहाँ आ गया जहाँ एक गली सडक को काटती हुई खँडहरो म से गुजरती नदी की तरफ जाती हुई सडक स मिल रही थी। आनन्द जिस राह पर चल पडा था उस सडक के किनारे बहुत ऊँचाई पर एक उजाड, लम्बी चौडी जमीन पडी हुई थी। वही एक मुसलमान टालवाल ने लकडी की टाल लगा ली थी।

उस टाल के पीछे कुछ नीम के ऊँचे-ऊँचे, सरसराते, हरे सुडौल वृक्ष थे। आनन्द को नीम के वृक्ष हार्दिक मित्र के समान प्रतीत होने। यद्यपि नीम के पत्ते कडुए और निबौरियाँ उपयोगिता रहित-सी उस लगती, तो भी, आम्र-मजरी के गन्धमय वृक्षो का अनादर न करते हुए भी उसको व सरल स्वाभाविक नीम के पेड अपने प्राणो के समीप रहते स लगते।

आज उन नीमो को देख आनन्द का मन प्रसन्न हो गया। उन नीमो के पीछे छोटी-सी खुली भूरी जमीन का पट्टा था जिसका उपयोग गली के समान किया जाता। उस जमीन के पट्टे के पीछे मिट्टी के कुछ बौने छोटे घर खडे थे। लम्बे आँगन के लिए सामने का हिस्सा काट लिया गया था, जिसम **[पाण्डुलिपि का पृष्ठ 33 से 72 तक गायब]**

जब आनन्द ने अपने को चाय क टेबिल के सामन बैठा पाया वह एकदम खुश हो गया। यहाँ आने के पहले तक उसके चुपचाप रहनेवाले उदास अवसन्न मुँह न स्वाधीनता लेना शुरू की।

पुराने पुख्ता मकान का दुमजिला। ठण्डा एकान्त कमरा और उसम चीज थोडी किन्तु करीन से सजी हुई। खुली चौडी खिडकी और सामने का दृश्य। कि चित्र !

हरे भरे मैदान के विस्तार जो बीच बीच म रास्तो की लम्बी भूरी रेखाओ स अकित हो और दूर दूर अन्तरो पर खडे वृक्ष समूहो स भिन्नत्व प्राप्त करते हुए दिखायी दे रहे है। उनक बीच म सडको क किन्ही किनारो पर कही-कही सफेद

पुतों मस्जिद मन्दिर या समाधि के पवित्र आधार उस हरे दृश्य के निस्सीम विस्तार को अधिक मानवीय मैत्रीमय बना दे रहे हैं। और इस मदान के अनन्तर दूर गेरुई इमारतें छोटी नम्र। छोटी रेलगाडी क स्टेशन की इमारता के पास से *ऊपर हवा म तैरता हुआ हलका अस्पष्ट धुआ। और उसके पार ऊँचे ऊँचे एक* दूसरे से घुले मिले वृक्ष शिखरो के लम्बे घने हरे सावले मेघ जिन पर दूरी के नीले पन म धुल हुए और उसके बाद फिर धुधले धुधले कुछ मिल सफदी लिये हुए नील नील मैदानो के छोर जो आसमान की झुका गोल सीमा म खो जाते हैं गुम हो जाते हैं।

हरे मदानो पर नौ बजे की शान्ति फैली हुई है। आनन्द तरल हवा इस खिडकी म स बहती हुई चली आ रही है—ठण्डा मधुर हवा के वृक्षो की गन्ध भरे प्रवाहशील अविरल झोके।

और हरे मैदान पर बिछी एक भूरी मोतिया सडक पर हलके बादल उठाती हुई एक मोटर रेंग जाती है। यह सक्रिय मानव स्पश!

आनन्द खिडकी म से दीखनवाल इस खुले-खुन फैल फले दृश्य विस्तार को देखता रहा।

कमरे के बायी ओर क एक कोन का दरवाजा खडका। और कप बशियो के टकराने की हल्की आवाज और एक धीमे नारी-कण्ठ की वाद्य-स्वर सी हल्की अरे। उसके साथ और दो स्त्रिया कमरे म दाखिल हुइ।

अहा'। कहकर दुबनता की उत्तजना अनुभव करता हुआ आनन्द उठ खडा हुआ और फैली लम्बी मुसकान से अपना हार्दिक आनन्द प्रकट करते हुए फिर टेबिल के पासवाली अपनी जगह पर बैठ गया।

टेबिल पर चाय की ट्र रखती हुई लीला की झुकी आखो की ओर देख आनन्द फुसफुसाया—बसन्त है नही क्या?

लीला मुसकराते धीरे से बोली—बुलाती हूँ अभी।

आनन्द को लगा जैस वह अपनी जगह से उठकर सारे कमरे मे इधर से-उधर चक्कर लगाये।

लीला अन्दर चली गयी।

कमरे म बाँस की कुर्सिया लगी हुई थी। दोनो भद्र महिलाएँ आकर बैठ गयी। उन दोनो के व्यवहार स आनन्द को लगा जैसे वे किसी महत्त्वपूण विषय पर बातचीत करती हुई यहाँ आ गयी है या उन्हे भेज दिया गया है शायद चाय-पान के लिए। वे दोनो महिलाए क्षण भर के लिए आनन्द स बातचीत की आशा करते हुए स्तब्ध बैठी रही। किन्तु आनन्द कमरे की नगी भीतो की ओर देखता हुआ बठा रहा। उस आशा नही थी कि वह गलत समुदाय म फँस जायेगा। वह अपने मित्र बसन्त सुरूठनकर स मिलन आया था। फिर भी उनस बात न करते हुए बातचीत सुनन का अवसर उस भला मालूम हुआ। किन्तु उनकी बातचीत म शरीक होने का बल सामथ्य और साहस उसमें नही था। ऐसी स्त्रियाँ उसे ऊँचे किन्तु अबूझ देश की सम्राज्ञिया लगती। वह उनसे डरता। उत्तर देत वक्त उसका जी धक धक करता। ता भी वह उनक समाज स आकर्षित अवश्य था। मोह घृणा और विराग एक-दूसरे के कन्धे पर हाथ रखे हुए चलते। इक्कीस साल का होत हुए भी अट्ठारह साल के नवयुवक की सामाजिक अनुभव की स्थिति उसने

पायी थी।

लीला कमरे मे वापस नही आयी थी। उसकी कुर्सी टेबिल के उस ओर खाली पडी हुई थी और उसके पास ही बसन्त की कुर्सी थी। टेबिल के इस ओर खिडकी के पास आनन्द बैठा था। आनन्द लीला और बसन्त के शीघ्र आ उपस्थित होने, और उसके ऊपर गिरे हुए इस दबाव को हलका कर डालने की आशा करने लगा।

दोनो स्त्रियाँ पहले चुप बैठी रही। फिर सहसा उनमे से एक जो स्थूल थी हँस दी। और बोलना शुरू किया—'बडी अच्छी बात हुई ! उसको बोलने के लिए वहाँ *आना ही चाहिए था।*' और फिर वह हँसी। उसकी आँखो मे हँसी का पानी आ गया।

आनन्द लगातार खिडकी के बाहर का दृश्य देखता रहा। उसने स्वर से समझ लिया कि दूसरी स्त्री ने उत्तर दिया—'बात यह है कि बोलने की तमीज नही है बेचारे को। कल पहली बार तो वह बोलने के लिए खडा हुआ।'

आनन्द समझ गया। वह उन्हे जानता था पर व्यक्तिगत परिचय न था। कहाँ की बात कर रहे हैं यह भी समझ गया। किसके बारे मे बात चल रही है यह भी। और इस बोध के साथ ही उसके मन मे तिरस्कार की भावना जाग्रत हुई—उस सब समूह के लिए जो इस बौने शहर के उच्चतम बौद्धिक स्तर के शासनकर्ता-से उसे प्रतीत हो रहे थे।

उसकी आँखें खिडकी के बाहर फैले हुए दृश्य-विस्तार को नही, अपने मन के चित्रो मे खो रही थी। कान उनकी बातचीत सुन रहे थे। चाह रहे थे कि वे और बातचीत करती चली जायें। आनन्द को लगा ही नही कि इस प्रकार खिडकी मे से बैठे रहना नवागतो से बातचीत न करना शिष्टता के नियमो के विरुद्ध है।

और वह स्थूल स्त्री बातचीत करने लगी तो करती चली गयी, करती चली गयी, करती चली गयी। उसे समय का, श्रोता की उकताहट का, विषय का ध्यान ही नही था।

अकस्मात् आनन्द उठ खडा हुआ, पैण्ट के अन्दर हाथ डाले। और अकडता हुआ-सा—अपनी झेंप और सामाजिक व्यवहार की दुर्बलता छिपाने के लिए—अन्दर चला गया। वह सब-कुछ जान गया था। और उसका कण्ठ कुण्ठा और विराग से भर-रुँध सा गया था।

उस स्थूल स्त्री की बातचीत चल नही रही थी, पूर की भाँति बही जा रही थी।

सुनहले *तारोवाली जामुनी किनार की बादामी महाराष्ट्रीय साडी* और सफेद पोलका पहने हुए थी। जिस पर सोने की दो धागो को जंजीर लटक रही थी। हलका मोटा रग। सिर और कपाल छोटा, किन्तु ऊँची गाल की हड्डियो से स्थूल स्नायु उसके कमजोर छोटी ठुड्डी तक पहुँचकर मुँह के निचले हिस्से से कपाल और सिर को गौण बनाते से लगते थे, यद्यपि सिर पर की वेणी और माग सघन केशो की ओर सकेत कर रहे थे। उसके होठ मोटे और आगे आये-से लगते। उसका *कपाल तीज के चाँद-जैसे छोटे आकार का लगता। नाक छोटी कुछ फैली-सी,* पर बेडौल नही। ऊपर के होठ पर बालो की हलकी किन्तु स्पष्ट और बारीक रेखा खिची हुई थी। परन्तु चेहरे पर सर्वाधिक अधिकार उसके मोटे हलके गोरे कपोल-स्नायुओ का ही था। माटी और ठिगनी होने पर भी वह इतनी बेडौल नही थी कि

उससे निविड रूप से ऊब अनुभव करने लगे।

फिर भी उसमे एक पुरुषी तत्त्व था। शायद वह उसकी सकोचहीनता मे अथवा नारी मूलभ अथवा नारी विशिष्ट, पुरुषो की प्रतीत-सी होनवाले उस गुण-समुदाय के अभाव मे था। अथवा किसी अन्य मे। किन्तु वह पुरुषी-स्त्री निश्चित नही थी। पुरुष और स्त्री को जोडती हुई रेखा के बीच म स्त्री के ही पास कही तो भी स्थित थी। वैसे ही आधुनिका मुक्त नारी के व्यक्तित्व की सस्कृति उसने पायी थी। परन्तु नारी के प्रकृतिगत गुणो का कुछ लाभ उसे था। उसका स्वर लेकिन अच्छा था। उससे कमज़ोर हलकी गूँज से उसके नारीत्व का निस्सन्देह पता मिल जाता था।

वह इस शहर की अथवा प्रान्त की रहनवाली नही थी (यह शहर एक चौथाई महाराष्ट्रीय और बाकी हिन्दी-उर्दू है), पूना के किसी कालेज से एम ए और बी टी होकर वह इस शहर मे किसी ऊँचे पद पर थी। वह उत्साही अवश्य थी। सभाओं-सम्मेलनो मे हमेशा पिछला उडता पल्ला एक हाथ से सँभालते हुए वह आगे बढ जाती।

उसको पहली बार देखने पर प्रथम प्रभाव अच्छा भी न होता। बुरा भी न होता। [illegible] है और उसे अपनी महत्ता का बोध है, एसा लगता। यद्यपि उसे [illegible] नही पाया। [illegible]त मध्यवर्गीयो के बीच साहित्यिक-राजनैतिक बहस छेडनवाली स्त्री वह अवश्य थी। आनन्द ने उसकी बहस और भाषण सुने थे। उसको न तो उनमे कोई विशेषता मालूम हुई थी और न विशेष चमत्कार, सिवाय उसके बातचीत के धारा-प्रवाह के।

पर वह बहुत जल्दी-जल्दी बोलती, इतनी कि कभी-कभी आनन्द को उसके शब्द समझना मुश्किल होता। वह साहित्य राजनीति आदि विषयो की प्रेमिका अवश्य थी। और समाज-कार्यों मे उसे दिलचस्पी और उसके अनुसार क्रिया-शक्ति भी काफी अधिक थी। पर आनन्द को यह चीज़ बडी उडती सी धरातलगत और छिछली लगती। बुद्धिमत्ता, सूक्ष्मताएँ उसम न मिलती, पर शहर की अन्य शिक्षिता और भद्र महिलाओ से जो साहित्य, गायन और चित्र-कला मे रुचि रखती थी उनसे वह निश्चित रूप से बहुत अच्छी थी।

पर आनन्द की भूखी आत्मा उसे न पसन्द करती। साहित्य मे वह उससे कही बहुत अधिक जानता था। शहर मे जितनी छोटी-मोटी स्थानीय विद्वत्ताएँ थी उतना भी विद्वान शायद आनन्द न होगा जहाँ तक मात्र पुस्तकीय ज्ञान का सम्बन्ध है। पुस्तक-प्रेमी आनन्द स्टीवेंसन का वह वाक्य दुहराता—'Books are poor substitute for life'। तो भी उसका एकमात्र व्यवसाय पठन-लेखन, अध्ययन-अध्यापन था। इक्कीस साल का मिडिल स्कूली मास्टर!

उस स्थूल वकवासी स्त्री के सामने एक नवयुवती और बैठी थी। चुपचाप उसकी बातो को सुनती हुई। कभी-कभी बीच-बीच मे सवाल पूछ लेती, मानो उसके वाक्य-प्रवाहो को विराम, अर्धविराम, अल्पविराम लगा रहे हो।

वह एक उन्नीस साल की लावण्यमयी नवयुवती थी। और, जैसा कि होता है, हमारे शहर के नवयुवको का वह एक प्रधान विषय बन गयी थी। किन्तु उसम शुद्ध शारीरिक यौन-साहसो का अभाव था। उसका स्थान सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक

आकर्षण और उसने आनुषगिक शरीर-भगियो ने ले लिया था। निस्सन्देह अपने मुख के आलोक मे वह दर्शक के मन पर अधिकार कर लेती। यदि वह उसके सामीप्य मे रहन लगे तो उसके सौन्दर्य के वशीभूत होने मे कोई देर नही थी। कई नवयुवक उसके चक्कर मे फँस गये। उसने अपना एक सर्कल बना लिया था। निस्सन्देह वे सब उसके मित्र थे। जिस प्रकार वृत्त के केन्द्र से परिधि एक विशेष अन्तर पर रहते हुए भी उसके आसपास रहती है और आसपास रहते हुए एक विशेष निश्चित अन्तर पर रहती है, उसी प्रकार इस नारी ने उन्हे अपने आसपास खीच रखा था, किन्तु एक निश्चित अन्तर देकर। उस अन्तर की बाधा को तोड उससे अधिक निकट सम्बन्ध स्थापित करनेवाले अभी तक नही सुने गये। परन्तु *उसके पजे से छूटे भी नही।* अपने प्रशसक मित्रो की समीपता उसे बहुत अच्छी लगती। पहल पहल जब वह इस शहर मे आयी थी तब वह काफी भोली थी। परन्तु तीन साल के अनुभव ने उसे सिखला दिया कि वह लोगो के दिल जीत सकती है। उन्हे अपने काबू मे रख सकती है।

उसका चेहरा कुछ गोलाई लिये हुए अण्डाकार था। और अण्डे के ऊपर के स्निग्ध सफेद छिलके के समान ही गोरा और स्वस्थ उसका मुख था। उसकी आँखो मे निस्सन्देह लावण्य था। निकट से गुजरने पर यदि उसकी आँखें दीखें तो *लगता जैसे अँधेरे कुएँ के जल धरातल पर नाचती चाँदी की लहरें हो। उसकी आँखो* का नूर एक तटस्थ नृत्यशील सौन्दर्य था। यदि अधिक नही तो उसस कम भी नहीं।

उसकी चलने की गति निज-सौन्दर्य-सचेत प्रगति थी। किन्तु वह किशोरी के समान चचल भी न रहती। गम्भीर भी नही। शान्त रहती। शान्ति पर अपने लावण्य और चतुराई की कला साधे हुए। वह अपने वस्त्रो के प्रति काफी सावधान रहती, किन्तु सिद्धान्तत अति सुन्दर वस्त्रो को न पहनती। वह कभी अच्छी विद्यार्थिनी नही थी। साहित्य से उसे अनुराग था, किन्तु एक सामाजिक अलकार की दृष्टि से। बातचीत से सभा-सोसाइटियो मे उठने-बैठने से और एक विशेष सास्कृतिक वातावरण के प्रति अपनी आसक्ति के कारण उसने अपने मस्तिष्क मे ज्ञान का ढेर भर रखा था। उसकी बुद्धि एक विचित्र षड्यन्त्रकारी चीज थी। वह सब अधिकार-वासना के केन्द्र के आसपास घूमती। बगैर लोगो को कुछ प्रदान किये, बगैर अपने किसी नुकसान क वह अप्रत्यक्ष अधिकार और शासन चाहती। और बहुत दूर तक इसमे वह सफलता प्राप्त कर चुकी थी।

उसके शरीर की हलचल बहुत नाजुक होती और उसकी मुसकान की शैली एकदम आकर्षणमयी और अर्थ-भरी। भल ही उसमे कोई विशेष अर्थ अथवा अभिप्राय न हो। उसका लावण्य, उसके शरीर की हलचल, उसकी मुसकान और आत्मविश्वासपूर्ण आलोकमयी सलज्ज शान्ति ही उसका व्यक्तित्व था। और वह व्यक्तित्व छिछला, छिछलेपन मे खतरनाक और खतरनाकपना बडे गहरे मनोवैज्ञानिक स्वार्थ से भरा हुआ था। मूर्ख वह बिलकुल नही थी। सावधान, सचेत किन्तु उसको आकर्षण क पानी मे ढँके हुए। व्यावहारिक ज्ञान उसे काफी था। अपनी इच्छाएँ वह खूब अच्छी तरह से जानती थी, उनकी सीमाओ को जानती।

आज उसने अपने गोरे शरीर पर हरी महाराष्ट्रीय साडी पहन रखी थी और आसमानी ब्लाउज। कानो मे मोती के तारक कुछ अलकार पहन रखे थे। सुबह

की ताजगी मे वह उत्फुल्ल गुलावी शान्ति की मूर्त्ति-सी लगती।

कुर्सी पर वह वडे अदव से बैठी थी। दायां हाथ गोद मे रखे हुए थी और बाये हाथ की उँगलियाँ उसके पतले-पतले ओठो से खेल रही थी। आँखो की सावधान शान्ति से यह सूचित कर रही थी कि वह उस स्थूल स्त्री, जिसका नाम सरोजिनी था, की वात वहुत ध्यान से किन्तु प्रभावित न होते हुए सुन रही है। कभी-कभी उसके ओठो पर हलकी व्यग्यभरी मुसकान खेल जाती और तव वह कपोलो पर एकाध लट गिराकर उसके आस-पास वैठी हुई लीला और वसन्त को अपना विनोद और आलोचनापूर्ण हर्ष वतला देती। यह इतना सूक्ष्म और क्षण-प्रत्यक्ष होता कि वसन्त ओठो को थोडा दवाकर रह जाता। और मन ही-मन मुसकरा देता। लीला वहुत भोली थी। किन्तु उसके मन की वारीक बातें वह खूब समझती थी, अपनी नारी-सुलभ बुद्धि से। और उसने कभी उसे पसन्द नही किया। उसका नाम था मीनाक्षी।

वह बिगडे रईस की लडकी थी। पुराने ज़माने मे वडी जागीर रही होगी। आज उसके न मालूम कितने हिस्से हो गये थे। उसके पिता के ज़माने मे भी उस टुकडे पर न मालूम कितने सकट आये। वाद मे पिता की मृत्यु हो गयी। उसकी माँ थी। वह घर चलाती थी और वच्चो को पढाती थी। साधारण सा मकान था, जिसमे जमीन फर्शी भी न थी। न बिजली। नल था। मामूली सजी हुई वैठक थी। और वडे-वडे काँच के टेविल इधर-उधर लगे हुए थे। दादो-परदादो के पुराने पेन्टिंग मिट्टी की भीतो पर धूल खा रहे थे। फिर भी सामन्ती रक्त आधुनिक अधिकारकाक्षी बुद्धि और सुसस्कृत अहता ने उसे छोटे शहर के छोटे वौद्धिक वर्ग मे एक महत्ता, एक स्थान उसे भी दिला दिया था।

अब तक वे मराठी साहित्य परिपद के 'गडकरी दिन' की मीटिंग की बात कर रही थी। सवसे अधिक दिलचस्प उन्हे एक व्यक्ति मालूम हुआ था जो सलेटी रग का पैण्ट पहने और एक मैला सफेद कुर्ता ऊपर डाटे सभापति के पास चला आया और उनसे चन्द मिनिट बातें करने के बाद बोलने के लिए खडा हो गया।

यह एक भद्दी और विचित्र घटना थी क्योकि चेहरे से वह सभ्य नही मालूम होता था। वहाँ सव लोग, स्त्रियाँ और पुरुष, व्याख्यान सुनने के लिए तो इकट्ठे हुए थे, किन्तु वह एक सुसस्कृत समाज था। वहाँ एक विशेष ढग से उठना, वोलना, चलना आवश्यक था। नये साहित्यिक लडके जो रोज अपनी धोती और शर्ट को धोकर पहनते थे—गरीव थे—वे भी हँसने लगे। वे सव भद्र पुरुष बनने की धीरे-धीरे तैयारी कर रहे थे। उसको देख उन्हे तक हँसी आ गयी थी। दूसरे उस व्यक्ति को किसी ने उस शहर मे कभी नही देखा था। ऐसा लगता था जैसे राह पर चलते किसी शहरी गँवार को अपनी झक् पूरी करने की इच्छा हो गयी हो।

आनन्द दायी हाथ की कुर्सियो की तीसरी पक्ति के बीच मे कही वैठा था। उसे भी हँसी आयी। पर वह प्रसन्न हो उठा। क्यो?

वायी हाथ की कुर्सियो पर लडकियाँ, सभ्य महिलाएँ और स्थानीय हेडमिस्ट्रेस और अन्य शिक्षिकाएँ अपने सर्वोत्कृष्ट पोशाको मे बैठी हुई थी। 'गडकरी दिन' के निमित्त होनेवाली सभा मे उनका सामाजिक भाव खिल उठता। झलमलाते कपडे पहने चमकती लडकियाँ इधर-से-उधर डोला करती जिन्हे हाथ से शर्ट और

धोती धोकर फिर उन्हे पहन सभा मे जा पहुँचनेवाले दृष्टि-तस्कर लडके देखते रहते।

और आखिरकार थी यह मीटिंग काहे के लिए! गडकरी के नाम पर वक्तृता शैली का अभ्यास करनेवाले बेकार नवयुवकों या उनकी पीठ थपथपानेवाले उपदेशक गुरुजनों की अपनी वामी विद्वत्ता के प्रदर्शन का कोरा सूना मौका। और सबसे खराब बात यह थी कि कुर्सियों का क्रम सामाजिक महत्ता के क्रम के अनुसार बैठाया गया था।

सास्कृतिक दृष्टि से बेईमान बेवकूफ और निष्क्रिय निठल्लो के सामाजिक नेतृत्व में 'गडकरी दिन' मनाया जाता था। यद्यपि यह सच है कि उसके ग़रीब कार्यकर्त्ता नवयुवकगण उस शहर म थोडी-बहुत साहित्यिक चेतना का अस्तित्व बनाये हुए थे। परन्तु इस प्रकार की सभाओ म महत्त्वपूर्ण कौन था? वे नही।

दायी ओर की तीसरी पक्ति के बीच म कही गुमा हुआ आनन्द ग्लानि और विराग स भर उठता। कार्यकर्त्तागण उत्फुल्ल दीखते। सन्तोप से कहते, काफी अच्छी उपस्थिति है। उसे इन वाक्यो से घृणा हो उठती।

ज्योही उस 'गॅवार' का भाषण शुरू हुआ, लोगो का ध्यान उचटता-सा दिखायी दिया, यद्यपि यह सच है कि उस सभा म कई ऐस थे जिन्होने उसका भाषण सुनना मन के मन ही स्वीकार कर लिया। कई सभ्य जन एक ओर मुँह कर हँसते से बारीक

[पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ ग़ायब] · विश्वास प्रदायक किन्तु चिढा हुआ और उद्दण्ड-सा लगने लगा। पिछले जितने छोटे-बडे वक्ता थे उनके कुछ विचारो को स्वीकार करते हुए अन्य को बहुत बुरी तरह से कुचलते हुए *लापरवाह होकर* वह, *किसी* राजसी अरबी घोडे की भाँति, बहुत बढा जा रहा था।

यह भयानक था। यह बहुत अधिक हो गया था। किसी भी चीज की अति अच्छी नही होती। मध्यवर्गीय व्यावहारिक मध्यम मार्ग सबसे अच्छा। बीसो लोगो के मन मे उसके प्रति घोर विद्रोह हो उठा। पूर्व वक्ताओ को मुँह चिढाते, मुँह बिचकाते, नाराज करते जान की आवश्यकता क्या थी? पर सबस खराब बात उसमे यह थी कि उसका भाषण बहुत ही अच्छा था। उसका स्वर का लहजा, उसकी भावधारा के साथ साथ यात्रा करनेवाली कल्पना मूर्त्तियो का सप्रवाह क्रम। सर्वाधिक नीचता उसकी यही थी कि उसकी बातें अत्यन्त प्रभावकारी हो गयी। सूक्ष्मतम बातो को कल्पना मूर्त्तियो की सहायता से जिस प्रकार मूर्त्त कर उसने लोगो के सामने रखा था वह अद्भुत था।

आनन्द उसका भाषण समाप्त होते ही बुदबुदाया—'Boldness has genius, thus spoke Goethe' **[पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ गायब]**

···दरवाजे के पास आया। और ग़ायब हो गया। उसे बुखार था।

सभापति का भाषण सुनने के लिए कोई तैयार नही था। लोग उठ खडे हुए। श्रोतागण कई छोटे-छोटे समूहो मे बँट गये। कही कही क्रोध के ऊँचे स्वर सुनायी देने लगे। बहस छिड गयी। हाल गूँज उठा। पूरे स्थान मे बिजली की लहरें-सी फैलने लगी। महिलाएँ भाषणो मे उकता-उकता जाती थी। वे सबसे ज्यादा खुश हुईं। लडकियो को बडा मजा आया। वे लोगो की बातें सुनने के लिए साथ आये हुए पुरुषो के पास जाकर खडी हो गयी। हाथ से शर्ट और धोती रोज धोकर जल्दी-से जल्दी भद्र जनो के शिष्ट समाज मे शामिल होने के लिए मन-के-मन ही छट-

था। वह उन्हें मिलता न था।

बडो के कई गुट बन गये थे। जोर-जोर से बहस चल रही थी। कई सभापति को दोष दे रहे थे। बिना समझे-बूझे किसी को बोलने का अवसर देना महान मूर्खता थी। उसने ऐसा क्यो किया ?

सरोजिनी, मीनाक्षी आदि का गुट बिखर गया था। वे भिन्न व्यक्तियो के पास खडी थी। जिनसे जिसे सहानुभूति हो।

एक महाराष्ट्रीय पगडी लगाये किन्तु बाकायदा सूट पहने हुए पैंतालीस की आयु के पोपले मुँहवाले एक साँवले प्रोफेसर के हाथ मे छडी थी, जिसे वे भावोत्तेजना मे इस प्रकार घुमाते जा रहे थे जैसे पट्टा खेल रहा हो।

Splendid-Excelent—(?) His speech was extremely ('एक्स्ट्री' पर बेहद जोर देते हुए) good फिर मराठी मे बोलते हुए आगे बढे जिसका साराश यह था कि हरेक को बोलने का अधिकार है। क्यो आखिर कोई तेज आलोचना न करे। What he said was right ('रा' [पर] बहुत जोर देते हुए) But I am afraid, He is an evil genius Do you agree? कहते हीं उन्होंने अपने आसपास खडे लोगो की आँखो मे आँखें चुभा दी। लोगो ने समर्थन मे उनकी उदार बुद्धि की प्रशसा करते हुए अपनी गर्दनें हिला दी। फिर एक बार प्रोफेसर ने अपने चारो ओर देख लिया कि उनके मन पर ठीक प्रभाव हुआ या नही। प्रसन्न होकर वे सदाशयता का लम्बा इजहार करने लगे।

उनके पास ही एक गुट मे सरोजिनी कमर कसकर बहस करती जा रही थी। बिलकुल पहला प्रभाव उसके मन पर अच्छा होते हुए भी हर्षकारी नही हुआ था। किन्तु अपने आसपास के समुदाय का विरोधी वातावरण देखकर उसे उस असभ्य का पक्ष लेने की इच्छा हुई थी, बिलकुल प्रवृत्तिवश। पहले उसने लोगों के विरोधी स्वर से सन्तुष्ट हो जाने और उसके अनुसार गर्दन हिला देने का क्रम रक्खा। किन्तु अकस्मात् बग़ैर अपने जाने बूझे वह उसका पक्ष समर्थन करने लगी। यहाँ तक कि उसे आनन्द आने लगा। उसकी शीघ्रगामी भाषा अत्यधिक जोरदार होती चली गयी। क्या सोचकर उसने बात आरम्भ की थी और कहाँ वह जाकर रुकी उसका उसी को आश्चर्य हुआ।

फिर भी वह प्रसन्न हो उठी। दूसरो को पीटकर पराजित करने के लिए उसे एक बडी अच्छी लम्बी-मोटी लाठी मिल गयी थी।

और उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसके आसपास नये साहित्यिक

छोकडो का अच्छा-खासा जमाव हो गया था। वह खुश थी। अत्यधिक प्रसन्न। और उसी दिन स वह लोकप्रिय हो गयी। एक पहलवान की भाँति अपना (जनाना) हाथ नचाते हुए वह कइयो स बौद्धिक मोर्चा न रही थी। उस लगा जस वह नता होन जा रही ह।

इधर प्राफसर साहब के गुट म स एक एक कर भगतगण खिसकन लग। बिल्कुल ही अकेला रह जाने के डर स अपनी आत्मविश्वस्त गम्भीर चाल स बायें हाथ स छडी घुमाते सरोजिनी के पास पहुँच गय। और उन्होन अपना भी वाक्य जोड दिया। yes yes you are right Quite so Quite so सरोजिनी उनको दखते ही पीछे हट गयी। आदर स उनकी ओर देख श्रद्धा की हँसी हँस दी। और प्रोफसर साहब बोलन लग। *But He is an evil genius you*
[पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ गायब]

रहा था। और उस लगा जैसे उस व्यक्तित्व क द्वारा उस जीवन म कुछ नया नतृत्व मिल सकेगा जैसी कि उसकी गहरी आवश्यकता है। किन्तु फिर भी उसे आशका थी उस व्यक्ति का मिजाज ज्यादा तेज और व्यग्य बहुत गहरा और चुटीला था। उसस डरन की आवश्यकता आनन्द क सामन थी। फिर भी उसे अत्यधिक हर्ष था उस लगा जैसे उसम नयी ताकत आ गयी हो।

लोग चल पड। सरोजिना मस्त हथिनी की भाँति चली जा रही थी भौंहो पर का पसीना पोछते हुए। **[पाण्डुलिपि क दो पृष्ठ गायब]**

हँस दी और उसी आवेग म बोली—

He is a poet—a poet in embrayo [वह कवि है गर्भस्थ कवि]

इस विनोद का मजा लूटने का स्वाग रचते हुए बसन्त ने अपने दृढ मासल गोरे कपोल स्नायुओ को जरा फैला भर दिया किन्तु यह बात लीला क हृदय म चुभ गयी।

बसन्त न अपनी प्याली न छुई। वह तुरन्त उठ खडा हुआ। दरवाज के पर्दे को एक ओर फेंकते हुए वह अन्दर घुस गया।

मीनाक्षी लीला और सरोजिनी न चाय पीना शुरू कर दिया था।

जीने मे आनन्द ऊपर चढते हुए बसन्त को मिला। एक-दूसरे के कन्धे पर हाथ रखते हुए वे आगे बढ।

वहाँ से भाग क्यो आय बसन्त ने पूछा।

आनन्द ने कोई उत्तर न दिया। वह जानता था कि बसन्त इसका कारण पहचानता है। आनन्द के आते ही लीला का मुह प्रफुल्ल हो गया किन्तु वह चाय पीती ही रही उसके सामने कप न सरकाया। किन्तु मुह पर लगाये कप के ऊपर से वह अपनी आँखें आनन्द के चेहरे पर और उसके व्यवहार पर लगाये हुए थी।

चाय की प्याली उठाकर आनन्द एक सपाटे म पूरी चाय पी गया। और प्याली नीच रख दी। लीला को चिन्ता हो उठी कि कहीं वह फिर से किसी ताने का शिकार न हो।

स्वय ही केटली उठाकर आनन्द ने अपने कप मे चाय डाल ली। बसन्त ने जान-बूझकर सरोजिनी के ताने का जवाब देने के लिए आनन्द स पूछा कविताएँ

भेज दी ?" आनन्द को यह प्रश्न अच्छा न लगा। आनन्द ने बहुत धीरे, धीमे स्वर में कहा—"आ भी गयी, पहले पेज पर आ गयी हैं।"

वसन्त ने अपना हर्ष खुले तौर पर लोगों का ध्यान आकर्षित करते हुए प्रकट किया।

आनन्द को यह और भी बुरा लगा। किन लोगों के बीच आखिर उसकी काव्य-शक्ति का प्रदर्शन किया जा रहा है ? क्या ये तथाकथित काव्य-मर्मज्ञ काव्य समझ भी पाते हैं ?

आनन्द का चेहरा धीरे-धीरे गम्भीर होता जा रहा था। किसी अधिक भयानक बात की उसे आशंका हो रही थी।

लीला चोरी-चोरी आनन्द के सारे मनोविकारों का अध्ययन कर रही थी। यद्यपि उनके सारे मूल स्रोतों का उसे ठीक-ठीक पता न लग पाता था।

वसन्त प्रफुल्लित था। उसका हर्षोद्गार सरोजिनी और मीनाक्षी का ध्यान खींचने के लिए काफी था। मीनाक्षी सरोजिनी की बातों से उकता रही थी। चाय की आखिरी घूँट पीकर अपने सफेद रूमाल से होंठों को पोंछते हुए, साड़ी का पल्ला ठीक कर और उसका नीचे का भाग खींच पैरों को ढकते हुए उसने सरोजिनी की बातों में होनेवाली उकताहट से बचने के लिए होंठों पर कृत्रिम हल्की मुसकराहट ला आनन्द से कहा—"सुनाइए न अपनी कविता आज, एक बार भी आपने कृपा नहीं की।"

और उसका चाँद-सा मुखड़ा आनन्द के सामने हो लिया। उसकी आँखों के सामने चकाचौंध छा गयी और उसे उसी पुराने स्नायु दौर्बल्य, और हृदय में आवेग के गहरे झटके का अनुभव हुआ। बड़े गहरे और तीव्र प्रयत्न से उसने अपने को सँभाला। उसका चेहरा लाल-सा हो रहा था। मुँह खोलने का उसने प्रयत्न किया तो ऐसा लगा मानो जीभ तालू में चिपक गयी हो। यह सब एक क्षण के सौवें हिस्से में हो गया।

"मुझे तो कोई कविता याद नहीं रहती अपनी, न मैं उन्हें गा ही पाता हूँ।"

उत्तर बिलकुल धीमा, मानो खाह से निकला हो। और फिर उसने मीनाक्षी के गोल चन्द्र से उत्फुल्ल चेहरे की ओर देखा। उसकी आँखों में फिर चकाचौंध छा गयी।

और एकदम मीनाक्षी के प्रति उसे घृणा का आवेग उठा। वही तो दुष्ट प्रपीडक प्रश्न की कर्त्री है। इस समाज में उसकी फजीहत कराना चाहती है क्या ?

उसने अपनी आँखें लीला और वसन्त से भी चुरायीं।

बातचीत में मीनाक्षी के द्वारा बीच में ही डाली गयी इस बाधा से अप्रसन्न होकर सरोजिनी ने मीनाक्षी के प्रिय काव्य-गायक कवि के प्रति व्यंग्य करते हुए कहा—" 'उन्मुक्त' कवि थोड़े ही हैं कि अपनी कविता हमेशा ज़बान पर रखते हों ?"

व्यंग्य स्पष्ट था, पर मीनाक्षी तिलमिलायी नहीं। सद्भाव और सदाशयता में हँस दी। और फिर उसी स्वर में बोली—"*आखिर कविता पाठकों-श्रोताओं के* लिए होती है। वह है ही इसलिए कि पढ़ी या सुनायी जाय। विशेषकर जब-जब उत्सुक जन पास बैठे हों तो सुनायी ही जानी चाहिए (यहाँ वह हँसी) बशर्ते कि याद हो, of course (निश्चित), या किसी और को याद हो।"

मीनाक्षी अपनी समझदारी का और अधिक भरोसा न करते हुए चुप हो रही। और लीला की ओर देखा। वह स्तब्ध बैठी थी। उसने किसी भाव को प्रदर्शित नहीं होने दिया।

बातचीत चलाने के अवसर मिलने की अपेक्षा से सरोजिनी सन्तुष्ट-सी दिखायी दी।

किन्तु सब लोगों की अपेक्षा भग करते हुए आनन्द ने वसन्त के सामने नदी पर नहान जान का प्रस्ताव रखा। आनन्द केवल फुसफुसाया था। किन्तु बात सब लोगों पर तुरन्त प्रकट हो गयी। सरोजिनी और मीनाक्षी अभी आयी ही थी। वसन्त से उनकी मुख्य बातें हो भी न पायी थी। अत उसके प्रस्ताव में कोई खास ज़ोर न रह पाया। किन्तु मीनाक्षी सरोजिनी की बातचीत से घबरा रही थी। इसलिए उसने प्रस्ताव के बारे मे पसन्दगी-नापसन्दगी नही बतलायी।

इतने मे जीने पर धप धप करते हुए वही नवयुवक, जिसने रास्ते मे आनन्द को बुलाया, पर घर मे नही आने दिया था, ऊपर चढा। सब लोगों का ध्यान उस ओर चला गया।

उसने कमरे मे प्रवेश किया। उसके बाल बिखरे हुए थे। उसकी शान्त आँखें अधिक ठण्डी सी लगती थी। उसके साँवले चेहरे पर दाहिने कपोल के नीचे के हिस्से मे मासपेशियाँ जबडे ही हड्डी की तरफ हिल जाती-सी लगती।

सब लोग उसकी तरफ कुतूहल से देखने लगे थे।

वसन्त ने उसे बैठने को कहा। लीला न चाय की केटली खोलकर देखी। चाय थी। उसने एक कप सरकाया।

उसने भारी आवाज़ मे कहा, "मुझे चाय नही चाहिए, पिताजी से मिलना है।" और खाँस करके बैठ गया।

वसन्त को कुछ पूछन का साहस न हुआ। आनन्द ने उसे देखा और कुछ न बोला। लीला उस अन्दर ले गयी पिताजी के पास।

कमरे म अकस्मात् मौन छा गया था। सिर्फ शरीर की हलचल की आवाज़ सुनायी देती। और खुली खिडकी मे से उड आती हुई चिडियों की भोली चहचहाहट।

बाहर गरम धूप फैल चुकने के बाद भी खिडकी मे से ठण्डी हवा के झोके आ रहे थे। आनन्द के और मीनाक्षी के बाल उसमे हिल-हिल जाते। वसन्त भी स्तब्ध बैठा था।

सबसे प्रथम मीनाक्षी उठी। 'चल पडना चाहिए', और हलकी बगासी दी मुँह पर हाथ रख, "किन्तु आपसे (वसन्त के प्रति इशारा करते हुए) बात हो न सकी।"

वसन्त स्वय समय बरबाद न करना चाहता था। 'फिर कभी', उसने कहा, 'आइए न आप लोग कभी उस ओर' कहकर मीनाक्षी ने आनन्द की तरफ देखा।

आनन्द ने उसके सौन्दर्य की ओर देखते और फिर सकुचाते हुए सक्षिप्त उत्तर दिया 'अवश्य।'

और उसके हृदय मे बुरी तरह से आघात हुआ जैस किसी ने खजर मार दिया हो। मीनाक्षी दुस्सह रूप स सुन्दर थी। *अथवा कम-से-कम उसे लगी।*

सी खिडकी के पास आनन्द फिर जा बैठा। बाहर तेज धूप छा रही थी। हवा जगल ी गन्ध भर-भर ला रही थी। आनन्द ने खिडकी के बाहर मुँह डाल लिया। सकी आँखो के सामने मीनाक्षी का हँसता, गोल चाँद-सा मुखडा तैरने लगा। उसे सवा चेहरा बहुत स्निग्ध, अत्यन्त कोमल मालूम हुआ, जैसे कोमल-सफेद पीले ूलो का सुगन्धित दल हो। उसकी उल्लसित खिली पखुरियाँ जैसे उसके मुँह को पर्श करने लगी। मानो उसकी गन्ध के मेघ उसकी नाक मे घुसने लगे।

खिडकी के बाहर दीखनेवाले तज-सुनहले दृश्य चित्र की भूमिका म मीनाक्षी ा मुखाकार—बाग मे टहलती किसी अप्रत्यक्ष सौन्दर्यमूर्ति का, परन्तु वह मानवी ो होनी चाहिए—की लावण्य प्रभा लेकर अवतरित हुआ।

लीला कमरे मे आयी। जल्दी जल्दी कप बाशियाँ समटने लगी। आवाज़ हुई। ानन्द की हलकी खुमारी सी मोह-निद्रा टूटी। और मुडकर उसने लीला की ओर खा—

कुशलतापूर्वक जल्दी जल्दी काम करने के कारण उसका हरा पल्ला दूसरे कन्धे र ही रह गया था, दूसरे कन्धे से खिसक गया था। उसका किशोर कन्धा और भरते से उरोज सफेद पोलके के दूधिया हिमश्वेत आवरण मे सुन्दर पवित्र आत्मीय ौर घरेलू जैसे लगते।

उसका चेहरा किंचित लम्बा नीम-गोरा और नाक मीनाक्षी और सरोजिनी से धिक सुन्दर थी, वह सीधी एकदम तीव्र और इस समय किसी भावावेग के कारण सका नाजुक अग्रभाग लाल हो रहा था।

आनन्द ने उसे देखा, देखता ही रहा। उसका मन आज पहली बार लीला के प का अध्ययन कर रहा था। वह अपनी कल्पना म ही दोनो की तुलना करने गा।

लीला को वह छुटपन से देखता आ रहा था। अपनी साइकिल पर आगे बैठाल-र उसने उसे घुमाया था। उसके उन्नत हात शारीरिक विकास पर भी कभी-कभी उसकी दृष्टि चली गयी थी। किन्तु वह इतनी समीप रही कि उसके प्रति किसी ोह का उदय न हो पाया। यौवन म प्रेम के पहले मोह की आवश्यकता होती ै।

फिर भी आज, अभी उसका भाव-गम्भीर आत्मीय चेहरा लाल-सा होकर एक विचित्र प्रकार से आकर्षक हो रहा था। उसके हलके नरम बाल खिडकी म से आनेवाली हवा-से फुर-फुर उड रहे थे।

वह उठा। और टेबिल के पास गया।

उसको पास खडा होते देख, लीला के व्यस्त हाथ थम गये। बडी-बडी आँखों म किंचित विस्मय झलका और आनन्द की आँखो म सहानुभूति देख उसने अपनी आँखें स्थिर कर दी।

वह काँप उठी। और बुरी तरह से चुपचाप रो पडी। दायी ओर कमर के ऊपर का शरीर झुक गया, जैसे वह अपना भार सँभाल न पा रहा हो।

आनन्द सह न सका। उसने उसका हाथ पकड लिया। और साडी के पल्ले से ढँके कन्धे को टेबिल के ऊपर से सहलाते हुए बोला—"क्या हुआ लीला ?"

उसका हृदय अपनी कोमलता प्रकट कर रहा था।

"You know she is dead"

आनन्द को जैसे नश्तर चुभ गया हो। मराठी मे बोला—
कौन बोलोगी भी ?
उसने आँख के आँसू पोछते हुए कहा—
मा लिनी।
आनन्द ने अपना हाथ खीच लिया। एक मिनिट के लिए स्तब्ध हो गया। वहाँ से हटा और खिडकी के पास की कुर्सी पर जाकर बैठ गया। और बाहर एकटक देखने लगा। लीला उसे यह सन्देश सुनाने के लिए ही यहाँ तक आयी थी।
लीला जाने लगी। आन द ने भर्राये स्वर म कहा—
लीला ।
हाथ मे ट्र लिये वह वैसे ही उसके पास आयी।
एक बात पूछू बुरा तो न मानोगी ? '
बोलो।
मैं बहुत उदास और थका सा लगता हूँ क्या ?
लीला कुछ न बोली। सिफ उसकी ओर देखा।
एक गरम—बहुत गरम चाय।
और उसने अत्यन्त प्रायना भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा।
सारे दु ख के बावजूद लीला के पतल होठो पर हँसी खेल गयी। उस उस पर उत्कट कृपा करने की मीठी इच्छा हुई। आन द का चेहरा एकदम पीला पड गया था।
चाय केटली म है पर ठण्डी। गरम की जा सकती है। '
आन द की आँखो मे कृतज्ञता झलक उठी। बोला— बसन्त को भेज देना जरा।
लीला अपनी भाव गम्भीर गति स आगे बढ गयी।
उसकी वह चाल देख आनन्द को क्षण भर के लिए फिर उसी तुलना का खयाल हो आया। और अपने पर चिढ उठा।
एक मिनिट बाद बसन्त हाजिर हुआ। एक पूरा व्यक्तित्वाकार उसके सामने था। गोरा ऊँचा पूरा शरीर। पाँच फीट दस इच। भरा हुआ हँसमुख चेहरा और अपनी बहन लीला की वही ऊची नाक। सिफ ठुड्डी म अन्तर था। लीला की ठुड्डी छोटी और इतनी चौडी न थी। गाल थी। उसक मुख पर उत्फुल्लता रहती किन्तु उसके चेहरे का प्रधान गुण बुद्धिमत्ता क साथ-साथ स्थिरता थी। और थी एक विशेष प्रकार की गम्भीरता जिसे देख देख आन द को लगता कि वह जीवनदर्शी दाशनिक है। उसके व्यक्तित्व से खिलवाड नही की जा सकती थी। यद्यपि वह बहुत मजाक-पस द और सरल हृदय था कई लोग उसस डरते यहाँ तक कि लीला स्वय उससे झिझकती। वह व्यक्ति भयानक सकल्प शक्ति और उतने ही तीव्र भावावेश का स्वामी था। किन्तु उसके शिष्ट मनोहर बर्ताव और स्थिर शान्त बुद्धि और समझदारी से कोई भी उसके सच्चे स्वभाव को न जान पाता। आनन्द ही था कि उसे अपने मित्र के कुछ खास आत्मप्रकटीकरण के नग्न क्षणो म उसके अन्तर्हित सच्चे निजत्व की शक्तियो की और उसके अन्य जीवन प्रसगो की झाँकी मिल गयी।
आते ही बसन्त ने हँसते हुए कहा क्या तुम भी उदास हो रहे हो यह तो

दुनिया है।"

"Don't misunderstand me [ग़लत न समझो]। मुझे निस्सन्देह उसके न रहने से दुःख हो रहा है। पर सिर्फ़ यही नहीं है।···उस ग़रीब को देखो, उसके पिता और भाइयों के पास इतनी आर्थिक शक्ति भी न होगी कि अपनी बेटी का इलाज करा सकें · " आनन्द ने यह कहकर वसन्त की ओर देखा। और कहता गया, "कई महीने हुए जब मैं उनके यहाँ गया था। उसके अर्धवृद्ध दुबले पिता लेटे हुए थे और वह खड़ी होकर उनके पैर दबा रही थी। उसका परकर* नीचे पाँवों तक भी नहीं आ रहा था। मैं उसके दुबले पैर देख रहा था। नीले रंग का हलका ब्लाउज़ पहने हुए थी। तेरह साल की होते हुए भी ऐसे लगती जैसे पन्द्रह की हो। · "

इतने में लीला चाय ले आयी।

वसन्त ने लीला की ओर देखा और मज़ाक से कहा—

"अच्छा, ये सेवा कब से होने लगी ?"

"यानी ?" लीला ने उत्तर दिया।

"यानी यह कि मालिनी के प्रति और सारे परिवार के प्रति उसकी और मेरी दोनों की अत्यधिक सहानुभूति है—यह तो रोने लगी थी। मुझे समझाना पड़ा।" आनन्द ने उत्तर दिया।

वसन्त को आश्चर्य हुआ। लीला मालिनी के यहाँ कभी-कभी जाया करती थी। और मालिनी भी कभी-कभी इधर आती थी। किन्तु उसके लिए इतना ! ! स्त्रियाँ दिल की कमज़ोर ही होती हैं। मन के मन में यह कहकर उसने बात वहीं छोड़ देने की कोशिश की। पर ज़बान पर आ ही गयी।

"आनन्द, तुम बच्चे हो।"

"क्या मानी ? छोटी-छोटी बातों से अपने मन को दुखाते रहना ठीक नहीं।"

लीला को यह सूत्रवाक्य सा अर्थ [गर्भित] लगा। वह चली गयी। चाय पीते-पीते आनन्द ने कहा, "सचमुच बड़ी ग़रीब थी।"

"डरो नहीं, उसका · ।" [पाण्डुलिपि का एक पृष्ठ गायब] असमाप्त

[रचनाकाल 1948]

* महाराष्ट्रीय लड़कियों का छोटा घाघरा, या स्कर्ट।

अधूरी कहानी : चार

[सम्भवत किसी लम्बी कहानी के दो खण्ड। दोनों अधूरे। बीच-बीच में से भी खण्डित। पर दोनों में दो विशिष्ट रोचक शब्द चित्र—स.]

[1]

दो व्यक्ति, दुपहर के दो बजे, एक टूटे हुए पुल के नीचे, झरने की पतली धारा के पास, झुरमुटो की आड मे बैठे हुए थे। उनमे से एक सिगरेट पी रहा था, और दूसरा घुटने पर रखी नोटबुक के वल एक सफेद कागज पर कुछ नोट कर रहा था।

स्थानीय पुरातत्त्व विभाग के अनुसार, अकबर का बनाया हुआ यह पुल है, जिस पर से होकर एक थोडा रास्ता जाता है। रास्ता कहाँ और किस ओर जाता है, इसकी जानकारी हासिल करने की कोशिश मैंने नही की। आँखे सिर्फ यही पहचान पायी कि जो भूमि रास्ता कही जाती है वहाँ कँटीली, जगली बेर और करौंदी की झाडियो, कुन्द और जगली कन्हेर के झुरमुट और ऊँची हरी घास की आबादी कायम है। रास्ते को काटती हुई, पुल के परले छोर पर झाडियो और झुरमुटो की जवान घनी कतारें इस बात को सूचित करती हैं कि जगह पुरानी है, वीरान है, पर सौन्दर्य और कमनीयता म हमेशा नयी और नवेली। दर्शक के मन मे सोयी रोमैण्टिक कल्पनाशील इच्छाओ को जगाती हुई, वे अछूती झाडियाँ, वे कुन्द और कन्हेर के फूल, हृदय मे एक विशेष प्रकार का हलकापन, निर्मलता का सचार करते हैं। मनुष्य प्राकृतिक हो उठता है।

पुल बिलकुल बीच मे से टूट गया है। पुल का भार वहन करनेवाली एक विशाल मेहराब या कमानी इस छोर पर बाकी है, और उसी की दूसरी बहन—पुल के दूसरे सिरे के नीचे। शेष सब छिन्न-भिन्न होकर विशाल खण्डो मे नीचे गिर पडी हैं। झरने की पतली धारा ने उन्ह भी काटकर इधर-उधर कर दिया है।

ऊँचा पुल है। पुराना, वीरान, खण्डित, किन्तु भव्य तथा आदरणीय। वह उस विशाल क्षेत्र का हिस्सा है जिसे किसी मुगल गवर्नर ने आबाद किया था। जमाना था कि वहाँ एक बार औरगजेब आकर ठहरा था। उस स्थान म अकबर की स्मृति की रक्षा करनेवाले अनेक चिह्न मौजूद हैं।

टूटे पुल के नीचे बैठे हुए व्यक्तियो की आवाज ऊपर तक न आ पाती थी, न वे दिखायी ही देते थे ऊपर से। परले छोर पर जाकर एक विशेष कोण पर स्थित होकर ही उन्हें देखा जा सकता था।

जो व्यक्ति सिगरेट पी रहा था, उसके एक हाथ मे पानी म उगनेवाली लम्बी हरी घास का एक टुकडा था, जिसे वह (किसी मानसिक सम्बन्ध से) ताल-बद्ध रूप मे जमीन पर पीटता जा रहा था। और लिखाता जा रहा था

> "कारी बदरिया बहन हमारी
> कौंधा बीरन लगे हमार।
> आज बरस जा मेरी कनवज मे
> कन्ता एक···

और अपनी साँस में ही बड़ी श्रद्धा से 'वाह ! वाह !' कह जाता। वह, 'वाह-वाह' इतनी हलकी, इतनी धीमी और इतनी गहन थी कि वह काव्य के कर्ता के प्रति अथवा लिखानेवाले मित्र के प्रति न होकर, मात्र उस भाव के प्रति थी जो काव्य-पंक्ति से उठकर उसके मस्तक में विराजमान हो जाता था।

लिखने की तल्लीनता में से जागकर उसने पूछा, "किसने लिखी है ? आल्हा में से है ?"

दूसरे ने सोचकर जवाब दिया, "मालूम नहीं, भई। हो सकता है, आल्हा में से हो। पर मैंने इसे हिन्दी की किसी काव्य-पुस्तक में उद्धरण के रूप में देखा था, उसकी प्रस्तावना में।"

"आपको कविताएँ खूब याद रह जाती हैं, हमें एक भी नहीं रहती," उसने श्रद्धापूर्ण विस्मय से अपने साथी की ओर प्रशंसापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा, "काफ़ी लिखा दी आपने आज।"

युवक के हृदय में सन्तोष व्याप रहा था, एक सुनहला मधुर सन्तोष।

उसके साथी ने मुसकराते हुए जवाब दिया, "जो चीज अच्छी लगती है, याद रह जाती है।..."

दुर्भाग्य से कविताओं को नोट करनेवाला युवक कवि था, यानी अपने को पहले कवि और लेखक मानता, बाद में और कुछ। किन्तु उसका साथी साहित्यिक नहीं था। कई बार बातचीत के सिलसिले में वह यह कह भी चुका था कि कुछ अपवादों को छोड़कर साधारणतया सब साहित्यिक 'निकम्मे' होते हैं। 'निकम्मे', इस शब्द में न मालूम कितने गूढ़ार्थ भरे हुए थे। अपने को धन्य मानता वह, यह कहते हुए, "भाई, मैं साहित्यिक नहीं हूँ। मजदूर हूँ, संगतराश, पत्थरफोड़।"

यह कहते समय साथी के चेहरे पर एक हलकी-सी हँसी दिखायी देती। एक चालबाज मुसकान के रूप में ही वह युवक के सामने आती।

'जो चीज अच्छी लगती है, याद रह जाती है,' साथी के इस कथन के भीतर प्रकट हुई मुसकान की रेखा का युवक कवि ने फिर वही अर्थ लगाया। उसने सोचा, इसमें एक प्रच्छन्न डींग है, इतनी गुप्त कि उस पर क्रोध नहीं किया जा सकता। उसके प्रति एक व्यंग्य है। युवक के मन में इस सम्बन्ध में अपने साथी के प्रति जो दुर्भावनाएँ छिपी थीं, उनकी तीव्रता अपनी मानी हुई हीनता और बन्धुत्व (वास्तव में अपने साथी के प्रति उसके हृदय में असीम श्रद्धा थी, जो बिना आत्म-लघुत्व के भाव के रह नहीं सकती थी) के कारण और भी बढ़कर किसी क्षोभ और लज्जा की लाली में परिवर्तित होने ही वाली थी कि उसका साथी बोल उठा :

> सीमाब कहाँ हूँ मैं करें ग़ौर न इसका,
> अहबाब यह देखें मेरी आवाज कहाँ है।

साथी मस्त होकर शेर कह रहा था मानो उसका जीवनानुभव पंक्तियों में बोल उठा हो।

रामेश्वर ने कहा, "फिर से।" उसने कहा, "फिर से।"

वह श्रद्धापूर्वक [फिर पढ़ने] लगा। अर्थ के सम्पूर्ण बोध के साथ उसे लगा मानो उसे नया रहस्य मिल गया हो। जीवन का कोई ऐसा सत्य ढूँढ़ने पर ही पाया जाता है। वह अन्दर से हरख उठा, लहलहा गया, मानो अब पल्लवित होना चाह रहा हो।

उसके साथी की आँखें जब इस ओर मुड़ी तो उसे ऐसा लगा जैसे वे धुंधली हो गयी हों और कुछ लाल। साथी ने कहा, "आपको पसन्द है यह शेर ?"

उसने कहा, "बहुत ज्यादा।"

"सचमुच ?"

कवि ने जवाब दिया, "यकीन मानिए, मुझे बहुत पसन्द है, अभी नोट किये लेता हूँ—दो मिनट सिर्फ़।"

साथी ने कहा, "मैंने तो यों ही पूछा, आपको तो जरूर पसन्द आया होगा। होता क्या है, लोग 'वाह-वाह' करके सिर हिला देते है। मालूम नही, समझते हैं या नही, पर एक विशेष प्रकार के पोयटिक कल्चर (काव्य-संस्कृति) के कारण दाद देना जानते हैं। पर वह दाद बनावटी होती है। सही हो तो क्या हुआ, सुनानेवाले को सन्देह हो उठता है।

रामेश्वर ताड गया। यह पुरानी शिकायत थी। कवि-गोष्ठियो, समारोहो मे यही दृश्य दिखायी देता था। यहाँ तक कि आपसी तौर पर एकान्त में कविताएँ सुनते वक्त भी तल्लीनता का जो नाट्य मित्रो द्वारा प्रदर्शित किया जाता था, उसका थोथापन स्वय रामेश्वर को बुरी तरह से अखर जाता। कविताएँ, चायबाज़ी, गपशप, पाण्डित्य-प्रदर्शन, सभा-चातुर्य, स्थानीय प्रतिष्ठितो की सचेत आत्म-महत्व-शीलता—और इन सब दृश्यो के बीच अपने को किसी-न-किसी तरह से हीन, [illegible]

अपनी साहित्यिक करामात दिखाते हुए, ये साहित्यिक तथाकथित रस बरसाया करते। रामेश्वर इन साहित्यिक कव्वालो की, इस रस बरसानेवाली बिरादरी की, अन्दरूनी हकीकत जानता था। फिर भी, जब कभी उसका दोस्त उसको ताने मारने को उद्यत हो जाता, तो रामेश्वर तिलमिला उठता, यद्यपि उस असलियत पर, उस सचाई पर, उसे विश्वास था।

आज भी जब उसके दोस्त ने झूठी दाद की बात उठायी, तो उसे ऐसा लगा मानो यह उसी के प्रति कही जा रही है।

भाव छिपाते हुए दिल को कड़ा कर मुसकराकर रामेश्वर ने जवाब दिया, "आपकी बात का जवाब खुद मैं हूँ। जो आदमी कुछ सीखना चाहता है वह भर के सीखता है, मक्कारी से नही।" उसने बहुत ही अर्थपूर्ण दृष्टि से अपने मित्र की ओर देखा। मुसकराता रहा। उसके साथी ने बात का आघात झेला। आँखो से कुछ बोध न हो पाया। उसने लाड से रामेश्वर की पीठ ठोकी और हँसते हुए कहा, "लो, एक अच्छी कविता सुनाता हूँ।"

[2]

टूटे हुए पुल के दृश्यो को दाहिनी ओर छोड़कर यह साफ-सुथरी सडक आगे चली चलती है। अकबर के गवर्नर की यह मुगलिया इमारत सफ़ेद संगमर्मर की बुलन्दगी लिये हुए आँखो मे भर उठती है। इसका बाग़ीचा यहीं से शुरू हो जाता है। इस

इमारत के दूसरी ओर नदी का विस्तृत पाट है, जिसके एक ओर से एक पतली धारा निकाल ली गयी है, और उस प्रवाह के मार्ग म अनेक कुण्ड तैयार किये गय हैं। ये कुण्ड अन्दर से एक दूसरे से जुडे हुए हैं, जिससे धारा की अखण्डता बनी रहती है। कुण्डो के बीच चलने का अच्छा मार्ग है किन्तु कुण्डो का निर्माण इस प्रकार हुआ है कि धारा उनके ऊपर से इस तरह बहती रहे कि बीचोबीच मार्गो पर जो गहरी नक्काशी की गयी है उनकी लकीरो म से पानी बहता हुआ दूसरे कुण्डो की पानी की सतह म समा जाया करता है। मुगलिया शिल्प की प्रतीक वह खूबसूरत इमारत बहुत ऊँचाई पर है। करीबन डढ सौ लम्बी-चौडी सीढियाँ पार कर नीचे जाना होता है, जहाँ नदी की यह कुण्डो मे बँटी हुई चौडी धारा है। इस धारा के उस पार ऊँची कगार को चूने की ऊँची भीत का रूप दे दिया गया है जिसके ठीक सिर पर बडे-बडे लकडी के कुण्डे—विलायती पौधो के—एक लकीर मे जमाय गये हैं। उधर ऊपर बागीचा है। वह बागीचा खत्म होता है इमली के, बाँस के और पीपल के बडे-बडे दरख्तो की एक लम्बी लकीर के छोर पर। वे बडे-बडे वृक्ष इमारत के पास से दिखायी देते हैं।

इमारत के पीछे फलो के बागीचे हैं। अगूर की बेलें, अजीर के झाड, बादाम के पेड, जामुन के दरख्त, सन्तरो के खेत, आदि-आदि, बहुतायत मे मौजूद हैं।

रामेश्वर और उसका दोस्त ब्रजमोहन सबसे अलग हटकर अपनी एकान्त बातचीत के लिए पुल के नीचे खो गये थे।

दूसरा दल कुण्डो के बीचोबीच हरी जमीन पर एक बरगद की छाया म बाटियाँ बनाने की तैयारी कर रहा था। तीसरा दल इमारत के पीछे के बाग म अमरूद चुरा-चुराकर खाता जा रहा था।

अमरूद खानेवाल व्यक्ति तीन थे।

उनमे से एक बहुत ऊँचा था। खादी का मैला पाजामा। लम्बी नेहरू शर्ट, जिसके गले के बटन खुले होने से छाती के बाल, जो कुछ सफेद हो रहे थ, झाँक रहे थे। चेहरा लम्बा, बडा, थका हुआ और नाक कुछ नीची और अन्त मे थोडी फैली हुई। वह विशिष्ट रूप से दाक्षिणात्य द्रविड चेहरा था, जिसकी आकृति से लोगो को यह प्रतीत होता था कि वह व्यक्ति अपने से स्वभावत भिन्न है। यदि वह मौन रहे तो गम्भीर कठोरता का भास होता था और हँसे तो एकदम बचपन [illegible] तो कभी दिखायी ही न [illegible] श्याम व्यक्तित्व और [illegible] को अपने से दूर पटक देता।

दूसरा आदमी भी उतना ही ऊँचा था। फर्क यह था कि वह न मासल था, न दुर्बल। छाती इतनी आगे निकली हुई न थी जैसी कि उसके मित्र की। कुछ झुक के चलता था। वह पैण्ट पहने हुए था, साफ-धुला, लेकिन फटा हुआ। (बायी ओर पैण्ट मे एक छेद था)। और मैलखोर स्वेटर। उसका चेहरा लम्बा, तिकोनी नाक ऊँची बुलन्द, उसी तरह ललाट भव्य और प्रशस्त। रग गेहुआँ जो साँवला पड गया था। आँखो के आस-पास काले गोल पट्टे। और पैरो मे अजीब तरह की चचलता थी, जिसे उसके स्वभाव की बेसब्री-जल्दबाजी, और, किसी मानी मे, बेचैनी की छाया कहा जा सकता है।

तीसरा व्यक्ति गोरा, कसी-बँधी पहलवानी देह का चेहरा था, जिसके वर्णन मे अगर सावधानी बरती जाय तो कहा जा सकता है कि मगमर्मर की घाटियो को चीरते हुए नर्मदा के कछार-कूल पर लहराप्लावित स्फटिक का एक हँसता हुआ जीवन्त खण्ड ! पहले व्यक्ति का नाम पतजलि शास्त्री, दूसरे का नाम दत्ता देशपाण्डे, और तीसरे का नाम था नारायण सहस्रबुद्धे। तीनो हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। मराठी उनकी मातृभाषा थी।

"बडी वाहियात वात है," दत्ता न कहा।

बनावटी हास्य से शास्त्री ने जवाब दिया, ' चलता है, जिन्दगी है। कई तरह के आदमी मिलते हैं।"

"पर यही तो खराबी है। मैं उस दिन बहुत उदास हो गया था। अन्दर गुस्सा था। अगर वह अकेला होता तो मैं लड पडता।"

"खैर, छाडो भी !" लम्बी साँस खीचकर, शास्त्री ने खुले मुँह के वन्द करन के दौरान म अपन एक लम्बे-तिरछे दाँत को ढाँकते हुए कहा। उसको यह विषय ही पसन्द नही आया। इतना अच्छा वातावरण, और यह बेकार की बात !

किन्तु दत्ता कहता गया, "आप समझते हैं कि वह बडा विद्वान है। लेकिन, आप क्या पसन्द करेंगे ? साधारण मनुष्यता या इस तरह की बेमानी विद्वत्ता ?"

तीसरे व्यक्ति—यानी नारायण सहस्रबुद्धे—जो एक ओर झाड के पीछे अमरूद तोडने की कोशिश कर रहा था, ने वहीं से कहा, "डॉक्टर साहब से ज्यादा विद्वान तो वह नही है, लेकिन इससे हमारा डरपोकपन ही सिद्ध होता है।"

डॉक्टर का अर्थ है डॉक्टर पतजलि शास्त्री, एम ए, एम एस-सी, डी लिट्। फिलॉसॉफी क डॉक्टर।

शास्त्री और दत्ता दोनो न मुडकर उसकी ओर देखा। सहस्रबुद्धे का चेहरा गम्भीर था। दोनो ने गम्भीरता का कारण समझ लिया।

शास्त्री बोले, "भई, माफ करो, हम उन्ह भला-बुरा कहने जा रहे थे।" और फिर वही उचक्की, निनादमयी, उच्छृखल हास्य-ध्वनि।

डॉक्टर शास्त्री के अट्टहास ने सहस्रबुद्धे को अधिक विचलित कर दिया। उसका चेहरा कुछ अप्रतिभ, कुछ लाल। और फिर अर्ध-रोषपूर्ण उद्‌गार "उन्हे आप गालियाँ दीजिए, न ! मै भी तो शाम को उनके घर स लौटते वक्त मन-ही-मन कोसा करता हूँ।"

दत्ता ने बीच मे पडकर कहा, "लो, तुम बुरा मान गये।"

"बिलकुल नही, मैं तो यह कहना चाहता था कि आप उन्हे गाली देते वक्त यह क्यो सोचते हैं कि इसस मुझे बुरा लग रहा है। इसी का मुझे बुरा लगता है। चूँकि मैं उनके यहाँ काम करता हूँ, इसलिए मैं उनका अपना हूँ, उनका आदमी हूँ, यह सोचा जा रहा है।"

दत्ता ने पीठ थपथपाकर सहस्रबुद्धे को दिलासा देते हुए कहा, "यह कौन कहता है ?"

सहस्रबुद्धे कहता गया, ' जब आप उनसे मिलते हैं तो हँस हँसकर बात करते हैं। दुनिया का एक छोर दूसरे छोर से मिलने-जैसा असम्भव आनन्द मुझे प्राप्त होता है। आपकी चाय की ट्रे आती है। सिगरेटें झडती हैं। मैं पास बैठा रहता हूँ। आप सबका मेल-मुलाकाती होते हुए, वे खुद होकर कभी भी चाय ऑफर नही

करते। इसलिए नही कि घर मे किसी चीज की कमी है, पर व मुझ इन्फा।र५८ (अपने से कम) ट्रीट (व्यवहार) करना चाहते हैं। उनके यहाँ आप ही लोग मुझे चाय का कप उठाकर देते हैं, और मैं जानबूझकर उजड्डपन की बातें करता हुआ भद्रता का बाँध तोडना चाहता हूँ। इन्फीरियर तो सचमुच मैं हूँ ही। लेकिन मैं दूसरे के द्वारा अपने प्रति ऐसा कोई व्यवहार पसन्द नही करता। अरे! कुली और रिक्शावाला आज जी हुजूर और मालिक कहने का आदी नही है। मुझे तो यह भी मालूम नही कि आपके साथ उन्होने कौन सी दुर्घटना की। पर अनुमान लगा ही सकता हूँ, किसी न किसी तरह आपको अपमानित किया होगा।" कहते-कहते साँस लेने के लिए नारायण सहस्रबुद्ध थम गया।

दत्ता और शास्त्री अत्यन्त सहानुभूति से उसकी बातें सुन रहे थ। दत्ता ने प्रभावान्वित होकर सिर्फ इतना कहा, "हाँ, आजकल अपमान करने के लिए सूक्ष्म युक्तियो का व्यवहार होता है। डाँटना अभद्रता का भी तो लक्षण है न!"

सहस्रबुद्धे ने जोडा, "बिल्कुल ठीक! इस तरह की बारीक तरकीबें उन्हें खूब याद हैं। हिकारत, व्यग्य। व्यवहार म ऊँच नीच, छोटे बडे, महत्त्वपूर्ण-महत्त्वहीन व्यक्तियो म भेद-भाव रखने की ऐसी अच्छी चालें उन्हे याद हैं, कि बस कुछ न पूछिए।"

शास्त्री ने कहा, "अरे, भाई! हमारे साथ ता बडा भोडा बर्ताव हुआ, वहाँ कहाँ की सूक्ष्मता और बारीकी, सीधी सीधी भोडी बात। उन्होंने हम खुद ही परसो घर पर बुलाया था। सोचिए, हम तीन मील दूर, नदी के उस पार रहते हैं। दुपहर की धूप खोपडी को टन्ना देती है। वहाँ स हम सडक की खाक छानते हुए उनके यहाँ पहुँचे! पहुँच क्या! हम उन्होंने अन्दर आने ही नही दिया। दरवाजे पर दोनो हाथ रखकर कहा, 'अभी तो मेरे यहाँ भीड लगी हुई है। लोग बैठे हैं। आप फिर आइए!'

"हम वापिस हो लिये। कौन लोग थे वे? कुछ प्रोफेसर, दूसरे, म्यूज़ियम के क्यूरेटर, और तीसरे, यहाँ के फूड सेक्रेटरी।

"हमें वापिस करने की क्या जरूरत थी? कोई हम उनसे भिक्षा माँगने के लिए थोडे ही आये थे! क्या करूँ, मुझे गुस्सा एकदम नही आता, नही तो तड से वही दो जमा देता! लेकिन सडक पर आकर ज्यो ही उस अपमानजनक व्यवहार का नशा हमारे दिमाग मे आया, हम लोग बहुत दुखी हुए!"

अब दत्ता ने कहा, "छोडो इन बातो को। वह भयानक अजीब आदमी है! वह हमको उन आदमियो से नीचा समझता है! उसे उनके प्रति ऐसा आकर्षण है—उनके पद और अधिकार के प्रति कुछ ऐसा आदर-भाव है—कि वहाँ हम अगर बैठते भी तो हमसे वह यह आशा करता कि हम उनके शिष्य या दास-जैसा व्यवहार करें। आदमी के प्रति नही, समाज मे उसके स्थान के प्रति आदर-भाव। चाहे वह कम्यूनिस्ट ही क्यो न हो, पर वह होना चाहिए ऊँचे किस्म का, यानी बडा नेता। तो वह आदर का पात्र है। अगर कही रामलाल उनके पास पहुँच गये और उन्ही के सामने अगर हमारे डॉक्टर साहब आ गये, तो व्यवहार प्रोफ़ेसर खडसे का यूँ होगा कि मानो डॉक्टर साहब कोई बडी भारी तोप हैं और रामलाल कोई पुरानी दुनाली।"

कहते-कहते दत्ता रुक गया। उधर दूर कहीं ता भी झुरमुटो म पत्तों की सर-

सराहट हुई और गाने की एक तान सुनायी दी। पर इन लोगों ने उधर ध्यान नहीं दिया। वे चुपचाप, जमीन की ओर देखते हुए, मनुष्य-स्वभाव की विचित्रताओं पर सोचने लगे। इतने में पीछे से कुछ लोगों की बातचीत सुनायी दी। पीछे मुड़कर देखा तो खडसे और उनके दोस्त लोग थे। खडसे और उनके दोस्त लोग सबके पीछे यहाँ एक ताँगे से आये थे। इसलिए उनके दोस्तों का परिचय नहीं हो पाया था। उन्हें देखते ही सहस्रबुद्धे, दत्ता, देशपाण्डे और शास्त्री ने 'आइए' कहकर सबका अभिवादन किया और परिचय की कार्रवाई शुरू हो गयी।

खडसे एक मँझले कद का, किंचित स्थूल और हँसमुख व्यक्ति था। मांसल, गदबदा, गोरी देह, पेट थोड़ा आगे आया हुआ। चेहरा अण्डाकार, आँखें चमकती हुईं। उसकी बातचीत में, कहीं ज़रा-सी भी जगह हो तो, शिष्ट भद्र मज़ाक, विनोद वाक्य, अथवा शॉ, एल्डस हक्सले और जॉनसन के कुछ प्रसिद्ध मजाक, उक्तियाँ, दुरुक्तियाँ और सूक्तियाँ घुस पड़ती थीं। उसकी स्मरण-शक्ति अद्भुत, विनोद-बुद्धि अद्भुत और विवेक-बुद्धि निःशक्त थी। वह स्वयं एक प्रसिद्ध व्यक्ति था। यद्यपि वह कविता, कहानी, समालोचना, उपन्यास, निबन्ध, पेण्टिंग, भाषण, सभा-पतित्व, आदि, सभी कुछ कर लेता था, फिर भी वह प्रसिद्ध किसी भी एक बात के लिए न था। यद्यपि उसके साहित्य में, किन्हीं अंशों में, मौलिकता और नवीनता थी—वह छायावादी शुरू से ही नहीं था—फिर भी वह दाना छिलकों के ढेर के नीचे दब गया था। मज़ा यह है कि प्रसिद्ध इनमें से विशेष रूप से किसी एक बात के लिए न रहते हुए भी, वह खूब ही प्रसिद्ध था। किन्तु यह आदर-भाव मात्र एक आत्म-सीमित गूढ़ भाव था, जिसका व्यवहार में कोई उपयोग न था। उसे आकर्षित भी वे ही लोग करते जो किसी-न-किसी तरह चमकते हैं। उसके टेस्ट में शत-प्रति-शत वैज्ञानिक-बौद्धिक आधुनिकता थी। ऐसी अभिरुचि रखनेवाला आदमी निश्चय ही बासी फूलों की महक को पहचान लेता। यही कारण है कि उसे तथाकथित भारतीय संस्कृतिवादी सज्जनों की पान-चबाऊ साहित्यिक पण्डागिरी से नफरत और हिकारत थी। किन्तु अपने इसी स्वभाव के विपरीत, वह अपने स्वार्थ के लिए, जहाँ तक सम्भव हो सके मेलजोल रखता। उनके यहाँ से बाहर आकर दोस्तों से कहता, "कैसा बनाया है उल्लू !" प्रवृत्तियों से आधुनिक, मनोभावों से आधुनिक !

[सम्भावित रचनाकाल 1950 51 के आसपास]

अधूरी कहानी : पाँच

बाबू रामप्रसाद अग्रवाल से मैं आज भी बहुत प्रभावित हूँ। मुझे याद है, आज से बीस साल पहले, हम उज्जैन के गन्दे ठण्डे उजाड़ और पुराने मुहल्ले के उस पार, क्षिप्रा नदी का जो पुल है उस पर बातचीत करते हुए जा रहे थे। उन दिनों क्षिप्रा नदी के दोनों ओर छाये हुए वीरान और एकान्त वातावरण पर सुनहली पलकें

पसारती हुई साँझ बहुत भली मालूम होती थी। मन मे एक विशेष प्रकार की एकान्त निविडता पैदा हो जाती थी। क्षिप्रा के दोनो ओर फैले हुए पीली घास के ऊँचे-नीचे मैदानो पर बिछी हुई, न दीखनेवाली कच्ची सडक पर, शाम के नीले झुटपुटे मे बैलगाडियो द्वारा उठी हुई धूल के कारण, वह एकान्त वातावरण और भी सघन और प्रिय हो उठता था। क्षिप्रा नदी गरमी के दिनो मे सूखकर क्षीण हो जाने पर भी काफी विस्तृत रहती है। उसके शिथिल आसमानी पानी को गहन-श्याम करनेवाले लम्बे-लम्बे हरे बालो-जैसे शैवाल की गीली गन्ध से भर, मैदान के एक छोर से दूसरे छोर तक भागती फिरनेवाली उन्मुक्त वायु के झोंके, मुझे अभी तक आत्मीय स्पर्श-से प्रतीत होते हैं।

आज जबकि मैं अपने वतन से बहुत दूर, निर्वासित-सा यहाँ रहता हूँ, मुझे वह शैवाल-जलसिक्त शीतल वायु एक ऐसी आत्मीयता के वातावरण मे पहुँचा देती है, जिससे मैं डरने लगता हूँ। अत्यन्त तीव्र अनुभवों के उस अतीत यौवन की स्मृतियो से, आज भी वही रहनेवाले मेरे प्रियजनो से, मेरे अन्तःकरण मे अत्यन्त निविड रूप से रहनेवाले दृश्यो, चित्रों, गूँजो और साँसो स, मैं—सच कहता हूँ—बहुत डरता हूँ। न मालूम किस प्रकार का डर है वह। अपने आत्मीयो को चिट्ठी लिख नही पाता। ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे मस्तिष्क-कोष, मन मे गुप्त रूप स छाये भावावेग को, सह न सकेंगे। अत उसको जाग्रत करनेवाली प्रत्यक छोटी-से-छोटी घटना अथवा अवसर, मन से दूर करने का मैं प्रयत्न करने लगता हूँ। मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो मेरी जिन्दगी का एक खण्ड, एक अध्याय, वहाँ खत्म हो गया। वह अपनी मिठास और कटुता दोनो ही के कारण इतना त्याज्य है कि उसको किसी भी कारण से खोलना ग़लत और अदूरदर्शितापूर्ण होगा।

आश्चर्य है, मुझे बाबू रामप्रसाद अग्रवाल की याद कैसे आयी। आजकल वे बडे आदमी हो गय हैं। दहली मे किसी विदेशी दूतावास मे ऊँचे ओहदे पर काम कर रहे हैं। इसके पहल वे विलायत के समाचार-पत्र डेली टेलिग्राफ के हिन्दुस्तान मे प्रतिनिधि थे, जिसके सिलसिले मे उन्ह हिन्दू मुस्लिम दगो के विशेष क्षेत्रो मे, युद्धग्रस्त कश्मीर मे, तथा गृहयुद्धग्रस्त बर्मा म, रहना पडा। उनका जीवन इतना वैविध्यपूर्ण, चमत्कारमय, और कुल मिलाकर, उन्हीं की दृष्टि से, निरर्थक रहा कि कहते ही बनता है। यद्यपि मैं उनसे ईर्ष्या करता हूँ, मैं सहानुभूति भी रखता हूँ क्योंकि अपनी-अपनी परिस्थितियों के ज़बरदस्त धक्को ने हम दोनो को जन्मभूमि से निकाल दिया था। हम दोनो मे सर्वप्रधान पायी जानेवाली बात यही थी। सालो हो गये, उनकी कोई चिट्ठी नही आयी। वैसे एक कॉन्फ्रेंस अटेण्ड करने के सिलसिले मे, जब मैं बनारस से बगलौर पहुँचा था, तो वहाँ के छोटे स्टेशन यानी बगलौर कैन्ट मे उनसे मुलाकात हुई, जो क़रीब एक दिन रही। मैं अपनी दिल की बातें कहता रहा, वे अपनी। किन्तु वे मुसाफिराना बातें थी। मालूम था कि हम दोनो फिर अलग हो जायेंगे। कौन कहाँ जायेगा, इसका पता नही।

उन दिनो लडाई का वातावरण था। मूँगिया रग की फौजी वर्दी मे बीस-बाईस साल के गरीब नवयुवक, अपनी घर-गिरस्ती, वतन और प्रियजन छोड, हिन्दुस्तान के एक शहर से दूसरे शहर पहुँचत। ऊपर स भले ही किसी की फौजी वर्दी बहुत इस्तिरीदार रहे, उनका दिल कहता था कि वे भेडो की नाईं हैं। उनकी ऊपर तत्परता-क्रियाशीलता के बावजूद, उनके चेहरे पर बेगानापन फैला रहता,

किन्तु मुझे वह दिखायी न देती थी। मैं समझता था, यद्यपि मुझे भी कभी-कभी

बगलौर कैण्ट स्टेशन पर इस समय कोई गाडी आनेवाली थी। किन्तु, सिवाय फौजियो के, सिविलियन बहुत कम थे। मैं सेकण्ड क्लास मुसाफिरखाने मे ड्रेसिंग टेबिल के शीशे मे अपना मुँह देख सिर पर गाँधी टोपी ठीक कर रहा था। मैं गरीब आदमी हूँ। सेकण्ड क्लास में कभी भी प्रवास नही किया था। इस कॉन्फ्रेन्स के *सगठनकर्ताओ ने दूसरो की तरह मुझे भी सेकण्ड क्लास का किराया दिया था।* इसलिए मैं अपने को, सेकण्ड क्लास के ड्रेसिंग टेबिल के शीशे मे मुँह देख, सिर पर गाँधी टोपी ठीक से जमाने का हकदार समझता था। काग्रेस नेता जेल से छूट चुके थे। इण्टेरिम मिनिस्ट्री बन गयी थी। इसलिए मैं भी शान से जेल के बाहर था, और विजयी की भाँति बगलौर स्टेशन की हवा सूँघ रहा था।

कि मुझे अपने सामने, एक पजाबी फौजी अफसर बैठा हुआ दिखायी दिया।

निस्सन्देह उसका व्यक्तित्व प्रभावकारी था। मँझोला कद, गुलाबी रग और कठोर जीवन के कारण भरे हुए चेहरे पर सलवटें। उसका चेहरा आज भी मेरी आँखो के सामने है। अण्डाकार और गोल के बीच मे कही तो भी उसका आकार था। छोटी सी सवदनशील हनू और सलवटदार गाल। छोटे भूरे बाल सिरपर, और आँखें किंचित् नीली। बिलकुल अग्रेज का बच्चा लगता था, यद्यपि उसकी चाल-ढाल से प्रतीत होता था कि वह किसी बहुत शाइस्ता खानदान का तालीमयाफ्ता लेकिन शरमीला व्यक्ति है। मुझे वह आदमी देखते ही अच्छा लगा। और मुझे ऐसा भान हुआ मानो उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व किसी सुन्दर शिल्प की अनुकृति हो। ईमानदार, कार्य कुशल, नम्र और मुस्तैद अफसर-सा उसका तमाम तौरोतरीका था।

लेकिन मैंने उसकी ओर इतनी गौर से क्यो देखा ? शायद मैं उससे अतिशीघ्र प्रभावित हो गया। जहाँ तक मेरा खयाल है, मैं कहूँगा कि मेरा मन बगलौर कैण्ट मे अकेले घूमते हुए इतना खाली खाली था कि कोई भी मामूली वस्तु अकारण ही मेरा मन आकर्षित कर सकती थी।

सामने की बैंच पर उसका होल्डॉल, सूटकेस पडे हुए थे और वही एक ओर रेलवे टाइमटेबिल था जिस पर एक हसीन-सी किताब थी।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल *1950-51*]

बाबू रामचन्द्र अग्रवाल

इतनी बस्तियो और घरो के रहते हुए भी कुछ [लोग] ऐसे होते हैं जिनके बारे मे यह नही कहा जा सकता कि फलाँ इनका मकान है और फ़लाँ सूबा इनका वतन

है। पैरो मे भँवर पडी हुई है। इसीलिए तो ये लोग आज बम्बई विराजते हैं, तो कल अमीनाबाद लखनऊ की सडक पर से गुजरते हुए दिखायी देंगे, तो परसो कलकत्ते के चित्तरजन एवन्यू के किसी रेस्तराँ म बगालियों से बात करते नज़र आयेंगे। लामकाँ हैं सचमुच य लाग। लम्बे-लम्बे रास्ते, काली तारकोल के, गोया इनके हमेशा के साथी हैं, भले ही उन रास्तो पर चलनेवाले जन-समुदाय म से एक भी इनके पहचान का न हो।

आप पत्रकार हैं। कल तक एक कहानी की मैगज़ीन के आप एडीटर रहे। मालिक ने इन्ही को एसा मूँडा कि इन्हे अपनी चालाकी पर अविश्वास-सा होने लगा। लेकिन अपनी चाय-पीती मारवाडियो के घर का नमक खाती जिन्दगी पर इन्हे पछतावा नही हुआ। होता भी कैसे? अखबार पूँजीपतियों के हैं। पत्रकार हैं, और पत्रकारिता ही आपका पेशा है, तो समझ लीजिए, आपको अपनी उन्नति के लिए किसी बडे और भले आदमी के एस्टेब्लिशमेण्ट म ही, गाँधीवादी खद्दर हँसी हँसते हुए, नौकरी करनी होगी। और अगर आप कुछ ज्यादा आधुनिक और विचारो मे उग्र रहने की कोशिश करते हो, तो किसी बडे अग्रेज़ी सोशलिस्ट अखबार का मुँह जोहना होगा। अखबार की दुनिया ही ऐसी है, अखबारनवीसी मे, अलावा आपकी योग्यता और कौशल के, तिकडम ज्यादा लाभकर होती है।

लेकिन तिकडम होन के बाद भी बहुत कम अखबारनवीस ऐस है जिन्होन एक ही अखबार म अपनी उम्र बिता दी हो। आज कापडियाजी के *युगसन्देश* मे सम्पादक रहे, तो कल अमोलकचन्द बरडियाजी के *जयहिन्द* मे कलम घिसी। आज आप ए पी आई म काम कर रह हैं, तो परसो ग्लोब न्यूज़ एजेन्सी मे अपनी उम्र को कम करन लग।

लेकिन हमारे बाबू रामचन्द्र अग्रवाल की बात कुछ और है। जाति से वणिक होते हुए भी आपने ब्राह्मण का ही काम किया, या परिस्थिति न आपसे करवाया। पिता धनी-मानी न थे। मिर्चो की धाँस से भरी हुई बाजार की गली मे, एक ओर छोटे पिचके हुए मकान के नीचे के हिस्से मे, जो दो गज लम्बी दो गज चौडी कोठरी थी उसके अँधेरे म, एक छोटी-सी दूकान थी, जिसम जडी-बूटियोवाली दवाइयाँ मिलती थी—वे दवाइयाँ जो जापे की औरतो के काम की होती हैं। बाबू रामचन्द्र अग्रवाल के पिता यद्यपि कुछ हज़ार रुपया रखते थे, उनका परिवार बडा होने के कारण, वे अपने को बहुत गरीब समझते और थे भी।

उनका तीसरा बेटा था यह रामचन्द्र, जो तालीमयाफ्ता होकर दुनिया मे कुछ बनना चाहता था। बाप ने पढाया नही, खुद पढा। बाप पुराने किस्म के, पुराने खयालात के थे। और उनका जी अपने बडे परिवार की परवरिश म इस कदर लगा रहता था कि वे अपन नये खयालात के सपूत की सस्कृति बरदाश्त न कर पाते।

गये साल जब मैं मथुरा की एक गली म, जिसम दालमोठ की बास आती थी, बाबू रामचन्द्र अग्रवाल से मिला, तो वे मुझे कह रहे थे कि वे अब जल्दी ही घर से भाग जायेंगे। घर के झगडे अब पूरी तौर से नाकाबिलेबरदाश्त हैं, और अगर वे खुद अपने पैरो पर खडे होकर, बी ए तथा एम ए के ऊँचे दर्ज़ों की पढ़ाई कर सके हैं, तो कोई वजह नही कि वे किसी बडे शहर जाकर, अपनी किस्मत आजमा-कर, अपनी जिन्दगी का फैसला अपने फायदे मे न कर सकें।

और आज मुझे उनका खत मिलता है कि वे बडी सफलतापूर्वक एक अखबार मे न्यूज़-एडिटरी कर रहे है।

[illegible]

हानिकारक भी था।

रामचन्द्र मे बनियापन बिलकुल न था। पैसा हो तो खर्च करने मे वह बादशाह था, किन्तु जितना फक्कड चाहिए उतना वह न था। बहुत ही रिज़र्व्ड, वायदे मे पक्का, यहाँ तक कि बहुत बार चिडचिडा— अगर कोई अपना वचन न रख पाये। उसम दो गुण प्रधान थ। एक, मानसिक सूक्ष्मता, और दूसरा, हाथ मे लिये हुए काम के पीछे हाथ धोकर पडने का उसका तरीका। शायद इन्ही दो गुणो के कारण वह अपने जात-भाइयो स ज्यादा अग्रसर और, कहना चाहिए कि, जाति से प्रगतिशील था। किन्तु उद्धत न था। स्वाभाविक भीरु स्वभाव पर उसने बडी मुश्किल स विजय पायी थी वह भी मात्र सघर्ष से नही, वरन् अथक परिश्रम से पायी हुई विद्या और विद्या-प्रेम के कारण उत्पन्न हुई उच्चता के द्वारा। यही उसका दुर्भाग्य था।

अकेले एकान्त कोने मे अपनी जिन्दगी को महत्त्वपूर्ण और स्वय को प्रतिष्ठित बना लेने के लिए किये जानेवाले परिश्रम का फल चाहे जो होता हो, एक बात सच है कि उससे जिन्दगी निरानन्द हो जाती है। अपने बारे म अनेक झूठी कल्पनाएँ करनेवाला रामचन्द्र कभी अपने को सत्य का अवतार पाता, तो कभी मामूली ग़लतियो के लिए अपने को हीन देखता। किन्तु इतना निस्सन्देह है कि रामचन्द्र निष्कपट था। किन्तु इससे क्या ? पत्रकारिता के सब हथकण्डे पहचानकर भी उनका प्रयोग करने मे रामचन्द्र इतना हिचकिचाता न था जितना अलसा जाता था। परिणाम यह कि वह जिन्दगी की लडाई म अगर हारता नही था तो पीछे अवश्य रह जाता। और एक ओर तिकडम और व्यवहार-कौशल के लिए आलस्य, और दूसरी ओर, अपने एकान्त कमरे मे अनिर्दिष्ट परिश्रम और उसमे समायी हुई महत्त्वाकाक्षा और सफलता का अभाव।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1950-51]

अधूरी कहानी : छह

आज इतवार है। सुबह देर से उठा हूँ।

प्रातःकाल की ठण्डी ताज़ी हवा का प्रेमी होने के कारण, हमेशा यह चाहता रहा कि सुबह पाँच बजे उठूँ, और अन्य पौष्टिक खाद्य-वस्तुओ के अभाव को हवा

मे घुले आक्सीजन के द्वारा पूरी करूँ। सुवह उठने का यह औचित्य तर्क है।

लम्बे टाइफाइड से उठा हूँ। लिक्विड पैराफिन के ज़रिये पेट को साफ रखता रहा, किन्तु, मटके और खाली टीन के डिब्बे मे चूहो की आवाज के धनाभाव के सदेश को मद्देनजर रखते हुए, वीस दिनो से उस अत्यावश्यक दवा को भी छोड दिया। किन्तु वह दवा बहुत बढ़िया थी।

वह मुझे सुवह चार बजे उठा देती थी। बरावर चार बजे। सुवह का ताजा झुटपुटा मेरे दिल म जीवन के प्रति नयी आसक्ति भर देता था। मुर्गे की, दुनिया को जगाती हुई तेज़ वाँग सुनकर मैं कर्तव्य-परायण तत्परता के चिह्नावशेष अपने मे देखने लगता, और, पाकर, मुझे खुशी होती।

दुनिया सोयी है, मैं जगा हूँ। स्त्री और बाल-बच्चे सोये हैं, किन्तु मैं हाथ मे लालटेन लिये चाय बनाने के सामान खोज रहा हूँ। बुरादे की सिगडी सुलग चुकी है, और उसके गोल छोटे मुँह से लाल कोरवाली नाचती हुई सुनहली ज्वाला मेरे छोटे रसोई बनाने के सीलभरे कमरे के ठण्डे अँधेरे को मार भगा रही है। ज्वाला के नृत्य के साथ अँधेरा भी आगे आता, नाचने लगता, फिर पीछे सरकता, दीवार से हटकर छत मे इकट्ठा होता। फिर चुपचाप दीवार पर छा जाता, फिर चौथाई दीवार उसे छोड देनी पड़ती। कभी वह सिगडी के पास सरक आता, फिर उसे दीवार का आसरा ही काफी जान पडता। नाचती हुई ज्वाला के और आगे-आगे, पीछे सरकते अँधेरे के इस मेल के निभृत एकान्त वातावरण म मेरा मन अपने मे ही डूब जाता। और मेरे दुवले सूखी-टहनी से हाथो मे वह दीपक !!

दीपक कैसा भी हो, उसमे प्रकाश है ऊष्ण कोमल। (अगर मेरा कन्दील धुँआरा है, तो कौन-सा प्रकाश, कौन-सी किरन, आज बीसवी सदी से पचासवें साल मे—नही धुँआ रही है। यदि कोई किरन आज धुँआ पाती नही, तो वह हमारी किरन नही है—वह किसी के स्फटिक के बाथरूमो मे अमरीकी वल्ब म से उतरकर आ रही है।) मैं अपने हाथ मे वह कन्दील लिये घूमता हूँ, सुवह के चार बजे, अपने अँधेरे कमरो मे। मुझे अपने कन्दील स प्यार हो उठता है—गुप्त ममता भरा अपनापन। उसका काँच फूटा है—उस छेद मे बादामी कागज चिपका है। [illegible] लापन !!

[illegible] भाई, मेरी

[illegible], जिलाया।

नही तो वह क्या नयी हण्डी म ला सकती थी !! वह स्वय इतनी थक गयी है, उसके सारे शरीर म थकान की लहरें रेंगती हैं कि बाल-बच्चो के कामो मे वह कन्दील की बत्ती काटकर ठीक करना भूल जाती है। जब याद आती है, तब कतरनी की याद आती है और कतरनी ?

कतरनी अच्छी थी। मेरी बीमारी की हालत मे जिस मददगार औरत ने—जो यहाँ से एक मील दूर रहती है—कतरनी की तारीफ करते हुए उसकी माँग की कुछ दिनो के लिए। उसने वापिस भेजी नही, माँगने कौन जायगा, और हम भी कैसे मुँह दिखा सकते हैं !! औरत के पैसे हम लौटा न पाये !! पडोस से कतरनी एक बार माँगी थी। एक बार दी गयी। फिर, हम माँगने गये, पर इनकार कर दिया गया। कतरनी मोल लाना जितना जरूरी था उससे ज्यादा जरूरी चीज़ो के लिए पैसे खर्च हो रहे हैं। हमारी मजबूरी का प्रतीक वह कन्दील इसीलिए भभकता

पर हँसी से काँपती हुई मूँछ बेकरार होकर फैल रही थी, नाक के नथुने फैल रहे थे और सिकुड रहे थे, नाक का सिरा बेढंगेपन का पहरेदार बनकर हामी भर रहा था, आँखें कुछ छुपा रही थी, कुछ खोल रही थी। जली हुई पुरानी, चिवदी हुई तपेली से गाल और कनपटी अपने जलेपन को तजुरबा कहकर इन्सानियत की हँसी उडा रहे थे। ब्रजमोहन ने मन-ही-मन डिप्टी डायरेक्टर को सज्ञा दे डाली, 'जल-बुक्कड !'

डिप्टी डायरेक्टर हँसी की बदमस्ती मे ब्रजमोहन के भाव पहचान न सके ! ब्रजमोहन सोच रहा था कि गँदले पानी के जीवो मे भी कैसी प्रतिस्पर्धा है और होड है ! ब्रजमोहन स्वय भूल गया कि 'उल्लू' कहना पहले पहल खुद ने शुरू किया था। लेकिन उसने सोचा था कि यह निष्पाप व्यग्य है, उसमे ब्रजमोहन का व्यक्तिगत कुछ भी नही, किन्तु डिप्टी डायरेक्टर का व्यक्तिगत कुछ है ! उसे डिप्टी डायरेक्टर के बारे मे एक घटना याद आयी, जिसे ब्रजमोहन कभी नही भूल सकता था।

एक साथ कई लडकियो और स्त्रियो ने कमरे म प्रवेश किया। वे सब अच्छी-से-अच्छी पोशाक करके आयी थी। वही खिले हुए ताजे फूलो का रग प्रकाश मे बिखर रहा था। शिक्षा सस्कृति बनकर सौन्दर्य बन गयी थी। सारी सभा का ध्यान उन स्त्रियो की तरफ खिच गया था। जब तक उन महिलाओ ने स्थान ग्रहण नही किया, और एक बार सभा द्वारा जब तक उन्हे बडे ध्यान स देख न लिया गया, तब तक जैसे कमरे को चैन न मिला हो। ब्रजमोहन को सिर्फ साडियो के एक दूसरे मे घुलनेवाले रग दिखायी दे रहे थे। महिलाओ के चेहरे पर भी उन्ही वस्त्रो की परछाइँ तैर रही थी।

ब्रजमोहन ने देखा कि डिप्टी डायरेक्टर बडे ध्यान से एक स्त्री की तरफ देख रहे हैं। तब ब्रजमोहन ने भी उस स्त्री की तरफ गौर स देखा। वह कौन है ? डिप्टी डायरेक्टर को अपनी तरफ देखते हुए पाकर दूर से उस महिला ने डिप्टी डायरेक्टर की तरफ पहचान की दृष्टि से देखा, और दूर से मुसकरायी। ब्रजमोहन ने देखा कि वह स्त्री भारतीय नही है। वह गोरी जाति की स्त्री है। उसने सहसा पूछ डाला, "वह कौन है।"

डिप्टी डायरेक्टर ने कहा, "आप नही जानते ? वो मिसेज वाटरफील्ड हैं।"

"ओ हो !" कहकर ब्रजमोहन चुप हो गया। ज्यादा सफेदी और कम ललाई लिये हुए उस स्त्री का मुख रम्य और भव्य था। वह भारतीय साडी पहने हुए थी और चेहरे पर भारतीय बिन्दी भी थी। किन्तु यह विन्यास ब्रजमोहन को अच्छा नही लगा। यह भारतीयता उस चेहरे को शोभा नही देती थी। दूसरे, मिसेज वाटरफील्ड का पुष्ट और चौडाई लिये हुए गाल चेहरा अधिकार की शक्ति और प्रतिष्ठा का द्योतक था, न कि किसी सूक्ष्मता और सचाई की परख की वृत्ति का द्योतक।

यद्यपि जस्टिस वाटरफील्ड छह महीने पहले ही मरे थे, मिसेज के माथे पर बिन्दी अभी तक थी। शायद वह उसका सामाजिक अर्थ नही जानती थी। मिसेज वाटरफील्ड स्थानीय बडे-बडे क्लबो और इण्टरनेशनल अफेअर्स स्टडी ग्रुप की सदस्या भी थी। जस्टिस पति ने यहाँ तीन सौ एकड जमीन खरीद ली थी, जहाँ उनका एक बहुत बडा बँगला भी था। मिसेज वाटरफील्ड रहती शहर मे थी, और

कारिन्दे के जरिये खेती की देखभाल करवाती थी। उनके सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वे कई विदेशी अखबारो की कॉरेस्पोन्डेन्ट भी थी।

मिसेज वाटरफील्ड आयी तो जैसे सब लोगो पर छा गयी। एकाएक ब्रजमोहन के दिल म यह खयाल आया कि अगर वह कही इस औरत म सम्पर्क स्थापित कर सका तो उसके कई काम बनेंगे। वह महिला हिन्दी जानती थी। ब्रजमोहन धीरे-धीरे पस्त हो गया। अपने इस खयाल पर न केवल उसे हलकी-सी ग्लानि हुई, लेकिन उसे यह लम्बा-चौड़ा यथार्थ दिखायी दिया कि बड़े आदमियो के सम्पर्क मे आन, उनके समाज मे घूमने, की भी प्रतिस्पर्धा है। पास बैठा हुआ यह डिप्टी डायरेक्टर, जिसे कुल जमा सवा तीन सौ के ही करीब मिलता है, इस प्रतिस्पर्धा का एक उम्मीदवार है। उसे मिसेज वाटरफील्ड के पार्लर का बड़ा मोह है, और, यद्यपि वह अंग्रेज़ी गलत-सलत बोलता है, उसम आधुनिक साज-सज्जा की भयानक लोलुपता है, उसने हेमिंग्वे आदि नाम भी सीख लिये हैं।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1951-52। रचनावली के दूसरे सस्करण मे पहली बार प्रकाशित]

नाग नदी के किनारे

यह किस्सा कहाँ से शुरू किया जाय? क्या उस जवान आदमी से जिमके चौकोर

था। या यह किस्सा उस बदनसीब आदमी से शुरू किया जाय, जिसके दोस्तो ने खुद जेल जाने के पहले, बाल-बच्चेदार समझकर, उस आदमी को सरकारी नौकरी मे ढकेल दिया था और इस तरह उस दूसरे ढग की जेल दे दी थी? मान लीजिए, उसका नाम त्रिभुवन था। त्रिभुवन को आज भी पुरुष के कण्ठ से नारी-स्वर सुनकर बहुत डर लगता है। भीतर-भीतर ठण्डा रोमाच हो आता है। उसे लगता है कि उस नारी स्वरवाले पुरुष म, अवश्य, कही-न-कही मक्कारी और कारस्तानी छुपी हुई है। अपने इस भयानक अनुमान के प्रमाण म, त्रिभुवन आपके सामने बहुत स उदाहरण रख देगा। वह आपको एक ऐस साहित्यिक महापुरुष का वृत्तान्त कहेगा, जिसके चेहरे का रग बुढापे म भी जवान नाशपाती-सरीखा है सुन्दर रेशमी कुर्ते से ढकी हुई देह सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुसार स्थूल भी है और जिसके पुरुष-कण्ठ मे नारी-स्वर है। इस महापुरुष के अधिकार और सत्ता के सामने झुककर, उससे होनेवाले फायदे पर ध्यान रखते हुए, चरण-स्पर्श करनेवाले व्यावहारिक तरुणजन, डाक्टर की डिग्री प्राप्त कर चुके हैं। और जिन तरुणो ने उसकी अवहेलना की है, उनके पेट पर लात मारकर, और उनके विरुद्ध तरह-तरह के

निन्दा-प्रवाद चालू करके, उन्हें खत्म करने के सफल और पूर्णत फलीभूत प्रयत्न किये गये। सक्षेप म, त्रिभुवन के सामने जीवन की जो चित्र-पक्तियाँ हैं, उनम नारी-स्वरवाली पुरुप मूर्तियों को एक भयानक और महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

कन्हाई पहला आदमी था, जिसके कारण त्रिभुवन के अन्त करण मे नारी-स्वरवाले पुरुपो न बैठक मार ली। उसी प्रकार, त्रिभुवन को पुरुप-मुख पर एक पर-एक जमनेवाले पतले नाजुक ओठो से भी बहुत चिढ है। ऐसे आदमी, त्रिभुवन के अनुसार, ठण्डे दिमाग से गणित करते हुए शतरज की चाल चलनेवाले होते हैं, किन्तु रसिक और ऐस्थीट होते है। ऐस आदमियो से त्रिभुवन को बहुत भय प्रतीत होता है। उसका विचार है कि ऐसे आदमी आपका पता नही लगने देगे कि उन्होंने कहाँ चोट की है। बहुत देर बाद आपको यह जानकारी मिलती है कि, हाँ, उसने आपकी पतग काट दी है।

सक्षेप म, प्रेम स्नेह, बन्धुत्व, सहानुभूति-करुणा, आत्म-त्याग, व्यक्तित्व-विकास आदर्शात्मक सघर्ष विश्व-दृष्टि, विश्व स्वप्न, आदि-आदि भावो के लोक म ही अब तक रहते और पलते आय त्रिभुवन को सबसे पहला और जबर्दस्त धक्का कन्हाई न दिया। इसके पूर्व त्रिभुवन का मन अन्धा था। वह उन पेचीदा हालतो और उलझी हुई परिस्थितियो म नही फँसा था, जिनमे मन के एक नही अनेक भाग हो जाते हैं, और हर भाग एक जीवित जन्तु बनकर पूरे मनो दैहिक सगठन की रक्षा और त्राण के प्रयत्न मे लगा रहता है।

(सच तो यह है कन्हाई बहुत बुरा आदमी नही था। उसकी बुराई शिक्षा-दीक्षा और सस्कृति की कमज़ोरी का दूसरा नाम था। फिर भी पूरा ऑफिस कन्हाई से डरता था, असिस्टण्ट सुपुरडण्ट डरता था, सीनियर क्लर्क डरते थे। उसके पास इस अखण्ड शक्ति के साधन भी नही थ। वह एम ए थर्ड क्लास था। मामूली क्लर्क था। जब त्रिभुवन ने इस कार्यालय मे पदार्पण किया तब उसका पहला सामना कन्हाई से हुआ।)

कन्हाई का चौकोर तेलिया साँवला चेहरा और नारी-स्वर अनुभव कर त्रिभुवन को पहलेपहल भय नही, दु ख नही सुख ही हुआ। पुरुपो मे बारीक नारी स्वर हीनता का लक्षण है। उसे कन्हाई मे देखकर त्रिभुवन को सुख क्यो न होता! कन्हाई मे ऐसा कुछ नही था जिससे त्रिभुवन अपने मे किसी प्रकार की हीनता का अनुभव करे। उसका वह पहला या दूसरा दिन था, जब नयी जान-पहचान के उल्लासमय वातावरण मे कन्हाई और त्रिभुवन बात करते रहे।

लेकिन कन्हाई के चेहरे पर उल्लास की जगह एक अजीब पीलापन छाया हुआ था। इस बीच त्रिभुवन को पता चल गया कि कन्हाई उसका प्रतिस्पर्धी रहा है जो नौकरी त्रिभुवन को मिली उसका एक उम्मीदवार कन्हाई भी था। त्रिभुवन के पद का कार्य पहले कन्हाई ही करता था। कन्हाई का मन, आत्मा और अन्त -करण यह कहता था कि वह पद उसे ही मिलना चाहिए था, न कि त्रिभुवन को। और, अब दुर्भाग्य देखिए, कि वही कन्हाई, जिससे सारा ऑफिस डरता है, त्रिभुवन का असिस्टण्ट है। झगडे की जड तो पहले से ही थी। इसके लिए क्या किया जाय!

लेकिन इस किस्से को कन्हाई से शुरू करने का औचित्य क्या है? ऐसे बहुत

झगडे होते हैं, होते रहे हैं, फिर क्यो उसे महत्त्व दिया जाय ? पता नही क्यो, मुझे लगता है कि इस झगडे के पीछे एक मानव-परिस्थिति है, मानव-प्रसग है। और मानव-अध्ययन के नाते किस्सा यही से शुरू होना चाहिए।

लम्बे डग डालते हुए त्रिभुवन ने सेक्रेटेरिएट के अहाते को पार किया, और ठीक समय पर पहुँचने की प्रतिज्ञा का पालन करते हुए, वह उस छोटे कमरो की पाँत के पास जा पहुँचा, जहाँ एक दरवाजे पर घना-मोटा हरा चिक का परदा पडा हुआ था। उसने उसको उचकाकर भीतर प्रवेश किया। वह एक तग अँधेरा कमरा था, जिसके बीचोंबीच ठण्डी-मुर्दा लम्बी-चौडी साँवली टेबिल रखी हुई थी। उस पर एक ओर बेजुबान काला टेलीफोन था, दूसरी ओर हाल ही सँवारे गये फाइलो के ढेर थे, जिसम बदरग और बदसूरत अक्षरो की चीटियाँ रेंग रही थी। कमरे के बायें कोने मे एक छोटी आलमारी थी, जो इतनी मरी हुई मालूम होती थी जितनी कि उस कमरे की हवा। आलमारी पर एक बहुत मोटा पीतल-पीला ताला लगा हुआ था। दूसरे कोन मे एक इतनी बडी और लम्बी चौडी, इतनी तगडी और मोटी आलमारी (या आलमारी का बाप !) रखी हुई थी कि उससे डर लगता था। दो आलमारियो के बीच, दीवार मे एक खिडकी थी, जिस पर परदा पडा हुआ था।

[illegible] ऊनी कोट पहने हुए, एक
और सख्त नाराज चेहरे-

त्रिभुवन ने हाजरी-रजिस्टर मे, जो उसकी टेबिल पर रखा था, चुपचाप दस्तखत किय और उससे बात करने की आशा करते हुए क्षण-भर खडा रहा। त्रिभुवन की सारी आँखें फाइल म डूबे उस ध्यान-भरे चहरे पर लगी हुई थी। उस आदमी का चेहरा न सिर्फ फूला और गठियल था, वरन् बडी-बडी घनी तावबाज़ मूँछे भी रखता था। सारे रौव के बावजूद, वह चेहरा बडा ही असस्कृत और अशिक्षित मालूम होता था। आँखो म एक अजीब ललाई छायी हुई थी। शर्ट का एक कालर कोट के भीतर, तो दूसरा कोट के बाहर था।

यही वह आदमी था जो इस ऑफिस की पूरी दुनिया की अध्यक्षता करता था।

उस आदमी ने सिर उठाकर त्रिभुवन की तरफ नही देखा। इसलिए पल-भर अपने को अपमानित अनुभव करते हुए, त्रिभुवन कमरे के बाहर हुआ चाहता था कि उसे एक ऐसी आवाज सुनायी दी, मानो वह भर्राये हुए या कफ स भरे हुए गले से निकली हो। उस घोघरी आवाज की तरफ मुडकर त्रिभुवन ने मुसकराने की चेष्टा की, परन्तु वह मुसकराहट वही बर्फ बन गयी।

"यू आर रिक्वायर्ड बाई दी डायरेक्टर," उस आवाज मे एक अजीब नाराज़ दूरी, धौंस और रहस्यमय चुनौती थी।

"जी हाँ, मैं अभी जाता हूँ," कहकर, त्रिभुवन वहाँ से चलता बना। और बाहर की खुली हवा म जोर स साँस ली। अगर वह किसी विलायती जासूसी उपन्यास की दुनिया म घूमता होता, तो उसे बराबर लगता कि वह आदमी, जिससे अभी बातचीत हुई, सम्भावित खूनी या हत्याकारी है। लेकिन नही, वह

आदमी इस कार्यालय का अधीक्षक है, सुपुरडण्ट है, साथ ही, और भी कुछ है। वह और भी कुछ क्या है—इसका पता लगने में अभी देर थी, बहुत देर थी। अधीक्षक बहुत हुआ करते हैं, किन्तु उसके पास कोई रहस्यमय शक्ति थी जिसके फलस्वरूप उससे सब डरा करते थे। त्रिभुवन को पहले पहल प्रतीत हुआ कि वह मनुष्यों की दुनिया में नहीं, किसी अलौकिक नारकीय जगत् में किसी फैण्टेसी की गलियों में, घूम रहा है।

वह तुरन्त अपने कमरे में गया। वह कमरा नहीं—एक सिकुड़ा हुआ, लम्बा और ठिगना नाटा हॉल था, जिसके अन्दर दोनों ओर टेबिलों की पाँतें लगी हुई थीं, जिनसे सटकर सिर-ही-सिर, सिर-ही सिर, सिर-ही-सिर, काले-काले, बाल-काले। कमरे में पीला मद्धिम प्रकाश छाया हुआ था, मानो ठण्डे प्लास्टिक की पीली पारदर्शी त्वचा फैलायी गयी हो। वह अपनी टेबिल के पास गया। एक फाइल उठायी। और लम्बी डगें भरता हुआ हॉल के बाहर हो गया।

बाहर खुला आकाश था, सुन्दर पेड़ थे, और सामने अंग्रेजों की बनायी पत्थर की वह प्रभावशाली इमारत खड़ी हुई थी, जो बहुत खूबसूरत थी। उसने पोर्च पार किया और अँधेरे कॉरिडॉर में घुस गया। कॉरिडॉर सीधा समान्तर जा रहा था, और दीवारों पर दरवाज़ों के पास, प्रत्येक कार्यालय के नाम की पाटियाँ पढ़ने को मिलती थीं। कॉरिडॉर के अन्त में, दूसरी दिशा से आता हुआ कॉरिडॉर मिलता था। वहीं एक पत्थर का चौड़ा ज़ीना था, जो ठेठ ऊपर तक चला गया था। ज़ीने पर खूब कोमल प्रकाश था। वह धड़धड़ाता ऊपर चढ़ गया। ज़ीने पर कई सजधजवाले आ-जा रहे थे। कई सलोनी लड़कियों के चेहरे इधर-उधर दिखायी देते थे। वह ऊपर गैलरी में आ गया। गैलरी नहीं, उसे ऊपर का कॉरिडॉर कहिए। वहाँ शुभ्र प्रकाश छाया हुआ था। ऊपर भी वही हॉल था—दो ओर से आये हुए कॉरिडॉर वहाँ आकर मिलते थे। जहाँ वे मिलते थे, वहीं एक लम्बा-चौड़ा चिक का परदा पड़ा हुआ और कार्याधिकारी का नामपत्र टँगा हुआ था। बाहर एक चपरासी बैठा था।

यहाँ आकर उसने दम ली। चपरासी से पूछा, 'कोई अन्दर है?"

"नहीं, कोई नहीं, साहब अकेले हैं।"

त्रिभुवन सीधा अन्दर घुस गया। उसने देखा कि वह एक सुन्दर तरुण शिल्प-आकृति के सामने खड़ा हुआ है।

वह एक बहुत ही खूबसूरत नौजवान था, जिसका मोतिया गोरापन त्रिभुवन की आँखों में झलमला उठा। किसी गुलाबी पत्थर से बनायी हुई वह एक मनोमोहक सुदृढ़ मूर्ति थी, जिस पर फैशनबल वर्ग की सुन्दर शिक्षित स्त्रियाँ, सूक्ष्म गहरे संवेदनों की तलाश में घूमनेवाली वे रमणियाँ, मरा और जिया करती होंगी। पुरुष के पौरुषमय सौन्दर्य की शक्ति का वह, वस्तुतः दिव्य रूप था।

वह हलके-भूरे रेशम का बुशकोट और सफेद पैण्ट पहने हुए था। उसकी बाँहें पुष्ट और मांसल थीं, जिस पर कोमल रोम दिखायी देते थे। चौड़ा वक्ष था। और चेहरे पर *एक आराम पसन्द खानदानियत की बेफिक्र, लापरवाह जवान शहंशा*-हियत थी। वह चेहरा न कोमल था, न कठोर, वह केवल सौम्य था। वह अपनी सजी हुई टेबिल से पास खड़ा हुआ था। उसके दोनों हाथों में बिलकुल नयी रायफल लेटी हुई थी, जिसके हर पुर्जे की वह कड़ी निगाह से जाँच कर रहा था। उसके

गोरे हाथों में रायफल की साँवली काली इस्पाती रेखा चमकती थी।

डायरेक्टर ने सिर्फ 'हलो' कहा। वह रायफल की ही जाँच करता रहा। त्रिभुवन ने कमरे को ग़ौर से देखा।

वह एक सुन्दर सफ़ेद साफ़ धम्पई प्रकाश से भरा हुआ विस्तृत कमरा था जिसकी दीवारों को गांधी और नेहरू की तसवीरें ख़ूबसूरत बना रही थीं। बहुत बढ़िया दरवाज़े के बाहर, एक गोलाईदार गैलरी थी, जहाँ से दूर-दूर के दृश्य दीखते थे। पूरा वातावरण सुन्दर था।

त्रिभुवन ने अनुमान किया, उसका सर्वोच्च अधिकारी उस वर्ग का है जो पढ़ने के लिए इंगलैण्ड जाता है, पर्यटन के लिए अमरीका, आदर्शवाद के लिए रूस, और बीमारी का इलाज कराने के लिए ऑस्ट्रिया के शहर वीयना और तफ़रीह करने के लिए स्विट्ज़रलैण्ड, लेक, लूसर्न, और जिसका बैंक-डिपाज़िट भारत में ही नहीं, अन्य देशों में भी है। शिकार का शौक़ होने से वह बड़ी-बड़ी शिकारी पार्टियाँ संगठित करता है, और इस तरह के तमाम खेलकूद में हिस्सा लेता है। तुरन्त ही त्रिभुवन इस निष्कर्ष पर आ गया कि इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होने का उसका जो भाग्य है वह सौभाग्य नहीं, उसका दुर्भाग्य है। कहीं-न-कहीं वह अवश्य असन्तुष्ट होगा। हमारे ग़रीब प्रान्त की रोबदार सरकार का रोब उस पर ग़ालिब नहीं हो पाता होगा।

कहना न होगा कि त्रिभुवन के ये सारे खयाल सही नहीं थे, लेकिन वे उस व्यक्तित्व से फिट होते थे। ठीक उसी क्षण में डायरेक्टर ने त्रिभुवन की ओर देखा और उसके होंठों पर शालीन और नम्र स्मित पाया। पता नहीं क्यों, वह स्मित डायरेक्टर को अच्छा लगा। और अपनी आदत को दरकिनार रख, उसने अंग्रेज़ी में कहा, "कुर्सी लीजिए।"

रायफल को ऊँची-नीची कर चुकने के बाद, सन्तुष्ट होकर, उसने उसे बगल-वाली कुर्सी के हत्थों पर लिटा दिया और टेबिल के पासवाली कुर्सी पर बैठ गया।

त्रिभुवन उसके रोब में था। वह स्वयं कुर्सी पर नहीं बैठा। अंग्रेज़ी में कहा, "आपने याद फरमाया था।"

"मैंने सुना, आपने हंस में काम किया था, सरस्वती प्रेस में।"

यह वाक्य सुनते ही त्रिभुवन उसके सारे गर्भितार्थ एकदम ताड़ गया। खयाल बिजली की रफ्तार से दौड़े। उसने जवाब दिया, "जी हाँ! मैंने अपनी एप्लिकेशन (अर्ज़ी) में यह भी लिख दिया था।"

किन्तु डायरेक्टर का ध्यान दरवाज़े पर टिका हुआ था। वह खुला और एक आदमी ने प्रवेश किया। कहा, "आपको सी एस ने याद किया है। दो बार फोन आया था। मैंने लिया था।"

त्रिभुवन सी एस का मतलब नहीं समझा। डायरेक्टर के माथे पर हलकी-सी रेखाएँ दौड़ गयीं, भौंहें ज़रा तिरछी हुईं।

उसने त्रिभुवन से कहा, 'आपने अच्छा किया। मुझे वक़्त नहीं है आप डी डी पी से बात कीजिए। मैं फोन करता हूँ।"

त्रिभुवन ने नमस्कार किया, दरवाज़ा पार कर शिथिल गति से एक ओर जाते हुए कॉरिडॉर में आगे बढ़ा। उसके हाथ-पाँव ठण्डे पड़ गये थे। वह मन-ही मन बुदबुदाया—अच्छा हुआ, मैंने लिख दिया था।

वहाँ से वह तुरन्त ही डी डी. पी. की तरफ मुड़ा। फिर वही अँधेरा कॉरिडॉर जो सीधा चला गया···

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1955-56]

भटनागर

भटनागर उस उम्र मे था जब व्यक्ति शाम के सुनहले बादलो मे अधर तैरने लगता है। या अँधेरे की गुहा मे हमेशा के लिए समा जाना चाहता है। सच कहता हूँ, मुझे ऐसे लोग बेकार मालूम होते है। वे खयाली दुनिया मे रहते हैं। खुद अपने को तकलीफदेह बनते हैं, और दूसरो की तकलीफ देते हैं।

भटनागर से मैं सख्त नाराज हूँ। इसलिए नही कि वह नातजुर्बेकार लौण्डा है, बल्कि वह बेवकूफ डायरी रखता है। जी हाँ, डायरी, हर रोज, रात को, एकान्त मे, एक कन्दील की पीली रोशनी के नीचे!

बराबर उसने मेरे बारे मे कुछ-न-कुछ लिखा होगा। डायरी मे वह अपनी हर चुभन, हर दर्द, हर गुस्सा, हर खीझ, हर वाकआ दर्ज करता है।

मैंने कई एबनॉर्मल आदमी देखे हैं। लेकिन आम तौर से वे ऐसे होते हैं जिन्हे अपने ही साथ धीरज नही। वे पल-पल क्षण-क्षण उड़ना चाहते हैं, किसी धुएँ मे या कुहरे मे, या कही धुआँ और कुहरा पैदा करना चाहते हैं। धुआँ दिल का, कुहरा दिमाग का। लेकिन भटनागर का बच्चा इन सब बातो से कोसो दूर है। वह एक बहुत चुपचाप रहनेवाले गम्भीर चेहरे का लडका है। लेकिन उसके चेहरे पर तनाव है, यह जाहिर हो जाता है—या कम-अज-कम मुझे लगता है।

लेकिन मेरा यह लगना निराधार है। इसलिए कि उसकी आँखो मे सजग चौकन्नापन है, खोयी-खोयी आँखें नही हैं। चश्मा लगाता है। चेहरा बादामी रग का लम्बा, और नाक! *वाह-वाह! क्या कहना! वह दिल मे सुराख करती है!!*

शुरू-शुरू मे, जब हमारी मुलाकात भी नही हुई थी, वह मेरी तरफ बडे गौर से देखा करता। लगता, जैसे उसकी आँख मुझ पर खिली हुई है। उसके चेहरे पर कभी यह भाव नही आया कि वह मुझसे बात करना चाहता है। लेकिन जब हम चार दोस्त गप लगाते—कोई साहित्यिक या राजनीतिक या पारिवारिक बात—तो वह कान लगाकर बडे गौर से सुनता। और बहुत बार मेरी तरफ लगातार देखा करता।

अब, मैं खुद एक बडा चौकन्ना आदमी हूँ। चेहरे से वह भला मालूम होता; इसलिए उसके *सम्बन्ध में मेरी कोई दुर्भावना नहीं हुई।* लेकिन इस ढग से मेरी तरफ बार-बार देखना मुझे अच्छा नही मालूम हुआ। इसलिए उसके पास से गुजरते हुए मैंने एक बार उससे पूछा, सहज स्वाभाविक स्वर से, "कहिए!"

इस शब्द मात्र से वह कुछ सिटपिटा गया। कुछ खोया-सा, कुछ भौचक्का-सा

मुझसे बोला, "नहीं-नहीं ! कुछ तो नहीं !"

और हम सभी दोस्त चाय पीने लगे।

एक कमरा। मेरा प्राइवेट रूम। साधारण-अच्छी कुर्सियाँ। एक टेबिल जिस पर खूब अखबारात और किताबें फैली हुई है। चार खिड़कियाँ, चारो मे हल्के हरे रग के परदे। और, दो आलमारियाँ, जिनमे किताबें—और किताबें भी ऐसी कि जो इतनी पाण्डित्यपूर्ण और इतनी खूबसूरत कि मैंने उनमें से शायद ही कोई पूरी पढ़ी हो। आगन्तुक ललचाई आँखो से उन्हें देखते और उनके इस भाव को देखकर मैं खुश होता।

शाम की चाय, मेथी के भजिये, और रिवोल्यूशन की गप। गप भी ऐसी कि साक्षात् रस बरसता था।

यह रूम हमारा स्वर्ग था। मेरे चार दोस्तो के साथ भटनागर भी आता। सुनता था कि यह कुछ लिखता-विखता भी है। मुझे सुनाने की उसने जुरअत नही की, या तकलीफ गवारा नही की। हीन तो शायद वह मुझे इतना समझता नहीं था।

मैंने एक बार उससे कहा, "आप कुछ बोलते नहीं !" एक उसाँस छोड़कर उसने कहा, "क्या बोलूँ ! बात करना भी तो बहुत मुश्किल है !"

उसके चेहरे पर न सकोच का भाव था, न लज्जा का। केवल निरीक्षण का भाव था। वह जैसे कुछ जान लेना, पा लेना, सीख लेना चाहता था। ऐसा भाव जो साधारण निष्कलुष, निर्मल और होनहार युवकों मे होता है। किन्तु उसी क्षण वह मुझे होनहार से ज्यादा मालूम हुआ। लगा कि वह बेधना, भेदना चाहता है। वह कुछ ऐसा जानना चाहता है, जो वह समझता है कि मैं उसे बतला सकता हूँ। यदि मुझमे जरा भी दुर्भावना होती, तो मैं फौरन समझ लेता कि वह किसी का जासूस है, सी आई डी या किसी ढग का भेदिया है।

मेरे मित्र हमेशा उसे अपने साथ रखते, इसलिए शिकायत की बात तो उठती ही नही। वह असल मे मेरे एक मित्र का भानजा होता था। इसलिए हम अपने रूम मे मुक्त हृदय से अपने भाव, विचार, गुत्थियाँ और न मालूम क्या-क्या कह जाते, कभी-कभी सरकार के विरोध मे, अधिकारियो के विरोध मे। आखिर यहाँ भी खुलकर न बोल सकें तो जिन्दगी बड़ी बेमजा हो जाये।

और मैं हमेशा उसका ध्यान मेरी ओर केन्द्रित पाता। मैं खुद ऐसे आदमियो मे से हूँ जिनकी सूरत से पता चलता है कि ये दो कौडी के है ! यह बात अलग है कि सूट पहन लेने पर अधिकारी भी मालूम हो सकता हूँ। मतलब यह कि मुझे अपने बारे म कोई खामखयाली नहीं है।

ऐसी स्थिति मे, आप सोच सकते है, भटनागर का मेरी तरफ हमेशा इस तरह देखते रहना मुझे कैसा लगता होगा।

मैं अपनी प्रवृत्ति बता दूँ। किसी भी व्यक्ति के प्रति पहले मैं सावधान-भाव से देखता हूँ। मैं चौकन्ना रहता हूँ। आगे यह देखता हूँ कि मुझे उस पर सन्देह करना चाहिए या विश्वास करना चाहिए। विश्वास करना चाहिए तो किस हद तक, और सन्देह करना चाहिए तो किस हद तक। इसलिए मेरा प्रधान भाव ठण्डी बेरुखी। और केवल शिष्ट हास्य।

मैं उन आदमियो के प्रति खास तौर से सावधान रहता हूँ जो मिलते ही

आलिंगन कर डालते हैं। खुदा ने कुछ मुझे इतना सूखा बनाया है कि कुछ न पूछिये ! काश, मैं भी खस्ता बात कर सकता !

लेकिन एक बार मालूम हो गया कि यह आदमी अपनाया जा सकता है, तो मैं सच कहता हूँ, दिल की कली खिल उठती है—बस, दोस्तो मे पागल रहता हूँ।

बस, ऐसी ही हालत मे इस भटनागर के बच्चे ने मुझे देखा है। इसीलिए, मेरे व्यक्तित्व (साला व्यक्तित्व भी कोई चीज है ! व्यक्तित्व किस चिडिया को कहते हैं, मुझे आज तक समझ मे नही आया, गो शब्द का उपयोग मैं भी करता हूँ !) तो मेरे व्यक्तित्व की कँटीली झाडियो की तरफ उसे देखने का मौका नही मिला।

मैंने पता लगाना शुरू किया—हलके-हलके, छुपे छुपे, चालाकी से—कि यह किस ढग का आदमी है ! सब लोगो की यह राय थी कि वह इतना साधारण आदमी है कि इस पर सोचने की फुरसत किसी को नही थी। सिर्फ इतना मालूम था कि वह कुछ दिनो के लिए मेरे मित्र के पास रहने के लिए आया है, रिज़र्व्ड यानी अपने म बन्द किस्म का आदमी है।

ऐसा तो मैं भी हूँ। यह क्या बात हुई !

एक दिन पता चला कि भटनागर हमारा शहर छोडकर चला गया है, अपने पिता के पास गाँव मे ! पिता एक गाँव मे पटवारी हैं।

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1957]

तिलिस्म

सुबह अभी नही हो पायी थी। इस गली मे मेरे सामन रहनेवाले पडोसी के छोटे बच्चे के रोने की आवाज, जिसमे खीझ, पुकार, बेबसी और प्रार्थना भरी हुई थी, अँधेरे मे मँडराने लगी।

मेरी आँख खुली, पल-भर के लिए। फिर मैं सो गया। नीद के अँधेरे के फटे-फटे, लटकते लत्तरोवाले शामियाने मे मैं जग उठता। मैंने पाया कि मैं वहाँ नही हूँ, जहाँ मैं सो रहा था। यह कोई तिलिस्म है, जिसमे मैं गिरफ्तार हो गया हूँ। मुझे यह अच्छा लगा। मैंने कभी कोई तिलिस्म देखा नही था। सिर्फ उस सम्बन्ध म उपन्यास ही पढे थे। अगर मैं सचमुच तिलिस्म म हूँ ता इसस अच्छी कोई बात नही, क्योकि मुझे मालूम है कि अब मेरे पास वह बुढिया नही आयेगी, जो हर महीने की 30 तारीख को ही मेरे यहाँ आती है और कह जाती है कि ब्याज के पन्द्रह रुपये लाओ और पचीस किस्त क। उस बुढिया का चेहरा खूँखार नही है, लेकिन बूढी शेरनी को गेंडे की शक्ल मिल जाय—ऐसा चेहरा है। बाल एकदम सफेद और इस बुरी तरह बिखरे और उलझे हुए है, मानो वे बाल न होकर मकडी के घने-घने और चारों ओर जाले हो। जब वह रुपया माँगने आती है, तो ऐसा लगता है, मानो काली घटा घुमड आयी, अब बिजली कडकेगी और इस तरह

कड़केगी कि मेरा यह वृक्ष उसका शिकार बन जायेगा। एकदम, अकस्मात्, अब वह उस पर गिर पड़ेगी, और इस वृक्ष की हरी डालें रास्ते के बीचोबीच लुढ़क जायेंगी, और वे कोयला हो जायेंगी।

मुझे ऐसा लगा कि अगर सचमुच मैं तिलिस्म मे हूँ तो यह बहुत ही अच्छा है। वैसे डरने की बात तो यहाँ भी है। लेकिन अब उस बुढ़िया की जगह यहाँ पर बन्दी हो गयी कोई कनकलता राजकुमारी की पैंजनियाँ मुझको सुनने को मिलेंगी। और, शायद है, मुझसे उसका इश्क भी हो जाये। मैंने इसी धुन मे अपने बिस्तर को इसलिए टटोला कि सचमुच मैं तिलिस्म मे हूँ या नही। मुझे अच्छा लगा कि भ्रम मे न रहते हुए भी भ्रम म हूँ, तिलिस्म मे हूँ नही, यह निश्चित जान पड़ता था, किन्तु यह भी लगता था कि शायद मैं तिलिस्म मे भी हो सकता हूँ। इसलिए कि यहाँ न वह बुढ़िया है, न तगादे पर आनेवाले वे लोग, जिनको देखते ही मेरी रूह काँप उठती है।

कही कोई मीठी घण्टी बजी। रोमहर्षक मिठास मे काँप उठा। ऐसी मीठी जैसे कोई मिनिस्टर के ऑफिस मे बजती है, और जिसे सुनकर बाहर खड़ा कोई बड़ा अफ्सर, चौकस बुद्धि से कोमल हँसी हँसता हुआ, भीतर प्रवेश करता है, ठीक वही मीठी घण्टी। वाह रे, मुक्तिबोध, मैंने सोचा। आज यह अच्छा सगुन है। इस घण्टी की मिठास को देख मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा भी प्रमोशन हो गया हो, और उसी सम्बन्ध की अन्तिम निर्णयात्मक वार्ता के लिए वह अफ़सर मन्त्री की बैठक मे घुसा हो। अब यह असन्दिग्ध हो गया कि मैं तिलिस्म मे नही हूँ। मैं अपनी जानी-बूझी दुनिया मे हूँ। यह सचाई मुझे अच्छी नही लगी। यह ठीक है कि अगर मेरा प्रमोशन हो जाता है तो मैं तीस रुपये नये कर्ज की किश्त, कम-से-कम तीस रुपये पुराने कर्ज की और, बीस रुपये माँ के लिए, और कम-से-कम बीस मेरे चाय-पानी, साइकल-बस आदि के निकल जाने पर, ठीक डेढ़-सौ रुपया अपनी बीवी को दे सकूँगा। और फिर उस बुढ़िया की नाक पर हर महीने गर्व और अहंकार के साथ पैसे फेंक सकूँगा।

लेकिन, यह जहालत की दुनिया है। असली दुनिया तो तिलिस्म है, जिसमे जान का खतरा है तो राजकुमारी भी है, जिसमे अँधेरा है तो दिल-भरी रोशनी भी है। उसमे मुझे पैंजनियाँ सुनने को मिलेंगी, मेरी बहादुरी देखकर कोई मुझसे इश्क करेगी। कोई मुझे अपने इश्क के काबिल समझेगा। बाहरी दुनिया मे चाहे जितनी बहादुरी से ज़िन्दगी जीऊँ, सिर्फ चाय पीकर ही काम करता रहूँ, कोई मुझसे इसलिए इश्क नही करेगा। रश्क का तो सवाल ही कहाँ उठता है। इसलिए तिलिस्म चाहिए, तिलिस्म [illegible] — वह पूरा हो! काश [illegible] आसान है, लेकिन [illegible] चढ़कर भगतसिंह बन जाना कितना उत्तेजनात्मक, कितना भव्य, कितना प्रकाण्ड है! लेकिन रोज़-बरोज़ फाँसी के तख्ते पर चढ़ना, और लोहे का टोप पहनना, कितना मुश्किल है, यह मैं ही जानता हूँ! इसलिए मुक्तिबोध तिलिस्म चाहता है, काश उसे कोई दे सके! उसके लिए अँधेरे कुएँ में गिरने, चुनार के किसी गुप्त सुरंग मे घूमने, ऐयार बन जाने—सबके लिए तैयार है!

वह मीठी रोमहर्षक घण्टी बजती ही रही, अँधेरे मे मैं उसे सुनता ही रहा, चुपचाप, पड़े-पड़े ! फिर मुझे ऐसा लगा जैसे तिलिस्म मे प्रवेश करना और उसमे रहना मेरे लिए असम्भव नही है। इसलिए एक बार चौकस होकर अपनी स्थिति जान लेना चाहिए। क्योंकि अगर मैं सचमुच तिलिस्म मे हूँ, तो मुझे बहादुर राजकुमार-जैसा व्यवहार भी तो करना पडेगा। इसलिए लेटे-ही-लेटे, मैंने पहले हवा सूँघना शुरू की। जोर-जोर से साँस लेकर मैं वातावरण को पहचानने की कोशिश करने लगा।

मुझे प्रतीत हुआ, हवा मे बडी मिठास है, ताजगी भी है, और एक मीठी चिपचिपाहट। साफ कहूँ तो ऐसा लगा जैसे यूडीकोलोन की गन्ध लेकर कोई नारी मेरे सामने खडी है, चिपचिपाहट उसके रँगे हुए बहुचुम्बित होठो की है, और ताजगी है—एक पक्ति मे खडे हुए युकलिप्टस के पेडो की मीठी गन्ध की। अँधेरे मे ठण्डी, सुगन्धित, मीठी और कोमल ताजगी की लहरें लहरा रही हैं। यह निश्चित हो गया कि मैं तिलिस्म मे नही हूँ। लेकिन किसी अस्वाभाविक स्थान पर जरूर हूँ। नही तो इतनी बेरहम मिठास भला मेरे पल्ले कैसे पडती ! मैं गली के अँधेरे म रहनेवाला आदमी—यहाँ कैसे आ मरा ! कही कोई राज जरूर है !

पहले तो मैं राज के नाम से घबराया। लेकिन, राज म मिठास हो सकती है। हवा को सूँघने से तो यूँ ही लगता था कि यह राज बडा मीठा है। इसलिए मैंने टटोलना शुरू किया। मैंने बडे धीमे धीमे, बहुत एहतियात स, बिस्तर पर ही हाथ फेरना शुरू किया। एकाएक मुझे यह खयाल हुआ कि यह बिस्तर मेरा नही है, लेकिन इस बिस्तर को कही देखा-पहचाना है। कहाँ देखा, कब देखा—बहुत कोशिश की कि याद आ जाये। लेकिन याद करने की जितनी कोशिश की, उतना मुझे डर लगने लगा। मुझे प्रतीत हुआ, मैं किसी अस्वाभाविक स्थान मे आ पहुँचा हूँ। लेकिन याद तो करना ही पडेगा, नही तो बहुत मुश्किल होगी। लिहाजा, मैंने हिम्मत से ज्यादा दूर तक हाथ फेरना शुरू किया। मैंने एक उँगली गडाकर यह देखना शुरू किया कि यह मेरी पतली गद्दी है या कोई और नफ्स।

वह मुलायम मोटा गद्दा था। उस पर धुली सफेद चादर बिछी होनी चाहिए। वह गद्दा इतना मुलायम था कि वह सेमल की रुई का होना चाहिए। लेकिन मेरी आँखो के सामने जब मैंने उस गद्दे का तक्शा खडा किया तो मुझे मालूम हुआ कि उस पर न मालूम कितने ही लोग सोये रहे होगे। उस गद्दे स मुझे नफरत होनी चाहिए। लकिन धीरे-धीरे, धीमे धीमे, मुझे यह खयाल आया कि नफरत से काम नही चलगा। पहले यह देखना जरूरी है कि मैं कहाँ हूँ। और यह गद्दा मैंने कहाँ देखा है।

मैंने उस बिस्तर को ज्यादा जोर स टटोलना शुरू किया। मुझे यह खौफ हुआ कि कही यह बिस्तर ईरान का वह ग़लीचा न निकल आय, जो अपनी पीठ पर अपने बैठे हुओ को लेकर हवा म उडा करता था। लेकिन युकलिप्टस की गन्ध ने *इस खयाल को दूर भगा दिया। मैंने हिन्दुस्तान मे युकलिप्टस के पेडो की हवा बहुत* सूँघी है। इसीलिए मैं हिन्दुस्तान मे हूँ, ईरान मे भला कैसे हो सकता हूँ ! इस खयाल ने मुझे बल दिया, हिम्मत दी।

मेरी आँखें खिडकियो की ओर गयी। उनमे कांच के तावदान जडे हुए थे। शीशे मे से बाहर के नीले-अँधेरे आसमान स तारे चमचमा रहे थे। मुझे खयाल

आया कि हो सकता है कि मैं चन्द्र-ग्रह पर होऊँ और जो तारे दिखायी दे रहे हैं, उनमे से एक पृथ्वी भी हो, जहाँ पर मेरे पूज्य माता पिता और प्यारे भाई और दोस्त हैं। इसमे असम्भव कुछ भी नही है। क्योकि आजकल जबकि कल का लौण्डा डिप्टी मिनिस्टर बन सकता है, और एक अखबार बेचनेवाला हॉकर टाउन कांग्रेस कमेटी सेक्रेटरी के ओहदे के रास्ते मिनिस्टर बनकर लाखो खा पिला सकता है, और कल का भिखारी कांग्रेसी बनकर राशन की दूकान कायम करके, प्रान्तीय कमेटी का अध्यक्ष हो सकता है—आजकल जबकि सभी असम्भव सभी सम्भव हो सकता है, तब मैं लेखक होने के नाते चन्द्र-ग्रह के किसी बँगले म विश्राम क्यो नही पा सकता ! खैर, मैं चन्द्र-ग्रह मे नही हूँ। हिन्दुस्तान मे हूँ और

' और किसी बँगले मे हूँ। किसी मुलायम बिस्तर पर सोया हुआ हूँ। अब मुझे शीघ्र ही उठना चाहिए और जाँच-पडताल कर लेनी चाहिए।

इतने मे मुझे ऐसा लगा मानो मुझे फिर वही मीठी रोमहर्षक घण्टी सुनायी दी। रूम म भरे हुए नीले अँधेरे मे वह घण्टी गूँज रही थी। धीरे धीरे मुझे भान हुआ कि वह मीठी घण्टी हो ही नही सकती। वह और कुछ है। कोई पहचानी आवाज। कोई पहचाना शब्द। पता नही क्यो, उस पहचानेपन से मेरे सारे शरीर पर रोंगटे खडे हो गये। इस अस्वाभाविक स्थान म, मैं सबसे अपरिचित रहकर ही पहले सबका परिचय कर लना चाहता था। लेकिन यह पहचानी हुई आवाज मुझे पहचान ले तो !

तो बहुत बुरा होगा। मैं अपराधी साबित हूँगा—अपराधी इसलिए कि मुझे क्या हक है कि मैं गरीब आदमी इस बँगले मे चला आऊँ और बिस्तर पर सो रहूँ। यद्यपि अल्लाह-ताला जानता है कि न मैं इस बँगले पर आया, और न स्वय इस बिस्तर पर सोने।

निश्चय ही वह किसी मनोहर सुन्दर रमणी की हँसी की आवाज थी, जिसे मैंने पहले कभी लगातार कई बार सुना है। कौन होगी भला वह, ईश्वर जाने ! किसकी हिम्मत है कि वहाँ तक पहुँचे ! इससे तो अच्छा है कि मैं यह खिडकी खोल दूँ और यहाँ से भाग निकलूँ बिल्कुल सीधे घर की ओर।

भागने की सम्भाव्यता ध्यान म आते ही मुझे अच्छा लगा। जागते म और सोते मे, जहाँ तक हो सके तिडी देकर भाग जाना और हाथ न आना—मैं एक अद्भुत कला समझता हूँ। स्वराज्य प्राप्ति के बाद जो नयी चौसठ कलाएँ निकली हैं, उनमे से 'मारो खाओ हाथ मत आओ' मैं सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ। हायड्रोजन बम का उत्पादन इतना कठिन नही, जितना उपर्युक्त व्यावहारिक आदर्श का निर्वाह। चुनाव के मैदानो म जो भाडे पर लिये हुए गुण्डो का पार्ट होता है, ठीक वही सरकारी कार्यालयो मे हमारा भी। फर्क यही है कि हमको हमारी गुण्डई का भान नही होता। इसलिए 'मारो, खाओ, हाथ मत आओ' वाले सिद्धान्त हम छोटे कर्मचारियो के लिए पर्याप्त कठिन हैं। कठिन होते हुए भी पर्याप्त रूप से मनोहर और आकर्षक।

इसलिए मैंने यह सोचा कि उस खिडकी मे से सीधे भाग निकलना चाहिए। जब तक अँधेरा है, तभी तक मौका है।

इसलिए, बिस्तर से उठने के पहिले, मैंने सारे कमरे पर अपनी नजर दौडायी।

वह मीठी रोमहर्षक घण्टी बजती ही रही, अँधेरे मे मैं उसे सुनता ही रहा, चुपचाप, पडे-पडे ! फिर मुझे ऐसा लगा जैसे तिलिस्म म प्रवेश करना और उसमे रहना मेरे लिए असम्भव नही है। इसलिए एक बार चौकस होकर अपनी स्थिति जान लेना चाहिए। क्योकि अगर मैं सचमुच तिलिस्म म हूँ, तो मुझे बहादुर राजकुमार-जैसा व्यवहार भी तो करना पडेगा। इसलिए लेटे-ही-लेटे, मैंने पहले हवा सूँघना शुरू की। जोर-जोर से साँस लेकर मैं वातावरण को पहचानने की कोशिश करने लगा।

मुझे प्रतीत हुआ, हवा म बडी मिठास है, ताजगी भी है, और एक मीठी चिपचिपाहट। साफ कहूँ ता ऐसा लगा जैसे यूडीकोलोन की गन्ध लेकर कोई नारी मेरे सामने खडी है, चिपचिपाहट उसके रँगे हुए बहुचुम्बित होठो की है, और ताजगी है—एक पक्ति मे खडे हुए युकलिप्टस के पेडो की मीठी गन्ध की। अँधेरे मे ठण्डी, सुगन्धित, मीठी और कोमल ताजगी की लहरें लहरा रही हैं। यह निश्चित हो गया कि मैं तिलिस्म मे नही हूँ। लेकिन किसी अस्वाभाविक स्थान पर जरूर हूँ। नही तो इतनी बेरहम मिठास भला मेरे पल्ले कैसे पडती ! मैं गली के अँधेरे म रहनेवाला आदमी—यहाँ कैसे आ मरा ! कही कोई राज जरूर है !

पहले ता मैं राज के नाम से घबराया। लेकिन, राज म मिठास हो सकती है। हवा को सूँघने से तो यूँ ही लगता था कि यह राज बडा मीठा है। इसलिए मैंने टटोलना शुरू किया। मैंन बडे धीमे धीमे, बहुत एहतियात स, बिस्तर पर ही हाथ फेरना शुरू किया। एकाएक मुझे यह खयाल हुआ कि यह बिस्तर मेरा नही है, लेकिन इस बिस्तर को कही देखा-पहचाना है। कहाँ देखा कब देखा—बहुत कोशिश की कि याद आ जाये। लेकिन याद करने की जितनी कोशिश की, उतना मुझे डर लगने लगा। मुझे प्रतीत हुआ, मैं किसी अस्वाभाविक स्थान मे आ पहुँचा हूँ। लेकिन याद तो करना ही पडेगा, नही तो बहुत मुश्किल होगी। लिहाजा, मैंने हिम्मत स ज्यादा दूर तक हाथ फेरना शुरू किया। मैंने एक उँगली गडाकर यह देखना शुरू किया कि यह मेरी पतली गद्दी है या कोई और नफ्स।

[illegible] ोनी चाहिए। [illegible] लेकिन मेरी [illegible] ूम हुआ कि उस पर न मालूम कितने ही लोग सोये रहे होगे। उस गद्दे स मुझे नफरत होनी चाहिए। लेकिन धीरे-धीरे, धीमे-धीमे, मुझे यह खयाल आया कि नफरत से काम नही चलेगा। पहले यह देखना जरूरी है कि मैं कहाँ हूँ। और यह गद्दा मैंने कहाँ देखा है।

मैंन उस बिस्तर को ज्यादा जोर स टटोलना शुरू किया। मुझे यह खौफ हुआ कि कही यह बिस्तर ईरान का वह गलीचा न निकल आय, जा अपनी पीठ पर [illegible] को लेकर [illegible] करता था। लेकिन [illegible] की गन्ध ने [illegible]

[illegible] खयाल न मुझे बल दिया, हिम्मत दी।

मेरी आँखें खिडकियो की ओर गयी। उनम काँच के तावदान जडे हुए थे। शीशे म से बाहर के नीले-अँधेरे आसमान स तारे चमचमा रहे थे। मुझे खयाल

आया कि हो सकता है कि मैं चन्द्र-ग्रह पर होऊँ और जो तारे दिखायी दे रहे हैं, उनमें से एक पृथ्वी भी हो, जहाँ पर मेरे पूज्य माता-पिता और प्यारे भाई और दोस्त हैं। इनमें असम्भव कुछ भी नहीं है। क्योंकि आजकल जबकि कल का लौण्डा डिप्टी मिनिस्टर बन सकता है, और एक अखबार बेचनेवाला हॉकर टाउन कांग्रेस कमेटी सेक्रेटरी के ओहदे के रास्ते मिनिस्टर बनकर लाखों खा-पिला सकता है, और कल का भिखारी कांग्रेसी बनकर राशन की दूकान क़ायम करके, प्रान्तीय कमेटी का अध्यक्ष हो सकता है—आजकल जबकि सभी असम्भव सभी सम्भव हो सकता है, तब मैं लेखक होने के नाते चन्द्र-ग्रह के किसी बँगले में विश्राम क्यों नहीं पा सकता! ख़ैर, मैं चन्द्र-ग्रह में नहीं हूँ। हिन्दुस्तान में हूँ और···

और किसी बँगले में हूँ। किसी मुलायम बिस्तर पर सोया हुआ हूँ। अब मुझे शीघ्र ही उठना चाहिए और जाँच-पड़ताल कर लेनी चाहिए।

इतने में मुझे ऐसा लगा मानो मुझे फिर वही मीठी रोमहर्षक घण्टी सुनायी दी। रूम में भरे हुए नीले अँधेरे में वह घण्टी गूँज रही थी। धीरे धीरे मुझे भान हुआ कि वह मीठी घण्टी हो ही नहीं सकती। वह और कुछ है। कोई पहचानी आवाज़। कोई पहचाना शब्द। पता नहीं क्यों, उस पहचानपन में मेरे सारे शरीर पर रोंगटे खड़े हो गये। इस अस्वाभाविक स्थान में, मैं सबसे अपरिचित रहकर ही पहले सबका परिचय कर लेना चाहता था। लेकिन यह पहचानी हुई आवाज़ मुझे पहचान ले तो!

तो बहुत बुरा होगा। मैं अपराधी साबित हूँगा—अपराधी इसलिए कि मुझे क्या हक़ है कि मैं ग़रीब आदमी इस बँगले में चला आऊँ और बिस्तर पर सो रहूँ। यद्यपि अल्लाह-ताला जानता है कि न मैं इस बँगले पर आया, और न स्वयं इस बिस्तर पर सोया।

निश्चय ही वह किसी मनोहर सुन्दर रमणी की हँसी की आवाज़ थी, जिसे मैंने पहले कभी लगातार कई बार सुना है। कौन होगी भला वह, ईश्वर जाने! किसकी हिम्मत है कि वहाँ तक पहुँचे! इससे तो अच्छा है कि मैं यह खिड़की खोल दूँ और यहाँ से भाग निकलूँ बिल्कुल सीधे घर की ओर।

भागने की सम्भाव्यता ध्यान में आते ही, मुझे अच्छा लगा। जागते में और सोते में, जहाँ तक हो सके, तिड़ी देकर भाग जाना और हाथ न आना—मैं एक अद्भुत कला समझता हूँ। स्वराज्य प्राप्ति के बाद जो नयी चौंसठ कलाएँ निकली हैं, उनमें से 'मारो, खाओ, हाथ मत आओ' मैं सर्वश्रेष्ठ समझता हूँ। हाइड्रोजन बम का उत्पादन इतना कठिन नहीं, जितना उपर्युक्त व्यावहारिक आदर्श का निर्वाह। चुनाव के मैदानों में जो भाड़े पर लिये हुए गुण्डों का पार्ट होता है, ठीक वही सरकारी कार्यालयों में हमारा भी। फ़र्क़ यही है कि हमको हमारी गुण्डई का भान नहीं होता। इसलिए 'मारो, खाओ, हाथ मत आओ' वाले सिद्धान्त हम छोटे कर्मचारियों के लिए पर्याप्त कठिन हैं। कठिन होते हुए भी पर्याप्त रूप से मनोहर और आकर्षक।

इसलिए मैंने यह सोचा कि उस खिड़की में से सीधे भाग निकलना चाहिए। जब तक अँधेरा है, तभी तक मौक़ा है।

इसलिए, बिस्तर से उठने के पहिले, मैंने सारे कमरे पर अपनी नज़र दौड़ायी।

ठण्डी, भीनी, खुशबू-भरी हवा खेल रही थी। कमरा मुझे खूब ही बडा मालूम हुआ। कमरे के कोनो मे छोटे टेबिलो पर गुलदस्ते रखे हुए थे, और लम्बी-चौडी, काँच की खिडकियो के पास कोचेज रखे हुए थे। सारा कमरा हलके नीले रग से पुता हुआ था। सामने की दीवाल पर किसी बहुत बडे आदमी की, मनुष्य के बराबर ऊँची तसवीर, जरा नीचे की ओर झुकी हुई लगी हुई थी। कमरे के बीचोबीच छोटी सी एक और टेबिल थी जिस पर एक बडी फूलदानी रखी हुई थी। आधुनिक साज-सज्जा से विभूपित यह कमरा मुझे बहुत ही भला मालूम हुआ।

मैंने यह सोचा कि इन कुर्सियो को बचाते हुए, उस टेबिल के पीछे से गुजर-कर, उस कोच की आड मे खडे हो, मैं उस लम्बी-चौडी खिडकी मे से यह देख सकता हूँ कि बागीचे को फाँदकर (मैंने यह मन-ही-मन कल्पना कर ली थी कि बाहर एक लम्बा-चौडा बग़ीचा है, जिसके अहाते के पास पक्तिबद्ध होकर युकलिप्टस के पेड खडे हैं) किस तरह बाहर सडक पर निकला जा सकता है।

यह सोचते हुए ही, मैंने उठने के लिए शरीर को हिलाने की जरा कोशिश की तो ··

एक बहुत ही अजीब बात हुई, दिल को जबर्दस्त ठण्डा धक्का लगा। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे सारा शरीर लकडी के बडे-बडे लट्ठो का बन गया हो, और घड भयानक वजनदार लोहे का बना हो।

दु ख, खेद और भय का कम्प दिल-ही-दिल मे उठा और कुचल दिया गया। उससे तो मेरे रोगटे खडे होने चाहिए थे। लेकिन मुझे लगा, जैसे मेरा सारा शरीर काठ और लोहे का बन गया है, उस पर रोम या बाल तो हो ही नही सकते। इसलिए कम्प दिल मे उठा और दिल ही मे मर गया।

मुझे चिन्ता हुई कि मेरा क्या हो गया ! मैंने बेबस होकर सारे कमरे की ओर देखा, खिडकी की ओर देखा, उन तारो को देखा जो खिडकी मे से झांक रहे थे। शिकारी द्वारा आहत हिरनी की बेबस आँखो से समूचे ससार को टटोला। लेकिन कही कोई सहारा न पाया ! कोई मुझे यह बताये कि मुझे क्या हो गया ! मैंने चीखना चाहा, चीखने की कोशिश की। लेकिन गले से आवाज न निकल पायी।

इतने मे वही मीठी रोमहर्षक मिठासभरी घण्टी बज उठी। किसी सुन्दर नारी की वही मीठी परिचित हँसी ! लेकिन अब उसके प्रति आकर्षण न रहकर, मेरे हृदय मे केवल ग्लानि, विक्षोभ और बेबसी का भाव था।

क्या करता ! चुपचाप वैसे ही पडा रहा। मैंने अनुमान किया, शायद मैं बिस्तर ही से जकड दिया गया हूँ। लकिन, यह सच नही था।

हिलने-डुलने की कोशिश मे, मुझे यह निश्चय हो गया कि मैं हिल-डुल सकता हूँ। सिर्फ हाथ काठ और लोहे के हो गये हैं—उतने ही वजनदार ! उतने ही सवेदनशील ! मैंने शरीर पर जोर से हाथ फेरा, जो काफी मुलायम था। लेकिन उसका मुलायमपना वैसा ही था, जैसे कोई चमकदार मुलायम वार्निश की चिकनाहट !

बीच-बीच मे वही मीठी घण्टी बजती ही रही, वह हँसी होती ही रही ! मैं उसे चुपचाप एक लक्ष्य होकर सुनने लगा और पहचानने का प्रयत्न करने लगा। सुनते-सुनते न मालूम कितना समय बीत गया, और तब मुझे सहसा यह भान हुआ

कि वही मनोहर कण्ठ मेरा नाम ले-लेकर बातें कर रहा है, वही परिचित स्वर। निश्चय ही मेरे सम्बन्ध मे बातें हो रही हैं। हँसी का वही फुहारा, वही चचलता। परिचित आवाज ! यह क्या है, मैं कहाँ हूँ, मेरे सम्बन्ध मे क्यो बातें चल रही हैं, बातें करने और सुननेवाली ये कौन है ? फिर, उनके स्वर म किस उत्सव की खुशी नाच रही है ? ऐसा कौन-सा नया आनन्द हुआ है उन्हे ? उधर मैं काठ का उल्लू बन गया हूँ, उधर ये कोयलें क्यो बोल रही हैं ? मैं तिलिस्म म हूँ या और कहीं हूँ, किस अस्वाभाविक जगह फँस गया हूँ। कोई मुझे बतलाये !

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1957-58]

अधूरी कहानी : आठ

साँझ की पीली केसरी किरनें जब विशालकाय पीपल की सबसे ऊपरवाली सुदूर-गामी शाखा-प्रशाखाओ पर पहुँच गयी थी, तब हमारे चौराहे की हवा मे उडती हुई धूल भी रँग गयी थी। इतनी और इस प्रकार कि मानो साँझ इस अध-बनी और कभी पूरी न हो सकनेवाली भूरी सडक के फैलाव पर लम्बी-चौडी सर्चलाइटें फेंक रही हो। आसमान की ओर देखने से ऐसा प्रतीत होता था, मानो वहाँ गुलाबी, लाल, नारगी किरनो के तनाव तन गये हो, या उनके ढालवें पुल बन रहे हों। दूसरी और तीसरी मजिले की खिडकियो से मालव-सन्ध्या हर घर मे घुस चुकी थी, और एक अजीब कल्लोलमय वायुमण्डल सब ओर इस अन्दाज से लहरा रहा था, मानो उस लहराते हवाई फैलाव के दिल के भीतर कोई बात खटक रही है, और वह खटक मीठी-सी लग रही है।

ऐसी शामे हमारे इस चौराहे पर अक्सर आती हैं, और तब स्कूली लडके हाईस्कूलो और इण्टरमीडिएट कॉलेजो से वापिस लौट, हाथ-मुँह धो, इस फिराक मे होते हैं कि वे प्ले-ग्राउण्ड पर जाकर वॉलीबॉल और हॉकी म भिड जायें। तब उनकी भुजाओं के स्नायुओ मे शारीरिक स्फूर्ति और मन मे उमगो का रगीन आह्लाद, हलके सुगन्ध के बादल-सा, तैरता रहता है।

ठीक एक ऐसी ही शाम, साठ साल की बूढी ऊँची काठी के, किन्तु शुष्क शरीर, एक बुजुर्ग श्री रमेशचन्द्र जोशी, रिटायर्ड सेशन्स जज, अपने मकान के चबूतरे पर खडे हो प्लेग्राउण्ड पर जाते हुए स्कूली लडको के जत्थो की ओर एक अजीब नजर से देख रहे थे। उनका सुडौल, किन्तु मुरझाया चेहरा अपने बीते हुए युग की पगडण्डियो पर गूँजनेवाले किसी के पद शब्दो के दुबारा उभरने का इन्तजार कर रहा था—हाँ, एक तरह से, दुबारा उभरने का ही। झुर्रियो से बुने गये उनके चेहरे को इन्तजार-भरी चिन्ता ने ज्यादा मलूल, ज्यादा गुमसुम, और ज्यादा उदास बना दिया। छह साल बाद घर वापिस आने की सूचना देनेवाले पुत्र की व्यग्र प्रतीक्षा ने उस वृद्ध पिता को, सईं-साँझ उस वृक्ष से भी बदतर बना डाला

कि वे माताएँ जिनके बहुत-से शिशु-शावक बीमार होकर समाप्त हो जाते हैं, उनका कठोर अनुभवी हृदय नदी के समीपवर्ती उस रेतीली जमीन के समान होता है, जिसके भीतर जरा उँगलियाँ डालीं कि पानी निकल आया। जरा से स्पर्श से माताओं का जला हृदय पानी टपका देता है। यह तो मात्र पुत्र-वियोग की बात हुई। किन्तु जिसके लड़के बिगड़ जाते हैं, उस बूढ़े बाप का दिल एक ही साथ पुत्र-विरह और विनाशक निराशा से युक्त होकर जो ताण्डव करता है, उसका इतिहास लिखने के लिए बहुत बड़ा लेखक चाहिए। आज रमेशचन्द्र जोशी और इस मजदूर के मन में, पुत्र-विरह के साथ ही वे विचार और आशकाएँ उठ रही हैं ··

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1957-58]

ना घर तेरा, ना घर मेरा, चिड़िया रैन बसेरा

घर मे बैठने की जगह ही कहाँ है ! और, अगर है भी तो वहाँ तरह-तरह की चिन्ताएँ घेर लेती हैं। ये चिढते हैं, वो झटक देते हैं। इससे अनबन, उससे बेबनाव। हर एक को जो दु ख है उसका कारण वह दूसरे मे ढूंढता है, साथी मे ढूंढता है। पिता पुत्र के असन्तुष्ट, पत्नी पति से, पति सबसे असन्तुष्ट है। यह ठीक है कि हर-एक का व्यक्तिगत इतिहास है, और यदि किसी मे कोई कमजोरी है, तो उसको बनाने मे परिस्थितियो ने और दूसरे के बर्ताव ने योग दिया है। लेकिन कौन किस मात्रा मे सही है, और कौन गलत है, इसका निर्णय करने से सुख थोड़े ही मिलता है ! निर्णय करते रहना जीना तो नही है।

साफ है कि कृष्णस्वरूप घर से घबराता है और भीड मे निकल जाता है, खो जाता है। कुछ बुद्धिमान कहते है कि भीड मे व्यक्तित्व का लोप हो जाना ठीक नही। लेकिन, क्षण-भर के लिए ही क्यो न सही, भीड मे अपने से मुक्ति तो मिल जाती है। चहलपहल, रौनक, रफ्तार, और शोर मे ही क्यो न सही, खुद का [illegible] होता ही है। खुद से छुटकारा जरूरी चीज है।

एकान्त मे भी साहचर्य
डर नही, जितना इस
बात का कि हम वह नही हो सकते, जो कि हमे होना चाहिए। यानी कृष्णस्वरूप सचमुच कृष्ण होना चाहता है, भगवान कृष्ण, योगी और अनासक्त। कर्मक्षेत्र ही

द्वारा विजयी होना चाहता है। लेकिन, पल-पल, क्षण-क्षण वह हारता रहता है। वह चिढ जाता है, गुस्से मे तमतमाता है, गाली देता है, आत्महत्या करना चाहता है। इन्द्रिय-दमन के स्थान पर वह रोज़ सुबह तीन रोटी और चावल और शाम को दो रोटी और चावल पेट म डालता है। सुवह उठकर चाय भी पीता है, और अब बीडी भी पीने लगा है। घर का खर्चा बढता है, तो अपन को खूब गाली देता है, और फिर बीवी पर बरस पडता है। बीमार पडता है तो प्राकृतिक चिकित्सा की ओर निकल जाता है। किन्तु, वह अपने आदर्श को नही पा सकता। और, उसका आदर्श क्या है? पैर उतने पसारो, जितनी चादर है। लेकिन उसकी इन्द्रियाँ पैर पसारती हैं, ज्यादा खाना माँगती हैं, भले मानस जैसा कपडा माँगती हैं, इज्जत माँगती हैं! चाहिए, चाहिए, चाहिए! इस 'चाहिए' ने आत्मा को विकृत कर डाला है। आसक्ति बुरी चीज है। क्योकि अगर वह खूब अच्छा मनोनिग्रह कर लेता है तो बराबर बीस-बाईस रुपया हर माह बच सक्ते है। लेकिन नही, उसकी चाय की आदत ने सबको, बिगाड दिया, बच्चे और बीवी भी चाय पीने लगे हैं। महाभारत मे व्यासजी ने ठीक ही कहा है

'जानामि धर्मं नच मे प्रवृत्ति
जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्ति।
केनापि देवेन हृदिस्थितेन
यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोस्मि।।"

कृष्णस्वरूप के स्वप्न मे बडे-बडे लोग आये। महात्मा गाधी, जवाहरलाल नेहरू, शकराचार्य, यहाँ तक कि मार्क्स भी। लेकिन किसी ने उसको उसके एकान्त मे सुख नही दिया। एकान्त मे साहचर्य है। कौन कहता है कि व्यक्ति अकेला होता है? वह मरने पर शायद अकेला हो! कहनवाले कहते हैं कि एकान्त ही मे सृजन हुआ करता है। (कृष्णस्वरूप लेख भी तो पढता है, भाषण भी तो सुनता है)। लेकिन, सृजन म भी साहचर्य है किसी अन्तर्जीव का। और सृजन के पहले जो बीजारोपण हुआ है, वह एकान्त म भले ही हुआ हो, साहचर्य और गति तो उसम भी है। इसलिए एकान्त निरी कल्पना है। वैसे तो दस आदमियो के बीच मे भी एकान्त हो सकता है, यानी किसी एक के लिए बाकी दस अनुपस्थित हो सक्ते हैं, शरीरत रहते हुए भी। कृष्णस्वरूप क्षण भर तो भीड म खो जाता है, लेकिन तुरन्त ही वह जन-सम्पर्क अनुपस्थित हो जाता है, और वह अपने मे डूबा हुआ चला चलता है और कभी-कभी उसक मुँह से एक श्लोक निकल पडता है।

किन्तु, कृष्णस्वरूप से अधिक कोई इस बात को नही जानता था कि ये सब बातें कितनी झूठ हैं, कि उनमे से एक भी करते नही बनती। कि यह सब मन-बहलावा है, खुद को छलकर ऊँचा उठाने की तरकीब है। और तब उसे अपनी असफलता और वचना की निचली गहरी थाहे दिखायी देती हैं, और अपने आप पर से उसका सारा विश्वास लुप्त हो जाता है। धर्म, दर्शन और नीति ने उसे कुचला ही है, कुचल-कुचलकर चटनी बना डाला है। फिर भी उसे वे ग्रन्थ अच्छे लगते हैं। उसके बीवी, बच्चे जानते हैं कि कृष्णस्वरूप कमरा बन्द करके रामायण पढता है, और बीच-बीच म रोने की लहरें उमड आती हैं, छाती भरकर रुँध जाती है, और न मालूम कहाँ का क्रन्दन बेतहाशा फूट पडता है। कृष्णस्वरूप को एकान्त का

तजुर्बा है, इसीलिए वह एकान्त को साहचर्य का ही एक रूप-विशेष मानता है।

बेवकूफ है कृष्णस्वरूप। उसे अपनी बेवकूफी पर भरोसा है। इसीलिए, धार्मिक होते हुए भी उसे धर्म पर विश्वास नही है। ईश्वर पर विश्वास नही है। हर चीज कुचलती है, हर बात नाशात्मक है। इसलिए, जिसे वह नीति समझता है, उसका वह क्रियात्मक प्रयोग अपने पर करता है, अपने बच्चो पर करता है। वह पत्थर-दिल है। इसलिए, वह स्वय नाश करता है। सुबह कानूनन रोटियाँ पा चुकने के बाद, भोजन हो चुकने के बाद, अगर किसी ने घर मे कोई चीज बनाकर खायी, तो उसके क्रोध का ठिकाना नही रहता। वह हर चीज गिनकर लाता है, गिनकर रखता है, गिनकर खाता और गिनकर खिलाता है। कभी-कभी उसकी गैरहाजिरी मे, और माँ की डाँट की परवाह न करते हुए, बच्चे और कुछ नही तो मूली ही खा जाते हैं, या एकादशी के दिन, अपने नाना के लिए ऊपर आले मे रखे हुए, मूँगफली के दाने खा जाते थे। तब देखिये, उनकी कैसी पिटाई होती थी। कृष्णस्वरूप से सब डरते थे। वह अपने प्रति कठोर था, दूसरो के प्रति भी।

और, फिर भी वह अपने मन पर नियन्त्रण नही कर पाता था। ऑफिस से घर लौटते समय (वह अभी भी आवक-जावक-नवीस था), जहाँ [रास्ता] सेक्रेटेरिएट से शहर की ओर मुड जाता था, उसे एकान्त मिलता। मोड से उतार शुरू होता था। उतार के एक ओर पहाडी थी, जिस पर देवी का मन्दिर था। पहाडी के निचले हिस्से मे बडे-बडे गोलमटोल टीले थे। उन टीलो के पास सायादार पेड भी थे। उन पेडो के नीचे गाय खडी दिखती तो कृष्णस्वरूप मुग्ध हो जाता। चट्टानो पर बकरियाँ खडी मिलती, जिन्हे देख अपूर्व शोभा से उसका मन भर जाता। और तुरन्त ही, उसे यह खयाल आता कि काश इस उतारवाले रास्ते पर उसे कोई दस का नोट पडा हुआ मिल जाये और उसकी कोई समस्या हल हो जाये। बाद मे इस मानसिक रोग से वह चौकन्ना हो उठा। लेकिन मानसिक रोगवाला वह खयाल बहुत अच्छा था। वह क्या था? उसे कही से तीन-चार सौ मिल गये हैं, वे पडे मिले हैं, या किसी कृपालु ने दे दिये हैं, और वह उन रुपयो से अपनी तात्कालिक समस्याएँ दूर कर रहा है। बडा ही मीठा खयाल था।

लेकिन ज्यो ही अपने घर की झलक उसे मिलती, उसे बच्चो की उतरी हुई सूरतें दिखायी देती, जिन्हें देख उसके मन मे असफलता-जनित क्रोध उत्पन्न होता, और वह गरम धुएँ-सा घर मे प्रवेश करता। लेकिन फिर भी, बच्चो के जरा-से स्पर्श और जरा-सी मुसकान से वह खिल उठता। और वे बच्चे चाय की कप-बशियो के इन्तजार मे खुश होकर नाचने लगते।

अगर आप उसके घर पर जायेंगे तो पायेंगे वह खूब साफ-सुथरा है। सामने आंगन [illegible] जिसके मिट्टी [illegible] बैठक है, [illegible] पर फटी सतरंजी को करीने से बिछाया गया है। पश्चिम और पूरब की खिडकियो से आसमान भीतर आ जाता है। और अन्दर के कमरे मे उसी तरह शान्त, गम्भीर

और नीरव है। कृष्णस्वरूप के एक मित्र ने मुझसे कहा, "यह गम्भीरता अस्वाभाविक है।"

मैं चुप रहा। यहाँ हर चीज तरीके मे है, हर चीज के कठोर नियम हैं। बच्चे पिता के आते ही बिल्ली बनकर भाग जाते हैं। इसलिए मैंने जवाब दिया, "यह गम्भीरता नियम की जडता का फल है।"

किन्तु कृष्णस्वरूप के मित्र ने कहा, 'इस नियम-जडता का परिणाम अच्छा नही होगा, बच्चो पर।"

कौन जाने, आगे क्या होगा ! हाँ, यह सही है कि उस घर मे किसी भी भले-मानस का अच्छी तरह स्वागत होता है। अतिथि का आगमन उसके बच्चो के लिए, उसकी स्त्री के लिए, उत्सव का दिन है। तब नियम की जडताएँ टूट जाती है, गम्भीरता खिलखिलाकर आनन्द बन जाती है। कृष्णस्वरूप भी चचल हो जाता है। परिणाम यह है कि बेचारे अतिथि की ऐसी तैसी हो जाती है, वह सत्कार और स्वागत का ऐसा आवेग और आवेश नही सह सकता। नमकीन पूरियाँ और चाय, भजिये और चाय, की बाढ आ जाती है। बेचारे अतिथि को मुसीबत का सामना करना पडता है। ये खाओ, ये पीओ ! यहाँ बैठो ! !

सक्षेप मे, उस दिन सारा घर रईस बन जाता है।

लेकिन यह कभी कभी ही हो सकता है। इसलिए, कृष्णस्वरूप रोज शाम को लायब्रेरी जाता है। किताबें देखता रहता है, भाषण सुनता है, और भाषण की समाप्ति के बाद, कार्यक्रम के अन्त से उत्पन्न उस समूह के पास खडा हो जाता है, जो साधारणत भाषणकर्ता को घेरे रहता है। वह कुछ खास बोलता या पूछता नही। उसमे इतना साहस नही है, क्योकि वह अपने को निर्बुद्धि समझता है। लेकिन, सयोजक यह जानते है कि कृष्णस्वरूप एकाग्र श्रोताओ मे से है, और बिना चूके हाजिर रहता है। इसलिए एक बार एक सयोजक ने उसका परिचय एक स्थानीय भाषणकार से करा दिया।

स्थानीय भाषणकार महोदय, जो इस पुस्तकालय के प्रागण मे, अध्यक्ष रूप से तो कभी प्रधान वक्ता के रूप से, कार्यक्रम की शोभा बढा चुके हैं, यश और अपयश दोनो के एक साथ भागी हैं। यश इसलिए कि वे हर विषय को सजाकर सामने रख सकते हैं और धाराप्रवाह बोल सकते हैं, और अपयश इसलिए कि लोग उनके वक्तृत्व से उनके व्यक्तित्व तक पहुँच जाते है।

असल मे, वह एक ऊबड-खाबड आदमी है, जिसकी एकमात्र इच्छा यह है कि वह सब लोगो मे पूजा जाय। सब लोग उससे चिढते है, क्योकि वह अहम्मन्य है और अपने सामने किसी को नही गिनता। लेकिन चूँकि वह हमेशा आगे बढना चाहता है, इसलिए खुशामदपरस्त भी है। बडो की खुशामद, छोटो का अपमान—यह उसकी विशेषता है। बावजूद इसके, उसके सामने कुछ घडियाँ, कुछ पल, साफ होते हैं। वह गरीबी मे से निकला है, इसलिए दिल के किसी-न-किसी कोने मे, गरीब चेहरेवालो की तरफ, साधारण जनों के प्रति, कोई-न-कोई नस तडकती है। यही कारण है कि ऐसे ही एक साफ-सुथरे पल मे, उसने खुद आगे बढकर कृष्णस्वरूप से कुछ बातें की, जो बडी ही सहज, कोमल और विश्वासप्रद थी। कृष्णस्वरूप का दिल खिल गया।

और इस दिल के जोर से कृष्णस्वरूप ने उमके यहाँ आना जाना शुरू किया। लेकिन चक्कर उलटा चलन म देर न लगी। एक दिन बहुत स भद्र लोग उन वाग्मी महोदय के यहाँ कहकहे लगा रहे थ। कृष्णस्वरूप उलटे पैर लौट ही रहा था कि दरवाजे पर खडे होकर वाग्मी महोदय ने कहा, "बाद मे आइय।"

'मैं तो खुद ही लौट रहा हूँ," यह कहकर वह आहत भाव से मुसकराया और चला गया। लेकिन कृष्णस्वरूप को मालूम हो चुका कि उसका स्थान क्या है। इस बात का उसे बहुत बुरा लगा। ता मानव-समानता केवल भाषण की वस्तु है। ऐसा ही एक बार और हुआ। उसका भाई कुछ अच्छे ढग से रहता था, थोडा उसका नाम भी था। कमाई थोडी ज्यादा थी। वह कोट और पैण्ट पहनता। कोट भी अच्छे ढग का रहता। सामान्य धारणा यह थी कि वह अच्छे खाते-पीते सुखी परिवार का है। वह सगा भाई सचमुच बहुत अच्छा आदमी था।

लकिन, ऐसा कई बार हुआ कि कृष्णस्वरूप को फटे मैल और रद्दी कपडो मे ही उसके पास जाना पडा। आखिर, वह क्या करता। परिवार के सम्बन्ध ही ऐसे होते हैं। उसे प्रतीत हुआ, बार-बार लगा, कि वह उसके बैठकखान मे बैठन की योग्यता नही रखता, खासकर तब, जबकि उसके पास इस्तिरीदार सफेद या अच्छे कपडे न हो। कृष्णस्वरूप, जो नियम का पाबन्द था, एक कुर्ते को बराबर चार दिन पहनता, भल ही वह मैला दीख। इस नियम के बिना उसका गुजारा भी नही था। बार-बार जब ऐसा प्रभाव उसके मन पर हुआ कि उसका भाई अपने स उस थोडा नीचे समझता है उसन अपने दिल म गाँठ बाँध ली, और वह उससे कटता और अलग होता चला गया, यद्यपि शीलवश उसने कभी भी इस सम्बन्ध म उससे बात नहीं की।

कृष्णस्वरूप अपने ही आसपास के लोगो से कटा हुआ है, क्योकि वे उससे किसी आर्थिक मात्रा मे ज्यादा खुशहाल और बडे हैं। या यो कहिये कि किसी-न-किसी तरह वे अपन अभावो को ढाँके हुए ऊपर से खुशहाल दिखन की कोशिश करत हैं, जबकि कृष्णस्वरूप का दलिद्दर खुल चुका है, और यह कि वह अब उसे ढाँकन की शक्ति भी नही रखता।

और तब अकस्मात् कृष्णस्वरूप स एक आदमी की भेंट हुई। बाद म पता चला कि वह उसी के घर के पिछवाड स निकलनवाली गली के मुहान पर एक बडी बिल्डिंग मे रहता है। यानी वह उसी के मुहल्ल का रहनवाला है।

लायब्रेरी के चौडे छज्जे म, जो दुमजिले पर थी, कृष्णस्वरूप एक कुर्सी पर बैठा हुआ, फैल हुए चौराहे की ओर देख रहा था। साँझ के आखिरी धुँधलके मे चमकती हुई बिजलियो का प्रकाश अच्छा दिखायी द रहा था। खूब आवाजाही, मोटर, ताँगे, रिक्शा, दूकानें, फैशनेबल नौजवान और लडके-लडकियो के खूबसूरत चेहरे, दिखायी दे रहे थे। चौराहा भरा हुआ था, जिसे देखकर यह मालूम होता था कि लोग कितने खुश है। इस दृश्य को देखता हुआ कृष्णस्वरूप अपन मन की इच्छाओ से भरी रगीन धुन्ध मे खो गया। उस बहुत-से सुन्दर कोमल कल्पना-दृश्य दीखने लगे कि इतने म उसक सामने एक भयानक आदमी आकर खडा हो गया।

वह तग पाजामे पर लम्बा कुर्ता और जाकिट पहने हुए था। हाथ म न जाने

कौन-सी किताब थी। वह लगभग पच्चीस-एक साल का ऊँचा तगडा जवान था। लेकिन उसका चेहरा बडा ही अजीब और डरावना था। कानो से लेकर ठुड्डी तक दाढी-ही-दाढी थी, जो काली, छोटी और बिखरी हुई थी। ऐसा नही लगता था कि उस पर कघी फिरायी जाती हो। उसकी नाक आगे आकर मोटी हुई थी और एक टमाटर की भाँति लाल और फैली हुई थी। बडी-बडी आँखें थी, जिनमे से एक इतनी लाल थी कि मानो उसमे खून जम गया हो। सिर बीच मे गजा था, और उस पर एक मोटा गोल—लम्बे और बडे बेर के बराबर—पीला मसा खडा हुआ था। उसे हम मास की एक छोटी टेकडी कह सकते हैं।

ज्यो ही कृष्णस्वरूप ने उसे देखा, आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह अजनबी था, लेकिन उसके पास इस तरह खडा हुआ था मानो बात करना चाहता हो। कृष्णस्वरूप पहले तो उसे देखता ही रहा, लेकिन फिर अपनी गर्दन मोडकर चौराहे की तरफ नजर घुमा दी। इस बीच उसे सुनायी दिया, "क्षमा कीजिये, मैंने सुना है कि लायब्रेरी की आर्टिस्ट्स ड्रीम (एक पुस्तक) आपके पास है?"

पुस्तक का नाम सुनकर कृष्णस्वरूप चौंक पडा। वह उसकी प्रिय पुस्तक है। लेकिन अभी पूरी नही हुई है।

उसने जवाब दिया, "हाँ, है तो, लेकिन आपको कैसे मालूम हुआ?"

"मैंने इशू-रजिस्टर मे नाम देखा था, दो महीने से आपके नाम पर है। अगर आप जल्दी वापिस कर सकें।"

उस व्यक्ति के स्वर मे कोई निन्दा का भाव नही था। फिर भी कृष्णस्वरूप को लगा कि उसकी निन्दा की जा रही है। कृष्णस्वरूप, जो अपने लिए नियमो का पालन करता था, लायब्रेरी के लिए नही। पुस्तको से उसे मोह था, इसलिए वह अपने पास उन्हे धरे रखता था।

अनायास उसके मुँह से निकल पडा, "मैं कल ही वापिस कर दूंगा।"

और इस तरह, पुस्तको पर से उनकी बातचीत शुरू हुई। लायब्रेरी मे आने-जानेवाले लोग उन दोनो को गौर से देखते और फिर अपने काम मे लग जाते। कृष्णस्वरूप ताड गया कि उसके साथी का विचित्र व्यक्तित्व सबके आकर्षण का कारण है, और उस व्यक्ति की विचित्रताओ म वे कृष्णस्वरूप को भी लपेट रहे हैं। यह बात उसे अच्छी नही लगी। आखिर वह आदमी अगर अजीबोग़रीब है, तो उससे बात करनेवाला भी बिलाशक अजीबोग़रीब ही होना चाहिए—यह खयाल उसे बेकार, भद्दा और मानव-शत्रुतापूर्ण लगा। और कृष्णस्वरूप क्रमश उन लोगो को बुरा समझने लगा जो उसके हाल ही म मिले साथी को अजीबोग़रीब निगाह से देखते थे।

और इस प्रकार, इन दोनो की बातचीत धीरे-धीरे दोस्ती मे बदलने लगी। फिर भी कृष्णस्वरूप उस आदमी से मन ही-मन खौफ खाता था।

और ऐसा क्यो?

उस आदमी मे कुछ ऐसा जरूर था जो हमे आतंकित कर देता था। उसको देखकर हम चौंक जाते थे। पूरी चालढाल, बढी हुई दाढी, भयानक लाल आँख, मोटी नाक, गजा सिर और गजे सिर के ऊपर बडे बेर बराबर मसा, और फिर मैला वेश। यह सबकुछ डरावना था। लेकिन सबसे ज्यादा डरावनी बात थी, भाषा पर उसका प्रचण्ड अधिकार। अग्रेजी और हिन्दी-उर्दू वह इस तरह बोलता था, मानो

और इस दिल के ज़ोर से कृष्णस्वरूप ने उनके यहाँ आना-जाना शुरू किया। लेकिन चक्कर उलटा चलने मे देर न लगी। एक दिन बहुत से भद्र लोग उन वाग्मी महोदय के यहाँ कहकहे लगा रहे थे। कृष्णस्वरूप उलटे पैर लौट ही रहा था कि दरवाजे पर खडे होकर वाग्मी महोदय ने कहा, "बाद मे आइये।"

"मैं तो खुद ही लौट रहा हूँ," यह कहकर वह आहत भाव से मुसकराया और चला गया। लेकिन कृष्णस्वरूप को मालूम हो चुका कि उसका स्थान क्या है। इस बात का उसे बहुत बुरा लगा। तो मानव-समानता केवल भाषण की वस्तु है। ऐसा ही एक बार और हुआ। उसका भाई कुछ अच्छे ढग से रहता था, थोडा उसका नाम भी था। कमाई थोडी ज़्यादा थी। वह कोट और पैंण्ट पहनता। कोट भी अच्छे ढग का रहता। सामान्य धारणा यह थी कि वह अच्छे खाते-पीते सुखी परिवार का है। वह सगा भाई सचमुच बहुत अच्छा आदमी था।

लेकिन, ऐसा कई बार हुआ कि कृष्णस्वरूप को फटे मैले और रद्दी कपडो मे ही उसके पास जाना पडा। आखिर, वह क्या करता। परिवार के सम्बन्ध ही ऐसे होते है। उसे प्रतीत हुआ, बार-बार लगा, कि वह उसके बैठकखाने मे बैठने की योग्यता नही रखता, खासकर तब, जबकि उसके पास इस्तिरीदार सफेद या अच्छे कपडे न हो। कृष्णस्वरूप, जो नियम का पाबन्द था, एक कुर्ते को बराबर चार दिन पहनता, भले ही वह मैला दीखे। इस नियम के बिना उसका गुज़ारा भी नही था। बार-बार जब ऐसा प्रभाव उसके मन पर हुआ कि उसका भाई अपने से उसे थोडा नीचे समझता है, उसने अपने दिल मे गाँठ बाँध ली, और वह उससे कटता और अलग होता चला गया, यद्यपि शीलवश उसने कभी भी इस सम्बन्ध मे उससे बात नही की।

कृष्णस्वरूप अपने ही आसपास के लोगो से कटा हुआ है, क्योकि वे उससे किसी

शक्ति भी नही रखता।

और तब अकस्मात् कृष्णस्वरूप स एक आदमी की भेंट हुई। बाद मे पता चला कि वह उसी के घर के पिछवाडे स निकलनेवाली गली के मुहान पर एक बडी बिल्डिंग में रहता है। यानी वह उसी के मुहल्ले का रहनवाला है।

लायब्रेरी के चौडे छज्जे मे, जो दुमजिले पर थी, कृष्णस्वरूप एक कुर्सी पर बैठा हुआ, फैले हुए चौराहे की ओर देख रहा था। साँझ के आखिरी धुँधलके मे चमकती हुई बिजलियो का प्रकाश अच्छा दिखायी दे रहा था। खूब आवाजाही, मोटर, ताँग, रिक्शा, दूकानें, फैशनेबल नौजवान और लडके-लडकियो के खूबसूरत चेहरे, दिखायी दे रहे थ। चौराहा भरा हुआ था, जिसे देखकर यह मालूम होता था कि लोग कितने खुश हैं। इस दृश्य का देखता हुआ कृष्णस्वरूप अपन मन की इच्छाओ से भरी रगीन धुन्ध मे खो गया। उसे बहुत-स सुन्दर कोमल कल्पना-दृश्य दीखने लगे कि इतन मे उसके सामने एक भयानक आदमी आकर खडा हो गया।

वह तग पाजामे पर लम्बा कुर्ता और जाकिट पहने हुए था। हाथ मे न जाने

कौन-सी किताब थी। वह लगभग पच्चीस-एक साल का ऊँचा तगडा जवान था। लेकिन उसका चेहरा बडा ही अजीब और डरावना था। कानो से लेकर ठुड्डी तक दाढी ही-दाढी थी, जो काली, छोटी और बिखरी हुई थी। ऐसा नही लगता था कि उस पर कघी फिरायी जाती हो। उसकी नाक आगे आकर मोटी हुई थी और एक टमाटर की भाँति लाल और फैली हुई थी। बडी-बडी आँखें थीं, जिनमे से एक इतनी लाल थी कि मानो उसमे खून जम गया हो। सिर बीच मे गजा था, और उस पर एक मोटा गोल—लम्बे और बडे बेर के बराबर—पीला मसा खडा हुआ था। उसे हम मास की एक छोटी टेकडी कह सकते हैं।

ज्यो ही कृष्णस्वरूप ने उसे देखा, आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह अजनबी था, लेकिन उसके पास इस तरह खडा हुआ था मानो बात करना चाहता हो। कृष्णस्वरूप पहले तो उसे देखता ही रहा, लेकिन फिर अपनी गर्दन मोडकर चौराहे की तरफ नज़र घुमा दी। इस बीच उसे सुनायी दिया, "क्षमा कीजिये, मैंने सुना है कि लायब्रेरी की आर्टिस्ट्स ड्रीम (एक पुस्तक) आपके पास है?"

पुस्तक का नाम सुनकर कृष्णस्वरूप चौंक पडा। वह उसकी प्रिय पुस्तक है। लेकिन अभी पूरी नही हुई है।

उसने जवाब दिया, "हाँ, है तो, लेकिन आपको कैसे मालूम हुआ?"

"मैंने इशू-रजिस्टर मे नाम देखा था, दो महीने से आपके नाम पर है। अगर आप जल्दी वापिस कर सकें।"

उस व्यक्ति के स्वर मे कोई निन्दा का भाव नही था। फिर भी कृष्णस्वरूप को लगा कि उसकी निन्दा की जा रही है। कृष्णस्वरूप, जो अपने लिए नियमो का पालन करता था, लायब्रेरी के लिए नही। पुस्तको से उसे मोह था, इसलिए वह अपने पास उन्हें घरे रखता था।

अनायास उसके मुँह से निकल पडा, "मैं कल ही वापिस कर दूंगा।"

और इस तरह, पुस्तको पर से उनकी बातचीत शुरू हुई। लायब्रेरी मे आने-जानेवाले लोग उन दोनो को गौर से देखते और फिर अपने काम मे लग जाते। कृष्णस्वरूप ताड गया कि उसके साथी का विचित्र व्यक्तित्व सबके आकर्षण का कारण है, और उस व्यक्ति की विचित्रताओ मे वे कृष्णस्वरूप को भी लपेट रहे हैं। यह बात उसे अच्छी नही लगी। आखिर वह आदमी अगर अजीबोगरीब है, तो उससे बात करनेवाला भी बिलाशक अजीबोगरीब ही होना चाहिए—यह खयाल उसे बेकार, भद्दा और मानव-शत्रुतापूर्ण लगा। और कृष्णस्वरूप क्रमश उन लोगो को बुरा समझने लगा जो उसके हाल ही मे मिले साथी को अजीबोगरीब निगाह से देखते थे।

और इस प्रकार, इन दोनो की बातचीत धीरे-धीरे दोस्ती मे बदलने लगी। फिर भी कृष्णस्वरूप उस आदमी से मन-ही-मन खौफ खाता था।

और ऐसा क्यो?

उस आदमी मे कुछ ऐसा ज़रूर था जो हमे आतकित कर देता था। उसको देखकर हम चौंक जाते थे। पूरी चालढाल, बढी हुई दाढी, भयानक लाल आँख, मोटी नाक, गजा सिर और गजे सिर के ऊपर बडे बेर बराबर मसा, और फिर मैला वेश। यह सबकुछ डरावना था! लेकिन सबसे ज़्यादा डरावनी बात थी, भाषा पर उसका प्रचण्ड अधिकार। अंग्रेजी और हिन्दी-उर्दू वह इस तरह बोलता था, मानो

वे उसके घर की बाँदी हो। इस नगर मे कृष्णस्वरूप ने अब तक जितने भी भाषण और प्रवचन सुने, उनम सबसे अधिक शक्तिपूर्ण, प्रवाहशील और बारीक-से-बारीक बात को उठावदार तरीके से रखने की उसकी शैली, उसे किसी मे नही दिखायी दी। इसका मतलब यह था कि वह शख्स अपने अकेले म बहुत-से सवालो और बवालो पर लगातार सोचता रहता था। उसकी स्मरण शक्ति अद्भुत थी। अन्तर्-जीवन की सवेदनशील सम्पन्नता के बिना यह सबकुछ नही हो सकता था।

कृष्णस्वरूप जितना-जितना उसके बारे म सोचता, वह इसी नतीजे पर आता कि उस व्यक्ति का मानसिक जीवन अत्यन्त सम्पन्न है। लेकिन, उसका स्रोत कहाँ है, ऐसा कैसे हुआ, यह उसकी समझ मे नही आता था। सक्षेप मे, कृष्णस्वरूप के अन्त करण मे, उस व्यक्ति के व्यक्तित्व— बाह्य जीवन और अन्तर्जीवन के सम्बन्ध मे, प्रचण्ड कुतूहल, जिज्ञासा और विस्मयपूर्ण आनन्द का भाव भरने लगा। उस व्यक्ति के व्यक्तित्व म कृष्णस्वरूप की शोध-यात्रा शुरू हुई। और तब कृष्णस्वरूप का मानसिक केन्द्र आत्म-दमन, घर और परिवार तथा आदर्श नियम से निकलकर, उस व्यक्ति के आस-पास मँडराने लगा।

यह सब क्रमश और धीरे धीरे हुआ। कभी तो कृष्णस्वरूप को लगा कि वह स्वय उस अद्भुत व्यक्ति से प्रेम करता है। लेकिन, शीघ्र ही, उसका यह खयाल दूर हो गया। वह उसम प्रेम नही करता, वरन् डरता है। किन्तु उस भय के भाव म अनुराग और आनन्द का मिश्रण अवश्य है।

वह व्यक्ति, जिसका नाम रामनारायण था, खूब पैसा खर्च करता। पता नही उसके पास रुपये कहाँ से आते थ। वह कृष्णस्वरूप को लेकर ऊँचे किस्म के उम्दा होटलो मे जाता और कृष्णस्वरूप को ऐसी जायकेदार चीजें खाने को मिलती, जो उसने कभी जिन्दगी मे नही खायी थीं। उसी तरह, वह उसे मेट्रो नामक सिनेमा मे ले जाता, जहाँ मशहूर अंग्रेज़ी फिल्में बतायी जाती। फिल्में देखकर ये लोग रात को देर से लौटते। फिल्मो पर, उपन्यासो पर, लेखको पर, चित्रकारो पर चर्चा होती। और कृष्णस्वरूप वैन गॉग से लेकर स्टाइनबेक तक, तथा इल्या एहरेनबर्ग स लेकर पाब्लो नरूदा और पिकासो तक—सब महानो की बातें जान चुका था। शहर मे रात को ठण्डे और सून रास्तो पर घूमते हुए, इस तरह चर्चा करते हुए, कृष्णस्वरूप को लगता कि वह किसी अद्भुत चन्द्र लोक म घूम रहा है, और सब लोग देवताओ, गन्धर्वों, परियो और अप्सराओ म बदल गय हैं।

लेकिन, उस शख्स के दिल से जो गरम-गरम झरना फूट पडता, उसमे एक ज़बर्दस्त ज़ोर और मिठास के साथ-साथ, कही-कही कडआपन और खारापन भी दिखायी देता। वह क्यो है, इस सवाल को उस शख्स से यानी रामनारायण से, पूछने की हिम्मत अभी कृष्णस्वरूप के पास नही थी। यह कडआपन और खारापन तब सबसे ज्यादा दिखायी देता, जब वह शख्स (रामनारायण) देश की, समाज की, और राजनैतिक दलो की बात करता। य बातें वह इतने आत्मविश्वास से करता और जाने-माने नेताओ के व्यक्तित्व और उनके जीवन की ऐसी बातें बताता रहता, जिससे यह सिद्ध होता कि अनाचार और अवसरवाद इतना बढ गया है, और स्वार्थ-ग्रस्त व्यक्तिवाद इतना प्रधान हो उठा है, कि जब तक कई पीढियाँ आकर गुज़र नही जाती तब तक देश को इसी अवस्था म रहना होगा। इस निराशा, दु ख और अवसाद का कुछ ऐसा प्रभाव कृष्णस्वरूप के हृदय मे उत्पन्न

होता कि मानो वह उसकी आत्मा ही को चीरकर उसके टुकडे-टुकडे कर रहा हो। तो क्या वह शख्स साम्यवादी है? एक बार डरते-डरते कृष्णस्वरूप ने उससे पूछा भी, लेकिन उसने जब उनके लिए भी उतनी ही कठोर भर्त्सनामयी वाणी सुनी तो वह हतबुद्धि रह गया। उसका रुझान लोहिया सोशलिस्ट पार्टी की तरफ था—लोहिया के व्यक्तित्व के कारण था, यह भी कृष्णस्वरूप से छुपा नही रहा।

लेकिन वे दोनो कभी भी वैयक्तिक जीवन की बात न करते। एक बार कृष्णस्वरूप ने जब ऐसी कोई बात छेडने की कोशिश की, तब वह उसे टाल गया। लेकिन कृष्णस्वरूप के आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने देखा कि अत्यन्त मलिन वेश मे रहनेवाला वह आदमी एक बडी एस्टेट का मालिक है। उसे पिता नही है, भाई देहरादून मे पढ रहा है। और उसकी माँ खानदानियत रखती है, और अपने बुढापे मे भी खूबसूरत है।

माँ कृष्णस्वरूप का बडा ही स्वागत करती। खूब खिलाती-पिलाती। लेकिन कृष्णस्वरूप ने पाया कि ज्यो-ज्यो वह माँ के नज़दीक पहुँचता है, रामनारायण से दूर होता जाता है। कृष्णस्वरूप ज्यो-ज्यो माँ की तारीफ करता है, रामनारायण चुप और गम्भीर होता जाता है। साफ है कि उसे माँ की तारीफ अच्छी नही लगती। लेकिन क्यो नही?

इसका कोई जवाब कृष्णस्वरूप के पास नही था। लेकिन माँ से बातचीत के दौरान मे, वह बहुत-सी बातें जान गया, जिनमे से एक यह भी कि रामनारायण के पिता—उसके पति—बडे सगीतज्ञ थे। उन्होंने महफिलो मे हजारों रुपये खर्च किये। और आधी से ज्यादा मिलकियत उडा दी। पति और पत्नी मे इस बात को [illegible] जी ने
और
[illegible] लडका
रामनारायण यह समझता है (ऐसा कृष्णस्वरूप का अनुमान है) कि उसके पिता की मृत्यु का कारण उसकी माँ है। तब से वह माँ से कटा-कटा रहता है, बाहर-बाहर घूमता है, अस्त-व्यस्त जीवन व्यतीत करता है, और अपने को निहायत बदसूरत बना रखा है। तब से वह पूँजीवाद का भी दुश्मन हो गया है। रईसो से घृणा करता है। राजनीति मे भी भाग लेता रहा। कुल मिलाकर, उसका उद्देश्य वह सब कुछ बन जाना था जिससे माँ को बेहद घृणा हो। जो भी माँ पसन्द करती है, उसके विरुद्ध अपने रूप-स्वरूप प्रदर्शित करने मे उसे निराला आनन्द आता! हाँ, यह कहा जा सकता है कि अपनी इस प्रवृत्ति के कारणो का रामनारायण को पता नही है।

साफ है कि रामनारायण भद्र-समाज का विरोधी था और इसीलिए वह इस प्रकार अपनी आकृति बनाये रखता था, न नौकरी करता, न चाकरी। भद्र लोग उससे बातचीत करने मे हिचकिचाते। साथ ही, उसकी भाव-धारा से घबराते, क्योकि वह स्वय सर्वसहारवादी था। उसकी आलोचना करने के ढग मे सर्वसहार-वाद का तीखापन और निराशा थी।

कृष्णस्वरूप से यह छिपा नही रहा। उसके सामने र नारायण एक बहुत बडे सवाल के रूप मे खडा हो गया। रामनारायण धनी था, उसे खाने-पीने, पैसे उडाने की कमी नही थी, कोई जिम्मेदारी उस पर नही थी। अपने खुद बनाये हुए अलगाव,

फासले, विरोध और फिर विरोध तथा प्रतिरोध का कारण वह स्वय था। वह देश-सेवा कर सकता था, समाज-सेवा कर सकता था। उसने वैसा करने की कोशिश भी की थी। राजनीति और समाज-क्षेत्र मे उसने भाग भी लिया था। किन्तु उसमे न इतनी आस्था थी न इतना धैर्य, कि वह दूसरो की कमजोरियो को क्षमा कर अपनी कमजोरियो को कभी माफ न करे, कि अपने प्रति निरन्तर कठोर रहकर अन्यो के प्रति कोमल और क्षमाशील रहे। इसके अतिरिक्त नतृत्व का भी प्रश्न था। शहर के एक बडे और अच्छे आदमी का लडका होने मात्र मे तो कुछ नही होता। सक्षेप मे, रामनारायण म इस क्षेत्र मे कुछ कर सकने की योग्यता नही थी, यद्यपि यह सच है कि सम्बन्धित विषयो पर सोचता रहता। मैकमिलन ने ऐसा क्यो कहा, या यूरोपियन कॉमन मार्केट का क्या परिणाम होगा, आदि वातो पर वह निरन्तर सोचता रहता। लोग सोचते नही थे, और वह सोचता था। यही उसकी विशेषता थी।

लेकिन फासले! रामनारायण ने फासले-ही-फासल खडे कर रखे हैं, अपने आसपास। वह इतना आदर्शवादी है कि वाकी लोग उसे हेय मालूम होते हैं, वह इतना आज़ाद है कि बाकी लोग उसे गुलाम मालूम होते हैं, वह इतना बुद्धि-मार्गी है कि बाकी लोग विवेकहीन और निर्बुद्धि मालूम होते हैं। और चूंकि उसे इस तरह महसूस होता रहता है, इसलिए वह दूसरो स अलग बन गया है।

ऐसे फासलों स कृष्णस्वरूप का काम कैसे चलेगा! वह स्वय अपने पडोसियो पर निर्भर रहता है। ज्यो-ज्यो कृष्णस्वरूप रामनारायण से अपनी तुलना करता, वह अपने को उससे अलग पाता! मन-ही-मन, उससे अपनी तुलना करते रहने के कारण, कृष्णस्वरूप का पृथकता-भाव बढता गया। बस, वह यह चाहने लगा कि रामनारायण के गुण उसम आ जायें, और वह उसस दूर हट जाये।

किन्तु रामनारायण स पिण्ड छुडाना भी सहज नही था। वह घर म रात-बेरात आ जाता। पुकारता। और फिर दोनो चाय पीने के लिए चल देते। खूब देर तक घूमते। कृष्णस्वरूप धीरे-धीरे रामनारायण स तग आ रहा था।

इस बीच, कृष्णस्वरूप के व्यक्तित्व म एक परिवर्तन और हुआ। वह यह कि रेस्तराँ, काफे-जैसी रौनकदार जगहो की जो सस्कृति है, उसके अनुसार वेशभूषा, गृह-सज्जा, भी अपने लिए चाहिए इसकी उत्कण्ठा उसमे जाग उठी। परिणामत वह अब पहले स ज्यादा अच्छा रहने लगा, कर्ज से ही क्यो न सही, जितनी चादर उतने लम्बे पैरवाला हिसाब अब कम होने लगा, दूसरे चार पढे लिखों मे बैठने लायक ज्ञान भी उसे हो चला था। ज्ञान की उत्कण्ठा भी उसे कम नही थी। मतलब यह कि अब वह परिचितो का क्षेत्र बढाकर किताबें माँगता। पढता। धीरे धीरे वह बी ए हो गया। भाषण देने का शऊर उसे अभी भी नही था। लेकिन ज्यो ज्यो इस क्षेत्र मे वह उन्नति करता चला गया, त्यो त्यो उसने पैसे कमाई के रास्ते भी ढूँढने शुरू किये। अब वह सरकारी पत्रो म, 'राष्ट्रीय' पत्रिकाओ मे लेख छपाने लगा। इस प्रकार कृष्णस्वरूप अब सभ्य होता चला गया।

अभी तक वह बँगला नही ले सका है, किराये से। घर मे रौनक बढ गयी है।

कर्जा भी खूब है। इस समय वह दिल्ली के किसी ऊँचे दफ्तर मे काम करने की सोच रहा है।

यही वह समय है जबकि मैं उसके सम्पर्क मे आता हूँ।

[**सतह से उठता आदमी** का एक अपूर्ण पर अपने आपमे निखरा हुआ प्रारूप। सम्भावित रचनाकाल 1962]

अधूरी कहानी : नौ

सुबह साढे दस की धूप ने क्वीन्स सडक पर एक उजला सगीत फैला दिया था। चौराहे से आगे चल, सडक के किनारे, अहाते के अन्दर, टाटा सोप के लाल-लाल अक्षर, ऊँचे तख्ते पर लगे हुए, अपने बलिष्ठ, सन्तुष्ट और सुन्दर अस्तित्व का भान करा रहे थे। सडक पर आमद-रफ्त बढ गयी थी, लेकिन उसमे जल्दबाजी की कर्कशता न थी, उनके साथ कोई आसानी लगी हुई थी, खुशनुमा आसानी। प्रतीत होता था मानो सब ओर सन्तोष का वातावरण है। सचमुच, सुबह की उस उजली धूप का ही यह चमत्कार था।

सडक की फर्शबन्द फुटपाथ पर एक विशेष व्यक्तित्व चल रहा था। वह अजनबी आते-जातो को राम-राम करता। अजनबियो मे से बहुतेरे राम-राम न लेते, अपने खयालो स चौंककर प्रणाम करनेवाले की तरफ देखते हुए गुजर जाते। कई उस व्यक्तित्व की विचित्रता पर मुसकुरा देते आगे, बढ जाते। कुछ लोग सहज भाव से राम-राम का जवाब राम-राम से देते और आगे चले चलते।

सचमुच, उस व्यक्तित्व मे कुछ ऐसा अनोखापन था कि उसकी ओर राह चलते बालक भी आकर्षित हो गये। वे उसके पीछे हो लिये।

कन्धे पर भारी-भरकम बादामी रग का डण्डा। डण्डे पर पीठ की तरफ़ लटकती हुई चमडे की नयी बादामी रग की पेट-फूली हैण्डबैग और दूसरे कन्धे पर काली ऊनी कम्बल-नुमा चादर। वह व्यक्तित्व ज्यो ही आते-जातो को राम-राम करता, पीछे चलनेवाले बालक, पीठ पर लटकती हुई बैग का हिलना देखते हुए सामूहिक रूप से 'राम राम' का नाद गुँजा देते। मालूम होता था कि उस व्यक्तित्व को इस बात की परवाह न थी कि लडको का एक ऊधमी जत्था उसके पीछे-पीछे चल रहा है। लगता तो यह था कि उसे इस बात मे मजा आ रहा है। अपने विचित्र वर्ताव मे उसे एक अनोखा आनन्द प्राप्त हो रहा था।

आखिर, उसे मजा क्यो न आता !! यद्यपि उसकी आयु पचास से आगे थी, उसका स्वास्थ्य जवानो को मात करता था। चेहरे पर खूबसूरत ललाई, फक्कड चमक, लापरवाह रग और एक ऊधमी प्रसन्नता थी। बाल सफेद थे। पर, चेहरा भरापूरा, ठुड्डी दो भागो मे विभाजित, पठारी, ललौहे भूरे गाल प्रसन्न रूप से अडियल चौडी और आगे की ओर चपटी नाक, भौहे वस्तुतः काली घुँघराली (जिसमे से कुछ बाल बहुत लम्बे थे) कान के कगारो पर बालो के गुच्छे, छोटा चपटा ललाट और उस पर ढाई शलवटें, वजनदार लम्बा चौडा गोल सिर। मझोला

मंद। खादी की सफेद-झक धोती और गेरुआ कुर्ता। मन्थर गति और सस्मित मुख।

यह ठाठ था। और, जब वह राम-राम करता तो उसके मुँह में या तो हवा भर जाती या वह शब्दों में जानबूझकर गोलाई ला देती। राम-राम को वह कभी-कभी 'रॉम, रॉम' या 'रौम रौम' कहता और उसके स्वस्थ मुक्त-कण्ठ से आनेवाले उन शब्दों से एक मजेदार गूँज निकलती जाती।

इस प्रसन्नता के पीछे निःसन्देह एक पार्श्वभूमि भी थी। आज ही सुबह, उसने मुख्यमन्त्री से बातचीत की। उस फक्कड़ जवान ने सेवा-संघ के उद्घाटन का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। यह कार्यक्रम मुख्यमन्त्री की दृष्टि से और हमारे पात्र—जिसका नाम स्वामी व्योमरूपानन्द था—के खयाल से बहुत महत्वपूर्ण था। व्योमरूपानन्द ने स्वामी रामतीर्थ के शेर भी गाकर सुनाये थे। मीरा का एक पद तो उसने दर्दभरे गले में गाया था। आखिर में उसने मौलाना रूमी के सम्बन्ध में एक हृदयस्पर्शी कहानी भी कही थी। लगभग पौन घण्टे में व्योमरूपानन्द ने महफिल (वह महफिल नहीं थी, मुख्यमन्त्री के पास कुछ सेक्रेटरीज़, एक हिन्दी कवि, और आय जी पुलिस बैठे हुए थे) को मुग्ध कर लिया था (बैठक में उपस्थित पुलिस-अधिकारी की तरफ उसने इस भाव से देखा था कि हाँ, आज रात को, रहे प्रोग्राम जॉनी वॉकर का प्रबन्ध होना चाहिए)।

मुख्यमन्त्री के यहाँ से लौटकर ज्यों ही उसने यह सड़क ली, उसके हृदय में मुख्यमन्त्री अगले कार्यक्रम और नयी सफलताओं के चित्र तैरने लगे। उसे प्रतीत हुआ कि वह कई अच्छे काम कर सकता है। गुलजारीलाल नन्दा ने जो अखिल

उस साले भिखारीदास ने खास डॉक्टर अम्बेडकर वाली महार कुनबी जनता में अपना रंग जमा लिया था। इसके फलस्वरूप प्रान्तीय सरकार के मन्त्री सन्त भिखारीदास के पीछे पीछे रहते। उसने एक आदर्श ग्राम की भी स्थापना की थी। ग्राम सचमुच सुन्दर था—अस्पताल, मिडिल स्कूल, कुटीर उद्योग केन्द्र संस्कृत पाठशाला, दीन सहायक शिविर नल बिजली का प्रबन्ध आदि-आदि बातें थीं। मैंगनीज खदान के मारवाड़ी मालिकों तथा मालगुजार देशमुख ने बहुत धन दिया था। स्वामी व्योमरूपानन्द का हृदय यह समझता था कि सन्त भिखारीदास आदमी समझता है, जरूरत समझता है मौका समझता है। सही मौके पर सही आदमी की सही जरूरत के वक्त काम आकर उसने न केवल प्रान्तीय सरकार पर प्रभाव डाल रखा है बरन आजकल तो ऑल इण्डिया रेडियो भी उसके भजन और वार्ताएँ ब्रॉडकास्ट करता है।

[स्वामी व्योमरूपानन्द] रुक गये। बड़े ठाठ से दूकान के सामने खड़े हो गये मानो वे आम जनता से भी आम हों, इस तरह से ठाठदार सामान्य कि जिसके खुशमिजाज रौब के आगे हर तरह का आतंक अपनी मूर्खता पर रो उठे।

पानवाले ने 'राम राम' स्वीकार किया, और घबराकर बच्चों की भीड़ की

तरफ देखने लगा। व्योमरूपानन्द ने एक उँगली आकाश की तरफ उठा दी। और कहा—सब ईश्वर के बालक हैं !! सातवें आसमान पर बैठा हुआ शहशाह उनकी परवरिश करता है। व्योमरूपानन्द के उद्गार सुनकर, पानवाला कुछ नहीं बोला। मुसकु[illegible]
बेंच पर बैठे
यह भी शख्स
करने लगा।

इस बीच, व्योमरूपानन्द ने डण्डा टेककर उस पर अपना आधा वज़न डाल दिया, एक पाँव पर ज्यादा ज़ोर दिया और दूसरा ढीला छोड़ दिया। मुक्त कण्ठ से, निःसकोच, गीत का आलाप निकाला—

झीनी झीनी बीनी चदरिया,
काहे का ताना काहे का बाना '

व्योमरूपानन्द का गला बहुत अच्छा था। प्रतीत होता था मानो कोई ब्रह्मर्षि, प्रात काल, किसी नदी-तट पर मुक्त कण्ठ और मुक्त हृदय होकर आलाप ले रहा हो और उसका आलाप आसपास के वायुमण्डल को पारकर दूर-दूर तक पहुँच रहा हो। विस्तार, भव्यता और ऊँचाई, उस स्वर के विशेष गुण थे। मैं भी वहीं खड़ा था। मैंने ऐसा गाना कभी नहीं सुना था। मैं, वस्तुत गद्गद हो उठा।

गाना सुनने के लिए सचमुच एक भीड़ जमा हो गयी। यहाँ तक कि कोठी (सरकारी दफ्तर) की ओर जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाने वाले आधुनिक कोट-पैंटधारी सुसंस्कृत अहलकार भी रुक गये। पानवाले की बन आयी। उनमें से बहुतों ने पान खाया। मैंने भी। गाना समाप्त हुआ कि बालकों ने ताली पीट दी। मुझे सकोच होता है कहने में कि मैंने भी ताली बजायी। पानवाले की दूकान पर ताली बजाना भद्रता के विरुद्ध होता है।

गाना समाप्त होते ही, व्योमरूपानन्द ने पान की डिबिया कुर्ते की ढीली जेब में रख ली। पैसे निकालने लगे कि चॉकलेट की बहुत-सी गोलियाँ निकल पड़ीं। व्योमरूपानन्द चॉकलेट के बहुत शौकीन थे—जैसा कि आगे मुझे मालूम हुआ। पता नहीं, उन्हें क्या लगा। उन्होंने बालकों की तरफ देखा, पल भर देखते ही रहे। देखते ही रहे। उनकी आँखों के सामने, गोल बाँधकर खड़े थे, ग़रीब, फटे हाल, काले-कलूटे, दुबले, और मैले-कुचैले बच्चे !!

पता नहीं क्यों, व्योमरूपानन्द ज़मीन पर उकड़ूँ बैठ गये। उस समय भी उनके चमड़े की हैण्डबैग डण्डे के सहारे उनके पीठ पर लटक रही थी। एक बच्चे को कन्धे से चिपका लिया। वह बच्चा सबसे छोटा मालूम होता था, वह अभी भी उँगली मुँह में रखता था। वैसे, उसकी उम्र दस साल से ज्यादा की ही थी। चेहरा एकदम पीला, मानो रोगी हो।

उन्होंने प्यार से उसके पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"कल्लू।"

"तुम्हारे पिताजी क्या काम करते हैं ?"

बच्चा कुछ नहीं बोला। उन्होंने फिर वही सवाल किया। बच्चे ने अटकते-अटकते कहा—"मेरे माँ-बाप भाग गये।"

"भाग गये ?"
"हाँ। उन्हें बहुत-सा कर्ज देना था।"
'तुझे छोड़कर भाग गये !!"
"जी हाँ।"
"तुम क्या करते हो ?"
"होटल में कप-बसी धोता हूँ।"
क्या पैसा देता है तुम्हारा मालिक ?"
"चार रुपये महीने और दो टेम नास्ता !!"

आवेश में आकर, बच्चे को छोड़, वे एकदम खड़े हो गये !! डण्डे से जमीन कुरेदी और दहाड़ती आवाज में कहने लगे—'बालकों की ऐसी हालत !! छि छि ! लानत है। सब जवाहरलाल नेहरू के सबब हैं। कांग्रेस सरकार जितनी जल्दी खत्म हो, अच्छा !! राम ! राम ! अरे, ये बच्चे हमारे देश के धन हैं। ये साले उनकी रक्षा नहीं कर सकते !!"

उस समय व्योमरूपानन्द का चेहरा देखने लायक था। भावावेश के कारण, चेहरा कुछ फैल गया था। ज्यादा लाल दिखायी देता था। आँखों में गीली चमक थी। गालों पर की मोटी शलवटें झुकती थीं, उठती थीं, झुकती और उठती थीं। उनकी चपटी और मोटी नाक, दो हिस्सोंवाली ठुड्डी, चौड़ा चेहरा, कई रेखाओं-वाला छोटा ललाट, स्थूल देह बहुत प्रभावशाली थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके व्यक्तित्व में एक चमत्कार था, एक ऊष्माभरी महक थी, एक खास जोर था। बेलौस, नाशरमिन्दा फक्कड़पन चार चाँद लगा [रहा] था। स्निग्ध करुण भावावेश में स्वामीजी ने अपनी कुर्ते की जेबों से चाकलेटें निकालीं और बच्चों को बाँटने लग गये।

पानवाला टुकुर-टुकुर देख रहा था। अजनबी लोग हैरत में थे। मैं व्योम-रूपानन्द के प्रति श्रद्धा से गद्गद हो उठा था। इतने में स्वामीजी ने मेरी ओर मुखातिब होकर कहा, "जाइये, एक रुपये की चाकलेट ले आइये। यह रुपया !!"

भयानक अधिकार भावना थी यह। किसी दूसरे मौके पर मैं उनकी ऐसी तैसी कर देता। परन्तु, उस समय मैं श्रद्धा-गद्गद था। भागता गया। और लगभग बीस मिनिट में चाकलेट लेकर हाजिर हो गया। उन्होंने बच्चों में चाकलेटें बाँटीं। भीड़ तितर-बितर होने लगी। व्योमरूपानन्द आगे बढ़ गये।

[अपूर्ण। संभावित रचनाकाल 1962 63। **रचनावली** के दूसरे संस्करण में पहली बार प्रकाशित]

अधूरी कहानी : दस

घर में बिलकुल मन नहीं लगा। कमरे खाली पड़े थे। स्त्री कहीं बाहर गयी थी।
अपने हाथ सिगड़ी सिलगाई, चाय बनायी। सोचा, कोई मिलने के लिए

आयेगा ही। एक कप पानी ज्यादा रखा। बरामदे रखी कुर्सियों को साफ किया। लाइट लगा दी।

वैसे, अभी सिर्फ पाँच बजे थे। लेकिन, बरामदे म एसा लगता था, मानो शाम के सात बज हो। गली क मकानो म ऐसा ही होता है। दिन देर स उगता है, रात जल्दी होती है।

चाय तैयार हो गयी। लेकिन, आज कोई नही आया न शैलेन्द्र, न सहस्र-बुद्धे न तिवारी। पता नही, उन्ह क्या हो गया आज !!

एक अजीब-सा इन्तजार मन म उमडने लगा। दिल तो बिलकुल छायावादी हो रहा था। सोचने लगा आज किसी की राह है !! या कोई मेरी राह देख रहा है !!

लेकिन कौन !!

माता-पिता को अवश्य मेरी याद आयी होगी। लेकिन वे तो दूसरे शहर रहते हैं। फिर, न वो मेरे पास आ सकते है, न मैं उनके पास जा सकता हूँ। रेलवेवाले कवि नहो, उनके हृदय जड हो गय हैं। अगर उन्हे दिल होता तो वे भी यह महसूस कर सकते थे कि बढे हुए किराये के सबब जुदाई का पर्व कितने-कितने लोगो को उन्होंने देकर रखा है !!

चाय पी चुका हूँ। अब ऐसा किया जाय—बाहर अकेले ही घूमा जाय !! न सही, शैलेन्द्र जाने दो। आत्मनिर्भर होना आवश्यक है।

पता नही कब चप्पल पहनी, और बाहर रवाना हो गया। गली पार की और दूसरी गली मे पहुँचा था ही कि इतने म खयाल आया कि फिजूल ही यहाँ आ गया। जरा सावधानी बरतना जो अपने घर के पिछवाडे स निकलकर बडी सडक पर आ जाता।

क्योकि इस गली म मेरी काकी रहती है। वो पूछेंगी कि मैं गोदिया मे भाभी से मिलकर क्यो नही आया।

सही है कि गाडी गोदिया म लगभग पाँच घण्टे खडी थी। कडाके का जाडा था। ओवरकोट सिर्फ मेरे ही पास था और आल इण्डिया रेडियो म सभ्य गिन जाने के लिए ढाई सौ रुपये का कीमती ऊनी सूट भी पहने हुए था। इस ठाठ से घूम रहा था।

बडा बुरा समय था वह। प्लेटफार्म एकदम सूना, एकाध इक्का-दुक्का आदमी अगर चलता-फिरता दिखायी भी दे, और सूनापन महसूस कर जाता था, ठीक उसी तरह जिस तरह आसमान का बेहदपन बताने के लिए बादलो की इक्की-दुक्की रेखाएँ खीच दी जाती हैं। उस समय शाम के पाँच बजे थे, लेकिन प्लेटफार्म पर सूने भूरे सफ़ेद उजाले के अलावा और कुछ न था। लगता था जैसे मैदान और आसमान की सारी दूरियाँ अपना पारदर्शीपना न खोते हुए वही जमा हो गयी हैं।

मुसाफिर एक जगह सिमटे-सिमटे ठिठुरे-ठिठुरे बैठे थे, कोई सतरजी ओढ़े हुए, कोई बोरा ओढे हुए !! किन्तु मैं इत्मीनान स सिगरेट पीते हुए, कडाके के जाडे को चुनौती देते हुए घूम रहा था।

साफ कहना चाहता हूँ कि मुझे उस वक्त भी मामी-मामा की याद आयी। वक्त भी था। जा भी सकता था। लेकिन, कडाके के जाडे को अपने कपडो से बेहद

चुनौती देते हुए अपने इत्मीनान के अहसास को छोड़ना नहीं चाहता था।
गही है कि प्लेटफार्म पर एक भी आकर्षक आकृति नहीं थी। एक भी ऐसी चीज नहीं थी जो मन को जरा-सा थाम ले। और अभी गाडी आने को पाँच घण्टे थे। पता नहीं ऐसा क्यो हुआ करता है !! वक्त क्यो चूक जाता है, गाड़ी क्यो नही आ पाती, किसकी गलती है कि ऐसा होता है !! जो हो, मैं मामी के यहाँ नहीं जाना चाहता था। शायद वो लोग मेरा इन्तजार भी करते रहे होगे, क्या पता। उन्हें मालूम तो था कि मैं इस गोदिया से गुजर रहा हूँ।
अब यह मत पूछिए कि मैं वहाँ क्यो नही जाना चाहता था !! मैं इक्कीसवी सदी से सत्रहवी सदी मे, लन्दन से टिम्बक्टू म नही जाना चाहता था। यह मैं कैसे समझाऊँ !!
असल मे, उनकी फटे हाल तसवीरो मे, उदास सूरतो से मैं घबराता हूँ। जी मे न मालूम कैसा-कैसा-सा होता है। अपनी आज़ाद मस्ती मे मैं उदासी का दाग नहीं लगाना चाहता था। फिर मुझे लगता है उनका मेरे प्रति जो प्रेम है, उसमे कल्पना का मिश्रण है, अनायास उमडकर आयी हुई अतिरंजना है। अति-भावुकता है, मानो वे प्रेम के पाश मे बाँधकर रखना चाहते हो। मैं किसी पाश-वाश मे बँधना नही चाहता।
बहरहाल, मैं नही गया। लेकिन यह बात खटकती रही। और मन बहक-बहक र उधर ही जाने लगा। सोचन लगा—घने-घने इमली के पड के नीचे भूरी-पीली थोडी लाल हुई छोटी-छोटी पत्तियाँ, उनके आस-पास खेलते हुए फटे हाल बालक। मस्त, अपनी धुन मे आजाद
मुझे देखकर, एकदम नाच उठेंगे खुशी से बाबू सा'ब आ गय, बाबू सा'ब आ गये !!
लेकिन, जरा गौर से मुझे देखने पर, उनकी सारी आज़ादी खत्म हो जायेगी। वे अब मुझे दूर से ही देखेंगे। पास नही आयेंगे।
मामी को खबर करेंगे। पडोसियो को खबर करेंगे। लेकिन मेरे पास नही आयेंगे। मैं अगर चाकलेट का डिब्बा लाऊँगा तब भी नही आयेंग।
मैं बताऊँ मुझे इसका बुरा लगता है। क्योंकि ·
क्योकि साफ बताऊँ ये मेरे कपडे है, ये मेरे रहन-सहन का ढग है जो उन्हे मुझसे दूर किये हुए है। वे मेरे बढिया सूट और इस गरम ओवरकोट को देखकर रौब मे आयेंग और मुझे पश्चिमी ढग का ओरागउटाग समझेंग, समझते भी है।
इसीलिए, चलते वक्त मैंने अपनी माँ से कहा था कि मामी के यहाँ नही जाऊँगा। वह समझी नही, नाराज़ हो गयी। उसे बुरा लगा। बुरा लगना स्वाभाविक था।
मेरे पिता मामा से अच्छे ढग से पेश नही आते थे। अनेक कारणो मे एक कारण यह भी था कि मामा की कमाई कुछ नही थी, घर मे फूटे बरतन थे, मामी को साधारण सी साडी भी नही थी, जो भले घर को शोभा दे।
जब मामा यहाँ आते थे उनके कीमती फटे-लत्तर हमारे घर को विद्रूप कर डालते। उनकी गठरियाँ, उनकी धोतियाँ, उनके साडियाँ एक से एक थी—हमारे यहाँ के जूते पोछन के काम भी न आती थी। यहाँ तक कि हम लोगो क लिए खास तौर स अपने घर की जो मिठाई (चावल और मूँग क आटे के लड्डू) आती थी, वह

भी सचमुच पसन्द नहीं आती थी।

मैं तो चटोर था, इसलिए उसको भी डकार जाता। जो भी मीठा है, अपने को सब चलता है। लेकिन, पिताजी खा भी नहीं सकते थे, न नाना, न कोई और।

इसीलिए, एक तो हमारे यहाँ मामाजी वैसे भी नहीं आते थे। शादी-ब्याह में आना भी उनके लिए मुश्किल था। एक कारण तो यह कि उनको खर्चा बैठ जाता था। फिर भी, अपनी बहन और मेरी माँ का लिहाज करके वे आते थे। ज़रूर आते थे। और घर में तीसरे दर्जे के मेहमान यानी सेवक के रूप में रहते थे।

हमारे घर में रिश्तेदारों के तीन दर्जे थे।

एक वे जिन्हें खास बिस्तर और पलँग दिये जाते थे, और मसहरी लगायी जाती थी और, घर के बड़े अच्छे खुले-खुले खिड़कियोंवाले कमरों में सोते थे। उन्हें ये सहूलियत इसलिए दी जाती थी कि वे उसके लायक थ। उनकी वैसी हैसियत थी। जब तक वे भोजन के लिए उपस्थित न हों, पिताजी भोजन नहीं करते थे। इसलिए नहीं कि वे उनसे बहुत प्यार करते थे, बल्कि शराफ़त के तकाज़े में वैसा करते थे।

दूसरे दर्जे के रिश्तेदार वे थे, जिनकी आवभगत की चिन्ता बिलकुल नहीं थी। थे वो पिताजी की ही बाजू के रिश्तेदार, न कि माताजी की बाजू के। लेकिन उनकी हैसियत ऊँची नहीं थी। वे घर में आते, चाय के वक्त हाज़िर रहते थे। माताजी उनकी आवभगत खूब करती थीं, ताकि उन्हें यह महसूस न हो कि पिताजी उनकी ओर ध्यान नहीं देते।

तीसरे दर्जे के रिश्तेदार माँ की बाजू के थे। वे सब ग़रीब थे। उनमें से जो औरतें थीं वे रसोईघर के पासवाले कमरे में सोतीं, जो मर्द थे वे जाफ़री में। उन्हें मसहरी न दी जाती, न पलँग, पिताजी सिर्फ़ एकाधबार पूछ लेते, क्यों भई आ गये, कैसा क्या चल रहा है, वे लोग कहाँ हैं, इत्यादि इत्यादि!! मुझे वह सारी बातचीत बनावटी और कामचलाऊ ढंग की मालूम होती।

मतलब यह कि माँ समझती थी कि मामा की क्या हालत है। सम्भवत, इसमें मामा का ही दोष था। लेकिन, यह भी सच है कि अगर कोई दूसरा समाज होता तो उनके गुणों की कीमत बढ़ जाती। उनमें सबसे बड़ा दुर्गुण तो यह था कि वे शुरू ही से ग़रीब रहे, और फिर बुरी संगत में पड़कर बिगड़ गये।

लेकिन, मैं इस शहर के हजार आदमियों को जानता हूँ जिनके [illegible] और बदनाम होने के [illegible]
सच तो यह है कि [illegible]
वक्त पर कुशलत[illegible]
हुआ हो तो आदर और कीर्ति दोनों मिलते जाते हैं। कम-से-कम मैं अपने मामा से कभी घृणा न कर पाया, न हृदय से उनका कभी निरादर कर सका।

अब यह देखिए न!! हमारी दो फूफियाँ हैं। भले ही बातें ढाँक दी जायें, किन्तु उनका पैर उलटे रास्ते पर पड़ ही गया था। लेकिन यह ज़रूर है कि वे अपने पैरों पर खड़ी हुईं। जब नौकरी से अच्छे-खासे पैसे मिलने लग गये और घर में सामान भर गया, और घर में एक भद्र परिवार का वातावरण बन गया, तो क्या मजाल कि छोटी फूफी हो या बड़ी फूफी, कोई उनका अनादर करे, अथवा उनके लिए असम्मान के भाव से काम करे। मेरी माँ तो उनके आगे-पीछे आगे-पीछे सेवा-

चाकरी करती। तो मतलब यह कि बदचलनी, बुराई का मूल नही। बुराई का मूल है ग़रीबी।

यह सब विश्लेषण अपनी जगह ठीक है। लेकिन, अगर सही है तो मैं क्या करूँ और अगर ग़लत है तो मैं क्या करूँ।

सच कहूँ, "कि मैं क्या करूँ" का सवाल मेरे सामने बराबर उठता रहा, इसलिए नही कि मैं बडा विवेकशील हूँ, बल्कि इसलिए कि ये सब बातें मेरे लिए मनोवैज्ञानिक समस्या बन जाती। भौतिक समस्या जो है, जैसी है, मुझसे बाहर है, लेकिन उन्हे देखकर जी डाँवाडोल हो जाता है। भीतर की इस अनबन और बेचैनी को दबाने के लिए, या कहिए अपने आपको बचाने के लिए, मैंने एक छद्म बौद्धिकता का जामा पहन रखा है। एक भयानक तटस्थता, एक कड़ुई और तीखी रुखाई फासले पैदा कर देती हैं और मेरे खयाल से ये फासले जरूरी हैं। फासले नही, वे जिरह-बख्तर हैं—भीतर के चूहे ने जो पहन रक्खे हैं।

लेकिन, जब दूसरे लोग मुझसे फासले रखने और दूरियाँ निबाहने लगते हैं तो मुझे बहुत बुरा लगता है। मेरी मामा मामी के लडके, मेरे ममेरे मेमने, जो मुझसे रौब खाकर, (ऊनी सूट, ओवरकोट, शू इत्यादि) से आतंकित होकर, जब मुझसे अलग-अलग दूर-दूर रहने लगते हैं तो मुझे बहुत बुरा लगता है। सच तो यह है मैं चाहता हूँ कि सब मुझसे प्यार करें लेकिन मैं रुखाई बरतूँ।

मुझे पक्का मालूम था कि मामी-मामा से बिदा लेते समय मुझे प्रेम का नाटक करना पडेगा। बच्चों को पकड-पकडकर उनके हाथ एक-एक रुपया रखना होगा। और, फिर, दूर ही से मामी की उदास-उदास पीली-पीली उतरी-उतरी सूरत को पीछे फडफडकर देखते हुए मुझे अपने दिल के भीतर एक चाकू की धार महसूस करनी होगी।

गोंदिया के उस कडाके के जाडे मे, मैं तो अपने खालीपन मे गरम-गरम संवेदनाएँ महसूस करना चाहता था न कि चाकू की ठण्डी धार। इसीलिए मैं मामी के यहाँ नही आया। मैं क्यो जाऊँ!!

मुझे पक्का याद है कि प्लेटफॉर्म पर मेरी नजरें टी स्टॉल को ढूँढने लगी। और, वहाँ मुझे दिखायी दिया एक और ऊनी ओवरकोट!! पहले तो सोचा था कि वह रेलवे का कर्मचारी होगा। लेकिन पास जाने पर पता चला कि वह रेलवे का कर्मचारी नही है, क्योंकि मुझे मालूम था कि वह···

लेकिन, आज मुझे यह बात क्यो याद आयी!! दिमाग खाली है। सडक भरी है। रफ्तार खूब है। पैर चल रहे हैं, थके भी। तब दिमाग क्यो न चले!!

लेकिन, आज मुझे साथ की जरूरत है। आदमी की जरूरत है। उस वक़्त अगर मेरे मामी के यहाँ पहुँचने से···

[अपूर्ण। सम्भावित रचनाकाल 1962-63। रचनावली के दूसरे संस्करण में पहली बार प्रकाशित।]

बड़ी सड़क और पिछवाड़ा

[इस लम्बी रचना के शुरू के पृष्ठ नहीं मिले। अन्य रचनाकारों की तरह, उसके केन्द्रीय बिम्ब को भी मुक्तिबोध ने कई प्रकार से विकसित किया है और ऐसा एक अपूर्ण रूप 'गली का लड़का' शीर्षक से डायरिया के अन्तर्गत सकलित किया गया है। प्रस्तुत रचना में बहस से अधिक विवरण चरित्र और फ़ैण्टेसी के माध्यम से हिन्दी लेखकों के तत्कालीन रुझानों पर व्यग है जो इसे कथा के अधिक समीप ले आता है। इसलिए इसे कहानियों के साथ रखना अधिक सगत जान पड़ा।—स]

पहले तो उन्होंने पुराने स्थापत्य विशारदों की बड़ी निन्दा की। गली के बहुतेरे लोग उनकी इस निन्दा से खुश हो गये। क्या उन पुराने स्थापत्य-विशारदो ने बड़े-बड़े लाउडस्पीकरो के ज़रिए इस तग रास्ते की गहरी बदनामी नही की थी।

फिर उन्होंने गली से कहा कि हे गली, तुम्हे खुशनुमा सड़क तो होना ही है। इसलिए हम जो बतायें वह करो। तुम्हें कोई तकलीफ भी नही होगी, और मज़ा आ जायेगा। हम जो कहते हैं उसे करके देखो। तुम खूब चमचमाने लगोगी। तुम अत्यन्त सुन्दर हो उठोगी।

इसके बाद हुआ यह कि गली मे, पहले एक कोने मे, फिर दूसरे कोने मे, चमचमाती हुई शानदार दूकानें लग गयी। उनके मालिक शिक्षित और बढ़िया पोज़ म बैठे हुए। कुछ ग़रीबो को इससे फायदा भी हुआ। क्योंकि दूकानो से उन्हें अच्छा किराया मिलने लगा था और अब वे खुद धनी बनने की सोचने लगे।

लेकिन धीरे-धीरे और-और दूकानें बढ गयी। किस्म किस्म की दूकानें—चमचमाती हुईं, सुन्दर-सुन्दर वस्तुओ स, सुगन्धित, बढ़िया कपडे पहने हुए लोग आने लगे। उन लोगो की आँखें दूकानो के भीतर खडी हुई रमणियो की ओर जाती ही थी, मकानो के दूसरी मजिल की खिडकियो पर भी पहुँचती थी। सम्भव है, वहाँ पर भी सुन्दर-सुन्दर चेहरे दिखायी दें, जो उनकी तरह-तरह की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकें।

क्रमश, सुन्दर-सुन्दर आकृतियों का, रूपो का, व्यापार शुरू हुआ। सब कलाकार हो गये। कला सुन्दरतम आकृति म समा गयी। एकमात्र कसौटी—उत्कृष्टता, एक्सलेंस, सुन्दरता। फिर उस आकृति का जो प्रच्छन्न भीतरी ढाँचा है, उसमे बल हो या न हो, इसकी परवाह नही। इसकी भी परवाह नही कि वह आकृति कृत्रिम लेपो और रगो से बनायी गयी है। इसीलिए अब प्लास्टिक, एलुमैन, टीन और न मालूम कितने ही द्रव्यो की सस्ती, क्षणस्थायी, किन्तु आकर्षक वस्तुएँ बनायी जाने लगीं। उनकी न मालूम कितनी ही बड़ी-बड़ी दूकानें खुल गयी।

गली की ज़िन्दगी अब बदल गयी। दूकानों के ऊपर, दूसरी मजिल की खिडकियो मे, रग-रोगन लगाये हुए, या कही स भगाकर लाये हुए, कोमल-कमनीय मुखमण्डल अधिकाधिक दिखायी देने लगे।

दूकानदारों ने देखा कि व्यापार बढ गया है तो उन्होंने पुराने ग़रीबों से गली के मकान खरीदने शुरू किये। उन्हें बदलकर आलीशान इमारतें बना ली। यहाँ तक हालत हुई कि गिराये गये मकानों के जो पुराने मालिक थे, उन्होंने वहाँ

किराये से रहना शुरू किया। उनमे से एकने वहाँ चायघर शुरू किया, जहाँ गली के
—युवक थे। चायघर का
रहता हो, वह था तो
लिक। इसीलिए, उस
वह नयी परम्परा और
पुरानी परम्परा के बीच की कडी थी।

चायघर मे तरह-तरह के लोग आते। उनमे से एक ने गली के पश्चिमी किनारे पर एक साप्ताहिक-पत्र का दफ्तर खोल लिया था। कुछ मासिक-पत्र के सम्पादक भी यहाँ आने लगे—ऐसे मासिक-पत्र जो अब बडी शान-शौकत से निकलते थे। हुआ यह कि उन मासिक-पत्रो को लाखो के मालिक व्यापारियो ने खरीद लिया और वे अपने सम्पादको को ऊँची तनख्वाहे देने लगे, और लेखको को भी उनसे खूब पैसा मिलने लगा।

इस तरह, इस चायघर मे नयी रोशनी मे चमचमानेवाले सारे चेहरे इकट्ठा हो गये। नये ढग के, ऊँची किस्म के ठेकेदार, व्यापारियो के बिगडैल फुरसती लडके, विलायत से हाल ही मे लौटे हुए निबन्ध-लेखक, अमरीका की बफैलो
करके उपाधि प्राप्त कर आयी
ी के एक भूतपूर्व क्लर्क, कवि,
यंवादी, सन्तुलनवादी, सामरस्य-
वादी, रहस्यवादी, नव काव्यवादी, अस्तित्ववादी, नव-वास्तववादी, वास्तववादी, व्यवहारवादी, रचनावादी, अद्वैतवादी, विप्लववादी, भविष्यवादी, प्रभाववादी, उत्तर-प्रभाववादी, अवचेतनवादी, यथार्थवादी, पुराणवादी—और इस तरह न मालूम कितने ही जीवन-क्षेत्रो की विभिन्न प्रवृत्तियो और विचारधाराओ के नवयुवक यहाँ एकत्र होते। और स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध, समाज-नीति, राजनीति, दर्शन, समीक्षा, कला, सभ्यता, असभ्यता तथा विज्ञान, आदि विषयो पर चर्चा करते, आमलेट खाते, कॉफी पीते, चाय पीते, दोसा खाते, और लगे हाथो अपने प्रकाशकों से बातचीत करके बात पक्की कर लेते। वे समझौते करते, कुचक्र करते, निन्दा-स्तुति करते, जरूरी जानकारी ले लेते, अब साथ-साथ चायघर मे बैठी लडकियो म से पसन्द आयी हुई किसी लडकी के बारे मे खयाली पुलाव पकाते, और उससे मिलने की कोशिश करते।

इस तरह, गली की जिन्दगी मे एक बहार आ गयी। गली का जीवन द्रुत गति से बदलने लगा। सभ्यता अपने चरम शिखर पर पहुँचने लगी।

किन्तु उधर अपराधो की सख्या बढ गयी। लडकियाँ भी स्वतन्त्र व्यवसाय करने लगी, लडके भी स्वतन्त्र व्यवसाय करने लगे। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य, आत्म-स्वातन्त्र्य—जिसका मूल है, खरीदने और बेचने की स्वतन्त्रता। जहाँ तानाशाही थी, वहाँ विचाराभिव्यक्ति का, मुद्रण का, सगठन का स्वातन्त्र्य नहीं था, किन्तु खरीदने-बेचने की स्वतन्त्रता थी। इसलिए वह 'स्वतन्त्र जगत्' का एक अग था। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का अर्थ है खरीदने-बेचने की स्वतन्त्रता। इसलिए व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को, व्यक्ति को, व्यक्ति की शक्ति को खरीद लिया जाता था। इस तरह जिनके पास खरीदने के लिए पैसा होता था, उसके पास सच्चा स्वातन्त्र्य था, बाकी लोग बिके हुए थे। वे लोग आदमी खरीदते थे—उसके वक़्त को, उसकी

मेहनत को, उसके दिमाग को, उसकी राय को, उसकी आग को, उसके जिस्म को —सबको खरीद लेते थे।

सार्वजनिक जीवन का नैतिकता स कोई सम्बन्ध नही था। नैतिकता का कला से कोई सम्बन्ध नही था। कला कला के लिए, व्यापार व्यापार के लिए। कला का केवल सौन्दर्य से सम्बन्ध था और छुपे तरीके मे, अप्रत्यक्ष रूप, से व्यापार से सम्बन्ध था, क्योकि कलाकार को भी भरण पोपण के लिए पैसा चाहिए था। और जहाँ आदमी बिक्ते थे, वहाँ एक खास ढग से, और एक खास नज़ाकत से, एक खास ढग का आगा-पीछा सोचते हुए, एक खास अन्दाज़ से, कला भी बिकती थी। व्यापार का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नही था, नैतिकता का सार्वजनिक जीवन से कोई सम्बन्ध नही था। सार्वजनिक जीवन का कला से कोई सम्बन्ध नही था। सब अपने-अपने लिए थे, किसी का किसी से कोई सम्बन्ध नही था।

अब हुआ यह कि, आज़ादी के बावजूद, बहुतरे कलाकार और विचारक दु ख से ग्रस्त हो गये, क्योकि सब अपने-अपने मे बँधे हुए थे, सब अपनी-अपनी सोचते थे, सबने अपने आस-पास बडे-बडे फासले खडे कर लिये थे। और जीवन-यापन को अच्छी तरह सुघर रूप से, बढिया ढग से, सम्पन्न करने के लक्ष्य को लेकर, उन्होंने समझौते कर लिये थे—ऐसे समझौते जो एक ओर उनके दिल को काटते थे, दूसरी ओर, उन्ही समझौतो के कारण ही उनके पास आमदनी के ज़रिये थे। वे सब बाहर-बाहर बडे खुशहाल-से दीखते थे, लेकिन भीतर-भीतर बदहाल और बदहवास थ। ऐसे थे वे लोग, बडे प्यारे, बडे भोले—इतने भोले कि बहुत ही बौद्धिक सूक्ष्मता और स्वच्छता से अपने अज्ञान को सँभाले और पाले रखते थे, क्योकि वे जिन्दगी की कुछ बहुत बुनियादी बातो को जानबूझकर अपने दिमाग़ मे घुसने देना ही ग़लत समझते थ।

पता नही, किसने, किससे, किस जगह, किस ढग से क्या कहा। लेकिन हुआ यह कि उनमे से जो चन्द लोग हैं, वे एक दिन चायघर की भीड से उठ खडे हुए और धीरे-धीरे जाने लगे। लगता था कि उनक क़दम डगमगा रहे हैं। फिर भी वे खुद को खूब सँभाले हुए पैर बढाते गये।

गली (जो अब लगभग खुशनुमा सडक हो गयी थी) के दोनो ओर सुन्दर भवनो की एक पाँत के बीच छोटी-सी एक गली और थी। वह उस गली (यानी नयी खुशनुमा सडक) के पीछे ले जाती थी। वहाँ भी एक भयानक रही गन्दी गली थी, क्योकि वह पिछवाडा था। उस गन्दी गली के दोनो ओर बडी-बडी इमारतो के भयानक पिछवाडे थे। वहाँ दिन मे भी अँधेरा रहता था और क़िस्म-क़िस्म की गन्दी बास वहाँ आती रहती थी। हर इमारत के पिछवाडे वहाँ गोल-गोल, ऊँचे-ऊँचे ज़ीने थे। उन ज़ीनो से सफाईगर, मेहतर, और सभ्यता की गन्दगी साफ करनेवाले दूसरे लोग भी गुज़रते थे।

ये लोग जब इस गन्दी गली मे घुसे तो एकदम बात करने लगे। लगता था जैसे बातो का कोई झरना फूट पडा हो। लेकिन उनकी बातो से शोर नही होता था। शोर से वे बहुत घबरात थे। इसलिए भी कि उनकी बातो से लोग कही चौंक न जायें, क्योकि दीवारो के भी कान होत हैं। किन्तु एक कारण यह भी था कि ऊँची आवाज़ से बात करना वे अस्वाभाविक और मसृणिहीन समझते थे।

लेकिन, उनके चेहरे-मोहरे से ऐसा लगता था, मानो वे घुलकर बात कर रहे

हो, अपने से भी खुल गये हो।

उन्हे सामने एक पीला-दुबला बालक दिखायी दिया, जिसके पास खूब सारे बर्तन,पडे हुए थे। वह बहुत दुबला था। लगता था कि वह बीमार है। फिर भी, वह काम म लगा हुआ है। बर्तन मल रहा है। मेहनत से मल रहा है।

उसने इन लोगो को इस तग अँधेरे पिछवाडे की गली मे कभी नही देखा था। इसलिए, वह भीतर-भीतर घबराया-सा था। डर रहा था।

वह फटी हुई चड्डी पहने था—वह इतनी फटी थी कि आगे-पीछे के हिस्से दिखायी दे रहे थे। बनियान के फटे हिस्से मे से भीतर की हड्डियाँ और उस पर चढा हुआ चमडा दिखायी दे रहा था।

इसके विपरीत, ये सब लोग अच्छे-अच्छे कपडे पहने थे। बिल्कुल सुरक्षित थे। सबको वह दृश्य नागवार गुजरा। सबको बालक के मुख के प्रति करुणा उत्पन्न हुई। सबके जी मे न मालूम कैसा-सा होने लगा। कुछ तो उस दृश्य से डर ही गये।

एक ने कहा, "वह व्यभिचार-पुत्र है। किसी ने अपना बालक छोड दिया, मारे शर्म के। वह कोई ग़रीब औरत रही होगी। धनी होती तो उसका भी प्रबन्ध करती।"

दूसरे न कहा, "वह बालक मेरी आत्मा की इमेज (बिम्ब) है। ही इज़ माई इमेज।"

यह कहने के बाद, उसके चेहरे पर भयानक मनहूसी छा गयी।

बालक बीच-बीच मे उन्हे देखता हुआ बर्तन मल रहा था। उसके छोटे हड्डि-यल हाथ लगातार काम कर रहे थे। राख-मिट्टी और पानी से उसका दुबला शरीर गीला और गन्दा हो गया था।

उसके पास से जब सब लोग गुज़रे तो जाने-अनजाने उनकी एक पाँत बन गयी थी। उस पाँत मे सबके चेहरे झुके हुए थे। गर्दन लटकी हुई थी। मनहूस खामोशी से वे इस तरह गुज़र रहे थे, मानो व किसी ताज़ा क़ब्र के पास से गुज़र रहे हो।

उनमे से आखिरी कडी मे जो एक व्यक्ति चल रहा था, वह ज्यो ही उस बालक के नज़दीक आया, वह पल-भर उसकी तरफ देखता हुआ ठिठका, फिर मुसकराया। फिर उस बालक के बालो पर हाथ फेरने की कोशिश करने लगा। बालक ने डरकर अपना सिर एक ओर कर दिया।

उस आदमी ने फिर मुसकरान की कोशिश की। उसकी आँखो म प्यार की तरी थी। उसने अपनी जेब म हाथ डाला। और उसमे से बहुत-सी चाकलेटें निकालकर वह बालक को देने लगा। बच्चे ने हाथ नही फैलाये। वह डरा-डरा-सा, चुपचाप, उसकी ओर कातर-करुण आँखों स देखता रहा।

फिर उस आदमी को न मालूम क्या मालूम हुआ। उसने अपनी जेब मे फिर हाथ डाला। और एक दो रुपये का नोट निकालकर उसकी ओर बढ़ा दिया।

बालक को मालूम था कि दूसरे शातिर और बडे लडके जब पैसे चुराते हैं तो मालिक उन्ह मारता है। नोट देखते ही वह तुरन्त बर्तन मलने मे फिर से भिड गया।

इस काण्ड को देखता हुआ उस आदमी का एक साथी भी लगभग क़रीब आ गया था। उसने उस आदमी स कहा, "दो-एक चाकलेट यहां रख दो। वह न नोट

लेगा, न कपडे। हम लोग अब रोज इधर से आया करेंगे। बालक से मैत्री करेंगे। फिर उसे अच्छा खाने को देंगे। तब उसका शरीर बनेगा। रोग भी दूर होगा। चलो!"

उसने उस आदमी का हाथ खीचने की कोशिश की। तब तक इस दृश्य को देखती हुई उनकी सारी पाँत ठिठकी खडी थी। उनमें से अब कइयों ने यह फुस-फुसाना शुरू किया, "हाँ, हम लोग अब इधर आकर उसे कुछ-न-कुछ खाने को दे जाया करेंगे।"

पाँत फिर टूटने लगी। लोग फिर एक गुत्थी बनकर चलने लगे। एक ने कहा, "ऐसे न मालूम कितने ही लोग होंगे।"

"हाँ, न मालूम कितने ही!"

फिर न मालूम कितनों ने एक ठण्डी सांस खीची।

एक ने एकाएक पूछा, "यह आधुनिक भाव-बोध नहीं है क्या, उसके पूरे सन्दर्भों के साथ!"

"हाँ, है, लेकिन हमारे विशेषज्ञ आधुनिक भाव-बोध की परिभाषा के अन्तर्गत उसको कहाँ लाते हैं!"

"लेकिन इस बालक का यह जो जीवन-सघर्ष है और उसको भूलकर त्याग देनेवाली ग़रीब माँ, उस बहु-व्यभिचरित आत्मा का जीवन-संघर्ष—क्या वह आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत आता है!"

"हमारे विशेषज्ञों ने तो यह नहीं कहा!"

"और, जो मजदूर का, कुली का, हमाल का, क्लर्क का, मास्टर का, सहायक सम्पादक का जो वास्तविक जीवन-संघर्ष है, उस जीवन-संघर्ष के मूल्य और उसकी दिशाएँ, उसकी आकांक्षाएँ आधुनिक भाव-बोध के अन्तर्गत नहीं आती?"

"कहाँ की बात कर रहे हो? उन्हें संघर्ष शब्द ही से घृणा है। सारे संघर्ष वर्ग-संघर्ष होकर साम्यवाद की ओर ले आते हैं!"

"क्या मानी हैं?"

"मानी क्या बताऊँ! कोई भी इस ढंग की लडाई छिड गयी तो जब तक साम्यवाद-विरोधी विचार-प्रचार डटकर नहीं हो, साम्यवाद ही का उत्कर्ष होता है'।"

सब चुप हो गये और ढीले पड गये। [illegible] गयी हुई थी। [illegible]

वे [illegible] हो रही थी। जीवन निरर्थक मालूम हो रहा था। फिर भी उन्हें जाना तो था ही। इसलिए चल रहे थे।

एकाएक उनमें से एक व्यक्ति ठहर गया। वह आगे न बढ़ने का बहाना ढूँढ रहा था। उसने कहा, "कैसी गन्दी गली है! भयानक बास!"

सब मौन धारण किये रहे। बास सचमुच भयानक थी। लगता था कि किसी बडी इमारत के किचन में किसी गन्दे पशु का दुर्गन्धियुक्त मांस पकाया जा रहा हो।

फिर भी जाना जरूरी था।

किसी ने कहा, "हम नरक के रास्ते पर हैं।"

दूसरे ने कहा, "लेकिन वहाँ भी आदमी मिलेंगे।"

"तो क्या इससे नरक स्वर्ग हो जाता है ?"

यह सुनकर सब चुप हो गये। सबके हृदय में से एक साथ उसाँस निकली। ऐसा लगता था कि नरक उनके हृदय में ही हो।

एक अनायास कह उठा, "हम तो लघु-मानव हैं।"

फिर खामोशी छा गयी। गहरी खामोशी। सबको बिना कहे मालूम था कि वे लघु-मानव हैं, वे जन-साधारण थोड़े ही हैं। लघु-मानव जन-साधारण से ऊँचा होता है। जन-साधारण की समझ कितनी होती है, ज़रा-सी ! वे क्या सोचते हैं—नून-तेल-दाल-लकड़ी ! लघु-मानव तो कलाकार होता है। सिर्फ उसमें आदर्श गुण नहीं होते, इसलिए वह उन आदर्श गुणों को छद्म प्रवंचना समझता है। ऐसा यथार्थवादी होता है लघु-मानव !

इस तरह के खयाल सभी के दिल में आ रहे थे। सभी ठीक इसी ढंग से सोचे जा रहे थे। उन्हें यह खूब अच्छी तरह मालूम था कि इन सिद्धान्तों के प्रतिपादक बड़ी-बड़ी कुर्सियों पर हैं सरकारी कुर्सियों पर न सही तो दूसरे सिंहासनों पर भी। उनकी आमदनी के भी कई रास्ते हैं, जिनमें से कुछ खुले हैं, कुछ छिपे हैं। वे बड़े ठाठ से ज़िन्दगी जीते हैं, और उनके चेहरे पर शासक-जैसे भाव हैं। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का सबसे अधिक लाभ अगर किसी को हुआ है तो उन्हीं को। उनमें से कुछ अच्छे आदमी भी हो सकते हैं लेकिन वे भी बुरों से समझौता करके ज़िन्दगी बसर कर रहे हैं।

ये जो सब लोग इस तंग गली में से गुज़र रहे हैं, बहुत बहुत बेचैन हैं। हर आदमी छाया बनकर चल रहा है। ये कई छायाएँ बनकर, बोझिल छायाएँ बनकर, चले जा रहे हैं।

अभी लगभग एक घण्टे पहले वे बढ़िया नाश्ता कर चुके थे, कॉफी पी चुके थे। लेकिन अब कब्ज़ महसूस कर रहे हैं। और आगे बढ़ रहे हैं। लगता है कि अगर ज़िन्दगी यहीं खत्म हो जाये तो अच्छा है।

इसी बीच एक चीख उठा, "वाह री अगतिकता !"

तब ऐसा लगा कि कोई बूढ़ा गिद्ध चीखा हो !

सब चौंक उठे, क्योंकि सब लोग ठीक यही सोच रहे थे।

उसी बीच एक बोल उठा, "कहाँ से हम कहाँ पकड़े हुए बेगार में आये !"

लेकिन उसकी बात जमी नहीं। वह एक पुराने शायर की पंक्ति थी। उसमें नयी काव्य-भाषा नहीं थी ! सब लोग खामोश थे। लेकिन इसी बीच एक बोल उठा, "यह हमारी सभ्यता है !"

किसी ने टोककर कहा, "यह आधुनिक सभ्यता है। इसमें व्यक्ति-नाश अवश्यम्भावी है। उसको कोई नहीं रोक सकता।"

किसी तीसरे की जबान खुली। उसने कहा, "लेकिन, हमारी अगतिकता के कारण यह नाश है, यह क्यों नहीं सोचते ?"

"अगतिकता किसने पैदा की ? सभ्यता ने।"

"तो उससे संघर्ष करो !"

"सभ्यता से कैसे संघर्ष हो सकता है ! उसके नाम पर रोया जा सकता है।"

चौथा बोल उठा, "संघर्ष की बातें करनेवाले, तुम साले कितने मूर्ख हो !

व्यक्ति के पास शक्ति ही कहाँ है—संघर्ष करने की, इतनी बड़ी सभ्यता के साथ ?"

पाँचवाँ बोल उठा, "लेकिन संघर्ष करने के लिए समूह चाहिए। व्यक्ति क्या कर सकेगा ? समूह तो भीड़ है। उसकी आत्मा कहाँ होती है ! भीड़ ! भीड़ से तो हम घबराते आ रहे हैं।"

छठा बुद्धिमान बोला, "हाँ, जनता नहीं भीड़, ढोरों की भीड़ ! जनता तो ढोर है। उसको तो हाँका जा सकता है। हम उसे हाँक नहीं सकते। उसको हाँकने के लिए खुद को भी थोड़ा-बहुत पशु बनना पड़ता है। नेता लोग खुद पशु हैं। हम मनुष्य हैं। हम व्यक्ति हैं। इसलिए, व्यक्ति की अगतिकता आदिम अन्तिम है, चरम है। समझे !"

सातवाँ बुद्धिमान बोला, "इसीलिए मनुष्य को अपने आपमें जीना है। अगर वह जी सके।"

आठवाँ बोला, "तब तो वह अस्तित्ववाद तक पहुँचेगा। मैं अस्तित्ववाद से इनकार करता हूँ। मैं तो नव-रहस्यवाद को सर्वोच्च दर्शन समझता हूँ। क्योंकि उसमें कम-से-कम मानवात्मा के उद्धार का रास्ता है।"

इसके बाद कोई नहीं बोला। सब लोग आगे बढ़ गये। सब लोग जानते थे कि सभ्यता और समाज बदलने का काम उनका काम नहीं, वह राजनीति का है। राजनीति से उन्हें क्या मतलब ? राजनीति एक ओछी, टुच्ची और कुत्सित मूर्खता है। और, फिर सवाल यह है कि राजनीति में इतने दल और गुट हैं, वे किसके साथ जायें ? यह सब ग़लत है। हम केवल कलाकार हैं। हमारा अपना कोई देश नहीं, हम दुनिया के हैं ! और क्या उनका कोई अपना देश भी है !

इस तरह वे तरह-तरह के खयालों की गिरह में बँधते जा रहे थे। वे कविता में सोच रहे थे। सोचने में कविता करते थे।

और फिर, सब लोग नतीजे के तौर पर खुद की बुनियाद पर आ जाते थे। और वह यह कि अगर जिन्दा रहना है तो जहाँ चिपके हो, चिपके रहो। टूटे कि टूटे, कटे। ज़िन्दगी हँसकर या रोकर गुज़ार दो। लेकिन जहाँ मौक़ा मिले वहाँ घुस जाओ और आगे बढ़ जाओ। इसी में बुद्धिमत्ता है। कम-से-कम इस सभ्यता में आज़ादी तो है। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य तो है। साम्यवादी दुनिया में वह भी नहीं। वहाँ तो रेजिमेन्टेशन है। अगर व्यक्ति-स्वातन्त्र्य की सतह पर व्यक्ति-नाश होता हो तो कोई परवाह नहीं। व्यक्ति-स्वातन्त्र्य के साथ व्यक्ति-नाश हो तो बुरा क्या ! उसमें कम-से-कम इतना सन्तोष है कि हमने जो कुछ किया खुद किया। वहाँ तो आदमी मशीन का पुर्ज़ा है।

छायाओं की यह पाँत अपने ख़यालों में डूबी हुई आगे बढ़ती जा रही थी। ऊपर आसमान की तंग और लम्बी छत उनको देख रही थी।

इसी बीच तीन औरतें एक बड़ी बिल्डिंग के पिछवाड़े के गोलमोल लहरदार लोहे के ज़ीने में उतर रही थीं। उनके कपड़े अस्त-व्यस्त थे, बाल बिखरे हुए थे। उनमें से एक गोरी थी, जिसके गाल शायद किसी रोग से या रोगन से लाल थे। एक साँवली थी, और उसके हाथ में एक टोकरी थी। उस टोकरी के भीतर साग कचरा था। टोकरी को वह बग़ल में लिए कठिनाई से ज़ीना उतर रही थी। उनके बीचोबीच एक और लड़की थी, जो बहुत खुशनुमा, चंचल और चटकीली लगती

थी। लेकिन उसका चेहरा उतरा था।

इस पाँत के हर एक आदमी का ध्यान उनकी ओर खिंच गया। और लगा कि जैसे कोई आसमानी आग उनकी ओर आ रही हो। उनके दिल में गरमी पैदा हुई। चेहरों पर खुशी का एक हलका-सा रंग छाने लगा। लेकिन वे औरतें अभी जीने के बीच में ही थीं, और उनको देखने के लिए रुकना नागवार-सा लगता था। इसलिए ये लोग आगे बढ़ते गये।

सबके मन में एक ही तरह के भाव आते रहे। वे इन औरतों के बारे में थे। चाहता कोई नहीं था कि उनके बारे में कुछ कहा जाये। किन्तु वे अभिव्यक्ति का व्यवसाय करते थे। आखिर कब तक चुप रहते!

उनमें से एक बोला, "काम करके लौटी हैं।" और लोभ-मुग्ध सम्वेदनाओं में हँस पड़ा। उसकी बात का मज़ा सब लोगों को आ गया। उनमें से एक अधिक कल्पनाशील था। उसने कहा, "टोकरीवाली को देखा! मेरा ख़याल है कि टोकरी में कोई नन्हा था, जिसका जनम एकाध घण्टे पहले हुआ और उसका गला घोंट दिया गया। अब उसे किसी अण्डरग्राउण्ड गटर में डालने जा रहे हैं।"

इस वाक्य को सुनकर सबकी कल्पनाशक्ति भयानक तसवीरें पेश करने लगी —मूँछों की छाँहोंवाली गोरे होंठों और चौड़े गालोंवाली डाक्टरनी, कृत्रिम गर्भपात और भ्रूणहत्या! मानव-काम-संवेदनाओं के परिणाम का यह चरित्र! भयानक!

और इस तरह सोचते-सोचते वे आगे बढ़ गये। गली में अब उन्हें कोई नहीं मिला। गली तंग होती चली गयी। इस तरह आगे चले। उन्हें लगा कि वे पाताल में जा रहे हों। पाताल से भी भयानक और कृत्रिम लोक में। लेकिन फिर भी उन्हें जाना ही है। जाना ही है। उन्हें बुलाया जो गया है।

ईश्वर करे ऐसा आमन्त्रण किसी को न मिले! अब पता नहीं क्या होगा।

लेकिन उन सबको एक आशा थी। इसी आशा के सहारे वे चल रहे थे।

उनसे कहा गया था कि भारत के दौरे पर आया हुआ एक विदेशी लेखक उनसे मिलना चाहता है। उन्हें स्थान, समय और रास्ता बता दिया गया था।

और अब वे इस परेशानी में थे कि कहीं वे खुद रास्ता तो नहीं भूल गये। उन्हें लग रहा था कि वे खुद किसी अवचेतन मस्तिष्क के अँधेरे रास्ते पर चल रहे हों। इसीलिए वे अब अधिक शकालु हो उठे थे।

यह भी सन्देह हुआ कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्होंने गलत सुन लिया हो। किसी ने उन्हें बुलाया ही न हो। वे बे-बुलाये जा रहे हों।

उन्हें यह भी सन्देह हुआ कि आजकल उन्हें केवल भास हो रहा है, कहा कुछ और जाता है, सुनते कुछ और हैं।

और फिर उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उन्हें उल्लू बना दिया, किसी ने उन्हें यहाँ फँसा दिया, और वह साला अब खुद मज़ा ले रहा है। क्योंकि यह साफ़ बात है कि कोई विदेशी लेखक इस गन्दी गली में नहीं ठहरेगा। वह माउण्ट होटल में रहेगा। उनको तरस आने लगा कि उन्होंने कैसे यहाँ आना स्वीकार किया।

गली और भी तंग हो रही थी। उसके दोनों ओर पत्थर के गटरों में गन्दा पानी बहा जा रहा था। यह ईश्वर की कृपा ही थी कि साँझ के प्रत्यावर्तित प्रकाश का पुन. प्रत्यावर्तित प्रकाश यहाँ आया हुआ था।

इसी बीच एकाएक उन्हे बीच मे पडा हुआ एक कागज मिला। वह किसी पुस्तक का फटा हुआ पन्ना था। उसम शायद किसी ने कुछ खाया था।

एकाएक उनमे से एक न वह कागज उठा लिया। चाहे और पहचाने या न पहचाने, वह अपना नाम तो पहचानता ही था। उसमे एक कविता थी, जिस पर उसका नाम था। वह उछल पडा।

उसका यह हर्ष-भाव इतना आकस्मिक था कि सब लोग उसे देखने लगे। आश्चर्य-चकित होने के लिए जो मानसिक शक्ति आवश्यक थी वह उनके पास थी नही। इसलिए वे मनहूस आँखो से उसे घूर रहे थे।

वह चिल्ला उठा, "मेरी कविता!"

लेकिन दूसरो ने उसकी ओर ध्यान नही दिया। एक तो इसलिए कि वे बहुत थके हुए थे, दूसरे इसलिए कि वे खुद म भी लग आ गये थे।

इसी बीच उन्हे एक दरवाजा मिला, जो बाजू की इमारत की भीत मे लगा हुआ था। वह आधा खुला हुआ था। उसमे म एक चेहरा बाहर निकला हुआ था।

उन्हे देखते ही उस चेहरे पर आश्चर्य की रेखाएँ दौड गयी। फिर वह फुसफुसा उठा। दरवाजा और ज्यादा खुल गया।

सब लाग इतन ज्यादा थक गये थे कि दरवाजे का और ज्यादा खुलना उनके लिए निमन्त्रण की भाँति था।

उसके पैर यन्त्रवत उसकी ओर चले गये। भीतर घुसे। गीला आँगन पार किया, जिसमे गन्दे बर्तनो के ढेर पडे हुए थे। और इसी तरह गन्दे किस्म के आदमियो से भरे गन्दे कोठो को पार करते हुए, वे उस हॉल म घुसे जो उन्हें एकदम परिचित दिखायी दिया।

हरा-सुनहरा कमरपट्टा बाँधे सफ़ेदपोश पगडी धारे बैरे ट्रे मे कॉफी इत्यादि खाने का सामान लिये आ-जा रहे थे। हवा मे महकती उमस थी। पखे चल रहे थे, लेकिन हवा हलके स छूकर गायब हो जाती थी। कोलाहल था, और तरह-तरह के फैशनेबल लोग बैठे हुए थ।

यह नया दृश्य नया टॉनिक बनकर आया। उन्हे ऐसा लगा कि मानो वे किसी दु स्वप्न म से जागकर अपन परिचित सौन्दर्यलोक म आ गये हो। उनके चेहरे पर प्रसन्नता की आभा दिखायी दी।

और जब वे पास-पास लगे हुए दा टेबिलो के पास सिमिटकर बैठ गये तो उन्होंने आराम की साँस ली। बैरे ने काफी की ट्रे, मय सैंण्डविचेज के, उनके सामने जमा दी। वे उसके खुशनुमापन पर रीझ गये मानो उन्होने उसके खुशनुमापन को फिर से पहचाना हो।

पेट मे गरम कॉफी और सैण्डविचेज चल गये तो उनके दिमाग़ मे भी गरमी आयी। और चारमीनार सिगरेट को पीते हुए अपने-अपने मे खो गये। दुनिया उन्हें सुन्दर दिखायी देने लगी।

और तब एकाएक उनमे से एक ने मीठी खामोशी को तोडते हुए कहा, "आश्चर्य है, हम जहाँ से चले थे वही फिर लौट आये।"

किसी ने इसका जवाब नही दिया। लेकिन हरेक के मन म उसका अर्थ डूबता गया, डूबता गया। लग रहा था मानो वह अर्थ उनके पूरे मस्तिष्क मे छा गया और सारे शरीर मे रक्त बनकर फैलने लगेगा।

थी। लेकिन उसका चेहरा उतरा था।

इस पाँत के हर एक आदमी का ध्यान उनकी ओर खिंच गया। और लगा कि जैसे कोई आसमानी आग उनकी ओर आ रही हो। उनके दिल में गरमी पैदा हुई। चेहरों पर खुशी का एक हलका-सा रंग छाने लगा। लेकिन वे औरतें अभी ज़ीने के बीच में ही थीं और उनको देखने के लिए रुकना नागवार-सा लगता था। इसलिए ये लोग आगे बढ़ते गये।

सबके मन में एक ही तरह के भाव आते रहे। वे इन औरतों के बारे में थे। चाहता कोई नहीं था कि उनके बारे में कुछ कहा जाये। किन्तु वे अभिव्यक्ति का व्यवसाय करते थे। आखिर कब तक चुप रहते!

उनमें से एक बोला "काम करके लौटी हैं।" और लोभ मुग्ध सम्वेदनाओं में हँस पड़ा। उसकी बात का मज़ा सब लोगों को आ गया। उनमें से एक अधिक कल्पनाशील था। उसने कहा "टोकरीवाली को देखा! मेरा खयाल है कि टोकरी में कोई नन्हा था जिसका जनम एकाध घण्टे पहले हुआ और उसका गला घोंट दिया गया। अब उसे किसी अण्डरग्राउण्ड गटर में डालने जा रहे हैं।"

इस वाक्य को सुनकर सबकी कल्पनाशक्ति भयानक तसवीरें पेश करने लगी—मूछों की छाँहोंवाली गोरे होंठों और चौड़े गालोंवाली डाक्टरनी कृत्रिम गर्भपात और भ्रूणहत्या! मानव-काम-संवेदनाओं के परिणाम का यह चरित्र! भयानक!

और इस तरह सोचते सोचते वे आगे बढ़े गये। गली में अब उन्हें कोई नहीं मिला। गली तंग होती चली गयी। इस तरह आगे चले। उन्हें लगा कि वे पाताल में जा रहे हों। पाताल से भी भयानक और कृत्रिम लोक में। लेकिन फिर भी उन्हें जाना ही है। जाना ही है। उन्हें बुलाया जो गया है।

ईश्वर करे ऐसा आमन्त्रण किसी को न मिले! अब पता नहीं क्या होगा।

लेकिन उन सबको एक आशा थी। इसी आशा के सहारे वे चल रहे थे।

उनसे कहा गया था कि भारत के दौरे पर आया हुआ एक विदेशी लेखक उनसे मिलना चाहता है। उन्हें स्थान समय और रास्ता बता दिया गया था।

और अब वे इस परेशानी में थे कि कहीं वे खुद रास्ता तो नहीं भूल गये। उन्हें लग रहा था कि वे खुद किसी अवचेतन मस्तिष्क के अँधेरे रास्ते पर चल रहे हों। इसीलिए वे अब अधिक शंकालु हो उठे थे।

यह भी सन्देह हुआ कि कहीं ऐसा तो नहीं कि उन्होंने ग़लत सुन लिया हो। किसी ने उन्हें बुलाया ही न हो। वे बे-बुलाये जा रहे हों।

उन्हें यह भी सन्देह हुआ कि आजकल उन्हें केवल भास हो रहा है कहा कुछ और जाता है सुनते कुछ और हैं।

और फिर उन्हें ऐसा लगा कि किसी ने उन्हें उल्लू बना दिया किसी ने उन्हें यहाँ फँसा दिया और वह साला अब खुद मज़ा ले रहा है। क्योंकि यह साफ़ बात है कि कोई विदेशी लेखक इस गन्दी गली में नहीं ठहरेगा। वह माउण्ट होटल में रहेगा। उनको तरस आने लगा कि उन्होंने कैसे यहाँ आना स्वीकार किया।

गली और भी तंग हो रही थी। उसके दोनों ओर पत्थर के गटरों में गन्दा पानी बहा जा रहा था। यह ईश्वर की कृपा ही थी कि साँझ के प्रत्यावर्तित प्रकाश का पुन प्रत्यावर्तित प्रकाश यहाँ आया हुआ था।

इसी बीच एकाएक उन्हे बीच मे पडा हुआ एक कागज मिला। वह किसी पुस्तक का फटा हुआ पन्ना था। उसमे शायद किसी ने कुछ खाया था।

एकाएक उनमे से एक ने वह कागज उठा लिया। चाहे और पहचाने या न पहचाने, वह अपना नाम तो पहचानता ही था। उसमे एक कविता थी, जिस पर उसका नाम था। वह उछल पडा।

उसका यह हर्ष-भाव इतना आकस्मिक था कि सब लोग उसे देखने लगे। आश्चर्य-चकित होने के लिए जो मानसिक शक्ति आवश्यक थी वह उनके पास थी नही। इसलिए वे मनहूस आँखो से उसे घूर रहे थे।

वह चिल्ला उठा, "मेरी कविता !"

लेकिन दूसरो ने उसकी ओर ध्यान नही दिया। एक तो इसलिए कि वे बहुत थके हुए थे, दूसरे इसलिए कि वे खुद से भी तग आ गये थे।

इसी बीच उन्हे एक दरवाजा मिला, जो बाजू की इमारत की भीत मे लगा हुआ था। वह आधा खुला हुआ था। उसमे से एक चेहरा बाहर निकला हुआ था।

उन्हे देखते ही उस चेहरे पर आश्चर्य की रेखाएँ दौड गयी। फिर वह फुसफुसा उठा। दरवाजा और ज्यादा खुल गया।

सब लोग इतने ज्यादा थक गये थे कि दरवाजे का और ज्यादा खुलना उनके लिए निमन्त्रण की भाँति था।

उसके पैर यन्त्रवत उसकी ओर चले गये। भीतर घुसे। गीला आँगन पार किया, जिसमे गन्दे बर्तनो के ढेर पडे हुए थे। और इसी तरह गन्दे किस्म के आदमियों से भरे गन्दे कोठो को पार करते हुए, वे उस हॉल मे घुसे जो उन्हें एकदम परिचित दिखायी दिया।

हरा-सुनहरा कमरपट्टा बांधे सफ़ेदपोश पगडी धारे बैरे ट्रे मे कॉफी इत्यादि खाने का सामान लिये आ-जा रहे थे। हवा मे महकती उमस थी। पखे चल रहे थे, लेकिन हवा हलके से छूकर गायब हो जाती थी। कोलाहल था, और तरह-तरह के फ़ैशनेबल लोग बैठे हुए थे।

यह नया दृश्य नया टॉनिक बनकर आया। उन्हे ऐसा लगा कि मानो वे किसी दुःस्वप्न मे स जागकर अपने परिचित सौन्दर्यलोक म आ गये हो। उनके चेहरे पर प्रसन्नता की आभा दिखायी दी।

और जब वे पास-पास लगे हुए दो टेबिलो के पास सिमिटकर बैठ गये तो उन्होंने आराम की साँस ली। बैरे ने कॉफी की ट्रे, मय सैंडविचेज के, उनके सामने जमा दी। वे उसके खुशनुमापन पर रीझ गय मानो उन्होंने उसके खुशनुमापन को फिर से पहचाना हो।

पेट मे गरम कॉफी और सैण्डविचेज चले गये तो उनके दिमाग़ म भी गरमी आयी। और चारमीनार सिगरेट को पीते हुए अपने-अपने म खो गये। दुनिया उन्हें सुन्दर दिखायी देने लगी।

और तब एकाएक उनमे से एक ने मीठी खामोशी को तोडते हुए कहा, "आश्चर्य है, हम जहाँ से चले थे वही फिर लौट आये !"

किसी ने इसका जवाब नही दिया। लेकिन हरेक के मन मे उसका अर्थ डूबता गया, डूबता गया। लग रहा था मानो वह अर्थ उनके पूरे मस्तिष्क मे छा गया और सारे शरीर मे रक्त बनकर फैलने लगा।

और फिर, वे लोग अपने-अपने खयालो म खोने की तैयारी कर रहे थे कि इसी बीच एक न कहा, ' लेकिन, हम जिसको निगाहो के सामने रखकर चल पडते हैं, वहाँ तक पहुँचत कहाँ हैं, बीच म ही टूट जाते हैं ।"

यह वाक्य अरुचिकर था। इतनी सुन्दर कॉफी पीन के बाद आत्मालोचन के मूड म कोई नही था।

किन्तु इस वाक्य ने किसी दूसरे मस्तिष्क को झकझोर दिया। उसने कहा, लकिन, हम यहाँ स गये किसलिए थे ?" और फिर वह आश्चर्य स सब साथियों को देखन लगा।

उनमे से कुछ स्तब्ध रहे। कुछ के होठो पर हलकी-सी मुसकराहट खिल गयी। मुसकरात हुए उनके एक साथी न कहा, ' मैं यहाँ से तुमको उठाना चाहता था ?"

' लेकिन वह विदेशी लेखक कौन था, जिसक लिए तुम हम यहाँ से ले गये थे ?"

वह हँस पडा। उसने कहा, ' तुम्हारी कविता म पिछवाडे की इमेजेज हैं, लेकिन तुम वहाँ कभी गय नही थे, इसलिए ल गया।"

दूसरा भी हँस पडा। लकिन सामनवाला, जिसके बारे मे यह कहा गया था, खामोश बैठा रहा। उसके चहर पर गुस्स की लकीरें तनी हुई भौंहो म सिमिट रही थीं।

वह बोला, तुम मुझे एसे ही बनात रहते हो। अब के तुमन सबको बनाया है, इसका नतीजा भुगतना पडगा।"

और तब फिर कोई नही बाला। बदमाशी स उठाकर ले जानेवाले आदमी की नीयत पर सब शक करन लग।

लकिन ऐसा नही लगता था कि उस 'बदमाश' आदमी को—जिसका नाम हम 'क्ष' रख सकत हैं—खास अफसोस हुआ हो। वह मुसकराता हुआ चुप रहा।

इसी बीच एक न बैरे स कुछ कहा। और कुछ देर बाद एक खुशनुमा मज़ेदार टाकरी म कई पत्र-पत्रिकाएँ सामन आ गयी। सब उस पर झपट पड।

किसी ने उसम स कुछ देखना चाहा, किसी न कुछ। कुछ उसमे अपनी छपी [illegible] पढ़न म मज़ा आन लगा। कोई [illegible] अपनी कहानी देखन लगा। [illegible]ोग अब नय पारिवारिक सन्दर्भ की करुणा को भी ला रहे हैं ! लाग अब नया ट्रैण्ड चलाना चाह्त हैं।"

दूसरा बोला, ' पुराना प्रगतिवाद नय जाम म आ रहा है, भल ही इन शब्दो म लोग न साचें।"

बदमाश समझा जानवाला बाल उठा, "ता तुम क्या समझत हो कि फ्रास या अमरीका मे और यहाँ भी कविता ठीक इसी ढग स होनी चाहिए ?"

लोगो न उस ओर ध्यान नहीं दिया। लकिन वह कहता जा रहा था, ' अजी, ठीक इसी वक्त उसी पिछवाडे की गली क आखिरी छोर की दूसरी मजिल पर एक मीटिंग हा रही है ! मैं तुम्हें वहाँ ल जाना चाहता था। मैंन सोचा विदेशी लेखक का नाम लन स तुम वहाँ जाओग। ठीक वैस ही हुआ भी !"

क्या विदशी लेखक पिछवाडे की गली स मिलता है ? वहाँ से क्यों ले गय ?"

तुम शार्टकट स जाया करते हो, इसलिए।"

"अजीब हालत है !"

"लेकिन तुमने तो कहा था कि वह पिछवाड़े की किसी गली में रहता है !"

"बेवकूफ हो ! मैं ऐसा क्यों कहूँगा ? क्या कोई विदेशी इस तरह वहाँ ठहराया जा सकता है ? वैसे तुम्हारा विदेशी लेखकों से जो सम्बन्ध है, वह अवचेतनात्मक है।"

"क्या मतलब है ?"

"इसलिए कि तुम उनके बारे में कुछ नहीं जानते। उनके बारे में कहीं कुछ पढ़ लिया और मान लिया। वैसे तुम्हारी इमेजेज़ भी तो पिछवाड़े की हैं। मैंने तो सोचा कि तुम उधर जाना पसन्द करोगे !"

कि इसी बीच उनमें से कोई चिल्ला उठा, "खैर, छोड़ो बकझक ! बताओ कि वहाँ मीटिंग किसकी हो रही है ?"

"तुम्हारे प्रतिपक्षियों की !"

"कौन ?"

"अरे, वे ही। ज़्यादा मत पूछो, फिर बताऊँगा।"

एकदम सब चिल्ला उठे, "नहीं, नहीं, अभी बताओ। नहीं तो ठीक नहीं होगा !"

उनका साथी वैसे भी बदमाश कहा जाता था। उसने साथियों की भावनाओं की परवाह न की। उसने कहा, "वे अब नयी पत्रिका निकालने जा रहे हैं। वे तुम्हारे आधुनिक भाव-बोध, लघु-मानव और वर्तमान मानवीय समस्यात्मकता का—तुम्हारी अगतिकता का विरोध करेंगे ? उनके पास कुछ लेखक भी इकट्ठे हो गये हैं !"

"ऐसा ?"

"जी हाँ !"

"तो फिर अपने विशेषज्ञों को सूचना देनी होगी। क्या यह आवश्यक नहीं है ?"

इसी बीच एक तैश से उठ खड़ा हुआ और बोला, "हमें इससे क्या मतलब ?"

"क्यों, मतलब क्यों नहीं ?"

"इसलिए कि उनके पास कोई ज्ञान-मन्दिर-जैसी धनवान प्रकाशन संस्था नहीं है।"

"नहीं, लेकिन वे गड़बड़ फैला सकते हैं।"

इस पर सब लोग एकदम खामोश हो गये। और वह खामोशी गहरी होती गयी। वह इतनी गहरी हुई कि मनहूसी छा गयी।

लेकिन उनमें से एक, जो बदमाश कहा जाता था, मुसकराता ही रहा, मुसकराता ही रहा। उसकी मुसकराहट इस तरह दिखायी देती थी जिस तरह सूनी काली कोलतारी सड़क पर बड़े-बड़े पेड़ों में बैठी और चारों ओर घनी फैल रही रात के अकेलेपन में कोई अपने हाथ में टॉर्च लिये चला जा रहा हो।

कि इसी बीच उनमें से एक चिल्ला उठा, "मैं उस लड़के पर कविता लिखने जा रहा हूँ जो पिछवाड़े की गली में बर्तन मलता हुआ दिखा था। वह मेरी फ़ैण्टेसी है। वह मेरी रियलिटी है।"

सब लोग उसकी तरफ़ भौंचक देखने लगे, मानो उसे पागल कुत्ते ने काट

खाया हो।

लोगों की उस भाव-मुद्रा को देखकर उसने अपनी सफाई दी. "मेरा वह भाई लगता है—छोटा भाई। मैं उसके करुण जीवन का चित्रण करना चाहता हूँ।"

अब लोगों को काठ मार गया।

उसने कहना जारी रखा, "और मैं उन औरतों पर भी कविता करूँगा, जिन्हें तुमने जीने मे से उतरते देखा है। वह जो किसी के सद्योजन्मा शव को गटर मे फेंकने जा रही हैं।"

सुननेवालों मे से एक को यह विषय पसन्द आ गया। उसने कहा, "हाँ, यह ठीक। बडी ग्लूमी पिक्चर्स हैं। मुझे पसन्द हैं।"

लेकिन उस कहनेवाले ने कहा, "लेकिन तुम नही जानते मैं किस तरह लिखूँगा।"

सब लोग उसके मुँह की तरफ देखने लगे। इसी बीच वह बोलनेवाला उठ खडा हुआ।

"मैं कल्पना करूँगा कि वह सद्योजन्मा तुम्हारी अन्तरात्मा है, जिसका जनमते ही गला घोट दिया और अब जिसे शव-रूप मे तुम गटर मे फेकने जा रहे हो। कितनी सुन्दर कल्पना है।"

सबको ऐसा लगा मानो 'अन्तरात्मा' शब्द उन्होंने पहली बार सुना हो। और फिर उन्होंने उपेक्षा और विरक्ति के भाव से अपने मुँह दूसरी ओर कर लिये, मानो वे उसको पागल समझ रहे हों, लेकिन कहना न चाहते हों।

ठीक उन्ही दिनों उस गली के स्थापत्य विशारदों की एक बैठक हुई। उसमे एक प्रस्ताव मे स्थिति का विशद निरूपण करते हुए अपनी उपलब्धियों पर प्रकाश डाला गया और कहा गया कि कला के क्षेत्र में कुछ सर्वाधिकारवादी मनोवृत्तियाँ सिर उठा रही है, जो हमारी सस्कृति के लिए घातक हैं। यदि अभी से प्रभावकारी कार्यवाही करके उनका उन्मूलन न किया गया तो कला-क्षेत्र दूषित हो जायेगा। व्यक्ति स्वातन्त्र्य पर आधारित हमारी सभ्यता नष्ट हो जायेगी। अतएव नव्यतर समीक्षा का कर्तव्य है कि वह लेखकों में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का भाव मूलबद्ध करे। क्योंकि असल में व्यक्ति-स्वातन्त्र्य जैसी पवित्र वस्तु से वे डरते हैं।

दूसरे प्रस्ताव द्वारा यह प्रस्तुत किया गया कि लेखकों को जनता के समाजवादी आदर्शों से दूर रखा जाये—राजनीति से दूर रखा जाये, उनका क्षेत्र केवल सौन्दर्य-निर्माण का क्षेत्र है। किन्तु जिन पत्रिकाओं मे उनकी रचना छपे, उसमे समाजवाद-विरोधी दृष्टिकोण के कलासम्बन्धी लेखों को अवश्य आदरपूर्वक स्थान दिया जाये। सम्पादकगण अन्य ग़ैर-कलाकार लेखकों के विशुद्ध राजनैतिक लेखों को अवश्य ही स्थान दें, विशेषकर, एनकाउण्टर और क्वेस्ट की राजनैतिक भाव-दृष्टि ग्रहण करने से काम चल जायेगा। किन्तु इस बात का ध्यान रखा जाये कि जो क्रान्ति-विरोधी, समाजवाद-विरोधी कला है, विशेषकर पश्चिमी यूरोप और अमरीका की, उसके विशिष्ट उदाहरणों का अनुवाद पत्रिकाओं मे अवश्य छापा जाये। कहना न होगा कि इस प्रस्ताव की प्रशंसा भी खूब हुई। इन दो प्रस्तावों का युगान्तरकारी महत्त्व है। इसलिए यहाँ उसे स्थान दिया गया है।

[सम्भावित रचनाकाल 1963-64]

स्त्री के मन को जरा मोड दिया। वचपन से लगाकर अव तक चली आ रही आदत के अनुसार, वह अपने मन को व्यथित भावो से हटाने के लिए तारे गिनने लगी।

फिर वोली, "इनमे शनि कौन-सा है ?"

पति ने सुनी-अनसुनी कर दी। पति को कहाँ फुरसत थी कि वह शनि खोजता वैठे। स्त्री ही कहने लगी, "तुमने कहा था न, कि शनि के चारो ओर चार गोल उज्ज्वल वलय हैं! उनका प्रकाश कैसा होगा ? ऐसा लगता है कि एक वार शनि पर पहुँचा जाये।" पति ने पुस्तक से मुँह उठाया, और स्त्री की ओर कुतूहल से देखने लगा। उसको प्रतीत हुआ मानो उस वक्त वह स्त्री को लेकर शनि की तरफ ही जाना चाहता हो। वह अपनी स्त्री को लेकर एक वार यहाँ से आठ मील दूर गाँव मे गया ही था, तो फिर उसके साथ शनि को जाने मे हर्ज क्या है!

लेकिन जिन्दगी का शनि दोनो को पुकार रहा था। फर्क यही था कि उसमे प्रकाश-वलय न थे। वे उत्पन्न किये जा सकते थे।

घर की साँकल खडकी। दरवाजा वजा। और वाहर पैरो की आहटें सुनायी दी।

आँगन मे स्त्री के मन मे घर के हिसाव की मशीन चल रही थी। इसलिए वह एकदम न उठ सकी। पति ने पुस्तक मे से मुँह निकाला और कुढकर कहा, "देखो, वाहर कौन है ?"

स्त्री ने सन्नाटा खीचा। पति आधे गुस्से से उठा और अन्दर से ही कहा, "भई, खोल रहे हैं, जरा दम लो!"

स्त्री ने बाहर से आती हुई एकदम वहुत-सी आवाजें सुनी और चौकन्ना होकर यह देखने लगी कि कही मेहमाननवाजी की वला तो सिर पर नही आयी है!

एक आदमी अन्दर घुसा। उसकी दाढी बढी हुई थी। वह पैण्ट पर एक लम्वी [illegible] उसके शवे हा कदम

[illegible]

मालूम होता था कि गाल वैठ हुए थ। यही कारण ह कि उसका नाक ऊचा और धारदार लगती थी। आँखो मे ठण्डा इस्पाती मलूलपन और यकायक चमक वारी-वारी से प्रकट होती थी, जैसे जुगनू बुझकर चमक्ता, चमककर बुझता और फिर वुझकर चमक्ता हो।

ऐसे एक लम्वे काठनुमा आदमी के पास अपने पति को सिमटते हुए, और उसकी छाती पर सिर रखते हुए, पाकर स्त्री समझ गयी कि उसके जेठ पधारे हैं। उसको समझ मे न आया कि वह नाराज हो जाये या उदास हो, अथवा हँसी मे खिलखिला उठे। वह हतुबुद्धि हो गयी, और नाराज होने की कोशिश कर ही रही थी कि एक छोटी दुवली-सी पीली लडकी हाथ मे कपडे की गठरी सँभाले हुए, दौडती हुई, यकायक आयी, और कमजोर आवाज मे 'काकी! काकी!' कहते हुए उसकी गोद मे समा गयी। अनायास उस स्त्री का हाथ उसकी पीठ पर फिरा। मुँह पर फिरा। उसके वाल सँभाले गये। और उस लडकी के गालो पर स्त्री के होंठ चिपकने ही वाले थे कि दोनो एक-दूसरे से चिपककर रोने लग गयी। आँसुओ की चुपचाप वेइख्तियार वरसात का समाँ कैसा और क्या था, यह किसी को मालूम

न हो सका।

स्टूल पर जलती हुई लालटेन की रोशनी के सहारे एक नजर से दोनो भाइयो ने एक-दूसरे को पढ़ लिया, पी लिया, जिसस दोनो के मन मे उस बात की भूमिका शुरू हुई, जो आगे चलकर हमेशा अनकहे रहनेवाले भावो की कहानी नही, बल्कि कहन के रूप म प्रकट हो सकती थी।

बडे भाई चूर थे। लडखडाते हुए लोढ-नुमा गोल विस्तर पर अपनी रीढ की हड्डी टेक दी। 'हूँ' कहते हुए सामने बैठे हुए भाई की तरफ नजर डाली।

"रिक्शावाला शायद अभी तक बाहर ही खडा है।" रामेश्वर ने अपने भावो के विक्षोभी आवेग का मुँह मोडने के लिए कहा।

"नही, हमने उसे पहले ही छोड दिया।"

दरवाजे मे से दौडकर आती हुई लडकी ने अपने भोलेपन मे कह डाला, 'नही, मैं तो बाबू के कन्धे पर आयी, रिक्शा कब था?"

पिता ने घवडाकर सिर्फ इतना कहा, "बेवकूफ लडकी!"

छोटा भाई रामेश्वर हतबुद्धि हो गया। नाराजी मे मुँह से यह निकल पडा, "आप तो मुश्किल कर देते है, भाई साहब! रिक्शा के पैसे यहाँ नही मिलते क्या!"

बडे भाई ने बनावटी हँसी से कहा, "है ही कितना दूर तुम्हारा घर, स्टेशन से!"

"अजी साहब, तीन मील दूर है," यह कहकर छोटा भाई बेचैनी मे उठ खडा हो गया और शीघ्रतापूर्वक अन्दर स्त्री से बोल आया, "चाय तैयार करो, जल्दी!"

उसकी आवाज़ बडे भाई ने सुन ली। वही से पुकारकर बोला, "चाय का कोई वक्त है यह! रहने दो, भाई!"

बडे भाई के पास आकर रामेश्वर ने कहा, "अजीब हैं आप!"

बडे भाई ने छोटे भाई के दुखते हुए दिल को पुचकार जवाब दिया, "जेल मे कई नयी आदतें डाल चुका हूँ, भैया! बहू से कहो कि खाना बनाने की ज़रूरत नही, मेरे पास रोटियाँ हैं, लड्डू भी तो हैं।"

"वाह सा'ब, पहले क्यो नही कहा, अरे आओ, रमेश, दिनेश, महेश, राधा, ललिता, चाचाजी तुम्हारे लिए लड्डू लाये हैं।" यह कहता हुआ रामेश्वर अपने दिल के आँसुओं की हँसी मे नाच उठा। "लाओ, तुम्हारी गठरी कहाँ है?"

गठरी का नाम सुनते ही बडे भाई को, मानो एकदम किसी ने काट खाया। दिल का हलकापन भाग गया। हँसी भाग गयी। उसके स्थान पर एक क्षीण मुसकान चेहरे पर खिल उठी।

रामेश्वर यह देख न पाया। वह गठरी की तलाश करने लगा। लडकी ने कहा, "मैं बताऊँ?" और उसकी शोधमयी दृष्टि ने कहा, "वहाँ है।"

बडा भाई झूठ बोल गया, "बिस्तर मे है।"

छोटा भाई बडे भाई की बिस्तरिया को असल मे पहले ही ऊपर-ऊपर देख चुका था। उसम था ही क्या! एक सतरजी और कुछ कपडे। एकदम बेडौल ढीले-ढाले बिस्तर की गठरिया थी वह! जो बडे भाई की विपन्नावस्था की पूरी कहानी थी।

"उसमें नहीं है।"

"तो क्या तुमने बिस्तर देख डाला? अरे, बाप रे!"

"क्यों?" छोटे ने कहा।

बड़े भाई ने तेज निगाह से छोटे भाई की तरफ देखा।

झखमार और खीझ के आकस्मिक आवेग में रामेश्वर बोला, 'आप भी क्या हैं! बस, अपनों से जी चुराते हैं। उसमें यही है न कि कपड़े फटे हैं!" यह कहकर अपनी जिद में शिकारी कुत्ते-जैसा होकर रामेश्वर इधर-उधर गठरी ढूंढ़ने लगा।

बड़े भाई आखिर कहाँ तक बचते! गठरी मिल ही गयी। छोटे भाई को अपनी गठरी खोलते हुए देख बड़े भाई निश्चेष्ट हो गये। उनके इस हतप्रभ रूप को देखकर रामेश्वर ने व्यंग्य से कहा, "इसमें कोई गैरकानूनी अखबार हो तो बतला दो। मैं नहीं खोलूँगा!" यह कहकर वह खोलता चला गया।

गठरी खुली। रामेश्वर की विस्मयपूर्ण दृष्टि एक पल के अनन्तर करुणा के आवेग से भर उठी। गठरी में क्या था? उसकी अभी गुजर गयी भाभी की एक नीली फटी टूटी बदरंग साड़ी, एक पुराना कुंकू की ललाई लिये सिंगारदान, एक चोली, एक जम्पर, शादी से पहले बड़े भाई के साथ खिंचवायी हुई दोनों की एक छोटी-सी तसवीर! एक लेनिन की किताब, एक माओ की तसवीर और एक लड्डू की पुड़िया!

बड़े भाई ने मुँह फेर लिया। छोटे भाई ने आँखों-ही-आँखों में आँसू सोख लिये। और थर्राये स्वर में राधा को पुकारा, "राधा, लड्डू लो।"

बच्चे सब इकट्ठा हो चुके थे। बड़े भाई की तरफ कुतूहल और भय की दृष्टि से सब देख रहे थे। और बड़े भाई अपराधी की तरह पीठ किये एक हाथ के नाखून से दूसरे हाथ के नाखून काट रहे थे।

रामेश्वर को यह स्पष्ट हो गया कि उसके बड़े भाई अपनी जिन्दगी के कोई भी मर्म उद्घाटित करने के लिए तैयार नहीं हैं। चाहे वे फटे कपड़े हों या भाभी का सिंगारदान। उसके हृदय में पारिवारिक गुत्थियों की संवेदनाएँ लिये हुए, एक ऐसा करुणा-भरा क्षोभ उत्पन्न हो रहा था कि वह उसके आवेग के मारे उठ बैठा और चक्कर लगाने लगा।

[अपूर्ण। रचनाकाल अनिश्चित।]

मेरा मित्र

एक भद्र विशाल मूर्ति, मानो किसी कुशल शिल्पी ने स्फटिक शिला से उसका निर्माण किया हो। किन्तु, वह सिर्फ एक पोज है—एक ऐसा पोज, जिसे मेरा मित्र अपने व्यक्तित्व की सच्ची सत्ता समझता है। गोलाई लिये हुए चौकोर चेहरा,

जिस पर गरुड की नाक और मछलियो से तैरती बीच बीच मे चमकती छोटी छोटी आँखें और मामूली ललाट। भद्रता की पोषक एक तोंद। और बुद्धिमान, व्यग्यपूर्ण, मजाकिया, ठठाकर हँसने की तैयारी करता हुआ लेकिन कभी न हँसता हुआ, सिर्फ हलके-से बाँकपन मे झुका उसकी अधर-स्मित ! वह हमेशा यह भाव प्रकट करना चाहता है कि तुम बहुत गधे हो जो तुम्हें इतना भी मालूम नही। तीव्र स्मरण-शक्ति और लेखनी घसीटने तथा जबान चलाने की अगाध क्षमता—जो सिर्फ एक नाट्य है। उस अपने पूरे पार्ट्स याद हैं। वह पूरी कुशलता, सिफ्त और ज्ञान के साथ, पूरी सवेदनाएँ प्रस्तुत करते हुए आपको प्रभावित कर देगा।

उसके नाट्य मे कोई नाटकीयता नही है, वह उसकी स्वाभाविकता है। उसका एकमात्र उद्देश्य 'इफेक्ट' देना, रग जमाना है। महिलाओ से बात करते समय वह प्रेम नही करना चाहता, वह इतना बताना चाहता कि मन की सुकुमार सूक्ष्मताओ का उस कितना गहरा ज्ञान है। वह तो केवल बौद्धिक ढग से उन्हे प्रकट करना चाहता है। विद्वान से बात करते समय, वह यह जरूर बताना चाहेगा कि उसके विरोध मे कितनी विचारधाराएँ और हैं, जो, हे विद्वान ! तुम्हारी ऐसी-तैसी कर देती हैं !

अगर आप उसके मित्र हो गये तो आपसे बात करना छोडकर वह आपके बुजुर्ग पिता से पहले बात करेगा, वही बैठेगा उठेगा, क्योकि महत्त्व का स्थान वही है। आप नही ! उसने अपनी शादी, शादी के लिए नही, अपनी सामाजिक स्थिति शिरोधार्य करवाने के लिए की।

शब्द, वाणी और रूप के इस ओजस्वी पुरुष को जिस खुदा ने निर्माण किया उसे मैं अद्भुत समझता हूँ। उसने इस वीर पुरुष को एकमात्र महत्त्वाकाक्षा दी—वह यह नही थी कि वह अमर हो जाये, या महान साहित्यिक बने, या विचारक बन। किन्तु वह इतनी ही, केवल इतनी छोटी सी, महत्त्वाकाक्षा थी, कि वह अपनी जिन्दगी मे चार-पांच छह-दस ऐसे मौके रोजाना—हाँ, बिलकुल रोजाना—आने दिया करे जब उसे हमेशा यह बोध हुआ करे कि वह कितना महान, कितना प्रसिद्ध, कितना श्रेष्ठ, कितना प्रतिभाशाली, कितना सूक्ष्मबुद्धि और कितना गहरा आदमी है ! और, इस सम्बन्ध मे ईश्वर ने उसे निराश नही किया था। उसकी स्मरण-शक्ति इतनी तीव्र थी कि जरा-सी कही कोई चीज पढी कि उसे याद हो जाती थी। वह यूरोप के लेखको, समीक्षको और उपन्यासकारो के सूत्र, फिकरे, कहानियाँ, गप और उद्धरण आपके सामने ज्यो-के-त्यों रख सकता था। उसके पढने की आदत भी अजीबोगरीब थी। वह सिलसिलेवार कभी नहीं पढता था। भारत म अप्रसिद्ध, यूरोप म प्रसिद्ध, किसी पुस्तक के बीच के पन्ने वह सावधानी से पढ़ लेता और फिर उसके सहारे वह कभी नक्शे निकालता, अलजबरा का कोई सवाल अपने सामने पेश करता। पढाई के मामले मे वह भूत था। पुस्तक के विचारों या भावनाओ स वह किसी भी तरह दूर का सम्बन्ध नही जोडना चाहता था। वह सिर्फ इतना जानना चाहता था कि वह लेखक कौन है—साले को मैं भी तो देखूँ ! और उस लेखक के ठीक वे ही उद्गार या विचार ले लेता था, जिन्हे वह पाण्डित्य बताने या रौब झाड़ने के लिए इस्तेमाल कर सके।

वह एक ऊँचे किस्म का चित्रकार बनते-बनते रह गया। एक ऊँचे किस्म का बौद्ध भिक्षु बनते-बनते एक बड़े आदमी के घर शादी कर ली। बात का चालाक,

डीलडौल से रौबदार, वह एक ऊँचे किस्म का नाट्यकार था, जिसकी कला दूसरों को प्रभावित करने के उद्देश्य से उसकी स्वाभाविकता का एक भाग बन गयी हो।

ऐसे व्यक्ति के शत्रु बहुत होते हैं। एक परले दर्जे का प्रतिभाशाली होने के नाते, वह किसी को भी फीका कर सकता था। जो दूसरे अहंकारी व्यक्ति उससे होड करते, उन्हें वह कभी नीचा नहीं दिखाता था, किन्तु भाषण मे, अथवा किसी सामाजिक अवसर पर, वह यह जरूर बता देता कि जहाँ तक प्रभाव उत्पन्न करने का प्रश्न है, तुम्हे हार माननी पडेगी।

एक बार समाज ओट होने पर, वह सीदा-साधा, गरीब, कुछ आत्म-निवेदन करता हुआ, स्नेह का भूखा व्यक्ति मालूम होगा—सिर्फ उसी व्यक्ति को जो उससे खूब परिचित है। उसकी बीवी उसके घनिष्ठ व्यक्तियो मे शामिल नही है। मुझे शक है कि वहाँ भी वह नाट्य करता है। नाट्य-हीन होकर, निरावरण होकर अपने को उद्घाटित करने मे जैसे उसे डर लगता है, अचानक हानि की आशका होती हैं, आकस्मिक आक्रमण का डर लगता है—चाहे वह बीवी हो, बच्चे हो या मित्र हो। किन्तु मेरे मित्र के प्रति आप तब तक न्याय नही कर सकते, जब तक यह न जानें कि वह रिश्वतखोर नही है, पैसो का लालची नही है, वस्तुत उसका चरित्र अत्यन्त शुद्ध है। सिर्फ, उसकी एकमात्र कामना यह है कि जिन्दगी-भर उसका सिर्फ एक पोज बना रहे—सिर्फ एक पोज! वह पोज जो खुदा ने उसे देकर रक्खा है—एक भद्र विशाल प्रतिभाशाली पुरुष, जिसे देखते ही आदर उपजता है और उसकी प्रतिभा के चमत्कार से आँखे चौधिया जाती हैं।

मेरे सामने यह सवाल बचा रहा कि क्या व्यक्ति हमेशा किसी पोज़ मे रह सकता है। साफ कहता हूँ कि मैं इसका जवाब नही दे सकता। किन्तु, इतना कहना चाहता हूँ कि अनजाने ही आदमी अपने को बहुत-कुछ समझता है। वह अपने बारे मे एक कल्पना-स्वप्न तैयार करता है। फिर उस कल्पना को अपने से तदाकार कर लेता है। ज्यो-ज्यों उसकी कल्पना उसे क्रियावान करते हुए सफलताएँ दिलवाती है, त्यो-त्यों उस कल्पना की सचाई पर उसका विश्वास बढता जाता है। धीरे-धीरे वह कल्पना-भ्रम उसका विश्वास हो जाता है। उसके अनन्तर, वह विश्वास सोचने और काम करने की एक विशेष आदत के रूप म परिणत होकर उसके व्यक्तित्व का एक अविभाज्य अग बन जाता है। शायद, ऐसी ही किसी प्रतिक्रिया से मेरा मित्र ग्रस्त था।

. .

उनके कफन के लिए भी चन्दा इकट्ठा करना पडा।

[अपूर्ण]

महापुरुष

मेरे सामने जो महापुरुष बैठे हुए है, उनका परिचय देना आवश्यक है। उनके साथ मेरे दो प्रकार के सम्बन्ध हैं—प्रेम के, घृणा के, ललक के, विरक्ति के, आकर्षण के, विरोध के। एक सम्बन्ध दूसरे का विरोधी है। और दोनो एक साथ एक ही आदमी से हैं। इसीलिए, मै इस शख्स से बचने की कोशिश करता हूँ। ज्यो ही इस आदमी की सूरत मुझे दिखायी देती है, दिल डुग्गी जैसा बजने-धडकने लगता है, और एक अजीबोगरीब बेचैनी छा जाती है।

एक बार उसने मुझसे कहा था, "हमारी-तुम्हारी प्रकृति एक समान है, इसलिए हम एक दूसरे से टकराते हैं। दूसरे शब्दो मे, हम एक-दूसरे के पूरक नही हैं—जो कि मैत्री का आधार है।"

पता नही, मैंने उसका क्या जवाब दिया था। लेकिन इतना सही है कि सोचने समझने, विवेचन करने की उसमे बडी गहरी प्रतिभा है।

अगर हम दोनो मे कोई बडा भेद है तो वह यह कि वह छोटी-छोटी बातो मे अत्यन्त व्यावहारिक है, मैं व्यवहारशून्य हूँ। मुझे सन्देह है कि वह भयानक आदमी है, उसे शक है कि मैं भयानक मूर्ख हूँ। जो व्यक्ति मेरे तईं मूल्यवान है, वही व्यक्ति उसके निकट बेवकूफ है। बडे-बडे आदमियो से उसकी गहरी दोस्ती है। उसका मित्र-परिवार बहुत व्यापक है। वह व्यक्ति का मूल्य उसके उपयोग मे आँकता है। मैं उपयोगितावादी नही हूँ।

लेकिन ज़माना उसका है। उसने लम्बे अर्से तक गरीबी देखी है, भुगती है, कड़ुए तजुर्बे उसे कम नही हैं। बारिश, सरदी और गरमी उसने तन पर झेली है, और वह भी लम्बे अर्से तक। ऐसी गरीबी मे ही म्यूनिसिपल कन्दील की रोशनी मे ही, उसने किताबें पढी और अध्ययन किया। लेकिन उसने अपनी उन्नति कर ली। अब आप उसके घर पर जायें तो पहचान नही सकते कि दस-बारह साल पहले वह टाट पर सोता और टाट ओढ़ता था। वह 'सेल्फमेड मैन' है। वह इस बात की डुग्गी भी पीटता है। वह बता रहा था कि भोजनालयो के टिफिन के डिब्बे घर-घर पहुँचाकर उसने विद्याध्ययन किया है। इस बात पर कतई अविश्वास नही किया जा सकता। वह कर्मठ आदमी है। कोई भी काम उसके निकट बुरा नही है।

लेकिन, अगर वह यह कहता है कि उसकी पदोन्नति और समृद्धि, उसकी श्री और गरिमा, इस तरह के कामो से हुई है, तो यह ग़लत है, निराधार है। आज जिस ऊँची जगह पर वह विराजमान है, उसका कारण उसकी कर्मठता या ईमानदारी नही है, वरन् चतुरता, आत्मगौरव का नितान्त अभाव, और आगे बढने की धडाकेबन्द रफ्तार को निबाहने की ताकत है। वह सिलसिले जोड सकता है, बुद्धिमत्तापूर्वक काम कर सकता है।

मुझे उसके इन गुणो मे से कोई आपत्ति नही है। आपत्ति इस बात पर है कि वह यह समझता है कि वह 'सेल्फमेड' आदमी है, जबकि वस्तुत. नितान्त अवसरवादी है—ऐसा अवसरवादी जिसके दर्शन से प्रसन्नता नहीं होती है। वह जिस वर्ग से उठा है, जिस वर्ग ने उसे जन्म दिया है, उससे घृणा करता है (यद्यपि उसके मन मे उस वर्ग के प्रति दया और करुणा के भी भाव है), उसके सभ्य सुसंस्कृत

व्यवहार के भीतर एक सूक्ष्म किन्तु मूख अहकार छिपा हुआ है। उस देखते ही मेरे मन मे विपरीत प्रतिक्रियाएँ होने लगती हैं।

किन्तु ज्यो ही वह पास आ जाता है उसके और मेरे हृदय म पुराना स्नेह भर उठता है। हम वस्तुत एक दूसरे स निपट जाते है। मरे पास रहकर उसे अपनी सभ्यता का लिफाफा उतारकर फक देना पडता है। हमारे दोनो के तजुर्बे काफी एकसाँ हैं। उन पुराने तजुर्बों की मजबूत चट्टान पर खड होकर हम पारस्परिक एकता अनुभव करते है जीवन की व्याख्या करन लगते हैं आलोचना करन लगते हैं। गुप्त और सुपुप्त इच्छाए मूत होकर सामन खडी हो जाती हैं—हम उन इच्छाओ के बारे म बात करने लगत हैं। हम एकता अनुभव करते हैं।

और इसी बीच कुछ गडबड हो जाती है। यद्यपि हमारी भावनाएँ एक हैं हमारा दोनो का निविड सघन भावलोक भी समान है किन्तु उस व्यक्ति की मूल्य व्यवस्था और मेरी मूल व्यवस्था मे महान् अतर है। यह मूल्य व्यवस्था इतनी भिन्न है कि उसके रुख और मेरे रुख के बीच बडी भारी खाई पड जाती है। तब मैं उसे सन्देह की दृष्टि से देखता हूँ। मैं समझने लगता हू कि उसकी दृष्टि बचकाना है। मैं समझने लगता हू कि उसके नैतिक गुण बड छिछले हैं और तब हम एक दूसरे स अलगाव तो जाने ही दीजिए घृणा करने लगत हैं। ऐसी बात है।

मेरा यह दुर्भाग्य रहा है कि जिस व्यक्ति स मैं घनिष्ठ प्रम करता रहा हूँ उसी व्यक्ति से मैं विपरीत आलोचनात्मक प्रतिक्रियाए भी करता रहा हू। जिस व्यक्ति से मेरी जितनी अधिक घनिष्ठता है मैं उस व्यक्ति का उतना ही बडा आलोचक हूँ। किन्तु यह आलोचना बहुत दूसरे ढग की होती है। ये महापुरुष जो मेरे सामने बठ हुए हैं घृणा क आस्पद है। किन्तु साला है इण्टेलिजण्ट आदमी!

यह व्यक्ति कोंकणी है। मोतिया रग का गोरा चहरा चौकोर सा कुछ लम्बा। नीचे के होठ ऊपर क होठ को पकड रहते है। गालो पर दो दो सलवटें ऊपर से नीचे तक गाल की हड्डियो से लगभग ठुडडी तक। अजीब व्यग्य भाव मानो जीभ पर हमेशा कडुए चिरायते का स्वाद। ठुड्डी मोटी चौडी और उसके बीचोबीच एक गडढा—मानो वह डबल ठुडडी है। बुद्धिजीवी की भाँति ललाट विस्तत। बाल पतले बारीक पीछे की ओर मुड हुए। ईश्वर ने मेहनत करके उसकी नाक बनायी है तेज धारदार। लेकिन आँखें द्युतिहीन है बिलकुल ठण्डी!

मेरे पास आकर बैठा। कन्धे पर हाथ रख दिया। लगा कि हाथ उठाकर फेंक दूं किन्तु यह सभ्यता न होती। उसने बडी ही घनिष्ठ आवाज मे कहा क्या लिखा है सुनाओ।

पहले तो लगा कि वह नालायक है और नालायको को साहित्य क्या सुनाया जाये! फिर सोचा हज ही क्या है पुराना साथी है। वह भी तो बुद्धिमान है। उसके भी तो दिल है। उसने भी तो जिन्दगी देखी है। उसे भी ज्ञान है विवेक है सम्वेदना है। इस विचार स हृदय कुछ आह्लादित हुआ। फिर सोचा बदमाश है हो। वह बाज न आयेगा।

शायद उसने मेरा रुख ताड लिया। बोला मैंने **वसुधा** और **नयी कविता** म तुम्हारे लेख पढ थे। रचनाप्रक्रिया के सम्बन्ध म थे दोनो। हैं न?

मैंने कहा हाँ **वसुधा** मे साहित्य सौन्दय के बारे मे था।

आरामकुर्सी पर उसने हाथ-पाँव फैला दिये। इतवार का दिन था। उसे फुर्सत नही थी, क्योंकि यह दिन बडे-बडे आदमियो से भेंट के लिए मुकर्रर था। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि आज वह मेरे साथ अपना कीमती समय क्यो गुज़ार रहा है। आरामकुर्सी पर उसे आराम मे पडे हुए देख मैंने सोचा कि शायद आज मैं बडा आदमी हो गया हूँ।

"तुम तो आजकल प्रतिक्रियावादियो-जैसी बातें कर रहे हो। सौन्दर्य की तुम सब्जेक्टिव व्याख्या कर रहे हो। तुम्हारी थियॅरी सब्जेक्टिव है। (तुम्हारे सिद्धान्त आत्मग्रस्त है)।"

मैंने झिझकते हुए कहा, "कला का सृजन तो व्यक्ति ही करता है। इसलिए उसकी रचना के भीतर जो मनोवैज्ञानिक तत्त्व हैं, उन्ही मे से सौन्दर्य का आविर्भाव होगा।"

उसने बात काटकर कहा, "फिर, तुममे और प्रतिक्रियावादियो मे क्या अन्तर है? वे भी आत्मकेन्द्रीय, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हैं। वैसा ही तुम भी करते हो। लेकिन तुमको कुछ लोग मार्क्सवादी कहते है। मैं समझता हूँ वे लोग बेवकूफ हैं, जो तुम्हे ऐसा कहते हैं। तुम असल मे **नयी कविता** वाले दल के अधिक निकट हो!"

मुझे उसकी यह बात बुरी लगी। उसने मुझे खजर मार दिया। हो सकता है, मैं गलत होऊँ। लेकिन मुझे प्रतिक्रियावादी कहना गाली के समान प्रतीत हुआ। खैर, मैं सह गया। जवाब तो यह था कि ऐ मेरे दोस्त, तुम कबसे मार्क्सवादी और प्रगतिवादी हो गये! तुम्हारे बारे मे ऐसा सोचना ही गलत है। मेरे सामने यह स्पष्ट हो गया कि वह मुझे नीचा दिखाना चाहता है।

एकाएक बिजली दौड गयी। एक चमचमाहट आँखो के सामने फैली और गायब हो गयी। खयाल आया कि मेरे बहुत-से दोस्त भी मुझे ऐसा ही समझ रहे होंगे। इस विचार के उठते ही मैं दुख मे डूब गया।

मैंने उससे कहा, "देखो, वास्तविकता क्या है! ..." मेरी ज़बान लडखडाने लगी। मेरे हृदय मे क्रोध और विक्षोभ भरने लगा। स्वय को सयमित कर, मैं तर्क करने लगा, "मनोवैज्ञानिक तत्त्व आखिर क्या हैं! आभ्यन्तरीकृत जगत् ही तो है! मनुष्य का मन जगत् के सम्वेदना-बिम्बो को सगृहीत और सम्पादित करता रहता है। यदि वह ग़लत ढग से सम्पादित करता रहा, तो रचनाकार की दृष्टि मे विक्षेप होगा और उसकी कला घटिया किस्म की होगी।"

लेकिन वे महाशय मुझे समझना नही चाहते थे। न समझते हुए सिद्धान्तवादी बात करना शायद उनके अनुकूल था।

मैं उन महाशय के चेहरे की तरफ देखने लगा, ध्यान से। वे मुझे सुनना चाहते हैं या नहीं! उनका चेहरा नरम होता है या क्या! लेकिन शायद उस

व्यक्ति का इरादा मेरी आलोचना करना ही था। इसमे अधिक कुछ नही। मेरा चित्त विक्षोभ मे भर उठा।

ऐसे बहुत-से लोग हैं जो ईमानदार हैं, सच्चे हैं, किन्तु जिनमे एक प्रकार का बौद्धिक आलस्य है। साथ ही, वे दूसरो को पीटने मे अपनी वीरता समझते हैं—भले ही उनके तर्क और उनकी युक्ति निराधार ही क्यो न हो। इस प्रकार, इस उद्देश्य से, वे बहुत सिद्धान्तवादी बनते हैं, किन्तु, जीवन के जिन तत्त्वो के आधार पर व्यापक सामान्यीकरण बनते है (और उन सामान्यीकरणो मे ही सिद्धान्त बनते हैं), जीवन के उन तत्त्वो की तरफ वे दृष्टिपात नही [करते।]

[अपूर्ण]

०००